नमस्ते जी

ऋषि दयानंद द्वारा प्रचारित वैदिक विचारधारा ने सैकड़ो ह्रदय को क्रन्तिकारी विचारो से भर दिया | जो वेद उस काल में विचारों से भी भुला दिए गए थे | ऋषि दयानंद ने उन ह्रदयों को वेदों के विचारो से ओतप्रोत कर दिया और देश में वेद गंगा बहने लगी | ऋषि के अपने अल्प कार्य काल में समाज की आध्यात्मिक, सामाजिक, और व्यक्तिगत विचार धारा को बदल के रख दिया | ऋषि के बाद भी कही वर्षो तक यह परिपाटी चली पर यह वैचारिक परिवर्तन पुनः उसी विकृति की और लौट रहा है | और इसी विकृति को रोकने के लिए वैदिक विद्वान प्रो० राजेंद्र जी जिज्ञासु के सानिध्य में "पंडित लेखराम वैदिक मिशन" संस्था का जन्म हुआ है | इस संस्था का मुख्य उद्देश्य वेदों को समाज रूपी शरीर के रक्त धमनियों में रक्त के समान स्थापित करना है | यह कार्य ऋषि के जीवन का मुख्य उद्देश्य था और यही इस संस्था का भी मुख्य उद्देश्य है | संस्था के अन्य उद्देश्यों में सम्लित है साहित्य का सृजन करना | जो दुर्लभ आर्य साहित्य नष्ट होने की और अग्रसर है उस साहित्य को नष्ट होने से बचाना और उस साहित्य को क्रम बद्ध तरीके से हमारे भाई और बहनों के समक्ष प्रस्तुत करना जिससे उनकी स्वाध्याय में रूचि बढ़े और वे तुलनात्मक अध्यन कर सकें जिससे उनकी स्वधर्म में रूचि बढ़े और अन्य मत मतान्तरो की जानकारी उन्हें प्राप्त हो और वे विधर्मियो द्वारा लगाये जा रहे विभिन्न आक्षेपों का उत्तर दे सकें विधर्मियो से स्वयं भी बचें और अन्यो की भी सहयता करें | संस्था का उद्देश्य है समाज के समक्ष हमारे गौरव शाली इतिहास को प्रस्तुत करना जिससे हमारा रक्त जो ठंडा हो गया है वह पुनः गर्म हो सके और हम हमारे इतिहास पुरुषो का मान सम्मान करें और उनके बताये गये नीतिगत मार्ग पर चलें | संस्था का अन्य उद्देश्य गौ पालन और गौ सेवा को बढ़ावा देना जिससे पशुओ के प्रति प्रेम, दया का भाव बढ़े और इन पशुओ की हत्या बंद हो, समाज में हो रहे परमात्मा के नाम पर पाखण्ड, अन्धविश्वास, अत्याचार को जड़ से नष्ट करना और परमात्मा के शुद्ध वैदिक स्वरुप को समाज के समक्ष रखना, हमारे युवा शक्ति को अनेक भोग, विबिन्न व्यसनों, छल, कपट इत्यादि से बचाना |

इन कार्यो को हम अकेले पूरा करने का सामर्थ्य नहीं रखते पर, यह सारे कार्य है तो बड़े विशाल और व्यापक पर अगर संस्था को आप का साथ मिला तो बड़ी सरलता से पूर्ण किये जा सकते है | हमारा समाजिक ढाचा ऐसा है की हम प्रत्येक कार्य की लिए एक दुसरे पर निर्भर है | आशा करते है की इस कार्य में आप हमारी तन, मन से साहयता करेंगे | संस्था द्वारा चलाई जा रही वेबसाइट www.aryamantavya.in और www.vedickranti.in पर आप संस्था द्वारा स्थापित संकल्पों सम्बन्धी लेख पड़ सकते है और भिन्न-भिन्न वैदिक साहित्य को निशुल्क डाउनलोड कर सकते है | कृपया स्वयं भी जाये और अन्यो को भी सूचित करे यही आप की हवी होंगी इस यज्ञ में जो आप अवश्य करेंगे यही परमात्मा से प्रार्थना करते है |

जिन सज्जनों के पास दुर्लभ आर्य साहित्य है एवं वे उसे संरक्षित करने में संस्था की सहायता करना चाहते हैं वो कृपया निम्न पते पर सूचित करें

ptlekhram@gmail.com

धन्यवाद् !

पंडित लेखराम वैदिक मिशन

आर्य मंतव्य टीम

यजुर्वेदभाष्यम्

परमहंसपरिव्राजकाचार्य्येण

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्वितम्

एकविंशतितमाऽध्यायात्त्रिंशत्तमाध्यायपर्यन्तम्

अजमेरनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितम्

(तृतीयो भागः)

संवत् १९६१

मूल्य ३॥) डाक व्यय ।)

तीसरा भाग १६)

अथैकविंशतितमोऽध्याय आरभ्यते ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

इममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता ।
निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब इक्कीशवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के वि० ॥

इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युराचके ॥ १ ॥

इमम् । मे । वरुण । श्रुधि । हवम् । अद्य । च । मृडय ।
त्वाम् । अवस्युः । आ । चके ॥ १ ॥

पदार्थः—(इमम्) (मे) मम (वरुण) उत्तमविद्वन् (श्रुधि) शृणु । अत्र संहितायामिति दीर्घः (हवम्) स्तवनम् (अद्य) अस्मिन्नहनि । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (च) (मृडय) (त्वाम्) (अवस्युः) आत्मनोऽवस्युः (आ) (चके) कामये । आचक इति कान्तिकर्मा निघं० २ । ६ ॥ १ ॥

अन्वयः—हे वरुण योऽवस्युरहमिमं त्वामाचके स त्वं मे हवं श्रुधि । अद्य मां मृडय च ॥ १ ॥

भावार्थः—सर्वैर्विद्याकामैरनूचानो विद्वान् कमनीयः स विद्यार्थिनां स्वाध्यायं श्रुत्वा सुपरीक्ष्य सर्वानानन्दयेत् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (वरुण) उत्तम विद्यावान् जन जो (अवस्युः) अपनी रक्षा की इच्छा करनेहारा मैं (इमम्) इस (त्वाम्) तुझ को (आ, चके) चाहता हूं वह तूं (मे) मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुधि) सुन (च) और (अद्य) आज मुझ को (मृडय) सुखी कर ॥ १ ॥

भावार्थः—सब विद्या की इच्छा वाले पुरुषों को चाहिये कि अनुक्रम से उपदेश करने वाले बड़े विद्वान् की इच्छा करें वह विद्यार्थियों के स्वाध्याय को सुन और उत्तम परीक्षा करके सब को आनन्दित करै ॥ १ ॥

तदित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तत्त्वा॑ यामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान॒स्तदा शा॑स्ते॒ यज॑मानो ह॒विर्भिः॑ । अहे॑डमानो वरुणे॒ह बो॒ध्युरु॑शꣳस॒ मा न॒ आयुः॒ प्र मो॑षीः ॥ २ ॥

तत् । त्वा॒ । या॒मि॒ । ब्रह्म॑णा । वन्द॑मानः । तत् । आ । शा॒स्ते॒ । यज॑मानः । ह॒विर्भि॒रिति॑ ह॒विःऽभिः॑ । अहे॑डमानः । वरु॒ण॒ । इ॒ह । बो॒धि॒ । उरु॑शꣳसेत्युरु॑ऽशꣳस । मा । नः॒ । आयुः॑ । प्र । मो॒षीः॒ ॥ २ ॥

पदार्थः—(तत्) तम् (त्वा) त्वाम् (यामि) प्राप्नोमि (ब्रह्मणा) वेदविज्ञानेन (वन्दमानः) स्तुवन् (तत्) (आ) (शास्ते) इच्छति (यजमानः) (हविर्भिः) होतुं दातुमर्हैः पदार्थैः (अहेडमानः) सत्क्रियमाणः (वरुण) अत्युत्तम (इह) अस्मिन् संसारे (बोधि) बोधय (उरुशंस) बहुभिः प्रशंसित (मा) (नः) अस्माकम् (आयुः) जीवनं विज्ञानं वा (प्र) (मोषीः) चोरयः ॥ २ ॥

अन्वयः— हे वरुण विद्वज्जन यथा यजमानो हविर्भिस्तदाशास्ते तथा ब्रह्मणा वन्दमानोऽहं तत्त्वा यामि । हे उरुशंस मयाऽहेडमानस्त्वमिह न आयुर्मा प्रमोषीः शास्त्रं बोधि ॥ २ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०—यो यस्माद्विद्यामाप्नुयात्स तं पूर्वमभिवादयेत् । यो यस्याध्यापकः स्यात्स तस्मै विद्यादानाय कपटं न कुर्यात् कदाचित्केनचिदाचार्यो नाऽवमन्तव्यः ॥ २ ॥

पदार्थः— हे (वरुण) अति उत्तम विद्वान् पुरुष जैसे (यजमानः) यजमान (हविर्भिः) देने योग्य पदार्थों से (तत्) उस की (आ, शास्ते) इच्छा करता है वैसे (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत्) उस (त्वा) तुझ को (यामि) प्राप्त होता हूं । हे (उरुशंस) बहुत लोगों से प्रशंसा किये हुए जन मुझ से (अहेडमानः) सत्कार को प्राप्त होता हुआ तू (इह) इस संसार में (नः) हमारे (आयुः) जीवन वा विज्ञान को (मा) मत (प्र, मोषीः) चुरा लेवे और शास्त्र का (बोधि) बोध कराया कर ॥ २ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य जिस से विद्या को प्राप्त हो वह उस को प्रथम नमस्कार करे जो जिस का पढ़ाने वाला हो वह उस को विद्या देने के लिये कपट न करे कदापि किसी को आचार्य का अपमान न करना चाहिये ॥२॥

त्वामित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निवरुणौ देवते ।
स्वराड्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वं नो॑ऽ अग्ने वरु॑णस्य विद्वान् दे॒वस्य॒ हेडो॒ऽअव॑ यासिसीष्ठाः । यजि॑ष्ठो॒ वह्नि॑तमः॒ शोशु॑चानो॒ विश्वा॒ द्वेषा॑ᳬसि॒ प्र मु॑मुग्ध्य॒स्मत् ॥ ३ ॥

त्वम् । नः । अग्ने । वरु॑णस्य । विद्वान् । देवस्य॑ । हेडः । अव॑ । या॒सि॒सी॒ष्ठाः । यजि॑ष्ठः । वह्नि॑तम॒ऽइति॒ वह्नि॑ऽतमः । शोशु॑चानः । विश्वा॑ । द्वेषा॑ᳬसि । प्र । मु॒मु॒ग्धि॒ । अ॒स्मत् ॥ ३ ॥

पदार्थः— (त्वम्) (नः) अस्माकम् (अग्ने) पावकवत्प्रकाशमान (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (विद्वान्) विद्यायुक्तः (देवस्य) विदुषः (हेडः) अनादरः (अव) निषेधे (यासिसीष्ठाः) याया: प्राप्नुयाः (यजिष्ठः) अतिशयेन यष्टा (वह्नितमः) अतिशयेन वोढा (शोशुचानः) शुद्धः शोधयन् सन् (विश्वा) सर्वाणि (द्वेषांसि) द्वेषादियुक्तानि कर्माणि (प्र) (मुमुग्धि) प्रमुञ्चय (अस्मत्) अस्माकं सकाशात् ॥ ३ ॥

अन्वयः— हे अग्ने यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विद्वांस्त्वं वरुणस्य देवस्य यो हेडस्तमव यासिसीष्ठा मा कुर्याः । हे अग्ने त्वं यो नोऽस्माकं हेडो भवेत्तं मास्वीकुर्य्याः । हे शिक्षक त्वमस्माद्विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्धि ॥ ३ ॥

भावार्थः—कोपि मनुष्यो विदुषामनादरं कोपि विद्वान् विद्यार्थिनामसत्कारं च न कुर्यात्सर्वे मिलित्वेर्ष्याक्रोधादिदोषांस्त्यक्त्वा सर्वेषांसखायो भवेयुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्यप्रकाशमान (यजिष्ठः) अतीव यजन करने (वह्नितमः) अत्यन्त प्राप्ति कराने और (शोशुचानः) शुद्ध करने हारे (विद्वान्) विद्या युक्त जन (त्वम्) तू (वरुणस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) विद्वान् का जो (हेडः) अनादर उस को (अव) मत (यासिसीष्ठाः) करे । हे तेजस्वि तू जो (नः) हमारा अनादर हो उस को अंगीकार मत कर । हे शिक्षा करने हारे तू (अस्मत्) हम से (विश्वा) सब (द्वेषांसि) द्वेष आदि युक्त कर्मों को (प्र, मुमुग्धि) छुड़ा दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य विद्वानों का अनादर और कोई भी विद्वान् विद्यार्थियों का असत्कार न करे सब मिल के ईर्ष्या क्रोध आदि दोषों को छोड़ के सब के मित्र होवें ॥ ३ ॥

सत्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निवरुणौ देवते ।

स्वराड्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स त्वं नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न ऽएधि ॥ ४ ॥

सः । त्वम् । नः । अग्ने । अवमः । भव । ऊती । नेदिष्ठः । अस्याः । उषसः । व्युष्टाविति विऽउष्टौ । अव । यक्ष्व । नः । वरुणम् । रराणः । वीहि । मृडीकम् । सुहव इति सुऽहवः । नः । एधि ॥ ४ ॥

पदार्थः—(सः) (त्वम्) (नः) अस्माकम् (अग्ने) (अवमः) रक्षकः (भव) (ऊती) ऊत्या (नेदिष्ठः) अति शयेनान्तिकः (अस्याः) (उषसः) प्रत्यूषवेलायाः (व्युष्टौ) विविधे दाहे (अव) (यक्ष्व) संगमय अत्र बहुलं छन्दसीतिविकरणाभावः (नः) अस्माकम् (वरुणम्) उत्तमम् (रराणः) रममाणः (वीहि) व्याप्नुहि (मृडीकम्) सुखप्रदम् (सुहवः) शोभनो हवो दानं यस्य सः (नः) अस्मान् (एधि) भव ॥ ४ ॥

अन्वयः— हे अग्ने यथाऽस्या उषसो व्युष्टौ नेदिष्ठोऽग्निः रक्षकश्च भवति तथा स त्वमूती नोऽवमो भव नो वरुणमवयक्ष्व रराणः सन् मृडीकं वीहि नः सुहवएधि ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-यथा प्रातःसमये सूर्यः सन्निहितः सन् सर्वान् सन्निहितान मूर्त्तान् पदार्थान् व्याप्नोति तथाऽन्तेवासिनां सन्निधावध्यापको भूत्वैतानात्मनो विद्यया व्याप्नुयात् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् जैसे (अस्याः) इस (उषसः) प्रभातसमय के (व्युष्टौ) नाना प्रकार के दाह में अग्नि (नेदिष्ठः) अत्यन्त समीप और रक्षा करने हारा है वैसे (सः) वह (त्वम्) तू (नः) (ऊती) प्रीति से (नः हमारा अवमः) रक्षा करने हारा (भव) हो नः) हम को (वरुणम्) उत्तम गुण वा उत्तम विद्वान् वा उत्तम गुणीजन का (अव, यक्ष्व) मेल कराओ और (रराणः) रमण करते हुए तुम (मृडीकम्) सुख देने हारे को (वीहि) व्याप्त होओ (नः) हम को (सुहवः) शुभदान देनेहारे (एधि) हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु० – जैसे प्रातःसमय में सूर्य समीपस्थित हो के सब समीप के मूर्त्तपदार्थों को व्याप्त होता है वैसे शिष्यों के समीप अध्यापक हो के इन को अपनी विद्या से व्याप्त करे ॥ ४ ॥

महीमित्यस्य वामदेव ऋषिः । आदित्या देवताः ।
निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ पृथिव्या विषयमाह ॥

अब पृथिवी के वि० ॥

म॒हीमू॒ षु मा॒तर॑ꣳसुव्र॒ताना॑मृ॒तस्य॒ पत्नी॒मव॑से हुवेम । तु॒वि॒क्ष॒त्राम॒जर॑न्तीमुरू॒चीꣳसु॒शर्मा॑ण॒मदि॑तिꣳसु॒प्रणी॑तिम् ॥ ५ ॥

म॒हीम् । ऊँ इत्यूँ । सु । मा॒तर॑म् । सु॒व्र॒ताना॑म् । ऋ॒तस्य॑ । पत्नी॑म् । अव॑से । हु॒वे॒म । तु॒वि॒क्ष॒त्रामिति॑ तुवि॒ऽक्ष॒त्राम् । अ॒जर॑न्तीम् । उ॒रू॒चीम् । सु॒शर्मा॑ण॒मिति॑ सु॒ऽशर्मा॑णम् । अदि॑तिम् । सु॒प्रणी॑तिम् । सु॒प्रणी॑ति॒मिति॑ सु॒ऽप्रणी॑तिम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(महीम्) भूमिम् (उ) उत्तमे (सु) शोभने (मातरम्) मातरमिव वर्त्तमानाम् (सुव्रतानाम्) शोभनानि व्रतानि सत्याचरणानि येषां तेषाम् (ऋतस्य) प्राप्तसत्यस्य (पत्नीम्) स्त्रीवद्वर्त्तमानाम् (अवसे) रक्षणाद्याय (हुवेम) आदद्याम (तुविक्षत्राम्) तुविर्बहु क्षत्रं धनं यस्यां ताम् (अजरन्तीम्) वयोहानिरहिताम् (उरूचीम्) या उरूणि बहून्यञ्चति प्राप्नोति ताम् (सुशर्माणम्) शोभनानि शर्माणि गृहाणि यस्यास्ताम् (अदितिम्) अखण्डिताम् (सुप्रणीतिम्) शोभनाः प्रकृष्टा नीतयो यस्यां ताम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं मातरमिव सुव्रतानामृतस्य पत्नीं तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणं सुप्रणीतिमु महीमदितिमवसे सुहुवेम तथा यूयमपि गृह्णीत ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु० यथा माताऽपत्यानि पतिव्रता पतिं च पालयति तथेयं भूमिः सर्वान् रक्षति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (मातरम्) माता के समान स्थित (सुव्रतानाम्) जिन के शुभ सत्याचरण हैं उन को (ऋतस्य) प्राप्त हुए सत्य की (पत्नीम्) स्त्री के समान वर्त्तमान(तुविक्षत्राम्)बहुत धन वाली (अजरन्तीम्) जीर्णपन से रहित (उरूचीम्) बहुत पदार्थों को प्राप्त कराने हारी (सुशर्माणम्) अच्छे प्रकार के गृह से और (सुप्रणीतिम्) उत्तम नीतियों से युक्त (उ) उत्तम (अदितिम्) अखण्डित (महीम्) पृथ्वी को (अवसे) रक्षा आदि के लिये (सुहुवेम) ग्रहण करते हैं वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे माता सन्तानों और पतिव्रता स्त्री पति का पालन करती है वैसे यह पृथिवी सब का पालन करती है ॥ ५ ॥

सुत्रामाणमित्यस्य गयप्लात ऋषिः । अदितिर्देवता ।
भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ जलयानविषयमाह ॥

अब जलयान विषय को अगले० ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसंꣳ सुशर्माणमदितिꣳसुप्रणीतिम् । दैवीं नावꣳस्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ ६ ॥

सुत्रामाणमिति सुऽत्रामाणम् । पृथिवीम् । द्याम् । अनेहसम् । सुशर्म्माणमिति सुऽशर्माणम् । अदितिम् । सुप्रणीतिम् । सुप्रणीतिमिति सुऽप्रणीतिम् । दैवीम् । नावम् । स्वरित्रामिति सुऽअरित्राम् । अनागसम् । अस्रवन्तीम् । आ । रुहेम । स्वस्तये ॥ ६ ॥

पदार्थः—(सुत्रामाणम्) शोभनानि त्रामाणि रक्षणादीनि यस्यास्ताम् (पृथिवीम्) विस्तीर्णाम् (द्याम्) सुप्रकाशाम् (अनेहसम्) अहन्तव्याम् । नञि हन एहच । उ० पा० ४ । २२४ (सुशर्माणम्) सुशोभितगृहाम् (अदितिम्) (सुप्रणीतिम्) बहुराजप्रजाऽखण्डितनीतियुक्ताम् (दैवीम्) देवानामाप्तानां विदुषामियं ताम् (नावम्) नोदयन्ति प्रेरयन्ति यया ताम् (स्वरित्राम्) शोभनान्यरित्राणि यस्यां ताम् (अनागसम्) अविद्यमानाऽपराधाम् (अस्रवन्तीम्) अच्छिद्राम् (आ) (रुहेम) अधितिष्ठेम । अत्र संहितायामिति दीर्घः (स्वस्तये) सुखाय ॥ ६ ॥

अन्वयः-हे शिल्पिनो यथा वयं स्वस्तये सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीं दैवीं नावमारुहेम तथा यूयमिमामारोहत ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०- मनुष्या यस्यां बहूनि गृहाणि बहूनि साधनानि बहूनि रक्षणानि बहुविधः प्रकाशो बहवो विद्वांसश्च स्युस्तस्यामच्छिद्रायां महत्यां नावि स्थित्वा समुद्रादिजलाशयेष्ववारपारौ देशान्तरद्वीपान्तरौ च गत्वाऽऽगत्य भूगोलस्थान् देशान् द्वीपांश्च विज्ञाय श्रीमन्तो भवन्तु ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे शिल्पिजनो जैसे हम (स्वस्तये) सुख के लिये (सुत्रामाणम्) अच्छे रक्षण आदि से युक्त (पृथिवीम्) विस्तार और (द्याम्) शुभ प्रकाश वाली (अनेहसम्) अहिंसनीय (सुशर्माणम्) जिस में सुशोभित घर विद्यमान उस (अदितिम्) अखण्डित (सुप्रणीतिम्) बहुत राजा और प्रजाजनों की पूर्ण नीति से युक्त (स्वरित्राम्) वा जिस में बल्ली पर बल्ली लगी हैं उस (अनागसम्) अपराधरहित और (अस्रवन्तीम्) छिद्र रहित (दैवीम्) विद्वान् पुरुषों की (नावम्) प्रेरणा करने हारी नाव पर (आ, रुहेम) चढ़ते हैं वैसे तुम लोग भी चढ़ो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जिस में बहुत घर, बहुत साधन, बहुत रक्षा करने हारे, अनेक प्रकार का प्रकाश और बहुत विद्वान् हों उस छिद्र रहित बड़ी नाव में स्थित होके समुद्र आदि जल के स्थानों में पारावार देशांतर और द्वीपांतर में जा आ के भूगोल में स्थित देश और द्वीपों को जान के लक्ष्मीवान् होवें ॥ ६ ॥

सुनावमित्यस्य गयप्लातऋषिः । स्वर्या नौर्देवता ।
यवमध्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् । शतारित्राᳬं स्वस्तये ॥ ७ ॥

सुनावमिति सुऽनावम् । आ । रुहेयम् । अस्रवन्तीम् । अनागसम् । शतारित्रामिति शतऽअरित्राम् । स्वस्तये ॥ ७ ॥

पदार्थः—(सुनावम्) शोभनां सुनिर्मितां नावम् (आ) (रुहेयम्) (अस्रवन्तीम्) छिद्रादिदोषरहिताम् (अनागसम्) निर्माणदोषरहिताम् (शतारित्राम्) शतमरित्राणि यस्यास्ताम् (स्वस्तये) सुखाय ॥ ७ ॥

अन्वयः— हे मनुष्या यथाऽहं स्वस्तयेऽस्रवन्तीमनागसं शतारित्रां सुनावमारुहेयं तथास्यां यूयमप्यारोहत ॥ ७ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०—मनुष्या महतीर्नावः सुपरीक्ष्य तासु स्थित्वा समुद्रादिपारावारौ गच्छेयुः । यत्र बहून्यरित्रादीनि स्युस्ता नावोऽत्युत्तमाः स्युः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (स्वस्तये) सुख के लिये (अस्रवन्तीम्) छिद्रादि दोष वा (अनागसम्) बनावट के दोषों से रहित (शतारित्राम्) अनेकों लंगर वाली (सुनावम्) अच्छे बनी नावपर (आ,रुहेयम्) चढूं वैसे इस पर तुम भी चढ़ो ॥७॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-मनुष्य लोग बड़ी नावों की अच्छे प्रकार परीक्षा करके और उनमें स्थिर होके समुद्र आदि के पारावार जायें जिन में बहुत लंगर आदि होवें वे नावें अत्यन्त उत्तम हों ॥ ७ ॥

आ न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते ।

निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ८ ॥

आ। नः। मित्रावरुणा। घृतैः। गव्यूतिम्। उक्ष-तम्। मध्वा। रजांसि। सुक्रतूऽइति सुऽक्रतू ॥ ८ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (नः) अस्माकम् (मित्रावरुणा) प्राणोदानाविव (घृतैः) उदकैः (गव्यूतिम्) क्रोशद्वयम् (उक्षतम्) सिञ्चतम् (मध्वा) मधुना जलेन (रजांसि) लोकान् (सुक्रतू) शोभनाः प्रज्ञाः कर्माणि वा ययोस्तौ ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मित्रावरुणा प्राणोदानवद्वर्त्तमानौ सुक्रतू शिल्पिनौ युवां घृतैर्नो गव्यूतिमुक्षतमा मध्वा रजांस्युक्षतम् ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-यदि शिल्पिनो यानानि जलादिना चालयेयुस्तर्हि त ऊर्ध्वाऽधोमार्गेषु गन्तुं शक्नुयुः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के समान वर्त्तने हारे (सुक्रतू) शुभ बुद्धि वा उत्तम कर्मयुक्त शिल्पी लोगो तुम (घृतैः) जलों से (नः) हमारे (गव्यूतिम्) दो कोश को (उक्षतम्) सेचन करो और (आ, मध्वा) सब ओर से मधुर जल से (रजांसि) लोकों का सेवन करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो शिल्पी विद्या वाले लोग नाव आदि को जल आदि मार्ग से चलावें तो वे ऊपर और नीचे मार्गों में जाने को समर्थ हों ॥८॥

प्रबाहवेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता।
त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

फिर विद्वानों के वि० ॥

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन। आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥९॥

प्र । बाहवा । सिसृतम् । जीवसे । नः । आ । नः । गव्यूतिम् । उक्षतम् । घृतेन । आ । मा । जने । श्रवयतम् । युवाना । श्रुतम् । मे । मित्रावरुणा । हवा । इमा ॥ ६ ॥

पदार्थः--(प्र) (बाहवा) बाहू इव । अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः (सिसृतम्) प्राप्नुतम् (जीवसे) जीवितुम् (नः) अस्मान् (आ) (नः) अस्माकम् (गव्यूतिम्) क्रोशयुग्मम् (उक्षतम्) सिञ्चेताम् (घृतेन) जलेन (आ) (मा) माम् (जने) (श्रवयतम्) श्रावयतम् । वृद्धयभावश्छान्दसः (युवाना) युवानौ मिश्रितामिश्रितयोः कर्त्तारौ (श्रुतम्) शृणुतम् (मे) मम (मित्रावरुणा) मित्रश्च वरुणश्च तौ (हवा) हवानि हवनानि (इमा) इमानि ॥ ६ ॥

अन्वयः--हे मित्रावरुणा बाहवा युवाना युवां नो जीवसे मा प्रसिसृतं घृतेन नो गव्यूतिमोक्षतं नानाकीर्त्तिमाश्रवयतं मे जन इमा हवा श्रुतम् ॥ ९ ॥

भावार्थः--अध्यापकोपदेष्टारौ प्राणोदानवत्सर्वेषां जीवनहेतू भवेतां विद्योपदेशाभ्यां सर्वेषामात्मनो जलेन वृक्षानिव सिञ्चेताम् ॥ ९ ॥

पदार्थः--(मित्रावरुणा) मित्र और वरुण उत्तम जन (बाहवा) दोनों बाहु के तुल्य (युवाना) मिलाने और अलग करने हारे तुम (नः) हमारे (जीवसे) जीने के लिये (मा) मुझ को (प्र, सिसृतम्) प्राप्त होओ (घृतेन) जल से (नः हमारे (गव्यूतिम्) दो कोश पर्यन्त (आ,उक्षतम्) सब ओर से सेचन करो । नाना प्रकार की कीर्ति को (आ, श्रवयतम्) अच्छे प्रकार सुनाओ और (मे) मेरे (जने, मनुष्य गण में (इमा) इन (हवा) वाद विवादों को श्रुतम्) सुनो ॥ ९ ॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक प्राण और उदान के समान सब के जीवन के कारण होवें विद्या और उपदेश से सब के आत्माओं को जल से वृक्षों के समान सेचन करें ॥ ९ ॥

शमित्यस्यात्रेय ऋषिः । ऋत्विजो देवताः ।

भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१०॥

शम् । नः । भवन्तु । वाजिनः । हवेषु । देवतातेति देवऽताता । मितद्रव इति मितऽद्रवः । स्वर्का इति सुऽअर्काः । जम्भयन्तः । अहिम् । वृकम् । रक्षांसि । सनेमि । अस्मत् । युयवन् । अमीवाः ॥ १० ॥

पदार्थः—(शम्) सुखकारकाः (नः) अस्मभ्यम् (भवन्तु) (वाजिनः) प्रशस्तविज्ञानयुक्ताः (हवेषु) दानाऽदानेषु (देवताता) देवता विद्वांस इव वर्त्तमानाः (मितद्रवः) ये मितं द्रवन्ति ते (स्वर्काः) सुष्ठ्वर्काअन्नानि वज्रो वा येषान्ते (जम्भयन्तः) विनाशयन्तः (अहिम्) मेघं सूर्य इव (वृकम्) स्तेनम् (रक्षांसि) दुष्टान् जीवान् (सनेमि) सनातनं पुराणम् । सनेमि इति पुराणनाम निघं० ३ । २७ (अस्मत्) (युयवन्) पृथक्कुर्वन्तु (अमीवाः) रोगान् ॥१०॥

अन्वयः—हे स्वर्का मितद्रवो देवताता वाजिनो हवेषु विद्वांसो भवन्तोऽहिं सूर्य इव वृकं रक्षांसि च जम्भयन्तो नः सनेमि शं भवन्तु । अस्मदमीवा युयवन् ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्योऽन्धकारं निवर्त्त्य सर्वान् सुखयति तथा विद्वांसः प्राणिनां सर्वान् शरीरात्मरोगान् निवार्य्यानन्दयेयुः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (स्वर्काः) अच्छे अन्न वा वज्र से युक्त और (मितद्रवः) प्रमाणित चलने और (देवताता) विद्वानों के समान वर्त्तने हारे (वाजिनः) अति उत्तम विज्ञान से युक्त (हवेषु) लेने देने में चतुर आप लोग (अहिम्) मेघ को सूर्य के समान (वृकम्) चोर और (रक्षांसि) दुष्ट जीवों का (जम्भयन्तः) विनाश करते हुए (नः) हमारे लिये (सनेमि) सनातन (शम्) सुख करने हारे (भवन्तु) हो ओ और (अस्मत्) हमारे (अमीवाः) रोगों को (युयवन्) दूर करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य अन्धकार को हटा के सब को सुखी करता है वैसे विद्वान् लोग प्राणियों के शरीर और आत्मा के सब रोगों को निवृत्त करके आनन्द युक्त करें ॥ १० ॥

वाजेवाज इत्यस्य आत्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।

निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मंत्र में० ॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः । अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥११॥

वाजेवाजऽइति वाजेऽवाजे । अवत । वाजिनः । नः । धनेषु । विप्राः । अमृताः । ऋतज्ञाऽइत्यृतज्ञाः । अस्य । मध्वः । पिबत । मादयध्वम् । तृप्ताः । यात । पथिभिरिति पथिऽभिः । देवयानैरिति देवऽयानैः ॥ ११ ॥

पदार्थः—(वाजेवाजे) युद्धे युद्धे (अवत) रक्षत (वाजिनः) विज्ञानवन्तः (नः) अस्मान् (धनेषु) (विप्राः) मेधाविनः (अमृताः) आत्मस्वरूपेण नित्याः (ऋतज्ञाः) य ऋतं सत्यं जानन्ति ते (अस्य) (मध्वः) मधुरस्य रसस्य । अत्र कर्मणि षष्ठी (पिबत) (मादयध्वम्) आनन्दयत (तृप्ताः) प्रीताः (यात) गच्छत (पथिभिः) (देवयानैः) देवा विद्वांसो यान्ति येषु तैः ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे अमृता ऋतज्ञा वाजिनो विप्रा यूयं वाजेवाजे धनेषु नोऽवतास्य मध्वः पिबत तेन मादयध्वमनेन तृप्ताः सन्तो देवयानैः पथिभिर्यात ॥ ११ ॥

भावार्थः—यथा विद्वांसो विद्यादानोपदेशाभ्यां सर्वान् सुखयन्ति तथैव राजपुरुषा रक्षाऽभयदानाभ्यां सर्वान् सुखयन्तु । धर्म्यमार्गेषु गच्छन्तोऽर्थकाममोक्षान् प्राप्नुवन्तु ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अमृताः) आत्मस्वरूप से अविनाशी (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने हारे (वाजिनः) विज्ञान वाले (विप्राः) बुद्धिमान् लोगो तुम (वाजेवाजे) युद्ध युद्ध में और (धनेषु) धनों में (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो और (अस्य) इस (मध्वः) मधुर रस का (पिबत) पान करो और उस से (मादयध्वम्) विशेष आनन्द को प्राप्त होओ और इस से (तृप्ताः) तृप्त हो के (देवयानैः) विद्वानों के जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (यात) जाओ ॥ ११ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग विद्या दान से और उपदेश से सब को सुखी करते हैं वैसे ही राजपुरुष रक्षा और अभयदान से सब को सुखी करें तथा धर्मयुक्त मार्गों में चलते हुए अर्थ, काम और मोक्ष इन तीन पुरुषार्थ के फलों को प्राप्त होवें ॥११॥

समिद्ध इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता ।

विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

फिर विद्वान् के वि० ॥

समिद्धोऽअग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः । गायत्री छन्द इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥ १२ ॥

समिद्धऽइति सम्ऽइद्धः । अग्निः । समिधेति सम्ऽइधा । सुसमिद्धऽइति सुऽसमिद्धः । वरेण्यः । गायत्री । छन्दः । इन्द्रियम् । त्र्यविरिति त्रिऽअविः । गौः । वयः । दधुः ॥ १२ ॥

पदार्थः—(समिद्धः) सम्यक् प्रदीप्तः (अग्निः) वह्निः (समिधा) सम्यक् प्रकाशेन (सुसमिद्धः) सुष्ठुप्रकाशितः सूर्यः (वरेण्यः) वरणीयो जनः (गायत्री) (छन्दः) (इन्द्रियम्) मनः (त्र्यविः) त्रयाणां शरीरेन्द्रियात्म-नामवीरक्षणं यस्मात् सः (गौः) स्तोता (वयः) जीवनम् (दधुः) दधीरन् ॥ १२ ॥

अन्वयः—यथा समिद्धोऽग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यो गायत्री छन्दश्चेन्द्रियं प्राप्नोति यथा च त्र्यविर्गौर्वयो दधाति तथा विद्वांसो दधुः ॥ १२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—विद्वांसो विद्यया सर्वेषामात्मनः प्रकाश्य सर्वान् जितेन्द्रियान् कृत्वा दीर्घायुषः सम्पादयन्तु ॥ १२ ॥

पदार्थः—जैसे (समिद्धः) अच्छे प्रकार देदीप्यमान (अग्निः) अग्नि, (समिधा) उत्तम प्रकाश से (सुसमिद्धः) बहुत प्रकाशमान सूर्य (वरेण्यः) अंगीकार करने योग्य जन और (गायत्री, छन्दः) गायत्री छन्द (इन्द्रियम्) मन को प्राप्त होता है और जैसे (त्र्यविः) शरीर, इन्द्रिय, आत्मा, इन तीनों की रक्षा करने और (गौः) स्तुति प्रशंसा करने हारा जन (वयः) जीवन को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग (दधुः) धारण करें ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वान् लोग विद्या से सब के आत्माओं को प्रकाशित और सब को जितेन्द्रिय करके पुरुषों को दीर्घ आयु वाले करें ॥ १२ ॥

तनूनपादित्यस्य स्वस्त्यात्रेयऋषिः । विद्वांसो देवताः ।

अनुष्टुपछन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती । उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाड्गौर्वयो दधुः ॥ १३ ॥

तनूनपादिति तनूऽनपात् । शुचिऽव्रतः । तनूपाऽइति तनूऽपाः । च । सरस्वती । उष्णिहा । छन्दः । इन्द्रियम् । दित्यवाडिति दित्यऽवाट् । गौः । वयः । दधुः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(तनूनपात्) यस्तनूं न पातयति सः (शुचिव्रतः) पवित्रधर्माचरणशीलः (तनूपाः) यस्तनूः पाति (च) (सरस्वती) वाणी

(उष्णिहा) (छन्दः) (इन्द्रियम्) इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गम् (दित्यवाट्) दितये हितं वहति (गौः) स्तोता (वयः) कामनाम् (दधुः) ॥ १३ ॥

अन्वयः—यथा शुचिव्रतस्तनूनपात्तनूपाः सरस्वती चोष्णिहा छन्द इन्द्रियं दधाति यथा च दित्यवाड्गौर्वयो वर्धयति तथैतत्सर्वं विद्वांसो दधुः ॥ १३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये पवित्राचरणा येषां वाणी विद्या सुशिक्षायुक्तास्ति ते पूर्णं जीवनं धातुमर्हन्ति ॥ १३ ॥

पदार्थः— जैसे (शुचिव्रतः) पवित्र धर्म के आचरण करने (तनूनपात्) शरीर को पड़ने न देने (तनूपाः) किन्तु शरीर की रक्षा करने हारा (च) और (सरस्वती) वाणी तथा (उष्णिहा) उष्णिह (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) जीव के चिन्ह को धारण करता है वा जैसे (दित्यवाट्) खंडनीय पदार्थों के लिये हित प्राप्त कराने और (गौः) स्तुति करने हारा जन (वयः) इच्छा को बढ़ाता है वैसे इन सब को विद्वान् लोग (दधुः) धारण करें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो लोग पवित्र आचरण वाले हैं और जिन की वाणी विद्याओं में सुशिक्षा पाई हुई है वे पूर्ण जीवन के धारण करने को योग्य हैं ॥ १३ ॥

इडाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवोऽअमर्त्यः । अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥ १४ ॥

इडाभिः । अग्निः। ईड्यः। सोमः। देवः। अमर्त्यः। अनुष्टुप्। अनुस्तुबित्यनुऽस्तुप्। छन्दः। इन्द्रियम्। पञ्चाविरिति पञ्चऽअविः। गौः। वयः। दधुः॥१४॥

पदार्थः—(इडाभिः) (अग्निः) पावक इव (ईड्यः) स्तुत्योऽध्येषणीयः (सोमः) ऐश्वर्य्यवान् (देवः) दिव्यगुणः (अमर्त्यः) स्वस्वरूपेण मृत्युरहितः (अनुष्टुप्) (छन्दः) (इन्द्रियम्) ज्ञानादिव्यवहारसाधकम् (पञ्चाविः) यः पञ्चभिरव्यते रक्ष्यते सः (गौः) विद्यया स्तोतव्यः (वयः) तृप्तिम् (दधुः) दध्युः॥१४॥

अन्वयः—यथाऽग्निरमर्त्यः सोम ईड्यो देवः पञ्चाविर्गौर्विद्वानिडाभिरनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं वयश्च दध्यात्तथैतत्सर्वे दधुः॥१४॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये धर्मेण विद्यैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति ते सर्वान् मनुष्यानेते प्रापयितुं शक्नुवन्ति॥१४॥

पदार्थः—जैसे (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशमान (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से नाश रहित (सोमः) ऐश्वर्यवान् (ईड्यः) स्तुति करने वा खोजने के योग्य (देवः) दिव्य गुणी (पञ्चाविः) पांच से रक्षा को प्राप्त (गौः) विद्या से स्तुति के योग्य विद्वान् पुरुष (इडाभिः) प्रशंसाओं से (अनुष्टुप्, छन्दः) अनुष्टुप् छन्द (इन्द्रियम्) ज्ञान आदि व्यवहार को सिद्ध करने हारे मन और (वयः) तृप्ति को धारण करे वैसे इस को सब (दधुः) धारण करें॥१४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो लोग धर्म से विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वे सब मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य प्राप्त करा सकते हैं॥१४॥

सुबर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः । बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥ १५ ॥

सुबर्हिरिति सुऽबर्हिः । अग्निः । पूषण्वानिति पूषण्ऽवान् । स्तीर्णबर्हिरिति स्तीर्णऽबर्हिः । अमर्त्यः । बृहती । छन्दः । इन्द्रियम् । त्रिवत्स इति त्रिऽवत्सः । गौः । वयः । दधुः ॥ १५ ॥

पदार्थः—(सुबर्हिः) सुशोभनं बर्हिरन्तरिक्षं यस्मात् सः (अग्निः) पावकः (पूषण्वान्) पूषाणः पुष्टिकरा गुणा विद्यन्ते यस्मिन् (स्तीर्णबर्हिः) स्तीर्णं बर्हिरन्तरिक्षं येन सः (अमर्त्यः) स्वस्वरूपेण मृत्युधर्मरहितः (बृहती) (छन्दः) (इन्द्रियम्) (त्रिवत्सः) त्रीणि देहेन्द्रियमनांसि वत्सा इवानुचराणि यस्य सः (गौः) धेनुः (वयः) येन व्येति व्याप्नोति तत् (दधुः) दध्युः ॥ १५ ॥

अन्वयः—यथा पूषण्वान् स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः सुबर्हिरग्निरिव जना बृहती छन्दश्चेन्द्रियं दध्यात् त्रिवत्सो गौरिव वयोदध्यात् तथैतद् दधुः ॥ १५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाग्निरन्तरिक्षे चरति तथा कूलो विद्वांसः सूक्ष्मनिराकारपदार्थविद्यायां चरन्ति यथा गोरनु वत्सो भवति तथा विद्वदनुकूला अविद्वांसश्चरन्त्विन्द्रियाणि च वशमानयेयुः ॥ १५ ॥

पदार्थः--जैसे (पूषण्वान्) पुष्टि करने हारे गुणों से युक्त (म्तीर्णवर्हिः) आकाश को व्याप्त होने वाला (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से नाश रहित (सुवर्हिः) आकाश को शुद्ध करने हारा (अग्निः) अग्नि के समान जन और (वृहती) बृहती (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) जीव के चिन्ह को धारण करें और (त्रिवत्सः) त्रिवत्स अर्थात् देह इन्द्रिय, मन, जिस के अनुगामी वह (गौः) गौ के समान मनुष्य (वयः) तृप्ति को प्राप्त करें वैसे इस को सब लोग (दधुः) धारण करें ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि अन्तरिक्ष में चलता है वैसे विद्वान् लोग सूक्ष्म और निराकार पदार्थों की विद्या में चलते हैं जैसे गाय के पीछे बछड़ा चलता है वैसे अविद्वान् जन विद्वानों के पीछे चला करें और अपनी इन्द्रियों को वश में लावें ॥ १५ ॥

दुरो देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।

अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ वायुप्रभृतिपदार्थप्रयोजनमुपादिश्यते

अथ वायु आदि पदार्थों के प्रयोजन वि० ॥

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । पङ्क्तिश्छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १६ ॥

दुरः । देवीः । दिशः । महीः । ब्रह्मा । बृहस्पतिः । पंक्तिः । छन्दः । इह । इन्द्रियम् । तुर्य्यवाडिति तुर्य्यऽवाट् । गौः । वयः । दधुः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(दुरः) द्वाराणि (देवीः) देदीप्यमानां (दिशः) (महीः) महत्यः (ब्रह्मा) (देवः) देदीप्यमानः (बृहस्पतिः) बृहतां पालकः सूर्य्यः (पङ्क्तिः) (छन्दः) (इह) (इन्द्रियम्) धनम् (तुर्य्यवाट्) यस्तुर्यं चतुर्थं वहति प्राप्नोति सः (गौः) धेनुः (वयः) जीवनम् (दधुः) दधीरन् ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथेह देवीर्महीर्दुरोदिशो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः पङ्क्तिश्छन्द इन्द्रियं तुर्य्यवाड् गौर्वयश्च दधुस्तथा यूयमपि धरत ॥ १६ ॥

भावार्थः—नहि कश्चिदप्यन्तरिक्षस्थवाय्वादिभिर्विना जीवितुं शक्नोति ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (इह) यहां (देवीः) देदीप्यमान (महीः) बड़े (दुरः) द्वारे (दिशः) दिशाओं को (ब्रह्मा) अन्तरिक्षस्थ पवन (देवः) प्रकाशमान (बृहस्पतिः) बड़ों का पालन करने हारा सूर्य्य और (पङ्क्तिश्छन्दः) पङ्क्ति छन्द (इन्द्रियम्) धन तथा (तुर्यवाट्) चौथे को प्राप्त होने हारी (गौः) गाय (वयः) जीवन (दधुः) को धारण करें वैसे तुम लोग भी जीवन को धारण करो ॥ १६ ॥

भावार्थः—कोई भी प्राणी अन्तरिक्षस्थ पवन आदि के विना नहीं जी सकता ॥ १६ ॥

उप इत्यस्यस्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वे देवा देवताः ।

निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उपे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः । त्रिष्टुप् छन्दं इहेन्द्रियं पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १७ ॥

उषेऽइत्युषे । यह्वीऽइति यह्वी । सुपेशसेति सुऽपेशसा । विश्वे । देवाः । अमर्त्याः । त्रिष्टुप् । त्रिस्तुबिति त्रिऽस्तुप् । छन्दः । इह । इन्द्रियम् । पुष्ठवाडिति पष्ठऽवाट् । गौः । वयः । दधुः ॥ १७ ॥

पदार्थः—(उषे) दहनकर्त्र्याविव स्त्रियौ (यह्वी) महती महत्यौ (सुपेशसा) सुष्ठु पेशो रूपं ययोस्तावध्यापिकोपदेशिके विश्वकारास्थ (विश्वे) सर्वे (देवाः) देदीप्यमानाः पृथिव्यादयः (अमर्त्याः) तत्वस्वरूपेण नित्याः (त्रिष्टुप्) (छन्दः) (इह) अस्मिन् संसारे (इन्द्रियम्) धनम् (पष्ठवाट्) यः पष्ठेन पृष्ठेन वहति सः । इदं पृषोदरादिना सिद्धम् (गौः) वृषभः (वयः) प्रजननम् (दधुः) दध्युः ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथेह सुपेशसोषे यह्वी अमर्त्या विश्वे देवा त्रिष्टुप् छन्दः पष्ठवाड्गौर्वयइन्द्रियं दधुस्तथा यूयमप्याचरत ॥ १ ॥

भावार्थः—यथा पृथिव्यादयः पदार्थाः परोपकारिणः सन्ति । तथाऽत्र मनुष्यैर्भवितव्यम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (इह) इस जगत् में (सुपेशसा) सुन्दर रूपयुक्त पढ़ाने और उपदेश करने हारी (यह्वी) बड़ी (उषे) दहन करने वाली प्रभात वेला के समान दो स्त्री (अमर्त्याः) तत्वसरूप से नित्य (विश्वे) सब (देवाः) देदीप्यमान पृथ्वी आदि लोक (त्रिष्टुप्छन्दः) त्रिष्टुप्छन्द और (पष्टवाट्) पीठ से उठाने वाला (गौः) बैल (वयः) उत्पत्ति और (इन्द्रियम्) धन को धारण करते हैं वैसे (दधुः) तुम लोग भी आचरण करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—जैसे पृथ्वी आदि पदार्थ परोपकारी हैं वैसे इस जगत् में मनुष्यों को होना चाहिये ॥ १७ ॥

दैव्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वे देवा देवताः।

निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अथ भिषग्वदितरैराचरितव्यमित्युपदिश्यते ॥

अब अगले मंत्र में वैद्य के तुल्य अन्यों को आचरण करना चाहिये इस वि० ॥

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा। जगती छन्द इन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः ॥१८॥

दैव्या। होतारा। भिषजा। इन्द्रेण। सयुजेति सऽयुजा। युजा। जगती। छन्दः। इन्द्रियम्। अनड्वान्। गौः। वयः। दधुः ॥ १८ ॥

पदार्थः (दैव्या) देवेषु विद्वत्सु कुशलौ (होतारा) दातारौ (भिषजा) सद्वैद्यौ (इन्द्रेण) ऐश्वर्येण (सयुजा) यौ समानं युङ्क्तस्तौ (युजा) समाहितौ (जगती) (छन्दः) (इन्द्रियम्) धनम् (अनड्वान्) वृषभः (गौः) (वयः) कमनीयम् (दधुः) दध्युः ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथेन्द्रेण सयुजा युजा दैव्या होतारा भिषजाऽनड्वान् गौर्जगतीछन्दश्च वय इन्द्रियं दधुस्तथैतद्भवन्तो दधीरन् ॥ १८ ॥

भावार्थः—अत्रवाचकलु० यथावैद्यैः स्वेषां परेषां च रोगान्निवार्य स्वेऽन्ये चैश्वर्यवन्तः क्रियन्ते तथा सर्वैर्मनुष्यैर्वर्त्तितव्यम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जैसे (इन्द्रेण) ऐश्वर्य से (सयुजा) ओषधि आदि का तुल्य योग करनेहारे (युजा) सावधान चित्त हुए (दैव्या) विद्वानों में निपुण (होतारा) विद्यादि के देनेवाले (भिषजा) उत्तम दो वैद्य लोग (अनड्वान्) बैल (गौः) गाय और (जगती छन्दः) जगती छन्द (वयः) सुन्दर (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वैसे इस को तुम लोग धारण करो ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे वैद्यों से अपने और दूसरों के रोग मिटा के अपने आप और दूसरे ऐश्वर्यवान् किये जाते हैं वैसे सब मनुष्यों को वर्त्तना चाहिये ॥ १८ ॥

तिस्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वे देवा देवताः ।

अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

फिर विद्वानों के वि० ॥

तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः । विराट् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥ १९ ॥

तिस्रः । इडा । सरस्वती । भारती । मरुतः । विशः । विराडिति विऽराट् । छन्दः । इह । इन्द्रियम् । धेनुः । गौः । न । वयः । दधुः ॥ १९ ॥

पदार्थः—(तिस्रः) त्रित्वसंख्यावत्यः (इडा) भूमिः (सरस्वती) वाणी (भारती) धारणावती प्रज्ञा (मरुतः) वायवः (विशः) मनुष्याद्याः प्रजाः (विराट्) यद्विविधं राजते तत् (छन्दः) बलम् (इह) अस्मिन् संसारे (इन्द्रियम्) धनम् (धेनुः) या धापयति सा (गौः) (न) इव (वयः) प्राप्तव्यं वस्तु (दधुः) दध्युः ॥ १९ ॥

अन्वयः—यथेहेडा सरस्वती भारती च तिस्रो मरुतो विशो विराट् छन्द इन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयश्च दधुस्तथा सर्वे मनुष्या एतद्धृत्वा वर्तेरन् ॥ १९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०— यथा विद्वांसः सुशिक्षितयावाचा विद्यया प्राणैः पशुभिश्चैश्वर्य्यं लभन्ते तथाऽन्यैर्लब्धव्यम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—जैसे (इह) इस जगत् में (इडा) पृथ्वी (सरस्वती) वाणी और (भारती) धारणा वाली बुद्धि ये (तिस्रः) तीन (मरुतः) पवनगण (विशः) मनुष्य आदि प्रजा (विराट्) तथा अनेक प्रकार से देदीप्यमान (छन्दः) बल (इन्द्रियम्) धन को और (धेनुः) पान कराने हारी (गौः) गाय के (न) समान (वयः) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (दधुः) धारण करें वैसे सब मनुष्य लोग इस को धारण करके वर्त्ताव करें ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में उपमावाचकलु० — जैसे विद्वान् लोग सुशिक्षित वाणी, विद्या, प्राण और पशुओं से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं वैसे अन्य सब को प्राप्त होना चाहिये ॥ १९ ॥

त्वष्टेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः विश्वे देवा देवताः ।
अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वष्टा तुरीपोऽअद्भुतऽइन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना । द्विपदा छन्दऽइन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ २० ॥

त्वष्टा । तुरीपः । अद्भुतः । इन्द्राग्नीऽइति इन्द्राग्नी । पुष्टिवर्धनेति पुष्टिऽवर्धना । द्विपदेति द्विऽपदा । छन्दः । इन्द्रियम् । उक्षा । गौः । न । वयः । दधुः ॥ २० ॥

पदार्थः—(त्वष्टा) तनूकर्त्ता (तुरीपः) तूर्णमाप्नोति सः (अद्भुतः) आश्चर्यगुणकर्मस्वभावः (इन्द्राग्नी (इन्द्रश्चाग्निश्च तौ वाय्वग्नी (पुष्टिवर्धना) यौ पुष्टिं वर्धयतस्तौ (द्विपदा) द्वौ पादौ यस्यां सा (छन्दः) (इन्द्रियम्) श्रोत्रादिकम् (उक्षा) सेचनसमर्थः (गौः) (न) इव (वयः) जीवनम् (दधुः) धरेयुः ॥ २० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या येऽद्भुतस्तुरीपस्त्वष्टा पुष्टिवर्धनन्द्राग्नी द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुस्तान् विजानीत ॥ २० ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा प्रसिद्धोऽग्निर्विद्युज्जाठरो वडवानल एते चत्वारः प्राण इन्द्रियाणि गवादयः पशवश्च सर्वस्य जगतः पुष्टिं कुर्वन्ति तथैव मनुष्यैर्ब्रह्मचर्यादिना स्वस्य परेषां च बलं वर्द्धनीयम् ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जो (अद्भुतः) आश्चर्य्य गुणकर्मस्वभावयुक्त (तुरीपः) शीघ्र प्राप्त होने (त्वष्टा) और सूक्ष्म करने हारे तथा (पुष्टिवर्द्धना) पुष्टि को बढ़ाने हारे (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि दोनों और (द्विपदा) दो पाद वाले (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय को तथा (उक्षा) सेचन करने में समर्थ (गौः) बैल के (न) समान (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करें उन को जानो॥२०॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे प्रसिद्ध अग्नि, विजुली, पेट में का अग्नि, वडवानल, ये चार और प्राण इन्द्रियां तथा गाय आदि पशु सब जगत् की पुष्टि करते हैं वैसे ही मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य आदि से अपना और दूसरों का बल बढ़ाना चाहिये ॥ २० ॥

शमितेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।

अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः प्रजाविषयमाह ॥

फिर प्रजाविषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

श॒मि॒ता नो॒ वन॒स्पतिः॑ सवि॒ता प्र॑सु॒वन्भर्ग॑म् । क॒कुप्छन्दं॑ इ॒हेन्द्रि॒यं व॒शा वे॒हद्वयो॑ द॒धुः ॥ २१ ॥

श॒मि॒ता । नः॒ । व॒न॒स्पतिः॑ । स॒वि॒ता । प्र॒सु॒वन्निति॑ प्र॒ऽसु॒वन् । भर्ग॑म् । क॒कुप् । छन्दः॑ । इ॒ह । इ॒न्द्रि॒यम् । व॒शा । वे॒हत् । वयः॑ । द॒धुः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(शमिता) शान्तिप्रदः (नः) अस्माकम् (वनस्पतिः) ओषधिराजो वृक्षाणां पालकश्च (सविता) सूर्यः (प्रसुवन्) उत्पादयन् (भर्गम्) धनम् (ककुप्) (छन्दः) (इह) संसारे (इन्द्रियम्) जीवलिङ्गम् (वशा) अप्रसूता (वेहत्) या प्रसवं विहन्ति सा (वयः) व्याप्तव्यम् (दधुः) ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः शमिता वनस्पतिः सविता भर्गं प्रसुवन् ककुप् छन्द इन्द्रियं वशा वेहच्चेह नो वयो दधुस्तान् यूयं विज्ञायोपकुरुत ॥ २१ ॥

भावार्थः—येन मनुष्येण सर्वरोगप्रणाशिका ओषधय आवरकाण्युत्तमानि वस्त्राणि च सेव्यन्ते स चिरंजीवी भवति ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (शमिता) शान्ति देने हारा (वनस्पतिः) ओषधियों का राजा वा वृक्षों का पालक (सविता) सूर्य (भगम्) धन को (प्रसुवन्) उत्पन्न करता हुआ (ककुप्) ककुप् (छन्दः) छन्द और (इन्द्रियम्) जीव के चिन्ह को तथा (वशा जिस के संतान नहीं हुआ और (वेहत्) जो गर्भ को गिराती है वह (इह) इस जगत् में (नः) हमारे (वयः) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (दधुः) धारण करे उस को तुम लोग जान के उपकार करो ॥ २१ ॥

भावार्थः—जिस मनुष्य से सर्वरोग की नाशक ओषधियां और ढांकने वाले उत्तम वस्त्र सेवन किये जाते हैं वह बहुत वर्षों तक जी सकता है ॥ २१ ॥

स्वाहेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।

अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेवविषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् । अतिछन्दा इन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः ॥ २२ ॥

स्वाहा । यज्ञम् । वरुणः । सुक्षत्रऽइति सुऽक्षत्रः । भेषजम् । करत् । अतिछन्दा इत्यतिऽछन्दाः । इन्द्रियम् । बृहत् । ऋषभः । गौः । वयः । दधुः ॥ २२ ॥

पदार्थः—(स्वाहा) सत्यया क्रियया (यज्ञम्) संगतिमयम् (वरुणः) श्रेष्ठः (सुक्षत्रः) शोभनं क्षत्रं धनं यस्य सः । क्षत्रमिति धनना० निघं० २ । (भेषजम्) औषधम् (करत्) कुर्यात् (अतिछन्दाः) (इन्द्रियम्) ऐश्वर्यम् (बृहत्) महत् (ऋषभः) श्रेष्ठः (गौः) (वयः) कमनीयं निजव्यवहारम् (दधुः) धरेयुः ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं यथा वरुणः सुक्षत्रः स्वाहा यज्ञं भेषजं च करत्योऽतिछन्दा ऋषभो गौर्बृहदिन्द्रियं वयश्च धत्तस्तथैव सर्वे दधुरेतज्जानीत ॥ २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये सुपथ्यौषधसेवनेन रोगान् हरन्ति पुरुषार्थेन धनमायुश्च धरन्ति तेऽतुलं सुखं लभन्ते ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जैसे (वरुणः) श्रेष्ठ (सुक्षत्रः) उत्तम धनवान् जन (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यज्ञम्) संगममय (भेषजम्) औषध को (करत्) करे और जो (अतिछन्दाः) अतिछन्द और (ऋषभः) उत्तम (गौः) बैल (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (वयः) सुन्दर अपने व्यवहार को धारण करते हैं वैसे ही सब (दधुः) धारण करें इस को जानो ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो लोग अच्छे पथ्य और औषध के सेवन से रोगों का नाश करते हैं और पुरुषार्थ से धन तथा आयु का धारण करते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

वसन्तेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । रुद्रा देवताः ।
भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

वसन्तेन॑ ऋतुना॑ दे॒वा वस॑वस्त्रि॒वृता॑ स्तु॒ताः । र॒थन्त॒रेण॒ तेज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥ २३ ॥

वसन्तेन॑ । ऋतुना॑ । दे॒वाः । वस॑वः । त्रि॒वृतेति॑ त्रि॒ऽवृता॑ । स्तु॒ताः । र॒थन्त॒रेणेति॑ र॒थम्ऽत॒रेण॑ । तेज॑सा । ह॒विः । इन्द्रे॑ । वयः॑ । द॒धुः ॥ २३ ॥

पदार्थः—(वसन्तेन) वसन्ति सुखेन यस्मिंस्तेन (ऋतुना) प्राप्तव्येन (देवाः) दिव्याः (वसवः) पृथिव्यादयोऽष्टौ प्राथमकल्पिका विद्वांसो वा (त्रिवृता) यस्त्रिषु कालेषु वर्त्तते तेन (स्तुताः) प्राप्तस्तुतयः (रथन्तरेण) यत्र रथेन तरति तत् तेन (तेजसा) तीक्ष्णस्वरूपेण (हविः) दानव्यं वस्तु (इन्द्रे) सूर्यप्रकाशे (वयः) आयुर्वर्धकम् (दधुः) ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये वसवो देवा स्तुतास्त्रिवृता वसन्तेनर्त्तुना सह वर्त्तमाना रथन्तरेण तेजसेन्द्रे हविर्वयो दधुस्तान् स्वरूपतो विज्ञाय संगच्छध्वम् ॥ २३ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या वासहेतून् दिव्यान् पृथिव्यादीन् विदुषो वा वसन्ते संगच्छेरँस्ते वासन्तिकं सुखं प्राप्नुयुः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वसवः) पृथिवी आदि आठ वसु वा प्रथम कक्षा वाले विद्वान् लोग (देवाः) दिव्य गुणों से युक्त (स्तुताः) स्तुति को प्राप्त हुए (त्रिवृता) तीनों कालों में विद्यमान (वसन्तेन) जिस में सुख से रहते हैं उस प्राप्त होने योग्य वसन्त (ऋतुना) ऋतु के साथ वर्त्तमान हुए (रथन्तरेण) जहां रथ से तरते हैं उस (तेजसा) तीक्ष्ण स्वरूप से (इन्द्रे) सूर्य के प्रकाश में (हविः) देने योग्य (वयः) आयु बढ़ाने हारे वस्तु को (दधुः) धारण करें उन को स्वरूप से जान कर सगति करो ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग रहने के हेतु दिव्य पृथ्वी आदि लोकों वा विद्वानों की वसन्त में सङ्गति करें वे वसन्त संबंधी सुख को प्राप्त होवें ॥ २३ ॥

ग्रीष्मेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वे देवा देवताः ।
अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मध्यमब्रह्मचर्यविषयमाह ॥

मध्यम ब्रह्मचर्य वि० ॥

ग्रीष्मेण॑ ऋ॒तुना॑ दे॒वा रु॒द्राः प॑ञ्च॒द॒शे स्तु॒ताः । बृ॒ह॒ता यश॑सा॒ बल॑ꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥ २४ ॥

ग्रीष्मेर्ण । ऋतुनां । देवाः । रुद्राः । पञ्चदशऽइति पञ्चऽदशे । स्तुताः । बृहता । यशंसा । बलम् । हविः । इन्द्रें । वयः । दधुः ॥ २४ ॥

पदार्थः---(ग्रीष्मेण) सर्वरसग्रहीत्रा (ऋतुना) औष्ण्यं प्रापकेन (देवाः) दिव्यगुणाः (रुद्राः) दशप्राणा एकादश आत्मा मध्यमविद्वांसो वा (पञ्चदशे)(स्तुताः) प्रशस्ताः (बृहता) महता (यशसा) कीर्त्या (बलं) (हविः) आदातव्यम् (इन्द्रे) जीवे (वयः) जीवनम् (दधुः) दध्युः ॥ २४ ॥

अन्वयः---हे मनुष्या ये स्तुता रुद्रा देवाः पञ्चदशे ग्रीष्मेणर्त्तुना बृहता यशसेन्द्रे हविर्बलं वयश्च दधुस्तान् यूयं विजानीत ॥ २४ ॥

भावार्थः---ये चतुश्चत्वारिंशद्वर्षयुक्तेन ब्रह्मचर्येण जातविद्वांसोऽन्येषां शरीरात्मबलमुन्नयन्ति ते भाग्यशालिनो जायन्ते ॥ २४ ॥

पदार्थः---हे मनुष्यो जो (स्तुताः) प्रशंसा किये हुए (रुद्राः) दश प्राण ग्यारहवां जीवात्मा वा मध्यम कक्षा के (देवाः) दिव्यगुण युक्त विद्वान् (पञ्चदशे) पन्द्रहवें व्यवहार में (ग्रीष्मेण) सब रसों के खेंचने और (ऋतुना) उष्णपन प्राप्त करने हारे ग्रीष्म ऋतु वा (बृहता) बड़े (यशसा) यश से (इन्द्रे) जीवात्मा में हविः ग्रहण करने योग्य (बलम्) बल और (वयः) जीवनको (दधुः) धारण करें उन को तुम लोग जानो ॥ २४ ॥

भावार्थः---जो ४४ चवालिस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्वान् हुए अन्य मनुष्यों के शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं वे भाग्यवान् होते हैं ॥ २४ ॥

वर्षाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथोत्तमब्रह्मचर्यविषयमाह

अब उत्तम ब्रह्मचर्य वि०

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः । वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २५ ॥

वर्षाभिः । ऋतुना । आदित्याः । स्तोमे । सप्तदश इति सप्तऽदशे । स्तुताः । वैरूपेण । विशा । ओजसा । हविः । इन्द्रे । वयः । दधुः ॥ २५ ॥

पदार्थः—(वर्षाभिः) वर्षन्ति मेघा यासु ताभिः (ऋतुना) (आदित्याः) द्वादश मासा उत्तमा विद्वांसो वा (स्तोमे) स्तुतिव्यवहारे (सप्तदशे , एतत्संख्या के (स्तुताः) प्रशंसिताः (वैरूपेण) विविधानां रूपाणां भावेन (विशा) प्रजया (ओजसा) बलेन (हविः) दातव्यम् (इन्द्रे) जीवे (वयः) कालविज्ञानम् (दधुः) दध्युः ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये वर्षाभिर्ऋतुना वैरूपेणौजसा विशा सह वर्त्तमाना आदित्याः सप्तदशे स्तोमे स्तुता इन्द्रे हविर्वयो दधुस्तान् यूयं विज्ञायोपकुरुत ॥ २५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या विद्वत्संगेन कालस्य स्थूलसूक्ष्मगती विज्ञायैकक्षणमपि व्यर्थं न नयन्ति ते विचित्रमैश्वर्यमाप्नुवन्ति ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वर्षाभिः) जिस में मेघ वृष्टि करते हैं उस वर्षा (ऋतुना) प्राप्त होने योग्य ऋतु (वैरूपेण) अनेक रूपों के होने से (ओजसा) जो बल और उस (विशा) प्रजा के साथ रहने वाले (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम कल्प के विद्वान् (सप्तदशे) सत्रहवें (स्तोमे) स्तुति के व्यवहार में (स्तुताः) प्रशंसा किये हुए (इन्द्रे) जीवात्मा में (हविः) देने योग्य (वयः) काल के ज्ञान को (दधुः) धारण करते हैं उन को तुम लोग जान कर उपकार करो ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग विद्वानों के संग से काल की स्थूल सूक्ष्म गति को जान के एक क्षणभी व्यर्थ नहीं गमाते हैं वे नानाविध ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥२५॥

शारदेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वे देवा देवताः ।
विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

शारदेनऽऋतुना देवा एकविꣳश ऋभवः स्तुताः । वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः २६ ॥

शारदेन । ऋतुना । देवाः । एकविꣳशऽइत्येकऽविꣳशे । ऋभवः । स्तुताः । वैराजेन । श्रिया । श्रियम् । हविः । इन्द्रे । वयः । दधुः ॥ २६ ॥

पदार्थः—(शारदेन) शरदि भवेन (ऋतुना) देवाः) (एकविंशे) एतत्संख्या के (ऋभवः) मेधाविनः (स्तुताः) (वैराजेन) विराजि भवेनार्थेन (श्रिया) शोभया लक्ष्म्या वा (श्रियम्) लक्ष्मीम् (हविः) दातव्यमादातव्यम् (इन्द्रे) जीवे (वयः) कमनीयं सुखम् (दधुः) दध्युः ॥ २६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या य एकविंशे स्तुता ऋभवो देवाः शारदेनर्त्तुना वैराजेन श्रिया सह वर्त्तमाना इन्द्रे श्रियं हविर्वयश्च दधुस्तान् यूयं सेवध्वम् ॥ २६ ॥

भावार्थः—ये सुपथ्यकारिणो जनाः शरद्यरोगा भवन्ति ते श्रियमाप्नुवन्ति ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (एकविंशे) इक्कीसवें व्यवहार में (स्तुताः) स्तुति किये हुए (ऋभवः) बुद्धिमान् (देवाः) दिव्य गुण युक्त (शारदेन) शरद् (ऋतुना) ऋतु वा (वैराजेन विराट् छन्द में प्रकाशमान अर्थ के साथ (श्रिया) शोभा और लक्ष्मी के साथ वर्त्ताव वर्त्तने हारे जन (इन्द्रे) जीवात्मा में (श्रियम्) लक्ष्मी और (हविः) देने लेने योग्य (वयः) वांछित सुख को (दधुः) धारण करें उन का तुम लोग सेवन करो ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो लोग अच्छे पथ्य करने हारे शरद् ऋतु में रोग रहित होते हैं वे लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥

हेमन्तेनेत्यस्य आत्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।

भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि०

हे॒म॒न्तेन॑ऽऋ॒तुना॑ दे॒वास्त्रि॑ण॒वे म॒रुतः॑ स्तु॒ताः । बले॑न॒ शक्व॑रीः॒ सहो॑ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥ २७ ॥

हेमन्तेने । ऋतुना । देवाः । त्रिणवे । त्रिनवइति त्रिऽनवे । मरुतः । स्तुताः । बलेन । शक्करीः । सहः । हविः । इन्द्रे । वयः । दधुः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(हेमन्तेन) वर्द्धन्ते देहा यस्मिंस्तेन (ऋतुना) (देवाः) दिव्यगुणाः (त्रिणवे) त्रिगुणा नव यस्मिंस्तस्मिन् सप्तविंशे व्यवहारे (मरुतः) मनुष्याः (स्तुताः) (बलेन) मेघेन (शक्करीः) शक्तिनिमित्ता गाः (सहः) बलम् (हविः) (इन्द्रे) (वयः) इष्ट सुखम् (दधुः) ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये त्रिणवे हेमन्तेनर्तुना सह वर्त्तमाना स्तुता देवा मरुतो बलेन शक्करीः सहो हविर्वय इन्द्रे दधुस्तान् सेवध्वम् ॥ २७ ॥

भावार्थः—ये सर्वरसपरिपाचके हेमन्ते यथायोग्यं व्यवहारं कुर्वन्ति ते बलिष्ठा जायन्ते ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जो (त्रिणवे) सत्ताईसवें व्यहार में (हेमन्तेन) जिस में जीवों के देह बढ़ते जाते हैं उस (ऋतुना) प्राप्त होने योग्य हेमन्त ऋतु के साथ वर्त्तते हुए (स्तुताः) प्रशंसा के योग्य (देवाः) दिव्य गुण युक्त (मरुतः) मनुष्य (बलेन) मेघ से (शक्करीः) शक्ति के निमित्त गौओं के (सहः) बल तथा (हविः) देने लेने योग्य (वयः) वांछित सुख को (इन्द्रे) जीवात्मा में (दधुः) धारण करें उन का तुम सेवन करो ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो लोग सब रसों को पकाने हारे हेमन्त ऋतु में यथायोग्य व्यवहार करते हैं वे अत्यन्त बलवान् होते हैं ॥ २७ ॥

शैशिरेणेत्यस्यस्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वे देवा देवताः ।
भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह

फिर उसी विषय को अगले मं० ॥

शैशिरेणऽऋतुना देवास्त्रयस्त्रिँशेऽमृता स्तुताः । सत्येन रेवतीः क्षत्रँ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २८ ॥

शैशिरेण । ऋतुना । देवाः । त्रयस्त्रिँशऽइति त्रयःऽत्रिँशे । अमृताः । स्तुताः । सत्येन । रेवतीः । क्षत्रम् । हविः । इन्द्रे । वयः । दधुः ॥ २८ ॥

पदार्थः—(शैशिरेण) शिशिरेण (ऋतुना)(देवाः) दिव्यगुणकर्मस्वभावाः (त्रयस्त्रिंशे) वस्वादिसमूहे (अमृताः) स्वस्वरूपेण नित्याः (स्तुताः) प्रशंसिताः (सत्येन) (रेवतीः) धनवतीः शत्रुसेनोल्लङ्घिकाः प्रजाः (क्षत्रम्) धनं राज्यं वा (हविः) (इन्द्रे) (वयः) (दधुः) ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या येऽमृताः स्तुताः शैशिरेणर्त्तुना देवाः सत्येन सह त्रयस्त्रिंशे विद्वांसो रेवतीरिन्द्रे हविः क्षत्रं वयश्चदधुस्तेभ्योभूम्यादि विद्या गृह्णीत ॥ २८ ॥

भावार्थः—ये पूर्वोक्तानष्टौ वसूनेकादश रुद्रान् द्वादशाऽऽदित्यान् विद्युतं यज्ञं चमान् त्रयस्त्रिंशद्दिव्यान् पदार्थान् जानन्ति तेऽक्षय्यं सुखमाप्नुवन्ति॥२८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अमृताः) अपने स्वरूप से नित्य (स्तुताः) प्रशंसा के योग्य (शैशिरेण, ऋतुना) प्राप्त होने योग्य शिशिर ऋतु से (देवाः) दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले (सत्येन) सत्य के साथ (त्रयस्त्रिंशे) तेंतीस वसु आदि के समुदाय में विद्वान् लोग (रेवतीः) धन युक्त शत्रुओं की सेनाओं को कूद के जाने वाली प्रजाओं और (इन्द्रे) जीव में (हविः) देने लेने योग्य (क्षत्रम्) धन वा राज्य और (वयः) वाञ्छित सुख को (दधुः) धारण करें उन से पृथिवी आदि की विद्याओं का ग्रहण करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो लोग पीछे कहे हुए आठवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य बिजुली और यज्ञ इन तेंतीस दिव्य पदार्थों को जानते हैं वे अक्षय सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अग्न्यश्विन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत् समिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

होता । यक्षत् । समिधेति सम्ऽइधा । अग्निम् । इडः । पदे । अश्विना । इन्द्रम् । सरस्वतीम् । अजः । धूम्रः । न । गोधूमैः । कुवलैः । भेषजम् । मधु । शष्पैः । न । तेजः । इन्द्रियम् । पयः । सोमः । परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ २९ ॥

पदार्थः—(होता) दाता (यक्षत्) यजेत् संगच्छेत (समिधा) इन्धनादिसाधनैः (अग्निम्) पावकम् (इडस्पदे) पृथिव्याः स्थाने (अश्विना) सूर्याचन्द्रमसौ (इन्द्रम्) ऐश्वर्यं जीवं वा (सरस्वतीम्) सुशिक्षितां वाचम् (अजः) प्राप्तव्यो मेषः (धूम्रः) धूम्रवर्णः (न) इव (गोधूमैः) (कुवलैः) कुत्सितं बलं यैस्तैर्बदरैः । अत्र कुशब्दे उपपदे बलधातोर्बाहुलकादौणादिकः कलन् प्रत्ययः । (भेषजम्) औषधम् (मधु) मधुरमुदकम् (शष्पैः) हिंसनैः (न) इव (तेजः) प्रागल्भ्यम् (इन्द्रियम्) धनम् (पयः) दुग्धमन्नं वा (सोमः) ओषधिगणः (परिस्रुता) परितः सर्वतः स्रुता प्राप्तेन रसेन (घृतम्) आज्यम् (मधु) क्षौद्रम् (व्यन्तु) प्राप्नुवन्तु (आज्यस्य) घृतम् । अत्र कर्मणि षष्ठी (होतः) (यज) ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होतेडस्पदे समिधाग्निमश्विनेन्द्रं सरस्वतीमजो धूम्रो न कश्चिज्जीवो गोधूमैः कुवलैर्भेषजं यक्षत्तथा शष्पैर्न यानि तेजो यदिन्द्रियं पयः परिस्रुता स सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानमाज्यस्य यज ॥ २९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—येऽस्य संसारस्य मध्ये साधनोपसाधनैः पृथिव्यादिविद्यां जानन्ति ते सर्वे उत्तमान् पदार्थान् प्राप्नुवन्ति ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन जैसे (होता) देने वाला (इडस्पदे) पृथिवी और अन्न के स्थान में (समिधा) इन्धनादि साधनों से (अग्निम्) अग्नि को (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (इन्द्रम्) ऐश्वर्य वा जीव और (सरस्वतीम्) सुशिक्षायुक्त वाणी को (अजः) प्राप्त होने योग्य (धूम्रः) धुमैले मेढ़े के (न) समान कोई जीव (गोधूमैः) गेहूं और (कुवलैः) जिन से बल नष्ट हो उन बेरों से (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) संगत करे वैसे (शष्पैः) हिंसाओं के (न) समान साधनों से जो (तेजः) प्रगल्भपन (मधु) मधुर जल (इन्द्रियम्) धन (पयः) दूध वा अन्न (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घृत (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उन के साथ (आज्यस्य) घी का (यज) होम कर ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो लोग इस संसार में साधन और उपसाधनों से पृथिवी आदि की विद्या को जानते हैं वे सब उत्तम पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः ।
भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्युँ बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

होता । यक्षत् । तनूनपादिति तनूऽनपात् । सरस्वतीम् । अविः । मेषः । न । भेषजम् । पथा । मधुमतेति मधुऽमता । भरन् । अश्विना । इन्द्राय । वीर्य्यम् । बदरैः । उपवाकाभिरित्युपऽवाकाभिः । भेषजम् । तोक्मभिरिति तोक्मऽभिः । पयः । सोमः । परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३० ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) यजेत (तनूनपात्) यस्तन्वा ऊर्जं पाति सः (सरस्वतीम्) बहुज्ञानवतीं वाचम् (अविः) (मेषः) (न) इव (भेषजम्) औषधम् (पथा) मार्गेण (मधुमता) बहूदकयुक्तेन (भरन्) धरन् (अश्विना) (इन्द्राय) ऐश्वर्याय (वीर्यम्) पराक्रम् (बदरैः) बदर्याः फलैः (उपवाकाभिः) उपदेशक्रियाभिः (भेषजम्) (तोक्मभिः) अपत्यैः (पयः) जलम् (सोमः) ओषधिगणः (परिस्रुता) परितः स्रुता मार्गेन (घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य) (होतः) हवनकर्त्तः (यज) ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा तनूनपाद्धोता सरस्वतीमविर्मेषो न मधुमता पथा भेषजं भरन्निन्द्रायऽश्विना वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं यक्षत् तथा यानि तोक्मभिः पयः परिस्रुता सह सोमो घृतं मधु च व्यन्तु तैस्सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३० ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये संगन्तारो विद्यासुशिक्षासहितां वाचं प्राप्य पथ्याहारविहारैर्वीर्यं वर्द्धयित्वा पदार्थविज्ञानं प्राप्यैश्वर्यं वर्धयन्ति ते जगद्भूषका भवन्ति ॥ ३० ॥

पदार्थः— हे (होतः) हवनकर्त्ता जन जैसे (तनूनपात्) देह की ऊनता को पालने अर्थात् उस को किसी प्रकार पूरी करने और (होता) ग्रहण करने वाला जन (सरस्वतीम्) बहुत ज्ञान वाली वाणी को वा (अविः) भेड़ और (मेषः) बकरा के (न) समान (मधुमता) बहुत जलयुक्त (पथा) मार्ग से (भेषजम्) औषध को (भरन्) धारण करता हुआ (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा और (वीर्यम्) पराक्रम को वा (बदरैः) बेर और (उपवाकाभिः) उपदेश रूप क्रियाओं से (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) संगत करें वैसे जो (तोक्मभिः) सन्तानों के साथ (पयः) जल और (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधियों के समूह (घृतम्) घृत और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उनके साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो संगति करने हारे जन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को प्राप्त हो के पथ्याहार विहारों से पराक्रम बढ़ा और पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त होके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे जगत् के भूषक होते हैं ॥ ३० ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।

अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मंत्र में० ॥

होता यक्षन्नराशंसं न नग्नहुं पतिं सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्रयश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः

सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

होता । यक्षत् । नराशंसम् । न । नग्नहुम् । पतिम् । सुरया । भेषजम् । मेषः । सरस्वती । भिषक् । रथः । न । चन्द्री । अश्विनोः । वपाः । इन्द्रस्य । वीर्यम् । बदरैः । उपवाकाभिरित्युपऽवाकाभिः । भेषजम् । तोक्मऽभिरिति तोक्मऽभिः । पयः । सोमः । परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३१

पदार्थः—(होता) दाता (यक्षत्) यजेत् (नराशंसम्) यो नरैराशस्यते स्तूयते तम् (न) इव (नग्नहुम्) यो नग्नान् दुष्टान् जुहोति कारागृहे प्रक्षिपति तम् । अत्र हुधातोर्बाहुलकादौणादिको डुः प्रत्ययः (पतिम्) स्वामिनम् (सुरया) उदकेन । सुरेत्युदकनाम० निघं० १ । १२ (भेषजम्) औषधम् (मेषः) उपदेष्टा (सरस्वती) विद्यातत्सम्बन्धिनी वाक् (भिषक्) वैद्यः (रथः) (न) इव (चन्द्री) चन्द्रं बहुविधं सुवर्णं विद्यते यस्य (अश्विनोः) द्यावापृथिव्योः (वपाः) वपन्ति याभिः क्रियाभिस्ताः (इन्द्रस्य) दुष्टजनविदारकस्य सकाशात् (वीर्यम्) वीरेषु साधु (बदरैः) बदरीफलैरिव (उपवाकाभिः) उपगताभिर्वाग्भिः (भेषजम्) चिकित्सकम् (तोक्मभिः) अपत्यैः (पयः) दुग्धम् (सोमः) (परिस्रुता) परितः स्रुता प्राप्तेन (घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ ३१ ॥

अन्वयः— हे होतर्यथा होता नराशंसं न नग्नहुं पतिं सुरया सह वर्त्तमानं भेषजमिन्द्रस्य वीर्यं यक्षत् मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा बदरैरुपवाकाभिः सह भेषजं यक्षत्तथा यानि तोक्मभिः सह पयः परिस्रुता सह सोमो घृतं मधु च व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३१ ॥

भावार्थः--अत्रोपमावाचकलु० ये निर्लज्जानदण्डयन्ति प्रशंसनीयान् स्तुवन्ति जलेन सहौषधं सेवन्ते ते बलाऽऽरोग्ये प्राप्यैश्वर्यवन्तो जायन्ते ॥३१॥

पदार्थः—हे (होतः) हवनकर्त्ता जन जैसे (होता) देने वाला (नराशंसम्) जो मनुष्यों से स्तुति किया जाय उस के (न) समान (नग्नहुम्) नग्न दुष्ट पुरुषों को कारागृह में डालने वाले (पतिम्) स्वामि वा (सुरया) जल के साथ (भेषजम्) औषध को वा (इन्द्रस्य) दुष्ट गण का विदारण करने हारे जन के (वीर्यम्) शूरवीरों में उत्तम बल को (यत्तत्) संगत करे तथा (मेषः) उपदेश करने वाला (सरस्वती) विद्या संबन्धिनी वाणी (भिषक्) वैद्य और (रथः) रथ के (न) समान (चन्द्री) बहुत सुवर्ण वाला जन (अश्विनोः) आकाश और पृथिवी के मध्य (वपाः) क्रियाओं को वा (बदरैः) बेरों के समान (उपवाकाभिः) समीप प्राप्त हुई वाणियों के साथ (भेषजम्) औषध को संगत करे वैसे जो (तोक्मभिः) सन्तानों के साथ (पयः) दूध (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधिगण (घृतम्) घी और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु० – जो लोग लज्जाहीन पुरुषों को दण्ड देते स्तुति करने योग्यों की स्तुति और जल के साथ औषध का सेवन करते हैं वे बल और नीरोगता को पा के ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ ३१ ॥

होतेत्यस्य । स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । सरस्वत्यादयो देवताः । विराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्षदि॒डेडि॒त आ॒ जुह्वा॑नः सर॑-

स्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रि॒यम॒श्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥

होता । यक्षत् । इडा । ईडितः । आजुह्वान इत्याऽजुह्वानः । सरस्वतीम् । इन्द्रम् । बलेन । वर्धयन् । ऋषभेण । गवा । इन्द्रियम् । अश्विना । इन्द्राय । भेषजम् । यवैः । कर्कन्धुभिरिति कर्कन्धुऽभिः । मधु । लाजैः । न । मासरम् । पयः । सोमः । परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(होता) प्रशंसितुं योग्यः (यक्षत्) यजेत् (इडा) प्रशंसितया वाचा (ईडितः) प्रशंसितः (आजुह्वानः) सत्कारेणाहूतः (सरस्वतीम्) वाचम् (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्यम् (बलेन) (वर्द्धयन्) (ऋषभेण) गन्तुं योग्येन (गवा) (इन्द्रियम्) धनम् (अश्विना) (इन्द्राय) ऐश्वर्याय (भेषजम्) (यवैः) यवादिभिरन्नैः (कर्कन्धुभिः) ये कर्कं बदरक्रियां दधति तैः (मधु) (लाजैः) प्रस्फुल्लितैरन्नैः (न) इव (मासरम्) ओदनम् (पयः) रसः

(सोमः) ओषधिगणः (परिस्रुता) सर्वतः प्राप्तेनरसेन (घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे होतर्यइडेडित आजुह्वानो होता बलेन सरस्वतीमिन्द्रमृषभेण गवेन्द्रियमश्विना यवैरिन्द्राय भेषजं वर्द्धयन् कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं यत्त्तथा यानि परिस्रुता सह सोमः पयो घृतं मधु व्यन्तु तैस्सह वर्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३२ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०-मनुष्या ब्रह्मचर्येण शरीरात्मबलं विद्वत्सेवया विद्यापुरुषार्थेनैश्वर्यं प्राप्य पथ्यौषधसेवनाभ्यां रोगान् हत्वारोग्यमाप्नुयुः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (होतः) हवन कर्त्ता जन जैसे (इडा) स्तुति करने योग्य वाणी से (ईडितः) प्रशंसा युक्त (आजुह्वानः) सत्कार से आह्वान किया हुआ होता) प्रशंसा करने योग्य मनुष्य (बलेन) बल से (सरस्वतीम्) वाणी और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (ऋषभेण) चलने योग्य उत्तम (गवा) बैल से (इन्द्रियम्) धन तथा (अश्विना) आकाश और पृथिवी को (यवैः) यव आदि अन्नों से (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (भेषजम्) औषध को (वर्द्धयन्) बढ़ाता हुआ (कर्कन्धुभिः) बेर की क्रिया को धरण करने वालों से (मधु) मीठे (लाजैः) प्रफुल्लित अन्नों के (न) समान (मासरम्) भात को (यत्तत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त होते हुए रस के साथ (सोमः) ओषधिसमूह (पयः) रस (घृतम्) घी (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) होम कर ॥ ३२ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—मनुष्य ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा के बल को तथा विद्वानों की सेवा विद्या और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त हो पथ्य और औषध के सेवन से रोगों का विनाश कर नीरोगता को प्राप्त हों ॥ ३२ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि०

होता॑ यक्षद्ब॒र्हिरू॑र्णम्र॒दा भि॒षङ्ना-
स॑त्या भि॒षजा॒श्विना॒श्वा॒ शिशु॑मती भि॒-
षग्धे॒नुः सर॑स्वती भि॒षग्दु॒ह इन्द्रा॑य
भेष॒जं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॑
व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥ ३३ ॥

होता॑ । य॒क्ष॒त् । ब॒र्हिः । ऊ॒र्ण॒म्र॒दा॒ऽइत्यू॑र्णऽम्र॒
दाः॑ । भि॒षक् । नास॑त्या । भि॒षजा॑ । अ॒श्विना॑ । अश्वा॑ ।
शिशु॑मतीति॒ शिशु॑ऽमती । भि॒षक् । धे॒नुः । सर॑स्वती ।
भि॒षक् । दु॒हे । इन्द्रा॑य । भे॒ष॒जम् । पयः॑ । सोमः॑ । प॒रि॒-
स्रु॒तेति॑ परि॒ऽस्रुता॑ । घृ॒तम् । मधु॑ । व्य॒न्तु॒ । आज्य॑-
स्य । होतः॑ । यज॑ ॥ ३३ ॥

पदार्थः--- (होता) दाता (यक्षत्) (बर्हिः) अन्तरिक्षम् (ऊर्णम्रदाः) य ऊर्णानाच्छादकानि मृदूनि ते (भिषक्) वैद्यः (नासत्या) सत्यकर्त्तारौ (भिषजा) सद्वैद्यौ (अश्विना) वैद्यकविद्याव्यापिनौ (अश्वा) आशुगमनशीला वडवा (शिशुमती) प्रशस्ताः शिशवो विद्यन्ते यस्याः सा (भिषक्) रोगनिवारिका (धेनुः) दुग्धदात्री गौः (सरस्वती) सरो विज्ञानं विद्यते यस्याः सा (भिषक्) वैद्यः (दुहे) दोहनाय (इन्द्राय) जीवाय (भेषजम्) उदकम् । भेषजमित्युदकनाम० निघं० १ । १२ (पयः) दुग्धम् (सोमः) ओषधिगणः (परिस्रुता) (घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ ३३ ॥

अन्वयः— हे होतर्यथा होतोर्णम्रदा भिषक् शिशुमत्यश्वा च दुहे बर्हिर्यत्त् । नासत्याऽश्विना भिषजा यजेतां भिषग्धेनुः सरस्वती भिषगिन्द्राय यत्तत्तथा यानि परिस्रुता भेषजं पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३३ ॥

भावार्थः— अत्रवाच०—यदि मनुष्या विद्यासंगतिभ्यां सर्वेभ्यः पदार्थेभ्य उपकारान् गृह्णीयुस्तर्हि वाय्वग्निवत्सर्वविद्यासुखानिव्याप्नुयुः ॥ ३३ ॥

पदार्थः— हे (होतः) हवन करनेहारे जन जैसे (होता) देने हारा (ऊर्णम्रदाः) ढांपने हारों को मर्दन करने वाले जन (भिषक्) वैद्य (शिशुमती) और प्रशंसित बालकों वाली (अश्वा) शीघ्र चलने वाली घोड़ी (दुहे) परिपूर्ण करने के लिये (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (यक्षत्) संगत करें वा जैसे (नासत्या) सत्य व्यवहार के करने हारे (अश्विना वैद्य विद्या में व्याप्त (भिषजा) उत्तम वैद्य मेल करें वा जैसे (भिषक्) रोग मिटाने और (धेनुः) दुग्ध देने वाली गाय वा (सरस्वती) उत्तम विज्ञान वाली वाणी (भिषक्) सामान्य वैद्य (इन्द्राय) जीव के लिये मेल करें वैसे जो (परिस्रुता) प्राप्त हुए रस के साथ (भेषजम्) जल (पयः) दूध (सोमः) ओषधिगण (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३३ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्या और संगति से सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करें तो वायु और अग्नि के समान सब विद्याओं के सुखों को व्याप्त होवें ॥ ३३ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
भुरिगतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश इन्द्रो

न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वती त्य॒श्विनेन्द्राय भेषजꣳ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होत॒र्यज ॥ ३४ ॥

होता । यक्षत् । दुरः । दिशः । कवष्यः । न । व्यचस्वतीः । अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम् । न । दुरः । दिशः । इन्द्रः । न । रोदसीऽइति रोदसी । दुघेऽइतिदुघे । दुहे । धेनुः । सरस्वती । अश्विना । इन्द्राय । भेषजम् । शुक्रम् । न । ज्योतिः । इन्द्रियम् । पयः । सोमः । परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) (दुरः) द्वाराणि (दिशः) (कवष्यः) सच्छिद्राः (न) इव (व्यचस्वतीः) (अश्विभ्याम्) इन्द्राग्निभ्याम् (न) इव (दुरः) द्वाराणि (दिशः) (इन्द्रः) विद्युत् (न) इव (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (दुघे) अत्र वाछन्दसीति केवलादपि कप् प्रत्ययः (दुहे) दोहनाय प्रपूरणाय (धेनुः) धेनुरिव (सरस्वती) विज्ञानवती वाक् (अश्विना) सूर्याचन्द्रमसौ (इन्द्राय) जीवाय (भेषजम्) औषधम् (शुक्रम्) वीर्य्यकरमुदकम् । शुक्रमित्युदकनाम० निघं० १ । १२ । (न) इव (ज्योतिः) प्रकाशकम् (इन्द्रियम्) मनआदि (पयः) दुग्धम् (सोमः) ओषधिगणः (परिस्रुता) (घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य (होतः) दातः (यज) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता कवष्यो न दुरो व्यचस्वतीर्दिशोऽश्विभ्यां न दुरो दिश इन्द्रो न दुघे रोदसी धेनुः सरस्वतीन्द्रायाश्विना शुक्रं न भेषजं ज्योतिरिन्द्रियं दुहे यन्तस्तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये मनुष्याः सर्वदिग्द्वाराणि सर्वर्तुसुखकराणि गृहाणि निर्मिमीरंस्ते पूर्णसुखं प्राप्नुयुः । नैतेषामभ्युदयिकसुखन्यूनता कदाचिज्जायेत ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जन जैसे (होता) लेने हारा (कवष्यः) छिद्रसहित वस्तुओं के (न) समान (दुरः) द्वारों और (व्यचस्वतीः) व्याप्त होने वाली (दिशः) दिशाओं को वा (अश्विभ्याम्) इन्द्र और अग्नि से जैसे (न) वैसे (दुरः) द्वारों और (दिशः) दिशाओं को वा (इन्द्रः) विजुली के (न) समान (दुघे) परि पूर्णता करने वाले (रोदसी) आकाश और पृथिवी के और (धेनुः) गाय के समान (सरस्वती) विज्ञान वाली वाणी (इन्द्राय) जीव के लिये (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (शुक्रम्) वीर्य करने वाले जल के (न) समान (भेषजम्) औषध तथा (ज्योतिः) प्रकाश करने हारे (इन्द्रियम्) मन आदि को (दुहे) परिपूर्णता के लिये (यन्तत्) संगत करें वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घी (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन किया कर ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य सब दिशाओं के द्वारों वाले सब ऋतुओं में सुखकारी घर बनावें वे पूर्णसुख को प्राप्त होवें इन के सब प्रकार के उदय के सुख की न्यूनता कभी नहीं होवे ॥ ३४ ॥

होतेत्यस्यस्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
भुरिगतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३५ ॥

होता । यक्षत् । सुपेशसेति सुऽपेशसा । उषेऽइत्युषे । नक्तम् । दिवा । अश्विना । सम् । अञ्जातेऽइत्यञ्जाते । सरस्वत्या । त्विषिम् । इन्द्रे । न । भेषजम् । श्येनः । न । रजसा । हृदा । श्रिया । न । मासरम् । पयः । सोमः । परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) यजेत् (सुपेशसा) सुस्वरूपे स्त्रियौ (उषे) कामं दहन्त्यौ (नक्तम्) (दिवा) (अश्विना) व्याप्तिमन्तौ सूर्याचन्द्रमसौ (समञ्जाते) सम्यक् प्रकाशयतः (सरस्वत्या) विज्ञानयुक्तया वाचा (त्विषिम्) प्रदीप्तिम् (इन्द्रे) परमैश्वर्यवति प्राणिनि (न) इव (भेषजम्) जलम् (श्येनः श्यायति विज्ञापयतीति श्येनो विद्वान् (न) इव (रजसा) लोकैः सह (हृदा] हृदयेन (श्रिया) लक्ष्म्या शोभया वा (न) इव

(मासरम्) ओदनम् । उपलक्षणमेतत् तेन सुसंस्कृतमन्नमात्रं गृह्यते (पयः) सर्वौषधरसः (सोमः) सर्वौषधिगणः (परिस्रुता) सर्वतः प्राप्तेन रसेन (घृतम्) उदकम् (मधु) क्षौद्रम् (व्यन्तु) (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ ३५ ॥

अन्वयः--हे होतर्यथा सुपेशसोषे नक्तं दिवाऽश्विना सरस्वत्येन्द्रे त्विषिं भेषजं समञ्जाते न च रजसा सह श्येनो न होता श्रिया न हृदा मासरं यत्तत्तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३५ ॥

भावार्थः--अत्रोपमावाचकलु०-हे मनुष्या यथाहर्निशं सूर्याचन्द्रमसौ सर्वं प्रकाशयतो रूपयौवनसंपन्नाः पत्न्यः पतिं परिचरन्ति च यथा वा पाकविद्याविद्विद्वान् पाककर्मोपदिशति तथा सर्वप्रकाशं सर्वपरिचरणं च कुरुत भोजनपदार्थांश्चोत्तमतया निर्मिमीध्वम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः--हे (होतः) देने हारे जन जैसे (सुपेशसा) सुंदर स्वरूपवती (उषे) काम का दाह करने वाली स्त्रियां (नक्तम्) रात्रि और (दिवा) दिन में (अश्विना) परव्याप्त होने वाले सूर्य और चन्द्रमा (सरस्वत्या) विज्ञान युक्त वाणी से (इन्द्रे) परमैश्वर्यवान् प्राणी में (त्विषिम्) प्रदीप्ति और (भेषजम्) जल को (समञ्जाते) अच्छे प्रकार प्रगट करते हैं उन के (न) समान और (रजसा) लोकों के साथ वर्त्तमान (श्येनः) विशेष ज्ञान कराने वाले विद्वान् के (न) समान (होता) लेने हारा (श्रिया) लक्ष्मी वा शोभा के (न) समान (हृदा) मन से (मासरम्) भात वा अच्छे २ संस्कार किये हुए भोजन के पदार्थों को (यत्तत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) सब ओषधि का रस (सोमः) सब ओषधि समूह (घृतम्) जल (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३५ ॥

भावार्थः--इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०--हे मनुष्यो जैसे रातदिन सूर्य और चन्द्रमा सब को प्रकाशित करते और सुन्दर रूपयौवनसम्पन्न स्वधर्मपत्नी

अपने पति की सेवा करती वा जैसे पाकविद्या जानने वाला विद्वान् पाक कर्म का उपदेश करता है वैसे सब का प्रकाश और सब कार्मों का सेवन करो और भोजन के पदार्थों को उत्तमता से बनाओ ॥ ३५ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः । शूषꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३६ ॥

होता । यक्षत् । दैव्या । होतारा । भिषजा । अश्विना । इन्द्रम् । न । जागृवि । दिवा । नक्तम् । न । भेषजैः । शूषम् । सरस्वती । भिषक् । सीसेन । दुहे । इन्द्रियम् । पयः । सोमः । परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३६ ॥

पदार्थः--(होता) दाता (यक्षत्) (दैव्या) देवेषु लब्धौ (होतारा) आदातारौ (भिषजा) वैद्यवद्रोगापहारकौ (अश्विना) अग्निवायू (इन्द्रम्) विद्युतम् (न) इव (जागृवि) जागरूका

कार्यसाधनेऽप्रमत्ता । अत्र सुपां सुलुगिति सोर्लोपः (दिवा) (नक्तम्) (न) (भेषजैः) जलैः (शूषम्) बलम् । शूषमिति बलना० निघं० २ । ६ (सरस्वती) वैद्यकशास्त्रवित् प्रशस्तज्ञानवती स्त्री (भिषक्) वैद्यः (सीसेन) धनुर्विशेषेण (दुहे) दुग्धे लट्प्रयोगः । लोपस्त० इतितलोपः (इन्द्रियम्) धनम् (पयः) (सोमः) (परिस्रुता) (घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ ३६ ॥

अन्वयः--हे होतर्यथा होता दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न यक्षद्दिवा नक्तं जागृवि सरस्वती भिषग् भेषजैः सीसेन शूषं न इन्द्रियं दुहे तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३६ ॥

भावार्थः--अत्रोपमावाचकलु०- हे विद्वांसो यथा सद्वैद्याः स्त्रियः कार्य्याणि साधयितुमहर्निशं प्रयतन्ते यथा वा वैद्या रोगान्निवार्य्य शरीरबलं वर्धयन्ति तथा वर्त्तित्वा सर्वैरानन्दितव्यम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः--हे (होतः) देने हारे जन जैसे (होता) लेनेहारा (दैव्या) दिव्यगुण वालों में प्राप्त (होतारा) ग्रहण करने और (भिषजा) वैद्य के समान रोग मिटाने वाले (अश्विना) अग्नि और वायु को (इन्द्रम्) बिजुली के (न) समान (यक्षत्) संगतकरे वा (दिवा) दिन और (नक्तम्) राति में (जागृवि) जागती अर्थात् काम के सिद्ध करने में अतिचैतन्य (सरस्वती) वैद्यक शास्त्र जानने वाली उत्तम ज्ञानवती स्त्री और (भिषक्) वैद्य (भेषजैः) जलों और (सीसेन) धनुष के विशेष व्यवहार से (शूषम्) बल के (न) समान (इन्द्रियम्) धन को (दुहे) परिपूर्ण करते हैं वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दुग्ध (सोमः) ओषधीगण (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) (प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३६ ॥

भावार्थः--इस में उपमा और वाचकलु०- हे विद्वान् लोगो जैसे अच्छी वैद्यक विद्या पढ़ी हुई स्त्री काम सिद्ध करने को दिन रात उत्तम यत्न करती हैं वा जैसे वैद्य लोग रोगों को मिटा के शरीर का बल बढ़ाते हैं वैसे रह के सब को आनन्दयुक्त होना चाहिये ॥ ३६ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३७ ॥

होता । यक्षत् । तिस्रः । देवीः । न । भेषजम् । त्रयः । त्रिधातवऽइति त्रिऽधातवः । अपसः । रूपम् । इन्द्रे । हिरण्ययम् । अश्विना । इडा । न । भारती । वाचा । सरस्वती । महः । इन्द्राय । दुहे । इन्द्रियम् । पयः । सोमः । परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३७ ॥

पदार्थः--(होता) विद्यादाता (यक्षत्) संगमयेत् (तिस्रः) (देवीः) देदीप्यमाना नीतीः (न) इव (भेषजम्) औषधम्

(त्रयः) तदस्मद्युष्मत्पदवाच्याः (त्रिधातवः) दधति सर्वान् विषयानिति धातवस्त्रयो धातवो येषान्ते जीवाः (अपसः) कर्मवन्तः। अत्र विन्प्रत्ययस्य लुक् (रूपम्) चक्षुर्विषयम् (इन्द्रे) विद्युति (हिरण्ययम्) (अश्विना) सूर्याचन्द्रमसौ (इडा) स्तोतुमर्हा (न) इव (भारती) धारणावती प्रज्ञा (वाचा) विद्यासुशिक्षायुक्तवाण्या (सरस्वती) परमविदुषी स्त्री (महः) महत् (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यवते (दुहे) प्रपूरयति (इन्द्रियम्) धनम् (पयः) रसः (सोमः) ओषधिगणः (परिस्रुता) सर्वतः प्राप्तेन (घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता तिस्रो देवीर्न भेषजं यक्षद् यथाऽपसस्त्रिधातवस्त्रयो हिरण्ययंरूपमिन्द्रे यजेरन् । अश्विनेडा भारती न सरस्वती वाचेन्द्राय मह इन्द्रियं दुहे तथा यानि परिस्रुता पयस्सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—हे मनुष्या यथाऽस्थिमज्जवीर्य्याणि शरीरे कर्मसाधनानि सन्ति यथाच सूर्य्यादयो वाणी च सर्वज्ञापकाः सन्ति तथा भूत्वा सृष्टिविद्यां प्राप्य श्रीमन्तो भवत ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (होतः) विद्या देने वाले विद्वज्जन जैसे (होता) विद्या लेने वाला (तिस्रः) तीन (देवीः) देदीप्यमान नीतियों के (न) समान (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) अच्छे प्रकार प्राप्त करे वा जैसे (अपसः) कर्मवान् (त्रिधातवः, त्रयः) सब विषयों को धारण करने वाले सत्व रजस्तम गुण जिन में विद्यमान वे तीन अर्थात् अस्मद् युष्मद् और तद्पद वाच्य जीव (हिरण्ययम्) ज्योतिर्मय (रूपम्) नेत्र के विषय रूप को (इन्द्रे) बिजुली में प्राप्त करें वा (अश्विना) सूर्य और चंद्रमा तथा (इडा) स्तुति करने योग्य (भारती) धारण वाली बुद्धि के (न) समान (सरस्वती) अत्यन्त विदुषी (वाचा) विद्या और सुशिक्षा युक्त वाणी से (इन्द्राय) ऐश्वर्य्यवान् के लिये (महः) अत्यन्त (इन्द्रियम्) धन को (दुहे) परिपूर्णता करती

वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर प्राप्त हुये रसके साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधि समूह (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का । यज । हवन कर ॥ ३७ ॥

भावार्थः--इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०--हे मनुष्यो जैसे हाड, मज्जा और वीर्य शरीर में कार्य के साधन हैं वा जैसे सूर्य आदि और वाणी सब को जताने वाले हैं वैसे हो और सृष्टि की विद्या को प्राप्त हो के लक्ष्मी वाले होओ ॥ ३७ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशः सुरया भेषजꣳश्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३८ ॥

होता । यक्षत् । सुरेतसमिति सुऽरेतसम् । ऋषभम् । नर्यापसमिति नर्यऽअपसम् । त्वष्टारम् । इन्द्रम् । अश्विना । भिषजम् । न । सरस्वतीम् । ओजः । न । जूतिः । इन्द्रियम् । वृकः । न । रभसः । भिषक् । यशः । सुरया । भेषजम् । श्रिया । न । मासरम् । पयः ।

सोमः परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३८ ॥

पदार्थः--(होता) आदाता (यक्षत्) प्राप्नुयात् (सुरेतसम्) सुष्ठुवीर्यम् (ऋषभम्) वलीवर्दम् (नर्यापसम्) नृषुसाध्वपः कर्म यस्य तम् (त्वष्टारम्) दुःखच्छेत्तारम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तम् (अश्विना) वायुविद्युतौ (भिषजम्) वैद्यवरम् (न) इव (सरस्वतीम्) वहुविज्ञानयुक्तां वाचम् (ओजः) वलम् (न) इव (जूतिः) वेगः (इन्द्रियम्) मनः (वृकः) वज्रः । वृक इति वज्रना० निघं० २ । २० (न) (रभसः) वेगम् । द्वितीयार्थे प्रथमा (भिषक्) वैद्यः यशः धनमन्नं वा (सुरया) जलेन (भेषजम्) ओषधम् (श्रिया) लक्ष्म्या (न) इव (मासरम्) संस्कृतभोज्यमन्नम् (पयः) पातुं योग्यम् (सोमः) ऐश्वर्यम् (परिस्रुता) सर्वतोभिगतेन पुरुषार्थेन (घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ ३८ ॥

अन्वयः--हे होतस्त्वं यथा होता सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विनाभिषजं न सरस्वतीमोजो न यक्षद्भिषग्वृको न जूतिरिन्द्रियं रभसो यशः सुरया भेषजं श्रिया न क्रियया मासरं यक्षत्तथा परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधु च व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३८ ॥

भावार्थः--अत्रोपमावाचकलु०--यथा विद्वांसो ब्रह्मचर्येण धर्माचरणेन विद्यया सत्सङ्गादिनाचाऽखिलं सुखं प्राप्नुवन्ति तथा मनुष्यैः पुरुषार्थेन लक्ष्मीः प्राप्तव्या ॥ ३८ ॥

पदार्थः--हे (होतः) लेने हारे जैसे (होता) ग्रहण करने वाला (सुरेतसम्) अच्छे पराक्रमी (ऋषभम्) बैल और (नर्यापसम्) मनुष्यों में अच्छे कर्म करने तथा (त्वष्टारम्) दुःख काटने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त जन को (अश्विना) वायु

और बिजुली वा (भिषजम्) उत्तम वैद्य के (न) समान (सरस्वतीम्) बहुत विज्ञान युक्त वाणी को (ओजः) बल के (न) समान (यक्षत्) प्राप्त करे (भिषक्) वैद्य (वृकः) वज्र के (न) समान (जूतिः) वेग इन्द्रियम् (मन) रभसः वेग (यशः) धन वा अन्न को (सुरया) जल से (भेषजम्) औषध को (श्रिया) धन के (न) समान क्रियासे (मासरम्) अच्छे पके हुए अन्न को प्राप्त करे वैसे (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त पुरुषार्थ से (पयः) पीने योग्य रस और (सोमः) ऐश्वर्य (घृतम्) घी और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमावाचकलु०—जैसे विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य, धर्म के आचरण, विद्या और सत्संगति आदि से सब सुख को प्राप्त होते हैं वैसे मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥ ३८ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्बृहस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३९ ॥

होता । यक्षत् । वनस्पतिम् । शमितारम् । शतक्रतुमिति शतऽक्रतुम् । भीमम् । न । मन्युम् । राजानम् । व्याघ्रम् । नमसा । अश्विना । भामम् । सरस्वती । भिषक् । इन्द्राय । दुहे । इन्द्रियम् । पयः । सोमः । परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) (वनस्पतिम्) किरणानां पालकम् (शमितारम्) शान्तिप्रदम् (शतक्रतुम्) असंख्यप्रज्ञं बहुकर्माणं वा (भीमम्) भयंकरम् (न) इव (मन्युम्) क्रोधम् (राजानम्) राजमानम् (व्याघ्रम्) सिंहम् (नमसा) वज्रेण (अश्विना) सभासेनेशौ (भामम्) क्रोधम् (सरस्वती) प्रशस्तविज्ञानवती (भिषक्) वैद्यः (इन्द्राय) धनाय (दुहे) प्रपूरयेत् (इन्द्रियम्) धनम् (पयः) रसम् (सोमः) चन्द्रः (परिस्रुता) (घृतम्) (मधु) मधुरं वस्तु (व्यन्तु) (आज्यस्य) प्राप्तुमर्हस्य (होतः) (यज) ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा भिषग् घोता इन्द्राय वनस्पतिमिव शमितारं शतक्रतुं भीमं न मन्युं नमसा व्याघ्रं न राजानं यक्षत् सरस्वत्यश्विना भामं दुहे तथा परिस्रुतेन्द्रियं पयः सोमो घृतं मधु व्यन्तु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ३९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये मनुष्या विद्यया वह्निं शान्त्या विद्वांसं पुरुषार्थेन प्रज्ञां न्यायेन राज्यं च प्राप्यैश्वर्यं वर्द्धयन्ति ते ऐहिकपारमार्थिके सुखे प्राप्नुवन्ति ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (होतः) लेने हारे जैसे (भिषक्) वैद्य (होता) वा लेने हारा (इन्द्राय) धन के लिये (वनस्पतिम्) किरणों को पालने और (शमितारम्) शान्ति देने हारे (शतक्रतुम्) अनन्त बुद्धि वा बहुत कर्मयुक्त जन को (भीमम्) भयकारक

के (न) समान (मन्युम्) क्रोध को वा (नमसा) वज्र से (व्याघ्रम्) सिंह और (राजानम्) देदीप्यमान राजा को (यक्षत्) प्राप्त करे वा (सरस्वती) उत्तम विज्ञान वाली स्त्री और (अश्विना) सभा और सेनापति (भामम्) क्रोध को (दुहे) परिपूर्ण करे वैसे (परिस्रुता) प्राप्त हुए पुरुषार्थ के साथ (इन्द्रियम्) धन (पयः) रस (सोमः) चन्द्र (घृतम्) घी (मधु) मधुर वस्तु (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमावाचकलु०—जो मनुष्य लोग विद्या से अग्नि शान्ति से विद्वान् पुरुषार्थ से बुद्धि और न्याय से राज्य को प्राप्त हो के ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे इस जन्म और परजन्म के सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ३९ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेयऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृत्यष्टयौ छन्दसी । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद॒ग्नि स्वाहाज्यस्य स्तो॒कानां॒ स्वाहा मेद॑सां पृथ॒क् स्वाहा छाग॑म॒श्विभ्या॒ स्वाहा॑ मे॒षꣳ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहा॑ऽऋष॒भमिन्द्रा॑य सि॒ꣳहाय॒ सह॑सऽइन्द्रि॒यꣳ स्वाहा॒ग्निं न भे॑ष॒जꣳ स्वा-

ष्टा सोममिन्द्रियꣳ स्वाहेन्द्रꣳसुत्रामाणꣳ सवितारं वरुणं भिषजां पतिꣳस्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजꣳस्वाहा देवा आज्यपा जुषाणोऽअग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ४० ॥

होता । यक्षत् । अग्निम् । स्वाहा । आज्यस्य । स्तोकानाम् । स्वाहा । मेदसाम् । पृथक् । स्वाहा । छागम् । अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम् । स्वाहा । मेषम् । सरस्वत्यै । स्वाहा । ऋषभम् । इन्द्राय । सिꣳहाय । सहसे । इन्द्रियम् । स्वाहा । अग्निम् । न । भेषजम् । स्वाहा । सोमम् । इन्द्रियम् । स्वाहा । इन्द्रम् । सुत्रामाणमिति सुऽत्रामाणम् । सवितारम् । वरुणम् । भिषजाम् । पतिम् । स्वाहा । वनस्पतिम् । प्रियम् । पाथः । न । भेषजम् । स्वाहा । देवाः । आज्यपाऽइत्याज्यऽपाः । जुषाणः । अग्निः । भेषजम् । पयः । सोमः । परिस्रुतेति परिऽस्रुता । घृतम् । मधु । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ४० ॥

पदार्थः-(होता) आदाता (यक्षत्) यजेत् (अग्निम्) पावकम् (स्वाहा) सुष्ठुक्रियया (आज्यस्य) प्राप्तुमर्हस्य (स्तोकानाम्) स्वल्पानाम् (स्वाहा) सुष्ठुरक्षणक्रियया (मेदसाम्) स्निग्धानाम् (पृथक्) (स्वाहा) उत्तमरीत्या (छागम्) दुःखं छेत्तुमर्हम् (अश्विभ्याम्) राज्यस्वामि पशुपालाभ्याम् (स्वाहा) (मेषम्) सेचनकर्त्तारम् (सरस्वत्यै) विज्ञानयुक्तायै वाचे (स्वाहा) परमोत्तमया क्रियया (ऋषभम्) श्रेष्ठं पुरुषार्थम् (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (सिंहाय) यो हिनस्ति तस्मै (सहसे) बलाय (इन्द्रियम्) धनम् (स्वाहा) शोभनया वाचा (अग्निम्) पावकम् (न) इव (भेषजम्) औषधम् (स्वाहा) उत्तमया क्रियया (सोमम्) सोमलताद्योषधिगणम् ।(इन्द्रियम्) मनः प्रभृतीन्द्रियमात्रम् स्वाहा सुष्ठुशान्तिक्रियया विद्यया च (इन्द्रम्) सेनेशम् (सुत्रामाणम्) सुष्ठुरक्षकम् (सवितारम्) ऐश्वर्य्यकारकम् (वरुणम्) श्रेष्ठम् (भिषजाम्) वैद्यानाम्(पतिम्) पालकम् (स्वाहा) निदानादिविद्यया (वनस्पतिम्) वनानां पालकम् (प्रियम्) कमनीयम् (पाथः) पालकमन्नम् (न) इव (भेषजम्) औषधम् (स्वाहा) सुष्ठुविद्यया (देवाः) विद्वांसः (आज्यपाः) य आज्यं विज्ञानं पांतिरक्षन्ति ते (जुषाणः) सेवमानः (अग्निः) पावक इव प्रदीप्तः (भेषजम्)चिकित्सनीयम् (पयः) उदकम् (सोमः) ओषधिगणः (परिस्रुता) (घृतम्) (मधु) (व्यन्तु) (आज्यस्य । (होतः) दातः (यज) ॥ ४० ॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होताऽऽज्यस्य स्वाहा स्तोकानां मेदसांस्वाहाऽग्निं पृथक्स्वाहाश्विभ्यां छागं सरस्वत्यै स्वाहा मेषमिन्द्राय स्वाहर्षभं सहसे सिंहाय स्वाहेन्द्रियं स्वाहाग्निं न भेषजं सोममिन्द्रियं स्वाहा सुत्रामाणमिन्द्रं भिषजां पतिं सवितारं वरुणं स्वाहा वनस्पतिं स्वाहा प्रियं पाथो न भेषजं यक्षद्यथाज्यपा देवा भेषजं जुषाणोऽग्निश्च यक्षत् तथा यानि परिस्रुता पयः सोमो घृतं मधुव्यंतु तैः सह वर्त्तमानस्त्वमाज्यस्य यज ॥ ४० ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये मनुष्या विद्याक्रियाकौशलयत्नैर- ग्न्यादिविद्यां विज्ञाय गवादीन् पशून् संपाल्य सर्वोपकारं कुर्वन्ति ते वैद्यवत्प्रजा- दुःखध्वंसका जायन्ते ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जन जैसे (होता) ग्रहण करने हारा (आ- ज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घी की (स्वाहा) उत्तम क्रिया से वा (स्तोकानाम्) स्वल्प (मेदसाम्) स्निग्धपदार्थों की (स्वाहा) अच्छे प्रकार रक्षण क्रिया से (अग्निम्) अग्नि को (पृथक्) भिन्न २ (स्वाहा) उत्तम रीति से (अश्विभ्याम्) राज्य के स्वामि और पशु के पालन करने वालों से (छागम्) दुःख के छेदन करने को (सरस्वत्यै) वि- ज्ञान युक्त वाणी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (मेषम्) सेचन करने हारे को (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (स्वाहा) परमोत्तम क्रिया से (ऋषभम्) श्रेष्ठ पुरुषार्थ को (सहसे) बल (सिंहाय) और जो शत्रुओं का हनन कर्त्ता उस के लिये (स्वाहा) उत्तम वाणी से (इन्द्रियम्) धन को (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (अग्निम्) पावक के (न) समान (भेषजम्) औषध (सोमसोमलतादि) ओषधि समूह (इन्द्रियम् वा मन आदि इन्द्रियों को (स्वाहा) शान्ति आदि क्रिया और विद्या से (सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षक (इन्द्रम्) सेनापति को (भिषजाम्) वैद्यों के (पतिम्) पालन करने हारे (सवितारम्) ऐश्वर्य के कर्त्ता (वरुणम्) श्रेष्ठ पुरुष को (स्वाहा) निदान आदि विद्या से (वनस्पतिम्) वनों के पालन करने हारे को (स्वाहा) उत्तम विद्या से (प्रियम्) प्रीति करने योग्य (पाथः) पालन करने वाले अन्न के (न) समान (भेषजम्) उत्तम औषध को (यक्षत्) संगत करे वा जैसे (आज्यपाः) विज्ञान के पालन करने हारे (देवाः) विद्वान् लोग और (भेषजम्) चिकित्सा करने योग्य को (जुषाणः) सेवन कर्त्ता हुआ (अग्निः) पावक के समान तेजस्वी जन संगत करें वैसे जो (परिस्रुता) चारों ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्य- स्य) घी का (यज) हवन किया कर ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य विद्या क्रिया कुशलता और प्रयत्न से अग्न्यादि विद्या को जान के गौ आदि पशुओं का अच्छे प्रकार पालन करके सब के उपकार को करते हैं वे वैद्य के समान प्रजा के दुःख के नाशक होते हैं॥४०॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताᳪं हविर्होतर्यज । होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताᳪं हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताᳪं हविर्होतर्यज ॥ ४१ ॥

होता । यक्षत् । अश्विनौ । छागस्य । वपायाः । मेदसः । जुषेताम् । हविः । होतः । यज । होता । यक्षत् । सरस्वतीम् । मेषस्य । वपायाः । मेदसः । जुषताम् । हविः । होतः । यज । होता । यक्षत् । इन्द्रम् । ऋषभस्य । वपायाः । मेदसः । जुषताम् । हविः । होतः यज ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(होता) दाता (यक्षत्) (अश्विनौ) पशुपालकृषीवलौ (छागस्य) अजादेः (वपायाः) बीजतन्तुसन्तानिकायाः क्रियायाः (मेदसः) स्निग्धस्य (जुषेताम्) सेवेताम् (हविः) होतव्यम् (होतः) दातः (यज)

(होता) आदाता (यक्षत्) (सरस्वतीम्) विज्ञानवतीं वाचम् (मेषस्य) अवेः (वपायाः) बीजवर्द्धिकायाः क्रियायाः (मेदसः) स्नेहयुक्तस्यपदार्थस्य (जुषताम्) सेवताम् (हविः) प्रक्षेप्तव्यं सुसंस्कृतमन्नादिकम् (होतः) (यज) (होता) (यक्षत्) (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यकारकम् (ऋषभस्य) वृषभस्य (वपायाः) वर्द्धिकायारीत्याः (मेदसः) स्नेहस्य (जुषताम्) सेवताम् (हविः) दातव्यम् (होतः) (यज) ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो हविर्जुषताम् तथा यज । हे होतस्त्वं यथा होता मेषस्य वपाया मेदसो हवि सरस्वतीञ्च जुषतां यक्षत्तथा यज । हे होतस्त्वं यथा होतर्षभस्य वपाया मेदसो हविरिन्द्रं च जुषतां यक्षत्तथा यज ॥ ४१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः पशुसंख्यां बलं च वर्धयन्ति ते स्वयमपि बलिष्ठा जायन्ते । ये पशुजं दुग्धं तज्जमाज्यं च स्निग्धं सेवन्ते ते कोमलप्रकृतयो भवन्ति । ये कृषिकरणाद्यर्थेतान्वृषभान्युञ्जन्ति ते धनधान्ययुक्ता जायन्ते ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे तू जैसे (होता) और देने हारा (यक्षत्) अनेक प्रकार के व्यवहारों की संगति करे (अश्विनौ) पशु पालने वा खेती करने वाले (छागस्य) बकरा गौ भैंस आदि पशु संबन्धी वा (वपायाः) बीज बोने वा सूत के कपड़े आदि बनाने और (मेदसः) चिकने पदार्थ के (हविः) लेने देने योग्य व्यवहार का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) व्यवहारों की संगति कर हे (होतः) देने हारे जन तू जैसे (होता) लेने हारा (मेषस्य) मेढ़ा के (वपायाः) बीज को बढ़ाने वाली क्रिया और (मेदसः) चिकने पदार्थ संबन्धी (हविः) अग्नि आदि में छोड़ने योग्य संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ और (सरस्वतीम्) विशेष ज्ञान वाली वाणी का (जुषताम्) सेवन करे (यक्षत्) वा उक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल करे वैसे (यज) सब पदार्थों का यथायोग्य मेल कर हे (होतः) देने हारे तू जैसे (होता)

लेने हारा (ऋषभस्य) बैल को (वपायाः) बढ़ने वाली रीति और (मेदसः) चिकने पदार्थ संबन्धी (हविः) देने योग्य पदार्थ और (इन्द्रम्) परमऐश्वर्य करनेवाले का (जुषताम्) सेवन करे वा यथायोग्य (यज्ञत्) उक्त पदार्थों का मेल करे वैसे (यज) यथा योग्य पदार्थों का मेल कर ॥४१॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य पशुओं की संख्या और बल को बढ़ाते हैं वे आप भी बलवान् होते और जो पशुओं से उत्पन्न हुए दूध और उस से उत्पन्न हुए घी का सेवन करते वे कोमल स्वभाव वाले होते हैं और जो खेती करने आदि के लिये इन बैलों को युक्त करते हैं वे धनधान्ययुक्त होते हैं ॥ ४१ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । होत्रादयो देवताः । पूर्वस्य त्रिपाद्गायत्री छन्दः । सुरामाण इत्यस्यातिधृति श्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद॒श्विनौ॒ सर॑स्वती॒मिन्द्रं॑ सु॒त्रामा॑ण॒मि॒मे सोमाः॑ सु॒रामा॑ण॒श्छागै॒र्न मे॒षैर्ऋ॑ष॒भैः सु॒ताः शष्पै॒र्न तोक्म॑भिर्ला॒जैर्मह॑स्वन्तो॒ मदा॒ मास॑रेण॒ परि॑ष्कृताः

शुक्राः। पर्यस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्तां सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥ ४२ ॥

होता। यक्षत्। अश्विनौ। सरस्वतीम्। इन्द्रम्। सुत्रामाणमिति सुऽत्रामाणम्। इमे। सोमाः। सुरामाणः। छागैः। न। मेषैः। ऋषभैः। सुताः। शष्पैः। न। तोक्मभिरिति तोक्मऽभिः। लाजैः। महस्वन्तः। मदाः। मासरेण। परिष्कृताः। शुक्राः। पयस्वन्तः। अमृताः। प्रस्थिता इति प्रऽस्थिताः। वः। मधुश्चुत इति मधुऽश्चुतः। तान्। अश्विना। सरस्वती। इन्द्रः। सुत्रामा। वृत्रहा। जुषन्ताम्। सोम्यम्। मधु। पिबन्तु। मदन्तु। व्यन्तु। होतः। यज ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(होता) दाता (यक्षत्) यजेत् (अश्विनौ) अध्यापकोपदेष्टारौ (सरस्वतीम्) विज्ञानवतीं वाचम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्तराजानम् (सुत्रामाणम्) प्रजायाः सुष्ठुरक्षकम् (इमे) (सोमाः) ऐश्वर्यवन्तः सभासदः (सुरामाणः) सुष्ठुदातारः (छागैः) (न) इव (मेषैः) (ऋषभैः) (सुताः) अभिषेकक्रियाजाताः (शष्पैः) हिंसकैः। अत्रौणादिको बाहुलकात्कर्त्तरि यत्

(न) इव (तोक्मभिः) अपत्यैः (लाजैः) भर्जितैः (महस्वन्तः) महांसि पूजनानि सत्करणानि विद्यन्ते येषान्ते (मदाः) आनन्दाः (मासरेण) ओदनेन (परिष्कृताः) परितः शोभिताः, संपर्युपेभ्यः करोतौ भूषण इति सुट् (शुक्राः) शुद्धाः (पयस्वन्तः) प्रशस्तजलदुग्धादियुक्ताः (अमृताः) अमृतान्यमरसाः (प्रस्थिताः) कृतप्रस्थानाः (वः) युष्मभ्यम् (मधुश्चुतः) मधुरादिगुणा विविक्ता व्यन्तो येभ्यः (तान) अश्विना सुसत्कर्तारौ पुरुषौ (सरस्वती) प्रशस्तविद्यायुक्ता स्त्री (इन्द्रः) सुत्रामा सुष्ठुरक्षकः (वृत्रहा) मेघस्य हन्ता सूर्य इव (जुषन्ताम्) सेवन्ताम् (सोम्यम्) सोमार्हम् (मधु) मधुररसम् (पिबन्तु) (मदन्तु) आनन्दन्तु (व्यन्तु) व्याप्नुवन्तु (होतः) (यज) ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होताऽश्विनौ सरस्वतीं सुत्रामाणमिन्द्रं यक्षद्ये सुरामाणः सोमाः सुताश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तोमदामासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृता मधुश्चुतः प्रस्थिता वो निर्मितास्तान् यक्षद्यथाऽश्विना सरस्वती सुत्रामा वृत्रहेन्द्रश्च सोम्यं मधु जुषन्तां पिबन्तु मदन्तु सकला विद्या व्यन्तु तथा यज ॥ ४२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये स्त्रष्टिपदार्थविद्यां सत्यां वाचं सुरक्षकं राजानं च प्राप्य पशूनां पय आदिभिः पुष्यन्ति ते सुरसान् सुसंस्कृतान्नादीन सुपरीक्षितान् भोगान् युक्त्या भुक्त्वा रसान् पात्वा धर्मार्थकाममोक्षार्थे प्रयतन्ते ते सदा सुखिनो भवन्ति ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (होतः) लेने हारा जैसे (होता) देने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुषो (सरस्वतीम्) तथा विज्ञान की भरी हुई वाणी और (सुत्रामाणम्) प्रजा जनों की अच्छी रक्षा करने हारे (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा को (यक्षत्) प्राप्त हो वा (इमे) ये जो (सुरामाणः) अच्छे देने हारे (सोमाः) ऐश्वर्यवान् सभासद् (सुताः) जो कि अभिषेक पाये हुए हों वे (छागैः) विनाश करने योग्य पदार्थों वा बकरा आदि पशुओं (न) वैसे तथा (मेषैः) देखने योग्य पदार्थ वा मेढों (ऋषभैः) श्रेष्ठ पदार्थों वा बैलों और (शष्पैः) हिंसकों से जैसे (न) वैसे (तोक्मभिः) सन्तानों और (लाजैः) भुंजे अन्नों से (महस्वन्तः) जिन के सत्कार विद्यमान हों वे मनुष्य और (मदाः) आनन्द (मासरेण) पके हुए चावलों के साथ (परिस्कृताः) शोभायमान (शुक्राः) शुद्ध (पयस्वन्तः) प्रशंसित जल और दूध से युक्त (अमृताः) जिन में अमृत एक रस (मधुश्चुतः) जिन से मधुरादि गुण टपकते वा (प्रस्थिताः) एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुए (वः) तुम्हारे लिये पदार्थ बनाए हैं (तान्) उनको प्राप्त होवे वा जैसे (अश्विना) सुन्दर सत्कार पाये हुए पुरुष (सरस्वती) प्रशंसित विद्या युक्त स्त्री (सुत्रामा) अच्छी रक्षा करने वाला (वृत्रहा) मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् सज्जन (सोम्यम्) शीतलता गुण के योग्य (मधु) मीठेपन का (जुषन्ताम्) सेवन करें (पिबन्तु) पीवें (मदन्तु) हर्षें और समस्त विद्याओं को (व्यन्तु) व्याप्त हों वैसे तू (यज) सब पदार्थों की यथायोग्य संगति किया कर ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो संसार के पदार्थों की विद्या सत्य वाणी और भली भांति रक्षा करने हारे राजा को पा कर पशुओं के दूध आदि पदार्थों से पुष्ट होते हैं वे अच्छे रस युक्त अच्छे संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ जो सुपरीक्षित हों उन को युक्ति के साथ खा और रसों को पी धर्म अर्थ काम मोक्ष के निमित्त अच्छा यत्न करते हैं ये सदैव सुखी होते हैं ॥ ४२ ॥

होतेत्यस्यस्वस्त्याऽत्रेयऋषिः । होत्रादयो देवताः ।
आद्यस्य याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
उत्तरस्योत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳪ सुमत्क्षराणाᳪ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवाश्विना जुषेताᳪ हविर्होतर्यज ॥ ४३ ॥

होता । यक्षत् । अश्विनौ । छागस्य । हविषः । आत्ताम् । अद्य । मध्यतः । मेदः । उद्भृतमित्युत्ऽभृतम् । पुरा । द्वेषोभ्यऽइति द्वेषःऽभ्यः । पुरा पौरुषेय्याः । गृभः । घस्ताम् । नूनम् । घासेऽअज्राणामिति घासेऽअज्राणाम् । यवसप्रथमानामिति यवसऽप्रथमानाम् । सुमत्क्षराणामिति सुमत्ऽक्षराणाम् । शतरुद्रियाणामिति शतऽरुद्रियाणाम् । अग्निष्वात्तानाम् । अग्निष्वात्तानामित्यग्निऽस्वात्तानाम् । पीवोपवसनानामिति पीवःऽउपवसनानाम् । पार्श्वतः ।

श्रोणितः । शितामतः । उत्सादतऽइत्युत्ऽसादतः । अङ्गादङ्गादित्यङ्गात्ऽअङ्गात् । अवत्तानाम् । करतः । एव । अश्विना । जुषेताम् । हविः । होतः । यज ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) (अश्विनौ) अध्यापकोपदेशकौ (छागस्य) (हविषः) आदातुमर्हस्य (आत्ताम्) (अद्य) (मध्यतः) मध्यात् (मेदः) स्निग्धम् (उद्भृतम्) उत्कृष्टतया धृतम् (पुरा) (द्वेषोभ्यः) द्वेष्टृभ्यः (पुरा) (पौरुषेय्याः) पुरुषाणां समूहे साध्व्याः (गृभः) ग्रहीतुं योग्यायाः (घस्ताम्) भक्षयताम् (नूनम्) निश्चितम् (घासेअज्राणाम्) भोजनेऽग्रे प्राप्तव्यानाम् (यवसप्रथमानाम्) यवसो यवान्नं प्रथमं येषां तेषाम् (सुमत्क्षराणाम्) सुष्ठु मदां क्षरः संचलनं येषां तेषाम् (शतरुद्रियाणाम्) शतं रुद्राः शतरुद्राः शतरुद्रा देवता येषां तेषाम् (अग्निष्वात्तानाम्) अग्निः सुष्ठात्तो गृहीतो यैस्तेषाम् (पीवोपवसनानाम्) पीवांस्युपवसनान्याच्छादनानि येषां तेषाम् (पार्श्वतः) अभयतः (श्रोणितः) कटिप्रदेशात् (शितामतः) शितस्तीक्ष्ण आमोऽपरिपक्वो यः समस्तस्मात् (उत्सादतः) उत्सादनं कुर्वतः (अङ्गादङ्गात्) प्रत्यङ्गात् (अवत्तानाम्) नम्रीभूतानामुत्कृष्टानामङ्गानाम् (करतः) कुर्याताम् (एव) (अश्विना) सद्वैद्यौ (जुषेताम्) (हविः) अत्तुमर्हम् (होतः) (यज) ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होताश्विनौ यक्षत् चाऽद्य छागस्य मध्यतो हविषो मेद उद्भृतमात्तां यथा वा पुरा द्वेषोभ्यो गृभः पौरुषेय्याः पुरा नूनं घ-

स्तां यथा वा यवसप्रथमानां घासेअज्राणां सुमत्क्षराणां शतरुद्रियाणां पीवो-पवसनानामग्निष्वात्तानांपार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादव-त्तानामेवाश्विना करतो हविर्जुषेतां तथा त्वं यज ॥ ४३ ॥

भावार्थः—ये छागादीनां रक्षां विधाय तेषां दुग्धादिकं सुसंस्कृत्य भुक्त्वा द्वेषादियुक्तान् पुरुषान्निवार्य सुवैद्यानां सङ्गं कृत्वा शोभनं भोजनाऽऽच्छादनं कुर्वन्तिते प्रत्यङ्गाद्रोगान्निवार्य सुखिनो भवन्ति ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जैसे (होता) लेने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वालों को (यक्षत्) संगत करे और वे (अद्य) आज (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के (मध्यतः) बीच से (हविषः) लेने योग्य पदार्थ का (मेदः) चिकनाभाग अर्थात घी दूध आदि (उद्भृतम्) उद्धार किया हुआ (आत्ताम्) लेवें वा जैसे (द्वेषोभ्यः) दुष्टों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण कर-ने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषों के समूह में उत्तम स्त्री के (पुरा) पहिले (नूनम्) नि-श्चय करके (घस्ताम्) खावें वा जैसे (यवसप्रथमानाम्) जो जिन का पहिला भक्ष (घासेअज्राणाम्) जो खाने में आगे पहुंचने योग्य(सुमत्क्षराणाम्) जिन के उत्तम २ आनन्दों का कंपन आगमन (शतरुद्रियाणाम्) दुष्टों को रुलाने हारे सैकड़ों रुद्र जिन के देवता (पीवोपवसनानम्) वा जिन के मोटे २ कपड़ों के ओढ़ने पहिरने (अग्निष्वा-त्तानाम्) वा जिन्हों ने भली भांति अग्निविद्या का ग्रहण किया हो इन सब प्राणियों के (पार्श्वतः) पार्श्वभाग (श्रोणितः) कटिप्रदेश (शितामतः) तीक्ष्ण जिस में कच्चा अन्न उसप्रदेश (उत्सादतः) उपाड़ते हुए अंग और (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अंग से व्यवहार वा (अवत्तानाम्) नमे हुए उत्तम अङ्गों (एव) ही के व्यवहार को (अश्विना) अच्छे वैद्य (करतः) करें और (हविः) उक्त पदार्थों से खाने योग्य पदार्थ का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) सब पदार्थों वा व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ४३ ॥

भावार्थः— जो छेरी आदि पशुओं की रक्षा कर उनके दूध आदि का अच्छा अच्छा संस्कार और भोजन कर वैरभावयुक्त पुरुषों को निवारण कर और अच्छे वैद्यों का संग करके उत्तम खाना पहिरना करते हैं वे प्रत्येक अंग से रोगों को दूर कर सुखी होते हैं ॥ ४३ ॥

होतेत्यस्यस्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । पूर्वस्य याजुषी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । हविषइत्युत्तरस्य स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्ष॒त् सर॑स्वतीं मे॒षस्य॑ ह॒विष॒ आव॑यद॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ऽउद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घस॑न्नू॒नं घा॒सेऽअ॑ज्रा॒णां यव॑सप्रथमाना॒ᳪ सु॒मत्क्ष॑राणा॒ᳪ श॑तरु॒द्रिया॑णामग्निष्वा॒त्तानां॒ पीवो॑पवसनानां पार्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ता॒मत॒ऽउ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्तानां॒ कर॑दे॒वᳪ सर॑स्वती जु॒षता॒ᳪ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥ ४४ ॥

होता॑ । यक्ष॑त् । सर॑स्वतीम् । मे॒षस्य॑ । ह॒विषः॑ । आ । अ॒व॒यत् । अ॒द्य । म॒ध्य॒तः । मेदः॑ । उ॒द्भृ॑त॒मित्यु॒त्ऽभृ॑तम् । पु॒रा ।

द्वेषोभ्य इति द्वेषःऽभ्यः। पुरा। पौरुषेय्याः। गृभः। घसत्। नूनम्। घासेअज्राणामिति घासेऽअज्राणाम्। यवसप्रथमानामिति यवसऽप्रथमानाम्। सुमत्क्षराणामिति सुमत्ऽक्षराणाम्। शतरुद्रियाणामिति शतऽरुद्रियाणाम्। अग्निष्वात्तानामित्यग्निऽस्वात्तानाम्। पीवोपवसनानामिति पीवःऽउपवसनानाम्। पार्श्वतः। श्रोणितः। शितामतः। उत्सादत इत्युत्ऽसादतः। अङ्गादङ्गादित्यङ्गात्ऽअङ्गात्। अवत्तानाम्। करत्। एवम्। सरस्वती। जुषताम्। हविः। होतः। यज ॥ ४४ ॥

पदार्थः-- (होता) दाता (यक्षत्) (सरस्वतीम्) वाचम् (मेषस्य) उपदिष्टस्य (हविषः) दातुमर्हस्य (आ) (अवयत्) वेति प्राप्नोति (अद्य) (मध्यतः) मध्ये भवात् (मेदः) स्निग्धम् (उद्भृतम्) उद्धृतम् (पुरा) (द्वेषोभ्यः) शत्रुभ्यः (पुरा) (पौरुषेय्याः) पुरुषसम्बन्धिन्याः (गृभः) ग्रहीतुं योग्यायाः (घसत्) (नूनम्) निश्चितम् (घासेअज्राणाम्) भोजने कमनीयानाम् (यवसप्रथमानाम्) मिश्रितामिश्रिताद्यानाम् (सुमत्क्षराणाम्) श्रेष्ठानन्दवर्षकाणाम् (शतरुद्रियाणाम्) बहूनां मध्ये विद्वद्धिष्ठातॄणाम् (अग्निष्वात्तानाम्) सुसंगृहीताग्निविद्यानाम् (पीवोपवसनानाम्) स्थूलवस्त्रधारिणाम् (पार्श्वतः) समीपात् (श्रोणितः) कटिप्रदेशात् (शितामतः) तीक्ष्णस्वभावात् (उत्सादतः) गात्रोत्सादनात् (अङ्गादङ्गात्) (अवत्तानाम्) गृहीतानाम् (करत्) कुर्यात् (एवम्) अमुना प्रकारेण (सरस्वती) विदुषी स्त्री (जुषताम्) (हविः) आदातव्यम् (होतः) आदातः (यज) ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होताऽद्य मेषस्य शितामतो हविषो मध्यतो यन्मेद उद्भृतं तद् सरस्वतीं चावयत् यद्यत् द्वेषोभ्यः पुरा गृभः पौरुषेय्याः पुरा नूनं घसद् घासेअज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणां पीवोपवसनानामग्निष्वात्तानां शतरुद्रियाणां पार्श्वतः श्रोणित उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां सकाशाद्विद्या करदेवमेतत्सरस्वती जुषतां तथा त्वं च हविर्यज ॥ ४४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः सज्जनसंगेन दुष्टान् निवार्य युक्ताहारविहाराभ्यामारोग्यं प्राप्य धर्मं सेवन्ते ते कृतकृत्या जायन्ते ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) लेने हारे जैसे (होता) देने वाला (अद्य) आज (मेषस्य) उपदेश को पाये हुए मनुष्य के (शितामतः) तीव्र स्वभाव से (हविषः) देने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) बीच में प्रसिद्ध व्यवहार से जो (मेदः) चिकना पदार्थ (उद्भृतम्) उद्धार किया अर्थात् निकाला उस को (सरस्वतीम्) और वाणी को (आ, अवयत्) प्राप्त होता तथा (यद्यत्) सत्कार करता और (द्वेषोभ्यः) शत्रुओं से (पुरा) पहिले तथा (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुष सम्बन्धिनी स्त्री के (पुरा) प्रथम (नूनम्) निश्चय से (घसत्) खावे वा (घासेअज्राणाम्) जो भोजन करने में सुन्दर (यवसप्रथमानाम्) मिले न मिले हुए आदि (सुमत्क्षराणाम्) श्रेष्ठ आनन्द की वर्षा कराने और (पीवोपवसनानाम्) मोटे कपड़े पहरने वाले तथा (अग्निष्वात्तानाम्) अग्निविद्या को भली भांति ग्रहण किये हुए और (शतरुद्रियाणाम्) बहुतों के बीच विद्वानों का अभिप्राय रखने हारों के (पार्श्वतः) समीप और (श्रोणितः) कटि भाग से (उत्सादतः) शरीर से जो त्याग उस से वा (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग अङ्ग से (अवत्तानाम्) ग्रहण किये हुए व्यवहारों की विद्या को (करत्) ग्रहण करे (एवम्) ऐसे (सरस्वती) पण्डिता स्त्री उस का (जुषताम्) सेवन करे वैसे तू भी (हविः) ग्रहण करने योग्य व्यवहार की (यज) संगति किया कर ॥ ४४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सज्जनों के संग से दुष्टों को निवारण कर युक्त आहार विहारों से आरोग्यपन को पाकर धर्म का सेवन करते वे कृतकृत्य होते हैं ॥४४॥

होतेत्यस्यस्वस्त्यात्रेयऋषिः । यजमानर्त्विजो देवताः ।
पूर्वस्य भुरिक् प्राजापत्योष्णिक् । आवयदित्युत्तरस्य ।
भुरिगभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्षुदिन्द्र॑मृष॒भस्य॑ ह॒विष॒ आव॑यद॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ उद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घसन्नू॒नं घा॒सेऽअ॒ज्राणां॒ यव॑सप्रथमाना सुम॒त्क्षरा॑णाᳪ॰ शतरु॒द्रिया॑णामग्निष्वा॒त्ता॑नाम्पीवोपवसनानां पार्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒तऽ उ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्तानां॒ कर॑देवमिन्द्रो॑ जुषताᳪ॰ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥ ४५ ॥

होता॑ । यक्ष॑त् । इन्द्र॑म् । ऋ॒ष॒भस्य॑ । ह॒विषः॑ । आ । अ॒व॒य॒त् । अ॒द्य । म॒ध्य॒तः । मेदः॑ । उद्भृ॑त॒मित्युत्ऽभृ॑तम् । पु॒रा । द्वेषो॑भ्य॒ऽइति॒ द्वेषः॑ऽभ्यः । पु॒रा । पौरु॑षेय्याः । गृ॒भः । घस॑त् । नू॒नम् । घा॒सेऽअ॒ज्राणा॑म् । यव॑सप्रथमाना॒मिति॒ यव॑सऽप्रथमानाम् । सु॒मत्क्ष॑राणा॒मिति॑सु॒मत्ऽक्ष॑राणाम् । श॒त॒रु॒द्रिया॑णा॒मिति॑ श॒त॒ऽरु॒द्रिया॑णाम् । अ॒ग्नि॒ष्वा॒त्ताना॑म् । अ॒ग्नि॒ष्वा॒त्ताना॒मित्य॑

ऽअग्निऽस्वात्तानाम् । पीवोपवसनानामिति पीवःऽउपवसनानाम् । पार्श्वतः । श्रोणितः । शितामतः । उत्सादत इत्युत्ऽसादतः । अङ्गादङ्गादित्यङ्गात्ऽअङ्गात् । अवत्तानाम् । करत् । एवम् । इन्द्रः । जुषताम् । हविः । होतः । यज ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) सत्कुर्यात् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (ऋषभस्य) उत्तमस्य (हविषः) आदातुमर्हस्य (आ) (अवयत्) व्याप्नुयात् (अद्य) (मध्यतः) मध्येभवात् (मेदः) स्निग्धम् (उद्भृतम्) उत्कृष्टतया पोषितम् (पुरा) पुरस्तात् (द्वेषोभ्यः) विरोधिभ्यः (पुरा) (पौरुषेय्याः) पुरुषसम्बन्धिन्या विद्यायाः (गृभः) ग्रहीतुं योग्यायाः (घसत्) अद्यात् (नूनम्) (घासेअज्राणाम्) (यवसप्रथमानाम्) यवसस्य विस्तारकाणाम् (सुमत्क्षराणाम्) सुष्ठु प्रमादनाशकानाम् (शतरुद्रियाणाम्) शतानां रुद्राणां दुष्टरोदकानाम् (अग्निष्वात्तानाम्) अग्निना जाठराग्निना सुष्ठुगृहीतान्नानाम् (पीवोपवसनानाम्) स्थूलदृढाऽऽच्छादनानाम् (पार्श्वतः) इतस्ततोऽङ्गात् (श्रोणितः) क्रमशः (शितामतः) तीक्ष्णत्वेनोच्छिन्नरोगात् (उत्सादतः) त्यागमात्रात् (अङ्गादङ्गात्) प्रत्यङ्गात् (अवत्तानाम्) उदारचेतसाम् (करत्) कुर्यात् (एवम्) (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा (जुषताम्) सेवताम् (हविः) रोगनाशकं वस्तु (होतः) (यज) ॥४५ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता घासेअज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां शतरुद्रियाणामवत्तानां पार्श्वतः श्रोणितः शि-

तामतउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवृविरिन्द्रं च करदिन्द्रो जुषतां यथाऽद्यर्षभस्य हविषो मध्यतो मेद उद्भृतमावयत् द्वेषोभ्यः पुरा गृभः पौरुषेय्याः पुरा नूनंयत्तदेवं घसत् तथा त्वं यज ॥ ४५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या विदुषां संगेन दुष्टाग्निं त्यक्त्वा श्रेष्ठान् सत्कृत्य ग्रहीतव्यं गृहीत्वाऽन्यान् ग्राहयित्वा सर्वानुन्नयन्ति ते पूज्या जायन्ते ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जैसे (होता) लेने हारा पुरुष (घासेअज्राणाम्) भोजन करने में प्राप्त होने (यवसप्रथमानाम्) जौ आदि अन्न वा मिले न मिले हुए पदार्थों को विस्तार करने और (सुमत्क्षराणाम्) भली भांति प्रमाद का विनाश करने वाले (अग्निष्वात्ताम्) जाठराग्नि अर्थात् पेट में भीतर रहने वाली आग से अन्न ग्रहण किये हुए (पीवोपवसनानाम्) मोटे पोढ़े उढ़ने ओढ़ने (शतरुद्रियाणाम्) और सैकड़ों दुष्टों को रुलाने हारे (अवत्तानाम्) उदार चित्त विद्वानों के (पार्श्वतः) और पास के अंग वा (श्रोणितः) क्रम से वा (शितामतः) तीक्ष्णता के साथ जिस से रोग छिन्न भिन्न हो गया हो उस अंग वा (उत्सादतः) त्यागमात्र वा (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अंग से (हविः) रोग विनाश करने हारी वस्तु और (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को सिद्ध (करत्) करे और (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला राजा उस का (जुषताम्) सेवन करे तथा वह राजा जैसे (अद्य) आज (ऋषभस्य) उत्तम (हविषः) लेने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) बीच में उत्पन्न हुआ (मेदः) चिकना पदार्थ (उद्भृतम्) जो कि उत्तमता से पुष्ट किया गया अर्थात् सम्हाला गया हो उस को (आ, अवयत्) व्याप्त हो सब ओर से प्राप्त हो (द्वेषोभ्यः) वैरियों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुष सम्बन्धिनी विद्या के सम्बन्ध से (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय के साथ (यत्तत्) सत्कार करे वा (एवम्) इस प्रकार (घसत्) भोजन करे वैसे तूं (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ४५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्वानों के संग से दुष्टों को निवारण तथा श्रेष्ठ उत्तम जनों का सत्कार कर लेने योग्य पदार्थ को ले कर और दूसरों को ग्रहण करा सब की उन्नति करते हैं वे सत्कार करने योग्य होते हैं ॥४५॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेयऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
भुरिगभिकृतीछन्दसी । ऋषभः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ।

फिर उसी वि० ।

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतंमया रभिष्ठया रशनयाधित । यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राऽग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांसि

स्मि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान्प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयस इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषताᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४६ ॥

होता । यक्षत् । वनस्पतिम् । अभि । हि । पिष्टतमयेति पिष्टऽतमया । रभिष्ठया । रशनया । अधित । यत्र । अश्विनोः । छागस्य । हविषः । प्रिया । धामानि । यत्र । सरस्वत्याः । मेषस्य । हविषः । प्रिया । धामानि यत्र । इन्द्रस्य । ऋषभस्य । हविषः । प्रिया । धामानि । यत्र । अग्नेः । प्रिया । धामानि । यत्र । सोमस्य । प्रिया । धामानि । यत्र । इन्द्रस्य । सुत्राम्णऽइति सुऽत्राम्णः । प्रिया । धामानि । यत्र । सवितुः । प्रिया । धामानि । यत्र । वरुणस्य । प्रिया । धामानि । यत्र । वनस्पतेः । प्रिया । पाथांसि । यत्र । देवानाम् । आज्यपानामित्याज्यऽपानाम् । प्रिया । धामानि । यत्र । अग्नेः । होतुः । प्रिया । धामानि । तत्र । एतान् । प्रस्तुत्येवेति प्रस्तुत्यऽइव । उपस्तुत्येवेत्युपऽस्तुत्यऽइव । उपावस्रक्षदित्युपऽअवस्रक्षत् । रभीयसऽइवेति रभीयसःऽइव । कृत्वी । करत् । एवम् । देवः । वनस्पतिः । जुषताम् । हविः । होतः । यज ।

॥ ४६ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) (वनस्पतिम्) वटादिकम् (अभि) (हि) किल (पिष्टतमया) (रभिष्ठया) (रशनया) रश्मिना (अधित) दध्यात् (यत्र) (अश्विनोः) सूर्य्याचन्द्रमसोः (छागस्य) छेदकस्य (हविषः) दातुमर्हस्य (प्रिया) कमनीयानि (धामानि) जन्मस्थाननामानि (यत्र) (सरस्वत्याः) नद्याः । सरस्वतीति नदीना० निघं० । १ । १३ । (मेषस्य) अवेः (हविषः) आदातुमर्हस्य (प्रिया) (धामानि) (यत्र) (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्तस्य (ऋषभस्य) प्राप्तुं योग्यस्य (हविषः) दातुं योग्यस्य (प्रिया) (धामानि) (यत्र) (अग्नेः) पावकस्य (प्रिया) (धामानि) (यत्र) (सोमस्य) ओषधिगणस्य (प्रिया) (धामानि) (यत्र) इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्तस्य (सुत्राम्णः) सुष्ठुरक्षकस्य (प्रिया) (धामानि) (यत्र) (सवितुः) प्रेरकस्य (प्रिया) (धामानि) (यत्र) (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (प्रिया) (धामानि) (यत्र) (वनस्पतेः) वटादेः (प्रिया) (पाथांसि) अन्नानि (यत्र) (देवानाम्) पृथिव्यादीनां दिव्यानाम् (आज्यपानाम्) गत्यापालकानाम् (प्रिया) (धामानि) (यत्र) (अग्नेः) विद्यया प्रकाशमानस्य (होतुः) दातुः (प्रिया) (धामानि) (तत्र) (एतान्) (प्रस्तुत्येव) प्रकरणेन संश्लाघ्येव (उपस्तुत्येव) समीपेन स्तुत्येव (उपावस्रक्षत्) उपावसृजेत् (रभीयसइव) अतिशयेनारब्धस्येव (कृत्वी) कृत्वा (करत्) कुर्यात् (एवम्) (देवः) दिव्यगुणः (वनस्पतिः) रश्मिपालकोऽग्निः (जुषताम्) सेवताम् (हविः) संस्कृतमन्नादिकम् (होतः) (यज) ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता पिष्टतमया रभिष्ठया रशनया यत्राऽश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यर्षभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्र सुत्राम्ण इन्द्रस्य प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांसि यत्राऽऽज्यपानां देवानां प्रि-

या धामानि यत्र होतुरग्नेः प्रिया धामानि सन्ति तत्रैतान्प्रस्तुत्येत्रोपस्तुत्येत्रोपाग-
स्त्रद्भीयसइव कृत्वी कार्य्येषूपयुञ्जीतैवं करयथा वनस्पतिर्देवो हविर्जुषतां हि
वनस्पतिमभियत्तदधित तथा त्वं यज ॥ ४६ ॥

भावार्थः–अत्रोपमावाचकलु०—यदि मनुष्या ईश्वरेण सृष्टानां पदा-
र्थानां गुणकर्मस्वभावान् विदित्वैतान् कार्य्यसिद्धये प्रयुञ्जीरँस्तर्हि स्वेष्टानि सु-
खानि लभेरन् ॥ ४६ ॥

पदार्थः–हे (होतः) देने हारे जैसे (होता) लेने हारा सत्पुरुष (पिष्टतम-
या) अतिपिसी हुई (रभिष्ठया) अत्यन्त शीघ्रता से चढ़ने वाली वा जिस का बहुत
प्रकार से आरम्भ होता है उस वस्तु और (रशनया) प्रेम के साथ (यत्र) जहां
(अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के सम्बन्ध से पालित (छागस्य) घास को छेदने
खाने हारे बकरा आदि पशु और (हविषः) देने योग्य पदार्थ सम्बन्धी (प्रिया) मनो-
हर (धामानि) उत्पन्न होने ठहरने की जगह और नाम वा (यत्र) जहां (सरस्वत्याः)
नदी (मेषस्य) मेढ़ा और (हविषः) ग्रहण करने पदार्थ सम्बन्धी (प्रिया) मनोहर
(धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त जन के
(ऋषभस्य) प्राप्त होने और (हविषः) देने योग्य पदार्थ के (प्रिया) प्यारे मन के
हरने वाले (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (अग्नेः) प्रसिद्ध और
बिजुलीरूप अग्नि के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र)
जहां (सोमस्य) ओषधियों के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा
(यत्र) जहां (सुत्राम्णः) भली भांति रक्षा करने वाले (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त उ-
त्तम पुरुष के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (स-
वितुः) सब को प्रेरणा देने हारे पवन के (प्रिया) मनोहर (धामानि) उत्पन्न होने
ठहरने की जगह और नाम वा (यत्र) जहां (वरुणस्य) श्रेष्ठ पदार्थ के

(प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (वनस्पतेः) वट आदि वृक्षों के (प्रिया) उत्तम (पाथांसि) अन्न अर्थात् उन के पीने के जल वा (यत्र) जहां (आज्यपानाम्) गति अर्थात् अपनी कक्षा में घूमने से जीवों के पालने वाले (देवानाम्) पृथिवी आदि दिव्य लोकों का (प्रिया) उत्तम (धामानि) उत्पन्न होना उनके ठहरने की जगह और नाम वा (यत्र) जहां (होतुः) उत्तम सुख देने और (अग्नेः) विद्या से प्रकाशमान होने हारे अग्नि के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम हैं (तत्र) वहां (एतान्) इन उक्त पदार्थों की (प्रस्तुत्येव) प्रकरण से अर्थात् समय२ से चाहनासी कर और (उपस्तुत्येव) उनकी समीप प्रशंसासी करके (उपावस्रक्षत्) उनको गुण कर्म स्वभाव से यथायोग्य कामों में उपार्जन करे अर्थात् उक्त पदार्थों का संचय करे (रभीयसइव) वहुत प्रकार से अतीव आरम्भ के समान (कृत्वी) करके कार्य्यों के उपयोग में लावे (एवम्) और इस प्रकार (करत्) उनका व्यवहार करे वा जैसे (वनस्पतिः) सूर्य आदि लोकों की किरणों की पालना करने हारा और (देवः) दिव्यगुणयुक्त अग्नि (हविः) संस्कार किये अर्थात उत्तमता से वनाये हुए पदार्थ का (जुषताम्) सेवन करे और (हि) निश्चय से (वनस्पतिम्) वट आदि वृक्षों को (अभि, यक्षत्) सब ओर से पहुंचे अर्थात् बिजुली रूप से प्राप्त हो और (अधित) उनका धारण करे वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ४६ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य ईश्वर ने उत्पन्न किये हुए पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जान कर इन को कार्य की सिद्धि के लिये भली भांति युक्त करें तो वे अपने चाहे हुए सुखों को प्राप्त होवें ॥ ४६ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेयऋषिः । अश्व्यादयोदेवताः । पूर्वस्य भुरिगाकृतिरग्नाऽइत्युत्तरस्याऽऽकृतिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

होता यक्षदग्निꣳस्विष्टकृतमयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामा-

न्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड्वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड्वनस्पतेः प्रिया पाथांसि यक्षद्देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्स्वं महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सोऽअध्वरा जातवेदा जुषतां हविर्होतर्यज ॥ ४७ ॥

होता । यक्षत् । अग्निम् । स्विष्टकृतमिति स्विष्टऽकृतम् । अयाट् । अग्निः । अश्विनोः । छागस्य । हविषः । प्रिया । धामानि । अयाट् । सरस्वत्याः । मेषस्य । हविषः । प्रिया । धामानि । अयाट् । इन्द्रस्य । ऋषभस्य । हविषः । प्रिया । धामानि । अयाट् । अग्नेः । प्रिया । धामानि । अयाट् । अग्नेः । प्रिया । धामानि । अयाट् । सोमस्य । प्रिया । धामानि । अयाट् ।

इन्द्रस्य । सुत्राम्णऽइति सुऽत्राम्णः । प्रिया । धामानि । अयाट् । सवितुः । प्रिया । धामानि ॥ अयाट् । वरुणस्य । प्रिया । धामानि । अयाट् । वनस्पतेः । प्रिया । पाथांसि । अयाट् । देवानाम् । आज्यपानामित्याज्यऽपानाम् । प्रिया । धामानि । यक्षत् । अग्नेः । होतुः । प्रिया । धामानि । यक्षत् । स्वम् । महिमानम् । आ । यजताम् । एज्याऽइ-स्याऽइज्याः । इषः । कृणोतु । सः । अध्वरा । जातवेदाऽइति जातऽवेदाः । जुषताम् । हविः । होतः । यज ॥ ४७ ॥

पदार्थः--(होता) आदाता (यक्षत्) संगच्छेत (अग्निम्) पावकम् (स्विष्टकृतम्) स्विष्टेन कृतं स्विष्टकृतम् (अयाट्) यजेत् (अग्निः) पावकः (अश्विनोः) वायुविद्युतोः (छागस्य) (हविषः) आदातुमर्हस्य (प्रिया) (धामानि) (अयाट्) यजेत् (सरस्वत्याः) वाण्याः (मेषस्य) (हविषः) आदातुमर्हस्य (प्रिया) (धामानि) (अयाट्) यजेत् (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्तस्य (ऋषभस्य) उत्कृष्टगुणकर्मस्वभावस्य राज्ञः (हविषः) ग्रहीतुमर्हस्य (प्रिया) (धामानि) (अयाट्) (अग्नेः) विद्युतः (प्रिया) (धामानि) (अयाट्) (सोमस्य) ऐश्वर्यस्य (प्रिया) (धामानि) (अयाट्)(इन्द्रस्य) सेनेशस्य (सुत्राम्णः) सुष्ठुरक्षकस्य (प्रिया) (धामानि) (अयाट्) (सवितुः) (प्रिया) (धामानि) (अयाट्) (वरुणस्य) सर्वोत्कृष्टस्य जलस्य वा (प्रिया) (धामानि) (अयाट्) (वनस्पतेः) वटादेः (प्रिया) तर्पकाणि (पाथांसि) फलादीनि (अयाट्) (देवानाम्) विदुषाम् (आज्यपानाम्) ज्ञातव्यरक्षकाणां रसानां वा (प्रिया) (धामानि) (यक्ष-

त्) यजेत् (अग्नेः) प्रकाशकस्य सूर्यस्य (होतुः) आदातुः (प्रिया) (धामानि) (यक्षत्) (स्वम्) स्वकीयम् (महिमानम्) महत्त्वम् (आ) समन्तात् (यजताम्) गृह्णातु (एज्याः) समन्तात् एष्टुं सङ्गन्तुं योग्याः क्रिया (इषः) इच्छाः (कृणोतु) करोतु (सः) (अध्वरा) अहिंसनीयान् यज्ञान् (जातवेदाः) प्राप्तप्रज्ञः (जुषताम्) सेवताम् (हविः) संगन्तव्यं वस्तु (होतः) (यज) ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता स्विष्टकृतमग्निं यक्षदग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्यर्षभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाट् सुत्राम्ण इन्द्रस्य प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथांस्ययाडाज्यपानां देवानां प्रिया धामानि यक्षत् होतुरग्नेः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतां यथा जातवेदा य एज्या इषः कृणोतु सोऽध्वरा हविश्च जुषतां तथा त्वं यज ॥ ४७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये स्वेष्टसाधकाग्न्यादीन्सृष्टिस्थान् पदार्थान् सम्यग्विज्ञाय प्रियाणि सुखान्याप्नुवन्ति ते स्वं महिमानं प्रथन्ते ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जैसे (होता) लेने हारा (स्विष्टकृतम्) भली भांति चाहे हुए पदार्थ से प्रसिद्ध किये (अग्निम्) आग्नि को (यक्षत्) प्राप्त और (अयाट्) उस की प्रशंसा करे वा जैसे (अग्निः) प्रसिद्ध आग (अश्विनोः) पवन बिजुली (छागस्य) बकराआदि पशु (हविषः) और

लेने योग्य पदार्थ के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नामको (अयाट्) प्राप्त हो वा (सरस्वत्याः) वाणी (मेषस्य) सींचने वा दूसरे के जीतने की इच्छा करने वाले प्राणी (हविषः) और ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (प्रिया) प्यारे मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नामकी (अयाट्) प्रशंसा करे वा (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य-युक्त (ऋषभस्य) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा और (हविषः) ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नामकी (अयाट्) प्रशंसा करे वा (अग्नेः) बिजुली रूप अग्नि के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (सोमस्य) ऐश्वर्य्य के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (सुत्राम्णः) भली भांति रक्षा करने वाले (इन्द्रस्य) सेनापति के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नामकी (अयाट्) प्रशंसा करे वा (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने हारे उत्तम पदार्थज्ञान के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नामकी (अयाट्) प्रशंसा करे वा (वरुणस्य) सब से उत्तम जन और जल के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नामकी (अयाट्) प्रशंसा करे वा (वनस्पतेः) वट आदि वृक्षों के (प्रिया) तृप्ति कराने वाले (पाथांसि) फलों को (अयाट्) प्राप्त हो वा (आज्यपानाम्) जानने योग्य पदार्थ की रक्षा करने और रस पीने वाले (देवानाम्) विद्वानों के (प्रिया) प्यारे मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम का (यक्षत्) मिलाना वा सराहना करे वा (होतुः) जलादिक ग्रहण करने और (अग्नेः) प्रकाश करने वाले सूर्य्य के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नामकी (यक्षत्) प्रशंसा करे (स्वम्) अपने (महिमानम्) बड़प्पन का (आ, यजताम्) ग्रहण करे वा जैसे (जातवेदाः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुआ जो पुरुष (एज्याः) अच्छे प्रकार सेवा योग्य उत्तम क्रियाओं और (इषः) चाहनाओं को (कृणोतु) करे (सः) वह (अध्वरा) न छोड़ने न विनाश करने योग्य यज्ञों का और (हविः) संग करने योग्य पदार्थ का (जुषताम्) सेवन करे वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥४७॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-जो मनुष्य अपने चाहे हुए को सिद्ध करने वाले अग्नि आदि संसारस्थ पदार्थों को अच्छे प्रकार जानकर प्यारे मन से चाहे हुए सुखों को प्राप्त होते हैं वे अपने बड़प्पन का विस्तार करते हैं ॥ ४७ ॥

देवं बर्हिरित्यस्यस्वस्त्यात्रेय ऋषिः । सरस्वत्यादयो देवताः ।

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ विद्वांसः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

अब विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्तें इस वि० ॥

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अश्विना ।
तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४८ ॥

देवम् । बर्हिः । सरस्वती । सुदेवमिति सुऽदेवम् । इन्द्रे । अश्विना । तेजः । न । चक्षुः । अक्ष्योः । बर्हिषा । दधुः । इन्द्रियम् । वसुवनऽइति वसुऽवने । वसुऽधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(देवम्) दिव्यम् (बर्हिः) अन्तरिक्षम् (सरस्वती) प्रशस्तविज्ञानयुक्ता स्त्री (सुदेवम्) शोभनं विद्वांसम् (इन्द्रे) परमैश्वर्ये (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (तेजः) (न) इव (चक्षुः) नेत्रम् (अक्ष्योः) अक्ष्णोः (बर्हिषा) अन्तरिक्षेण (दधुः) (इन्द्रियम्) धनम् (वसुवने) धनप्रापणाय (वसुधेयस्य) वसु धेयं यस्मिंस्तस्य (व्यन्तु) प्राप्नुवन्तु (यज) यजते ॥४८॥

अन्वयः--हे विद्वन् यथा सरस्वतीन्द्रे देवं सुदेवं बर्हिरश्विना चक्षुस्तेजो न यज यथा च विद्वांसो वसुधेयस्य वसुवनेऽक्ष्योर्बर्हिषेन्द्रियं दधुर्व्यन्तु च तथैतत् त्वं धेहि प्राप्नुहि च ॥ ४८ ॥

भावार्थः--अत्रोपमावाचकलु०--हे मनुष्या यथा विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी स्वार्थं हृद्यं पतिं प्राप्यानन्दति तथा विद्यासृष्टिपदार्थबोधं प्राप्य भवाद्भिरप्यानन्दितव्यम् ॥ ४८

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री (इन्द्रे) परमैश्वर्य के निमित्त (देवम्) दिव्य (सुदेवम्) सुन्दर विद्वान् पति को (बर्हिः) अन्तरिक्ष (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा (चक्षुः) आंख के (तेजः) तेज के (न) समान (यज) प्रशंसा वा संगति करती है और जैसे विद्वान् जन (वसुधेयस्य) जिस में धन धारण करने योग्य हो उस व्यवहार सम्बन्धी (वसुवने) धन की प्राप्ति कराने के लिये (अक्ष्योः) आंखों के (बर्हिषा) अन्तरिक्ष अवकाश से अर्थात् दृष्टि से देख के (इन्द्रियम्) उक्त धन को (दधुः) धारण करते और (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं वैसे इसको तूं धारण कर और प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०-हे मनुष्यो जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या अपने लिये मनोहर पति को पा कर आनन्द करती है वैसे विद्या और संसार के पदार्थ का बोध पाकर तुम लोगों को भी आनन्दित होना चाहिये ॥ ४८ ॥

देवीर्द्वार इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनर्विद्वदुपदेशः कीदृशो भवतीत्याह ॥
फिर विद्वानों का उपदेश कैसा होता है यह वि० ॥

देवीर्द्वारो॑ऽअ॒श्विना॑ भि॒षजेन्द्रे॒ सर॑स्वती । प्रा॒णं न वी॒र्य्यं॑ न॒सि द्वारो॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ४८ ॥

देवीः । द्वारः । अश्विना । भिषजा । इन्द्रे । सरस्वती ।

प्राणम् । न । वीर्य्यम् । नसि । द्वारः । दधुः । इन्द्रियम् । वसुव-

नइति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(देवीः) देदीप्यमानाः (द्वारः) प्रवेशनिर्गमार्थानि द्वाराणि (अश्विना) वायुसूर्य्यौ (भिषजा) वैद्यौ (इन्द्रे) ऐश्वर्य्ये (सरस्वती) विज्ञानवती स्त्री (प्राणम्) जीवनहेतुम् (न) इव (वीर्य्यम्) (नसि) नासिकायाम् (द्वारः) (दधुः) (इन्द्रियम्) धनम् (वसुवने) धनेसंवनाय (वसुधेयस्य) धनकोशस्य (व्यन्तु) (यज) ॥ ४९ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथाश्विना सरस्वती भिषजेन्द्रे देवीर्द्वारः प्राप्नुवन्तो नसि प्राणं न वीर्य्यं द्वारश्च दधुर्वसुवने वसुधेयस्यैन्द्रियं विद्वांसो व्यन्तु तथा त्वं यज ॥ ४९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यथा सूर्य्याचन्द्रप्रकाशो द्वारेभ्यो गृहं प्रविश्यान्तः प्रकाशते तथा विद्वदुपदेशः श्रोत्रान्प्रविश्य स्वान्ते प्रकाशते । एवं ये विद्यया प्रयतन्ते ते श्रीमन्तो जायन्ते ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (अश्विना) पवन और सूर्य्य वा (सरस्वती) विशेष ज्ञान वाली स्त्री और (भिषजा) वैद्य (इन्द्रे) ऐश्वर्य के निमित्त (देवीः) अतीव दीपते अर्थात् चकमकाते हुए (द्वारः) पैठने और निकलने के अर्थ बने हुए द्वारों को प्राप्त होते हुए प्राणियों की (नसि) नासिका में (प्राणम्) जो श्वास आती उस के (न) समान (वीर्य्यम्) बल और (द्वारः) द्वारों अर्थात् शरीर के प्रसिद्ध

नव छिद्रों को (दधुः) धारण करें (वसुवने) वा धन का सेवन करने के लिये (वसुधेयस्य) धनकोश के (इन्द्रियम्) धन को विद्वान् जन (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ४९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा का प्रकाश द्वारों से घर को पैठ घर के भीतर प्रकाश करता है वैसे विद्वानों का उपदेश कानों में प्रविष्ट होकर भीतर मन में प्रकाश करता है । ऐसे जो विद्या के साथ अच्छा यत्न करते हैं वे धनवान् होते हैं ॥ ४९ ॥

देवीउषासावित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें यह वि० ॥

दे॒वीऽउ॒षासा॑व॒श्विना॑ सु॒त्रामेन्द्रे॒ सर॑स्वती । बल॒ न वाच॑मा॒स्यऽउ॒षाभ्या॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५० ॥

दे॒वीऽइति॑ दे॒वी । उ॒षासौ॑ । उ॒षसा॒वित्यु॒षसौ॑ । अ॒श्विना॑ । सु॒त्रामेति॑ सु॒ऽत्रामा॑ । इन्द्रे॑ । सर॑स्वती । बल॑म् । न । वाच॑म् । आ॒स्ये॑ । उ॒षाभ्या॑म् । द॒धुः॒ । इ॒न्द्रि॒यम् । व॒सु॒वन॒ऽइति॑ व॒सु॒ऽवने॑ । व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य । व्य॒न्तु॒ । यज॑ ॥ ५० ॥

पदार्थः—(देवीः) देदीप्यमाने (उषासौ) सायंप्रातः सन्धिवेले । अत्रान्येषामपीतिउपधादीर्घः (अश्विना) सूर्याचन्द्रमसौ (सुत्रामा) सुष्ठुरक्षकौ (इन्द्रे) परमैश्वर्य्ये (सरस्वती) विज्ञाननिमित्ता स्त्री (बलम्) (न) इव (वा-

चम्) (आस्ये) मुखे (उषाभ्याम्) उभयवेलाभ्याम्। अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति सलोपः (दधुः) दध्युः (इन्द्रियम्) धनम् (वसुवने) धनसेविने (वसुधेयस्य) धनाधारस्य (व्यन्तु) (यज) ॥ ५० ॥

अन्वयः--हे विद्वन् यथा देवी उषासौ सुत्रामा सरस्वत्यश्विना वसुवने वसुधेयस्येन्द्रे बलं नास्ये वाचमुषाभ्यामिन्द्रियं च दधुः सर्वान् व्यन्तु च तथा त्वं यज ॥ ५० ॥

भावार्थः--अत्र वाचकलु०--ये पुरुषार्थिनो मनुष्याः सूर्यचन्द्रसन्ध्यावन्नियमेन प्रयतन्ते सन्धिवेलायां शयनाऽलस्यादिकं विहायेश्वरस्य ध्यानं कुर्वन्ति ते पुष्कलां श्रियं प्राप्नुवन्ति ॥ ५० ॥

पदार्थः हे विद्वान् जैसे (देवीः) निरन्तर प्रकाश को प्राप्त (उषासौ) सायंकाल और प्रातः काल की संधि वेला वा (सुत्रामा) भली भांति रक्षा करने वाले (सरस्वती) विशेष ज्ञान की हेतु स्त्री (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (वसुवने) धन की सेवा करने वाले के लिये (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा जाय उस व्यवहार सम्बन्धी (इन्द्रे) उत्तम ऐश्वर्य में (न) जैसे (बलम्) बल को वैसे (आस्ये) मुख में (वाचम्) वाणी को वा (उषाभ्याम्) सायंकाल और प्रातःकाल की वेला से (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें और सब को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ५० ॥

भावार्थः--इस मंत्र में वाचकलु०--जो पुरुषार्थी मनुष्य सूर्य चन्द्रमा सायंकाल और प्रातःकाल की वेला के समान नियम के साथ उत्तम २ यत्न करते हैं तथा सायंकाल और प्रातःकाल की वेला में सोने और आलस्य आदि को छोड़ ईश्वर का ध्यान करते हैं वे बहुत धन को पाते हैं ॥ ५० ॥

देवी जोष्ट्री इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्याः कीदृशा भवन्तीत्याह ॥

फिर मनुष्य कैसे होते हैं यह वि० ॥

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्। श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५१ ॥

देवीऽइति देवी । जोष्ट्रीऽइति जोष्ट्री । सरस्वती । अश्विना । इन्द्रम् । अवर्धयन् । श्रोत्रम् । न । कर्णयोः । यशः । जोष्ट्रीभ्याम् । दधुः । इन्द्रियम् । वसुवनऽइति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥ ५१ ॥

पदार्थः— (देवी) प्रकाशप्रदात्री (जोष्ट्री) सेवनीया (सरस्वती) विज्ञाननिमित्ता (अश्विना) वायुविद्युतौ (इन्द्रम्) सूर्यम् (अवर्धयन्) वर्धयन्ति (श्रोत्रम्) येन शृणोति तत् (न) इव (कर्णयोः) श्रोत्रयोः (यशः) कीर्तिम् (जोष्ट्रीभ्याम्) सेविकाभ्यां वेलाभ्याम् (दधुः) दधाति (इन्द्रियम्) धनम् (वसुवने) धनसविने (वसुधेयस्य) धनकोशस्य (व्यन्तु) (यज) ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् मनुष्या वा जोष्ट्रीभ्यां कर्णयोर्यशः श्रोत्रं न दधुर्वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं व्यन्तु तथा त्वं यज ॥ ५१ ॥

भावार्थः— अत्रोपमावाचकलु०—ये सूर्यकारणानि विदन्ति ते यशस्विनो भूत्वा श्रीमन्तो भवन्ति ॥ ५१ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् जैसे (देवी) प्रकाश देने वाली (जोष्ट्री) सेवने योग्य (सरस्वती) विशेष ज्ञान की निमित्त सायंकाल और प्रातःकाल की वेला तथा (अश्विना) पवन और बिजुलीरूप अग्नि (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयन्) बढ़ाते अर्थात् उन्नति देते हैं वा मनुष्य (जोष्ट्रीभ्याम्) संसार को सेवन करती हुई उक्त प्रातःकाल और सायंकाल की वेलाओं से (कर्णयोः) कानों में (यशः) कीर्ति को (श्रोत्रम्) जिस से वचन को सुनता है उस कान के ही (न) समान (दधुः) धारण करते हैं वा (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा जाय उस कोश सम्बन्धी (वसुवने) धन को सेवन करने वाले के लिये (इन्द्रियम्) धन को (व्यन्तु) विशेषता से प्राप्त होते हैं वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ५१ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो सूर्य के कारणों को जानते हैं वे यशस्वी होकर धनवान् कान्तिमान् शोभायमान होते हैं ॥ ५१ ॥

देवी इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

दे॒वी ऊ॒र्जाहु॑ती दु॒घे सु॒दुघे॒न्द्रे सर॑स्वत्य॒श्विना॑ भि॒षजा॑वतः । शु॒क्रं न ज्योति॒स्तन॑यो॒राहु॑ती धत्त इन्द्रि॒यम् व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज ॥ ५२ ॥

देवी इति॑ दे॒वी । ऊर्जाहु॑ती॒ इत्यू॒र्जाऽआहु॑ती । दु॒घे इति॑ दु॒घे । सु॒दुघेति॑ सु॒ऽदुघा॑ । इन्द्रे॑ । सर॑स्वती । अ॒श्विना॑ ।

भिषजा । अवतः । शुक्रम् । ज्योतिः । स्तनयोः । आहुतीइत्याऽहुती । धत्त । इन्द्रियम् । वसुवनइति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥ ५२ ॥

पदार्थः— (देवी) कमनीये (ऊर्जाहुती) अन्नस्याहुती (दुघे) प्रपूरके प्रातःसायंवेले (सुदुघा) प्रपूरकौ (इन्द्रे) परमैश्वर्ये (सरस्वती) विशेषज्ञानवती (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (भिषजा) सद्वैद्यौ (अवतः) रक्षतः (शुक्रम्) शुद्धं जलम् (न) इव (ज्योतिः) प्रकाशम् (स्तनयोः) (आहुती आदातव्ये (धत्त) धरत (इन्द्रियम्) धनम् (वसुवने) धनसेविने (वसुधेयस्य) धनाधारस्य संसारस्य मध्ये (व्यन्तु) (यज) ॥ ५२ ॥

अन्वयः— हे विद्वांसो यूयं यथा देवी दुघे इन्द्र ऊर्जाहुती सरस्वती सुदुघा भिषजाऽश्विना च शुक्रं न ज्योतिरवतस्तथा स्तनयोराहुती धत्त वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं धत्त येनैतानि सर्वे व्यन्तु हे गुणग्राहिन् तथा त्वं यज ॥ ५२ ॥

भावार्थः— अत्रोपमावाचकलु०—यथा सद्वैद्याः स्वानि परेषां च शरीराणि रक्षयित्वा वर्द्धयन्ति तथा सैन्यैन रक्षयित्वा वर्धनीयं येनाऽस्मिन्संसारेऽतुलं सुखं भूयात् ॥ ५२ ॥

पदार्थः— हे विद्वानो तुमलोग जैसे (देवी) मनोहर (दुघे) उत्तमता पूरण करने वाली प्रातः सायं वेला वा (इन्द्रे) परम ऐश्वर्य के निमित्त (ऊर्ज्जाहुती) अन्न की आहुती (सरस्वती) विशेषज्ञान कराने हारी स्त्री वा (सुदुघा) सुख पूरण करने हारे (भिषजा) अच्छे वैद्य (अश्विना) वा पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् (शुक्रम्) शुद्ध जल के (न) समान (ज्योतिः) प्रकाश की (अवतः) रक्षा करते हैं वैसे (स्तनयोः) शरीर में स्तनों की जो (आहुती) ग्रहण करने योग्य क्रिया हैं

उन को (धत्त) धारण करो और (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा हुआ उस संसार के बीच (वसुवने) धन के सेवन करने वाले के लिये (इन्द्रियम्) धन को धारण करो जिस से उन उक्त पदार्थों को साधारण सब मनुष्य (व्यन्तु) प्राप्त हों हे गुणों के ग्रहण करने हारे जन वैसे तू सब व्यवहारों की (यज) संगति किया कर ॥ ५२ ॥

भावार्थः— इसमंत्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे अच्छे वैद्य अपने और दूसरों के शरीरों की रक्षा करके वृद्धि करते कराते हैं वैसे सब को चाहिये कि धन की रक्षा करके उस की वृद्धि करें जिस से इस संसार में अतुल सुख हो ॥ ५२ ॥

देवा देवानामित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । अतिजगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

दे॒वा दे॒वानां॑ भि॒षजा॒ होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑ । व॒ष॒ट्का॒रैः सर॑स्वती॒ त्विषिं॒ न हृद॑ये म॒तिꣳ होतृ॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५३ ॥

दे॒वा । दे॒वाना॑म् । भि॒षजा॑ । होता॑रा । इन्द्र॑म् । अ॒श्विना॑ । व॒ष॒ट्का॒रैरिति॑ वषट्ऽका॒रैः । सर॑स्वती । त्विषि॑म् । न । हृद॑ये । म॒तिम् । होतृ॑भ्या॒मिति॒ होतृ॑ऽभ्याम् । द॒धुः । इ॒न्द्रि॒यम् । व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑ । व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य । व्य॒न्तु॒ । यज॑ ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(देवा) वैद्यविद्यया प्रकाशमानौ (देवानाम्) सुखदातॄणां विदुषां (भिषजा) चिकित्सकौ (होतारौ) सुखस्य दातारौ (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (अश्विना) विद्याव्यापिनौ (वषट्कारैः) श्रेष्ठैः कर्मभिः (सरस्वती) प्रशस्तविद्यासुशिक्षायुक्ता वाङ्मती (त्विषिम्) प्रकाशम् (न) इव (हृदये) अन्तःकरणे (मतिम्) (होतृभ्याम्) दातृभ्याम् (दधुः) (इन्द्रियम्) शुद्धं मनः (वसुवने) धनसंविभाजकाय (वसुधेयस्य) कोशस्य (व्यन्तु) (यज) ॥ ५३ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो भवन्तो यथा देवानां होतारौ देवौ भिषजाऽश्विना वषट्कारैरिन्द्रं दध्यातां सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिं दध्यात्तथा होतृभ्यां सहैता वसुधेयस्य वसुवनं इन्द्रियं दधुर्व्यन्तु च हे मनुष्य तथा त्वमपि यज ॥ ५३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यथा विद्वत्सु विद्वांसौ सद्वैद्यौ सत्क्रियया सर्वान्नरोगीकृत्य श्रीमतः सम्पादयतो यथा वा विदुषी वाग्विद्यार्थिनां स्वान्ते प्रज्ञामुन्नयति तथाऽन्यैर्विद्याधनेन संचयनीयं ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो आप लोग जैसे (देवानाम्) सुख देने हारे विद्वानों के बीच (होतारौ) शरीर के सुख देने वाले (देवा) वैद्य विद्या से प्रकाशमान (भिषजा) वैद्यजन (अश्विना) विद्या में रमते हुए (वषट्कारैः) श्रेष्ठ कामों से (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य को धारण करें (सरस्वती) प्रशंसित विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त वाणी वाली स्त्री (त्विषिम्) प्रकाश के (न) समान (हृदये) अन्तःकरण में (मतिम्) बुद्धि को धारण करे वैसे (होतृभ्याम्) देने वालों के साथ उक्त सद्वैद्य और वाणी युक्त स्त्री को या (वसुधेयस्य) कोश के (वसुवने) धन को बांटने वाले के लिये (इन्द्रियम्) शुद्ध मन को (दधुः) धारण करें और (व्यन्तु) प्राप्त हों हे जन वैसे तू भी (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ५३ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे विद्वानों में विद्वान् अच्छे वैद्य श्रेष्ठ क्रिया से सब को नीरोग कर कान्तिमान् धनवान् करते हैं वा जैसे विद्वानों की वाणी विद्यार्थियों के मन में उत्तम ज्ञान की उन्नति करती है वैसे साधारण मनुष्यों को विद्या और धन इकट्ठे करने चाहियें ॥ ५३ ॥

देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो-
देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनर्जननीजनकाः स्वसन्तानान्कीदृशान् कुर्युरित्याह ॥

फिर माता पिता अपने सन्तानों को कैसे करें इस वि० ॥

दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीर॒श्विनेडा सर॑स्वती । शूषं॒ न मध्ये॒ नाभ्या॒मि- न्द्रा॑य दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५४ ॥

दे॒वीः । ति॒स्रः । ति॒स्रः । दे॒वीः । अ॒श्विना॑ । इडा॑ । सर॑स्वती । शूष॑म् । न । मध्ये॑ । नाभ्या॑म् । इन्द्रा॑य । द॒धुः । इ॒न्द्रि॒यम् । व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑ । व॒सु॒धेय॒स्येति॑ व॒सु॒ऽधेय॑स्य । व्य॒न्तु॒ । यज॑ ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(देवीः) देदीप्यमानाः (तिस्रः) त्रित्वसंख्याकाः (तिस्रः) (देवीः) विद्यया प्रकाशिताः (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (इडा) स्ताविका (सरस्वती) प्रशस्तविद्या युक्ता (शूषम्) बलं सुखं वा (न) इव (मध्ये) (नाभ्याम्) तुन्दे

(इन्द्राय) जीवाय (दधुः) दध्युः (इन्द्रियम्) अन्तःकरणम् (वसुवने) धनेच्छुकाय (वसुधेयस्य) धेयानि वसूनि यस्मिंस्तस्य जगतः (व्यन्तु) (यज) ॥ ५४ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् यथा तिस्रोदेवीर्वसुधेयस्य मध्ये वसुवन इन्द्राय तिस्रो देवीर्दधुर्यथाश्विनेडा सरस्वती च नाभ्यां शूषन्नेन्द्रियं दध्युर्यथैत एतानि व्यन्तु तथा त्वं यज ॥ ५४ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—यथा जनन्यध्यापिकोपदेष्ट्री च तिस्रो विदुष्यः कुमारीर्विदुषीः कृत्वा सुखयन्ति तथा जनकाध्यापकोपदेष्टारः कुमारान् विद्यार्थिनो विपश्चितः कृत्वा सुसभ्यान् कुर्युः ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी जैसे (तिस्रः) माता पढ़ाने और उपदेश करने वाली ये तीन (देवीः) निरन्तर विद्या से दीपती हुई स्त्री (वसुधेयस्य) जिस में धन धरने योग्य हैं उस संसार के (मध्ये) बीच (वसुवने) उत्तम धन चाहने वाले (इन्द्राय) जीव के लिये (तिस्रः) उत्तम मध्यम निकृष्ट तीन (देवीः) विद्या से प्रकाश को प्राप्त हुई कन्याओं को (दधुः) धारण करें वा (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने हारे मनुष्य (इडा) स्तुति करने हारी स्त्री और (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री (नाभ्याम्) तोंदी में (शूषम्) बल वा सुख के (न) समान (इन्द्रियम्) मन को धारण करें वा जैसे ये सब उक्त पदार्थों को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ५४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे माता पढ़ाने और उपदेश करने हारी ये तीन पण्डिता स्त्री कुमारियों को पण्डिता कर उनको सुखी करती हैं वैसे पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वान् कुमार विद्यार्थियों को विद्वान् कर उन्हें अच्छे सभ्य करें ॥ ५४ ॥

देव इन्द्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
स्वराट् शक्करी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

दे॒व इन्द्रो॒ नरा॒शꣳस॑स्त्रिव॒रू॒थः सर॑स्वत्या॒श्विभ्या॑मीयते॒ रथः॑ । रेतो॒ न रू॒पम॒मृतं॑ ज॒नित्र॒मिन्द्रा॑य॒ त्वष्टा॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॑ वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५५ ॥

देवः । इन्द्रः । नराशꣳसः । त्रिवरूथ इति त्रिऽवरूथः । सरस्वत्या । अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम् । ईयते । रथः । रेतः । न । रूपम् । अमृतम् । जनित्रम् । इन्द्राय । त्वष्टा । दधत् । इन्द्रियाणि । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(देवः) विद्वान् (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (नराशंसः) ये नराना शंसन्ति तान (त्रिवरूथः) त्रिषु भूम्यधोन्तरिक्षेषु वरूथानि गृहाणि यस्य सः (सरस्वत्या) सुशिक्षितया वाचा (अश्विभ्याम्) अग्निवायुभ्याम् (ईयते) गम्यते (रथः) यानम् (रेतः) वीर्यम् (न) इव (रूपम्) आकृतिम् (अमृतम्) जलम् (जनित्रम्) जनकम् (इन्द्राय) जीवाय (त्वष्टा) दुःखविच्छेदकः (दधत्) दध्यात् (इन्द्रियाणि) श्रोत्रादीनि

(वसुवने) धनसेविने (वसुधेयस्य) संसारस्य (व्यन्तु) (यज ॥ ५५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा त्रिवरूथ इन्द्रो देवः सरस्वत्या नराशंसोऽग्निभ्यां रथ इयत इव सन्मार्गे गमयति यथा वा जनित्रममृतं रेतो न रूपं वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रायेन्द्रियाणि त्वष्टा दधदेतान्येतानि व्यन्तु तथा त्वं यज ॥५५॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—हे मनुष्या यदि यूयं धर्म्येण व्यवहारेण श्रियं संचिनुयात तर्हि जलाग्निभ्यां चालितो रथ इव सद्यः सर्वाणि सुखानि माप्नुयात ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (त्रिवरूथः) तीन अर्थात् भूमि भूमि के नीचे और अन्तरिक्ष में जिस के घर हैं वह (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् (देवः) विद्वान् (सरस्वत्या) अच्छी शिक्षा की हुई वाणी से (नराशंसः) जो मनुष्यों को भलिभांति शिक्षा देते हैं उन को (अग्निभ्याम्) आग और पवन से जैसे (रथः) रमणीय रथ (ईयते) पहुंचाया जाता वैसे अच्छे मार्ग में पहुंचाता है वा जैसे (त्वष्टा) दुःख का विनाश करने हारा (जनित्रम्) उत्तम सुख उत्पन्न करने हारे (अमृतम्) जल और (रेतः) वीर्य्य के (न) समान (रूपम्) रूप को तथा (वसुधेयस्य) संसार के बीच (वसुवने) धन की सेवा करने वाले (इन्द्राय) जीव के लिये (इन्द्रियाणि) कान आंख आदि इन्द्रियों को (दधत्) धारण करे वा जैसे उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ५५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो यदि तुम लोग धर्मसम्बन्धी व्यवहार से धन को इकट्ठा करो तो जल और आग से चलाये हुए रथ के समान शीघ्र सब सुखों को प्राप्त होओ ॥ ५५ ॥

देवो देवैरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्याःकथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥
फिर मनुष्य कैसे वर्त्ते यह वि० ॥

दे॒वो दे॒वैर्वन॒स्पति॒र्हिर॑ण्यवर्णोऽअ॒श्विभ्या॒ᳬ सर॑स्वत्या सुपिप्प॒ल इ॒न्द्राय पच्यते॒ मधु॑ । ओजो॒ न जू॒तिर्ऋ॑ष॒भो न भाम॑ वन॒स्पति॑र्नो॒ दध॑दि॒न्द्रि॒याणि वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५६ ॥

दे॒वः । दे॒वैः । व॒न॒स्पति॑ः । हिर॑ण्यवर्ण॒ऽइति॒ हिर॑ण्यऽवर्णः । अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्याम् । सर॑स्वत्या । सु॒पि॒प्प॒लइतिसु॒ऽपि॒प्प॒लः । इन्द्रा॑य । प॒च्य॒ते॒ । मधु॑ । ओज॑ः । न । जू॒तिः । ऋ॒ष॒भः । न । भाम॑म् । व॒न॒स्पति॑ः । नः॒ । दध॑त् । इ॒न्द्रि॒याणि॑ । व॒सु॒वन॒इति॑ व॒सु॒ऽवने॑ । व॒सु॒धेय॒स्येति॑ व॒सु॒ऽधेय॑स्य । व्य॒न्तु॒ । यज॑ ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(देवः) द्योतमानः (देवैः) प्रकाशकैः (वनस्पतिः) रश्मिपालकः (हिरण्यवर्णः) तेजःस्वरूपः (अश्विभ्याम्) जलाग्निभ्याम् (सरस्वत्या) गतिमत्या नीत्या (सुपिप्पलः) शोभनानि पिप्पलानि फलानि यस्य सः (इन्द्राय) जीवाय (पच्यते) (मधु) मधुरं फलम् (ओजः) जलम् (न) इव (जूतिः) वेगः

(ऋषभः) बलिष्ठः (न) इव (भामम्) क्रोधम् (वनस्पतिः) वटादिः (नः) अस्मभ्यम् (दधत्) दधाति (इन्द्रियाणि) धनानि (वसुवने) धनेच्छुकाय (वसुधेयस्य) सर्वपदार्थाधारस्य संसारस्य (व्यन्तु) (यज) ॥ ५६ ॥

अन्वयः- हे विद्वन् यथाऽश्विभ्यां देवैः सह देवो हिरण्यपर्णो वनस्पतिः सरस्वत्या सुपिप्पल इन्द्राय मध्विव पच्यते जूतिरोजो न भाममृषभो न वनस्पतिर्वसुधेयस्य नो वसुवन इन्द्रियाणि दधद्यथैतानेतानि व्यन्तु तथा त्वं यज ॥ ५६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०--हे मनुष्या भवन्तो यथा सूर्यो वृष्ट्या नदी स्वजलेन च वृक्षान् संरक्ष्य मधुराणि फलानि जनयति तथा सर्वार्थं सर्वं वस्तु जनयन्तु यथा च धार्मिको राजा दुष्टाय क्रुध्यति तथा दुष्टान् प्रत्यप्रीतिं कृत्वा श्रेष्ठेषु प्रेम धरन्तु ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (अश्विभ्याम्) जल और बिजुली रूप आग से (देवैः) प्रकाश करनेवाले गुणोंके साथ (देवः) प्रकाशमान् (हिरण्यपर्णः) तेजस्वरूप (वनस्पतिः) किरणों की रक्षा करने वाला सूर्यलोक वा (सरस्वत्या) बढ़ती हुई नीति के साथ (सुपिप्पलः) सुन्दर फलों वाला पीपल आदि वृक्ष (इन्द्राय) प्राणी के लिये (मधु) मीठा फल जैसे (पच्यते) पके वैसे पकता और सिद्ध होता वा (जूतिः) वेग (ओजः) जल को (न) जैसे (भामम्) तथा क्रोध को (ऋषभः) बलवान् प्राणी के (न) समान (वनस्पतिः) वट वृक्ष आदि (वसुधेयस्य) सब के आधार संसार के बीच (नः) हम लोगों के लिये (वसुवने) वा धन चाहने वाले के लिये (इन्द्रियाणि) धनों को (दधत्) धारण कर रहा है जैसे इन सब उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) व्याप्त हों वैसे तू सब व्यवहारों की (यज) संगति किया कर ॥ ५६ ॥

भावार्थः-- इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो तुम जैसे सूर्य वर्षा से और नदी अपने जल से वृक्षों की भली भांति रक्षा कर सब ओर से मी-

ठे २ फलों को उत्पन्न कराती है वैसे सब के अर्थ सब वस्तु उत्पन्न करो और जैसे धार्मिक राजा दुष्ट पर क्रोध करता वैसे दुष्टों के प्रति अप्रीति कर अच्छे उत्तम जनों में प्रेम को धारण करो ॥ ५६ ॥

देवं बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
अतिशक्वरीछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः । ईशायै मन्युꣳ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५७ ॥

देवम् । बर्हिः । वारितीनाम् । अध्वरे । स्तीर्णम् । अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम् । ऊर्णम्रदा इत्यूर्णऽम्रदाः । सरस्वत्या । स्योनम् । इन्द्र । ते । सदः । ईशायै । मन्युम् । राजानम् । बर्हिषा । दधुः । इन्द्रियम् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥ ५७ ॥

पदार्थः-(देवम्) दिव्यम् (बर्हिः) अन्तरिक्षम् (वारितीनाम्) वारिणि जले इतिर्गतिर्येषां तेषाम् (अध्वरे) अहिंसनीये यज्ञे (स्तीर्णम्) आच्छादकम् (अश्विभ्याम्) वायु-

विद्युद्भ्याम् (ऊर्णम्रदाः) य ऊर्णाराच्छादकैर्म्रदन्ते ते (सरस्वत्या) उत्तमवाण्या (स्योनम्) सुखम् (इन्द्र) इन्द्रियस्वामिन् जीव (ते) तव (सदः) सीदन्ति यस्मिंस्तत्(ईशायै) ययैश्वर्यं प्राप्नोति तस्यै (मन्युम्) मननम्(राजानम्) राजमानम् (बर्हिषा) अन्तरिक्षेण (दधुः) (इन्द्रियम्) धनम् (वसुवने) पृथिव्यादिसेवकाय (वसुधेयस्य) पृथिव्याद्याधारस्य (व्यन्तु) (यज) ॥ ५७॥

अन्वयः—हे इन्द्र यस्य ते सरस्वत्या सह स्योनं सदोऽस्ति यथोर्णम्रदा अश्विभ्यामध्वरे वारितीनां स्तीर्णं देवं बर्हिरीशायै मन्युं राजानमिव बर्हिषा वसुधेयस्य वसुवन इन्द्रियं दधुरेतानि व्यन्तु तथा त्वं यज ॥ ५७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०--यदि मनुष्या आकाशवदक्षोभा आनन्दप्रदा एकान्तप्रासादा अभङ्गाज्ञाः पुरुषार्थिनोऽभाविष्यँस्तर्ह्यस्य संसारस्य मध्ये श्रीमन्तः कुतो नाभविष्यन् ? ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अपने इन्द्रिय के स्वामी जीव जिस (ते) तेरा (सरस्वत्या) उत्तम वाणी के साथ (स्योनम्) सुख और (सदः) जिस में बैठते वह नाव आदि यान है और जैसे (ऊर्णम्रदाः) ढांपने वाले पदार्थों से शिल्प की वस्तुओं को मीजते हुए विद्वान् जन (अश्विभ्याम्) पवन और बिजुली से (अध्वरे) न विनाश करने योग्य शिल्प यज्ञ में (वारितीनाम्) जिन की जल में चाल है उन पदार्थों के (स्तीर्णम्) ढांपने वाले (देवम्) दिव्य (बर्हिः) अन्तरिक्ष को वा (ईशायै) जिस क्रिया से ऐश्वर्य को मनुष्य प्राप्त होता उस के लिये (मन्युम्) विचार अर्थात् सब पदार्थों के गुण दोष और उन की क्रिया सोचने को (राजानम्) प्रकाशमान राजा के समान वा (बर्हिषा) अन्तरिक्ष से (वसुधेयस्य) पृथिवी आदि आधार के बीच (वसुवने) पृथिवी आदि लोकों की सेवा करने हारे जीव के लिये(इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें और इन को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू सब पदार्थों की (यज) संगति किया कर ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—यदि मनुष्य आकाश के समान निष्कम्प निडर आनन्द देने हारे एकान्तस्थानयुक्त और जिन की आज्ञा भंग न हो ऐसे पुरुषार्थी हों इस संसार के बीच धनवान् क्यों न हों ? ॥ ५७ ॥

देवोऽअग्निरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । आद्यस्याऽत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । स्विष्टोऽ-अग्निरित्युत्तरस्य निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि०

दे॒वोऽअ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वान्य॑क्षद्य॒थाय॒थꣳहोता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑ वा॒चा वा॒चꣳ सर॑स्वतीम॒ग्निꣳसोम॑ꣳस्विष्ट॒कृत्स्वि॑ष्ट॒ इन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ सवि॒ता वरु॑णो भि॒षगि॒ष्टो दे॒वो वन॒स्पतिः॑ स्विष्टा दे॒वा आ॑ज्य॒पाः स्वि॑ष्टोऽअ॒ग्निर॒ग्निना॒ होता॑ हो॒त्रे स्वि॑ष्ट॒कृद्य॒शो न दध॑दिन्द्रि॒यमू॒र्जम॒पचि॑तिꣳ स्व॒धां व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५८ ॥

दे॒वः । अ॒ग्निः । स्वि॒ष्ट॒कृदिति॑ स्विष्ट॒ऽकृत् । दे॒वान् । य॒क्ष॒त् । य॒था॒य॒थमिति॑ यथाऽय॒थम् । होता॑रौ । इन्द्र॑म् । अ॒श्विना॑ । वा॒चा । वा॒च॑म् । सर॑स्वतीम् । अ॒ग्निम् । सोम॑म् । स्वि॒ष्ट॒कृ-

दिति स्विष्टऽकृत् । स्विष्टऽइति सुऽइष्टः । इन्द्रः । सुत्रामेति सुऽत्रामा । सविता । वरुणः । भिषक् । इष्टः । देवः । वनस्पतिः । स्विष्टाइति सुऽइष्टाः । देवाः । आज्यपाऽइत्याज्यऽपाः । स्विष्टऽइति सुऽइष्टः । अग्निः । अग्निना । होता । होत्रे । स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत् । यशः । न । दधत् । इन्द्रियम् । ऊर्जम् । अपचितिमित्यपऽचितिम् । स्वधाम् । वसुवनऽइति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥ ५८ ॥

पदार्थः— (देवः) दिव्यः (अग्निः) पावकः (स्विष्टकृत) यः शोभनमिष्टं करोति सः (देवान) दिव्यगुणकर्मस्वभावान् पृथिव्यादीन् (यक्षत्) यजेत् संगच्छेत (यथायथाम्) यथायोग्यम् (होतारौ) आदातारौ (इन्द्रम्) सूर्यम् (अश्विना) वायुविद्युतौ (वाचा) वाण्या (वाचम्) वाणीम् (सरस्वतीम्) विज्ञानयुक्ताम् (अग्निम्) पावकम् (सोमम्) चन्द्रम् (स्विष्टकृत्) सुष्ठुसुखकारी (स्विष्टः) शोभनश्चासाविष्टश्च सः (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्तो राजा (सुत्रामा) सुष्ठुपालकः (सविता) सूर्यः (वरुणः) जलसमुदायः (भिषक्) रोगविनाशकः (इष्टः) संगन्तुमर्हः (देवः) दिव्यस्वभावः (वनस्पतिः) पिप्पलादिः (स्विष्टाः) शोभनमिष्टं येभ्यस्ते (देवाः) दिव्यस्वरूपाः (आज्यपाः) य आज्यं पातुमर्हं रसं पिबन्ति ते (स्विष्टः) शोभनमिष्टं यस्मात्सः (अग्निः) वह्निः (अग्निना) विद्युता (होता) दाता (होत्रे) दात्रे (स्विष्टकृत्) शोभनेष्टकारी (यशः) कीर्तिकरं धनम् (न) इव

(दधत्) धरेत् (इन्द्रियम्) इन्द्रस्य लिङ्गं श्रोत्रादि (ऊर्जम्) बलम् (अपचितिम्) सत्कृतिम् (स्वधाम्) अन्नम् (वसुवने) ऐश्वर्यसेवकाय (वसुधेयस्य) संसारस्य (व्यन्तु) (यज) ॥ ५८ ॥

अन्वयः— हे विद्वन् यथा वसुधेयस्य वसुवने स्विष्टकृद्देवोऽग्निर्देवान् यथायथं यक्षद्यथा होताराविश्विनेन्द्रं वाचा सरस्वतीं वाचमग्निं सोमं च यथायथं गमयतो यथा स्विष्टकृत्स्विष्टः सुत्रामेन्द्रः सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा आज्यपा देवा अग्निना स्विष्टो होता स्विष्टकृदग्निर्होत्रे यशो नेन्द्रियमूर्जमपचितिं स्वधां यथायथं दधन्नेतानेतानि व्यन्तु तथा यथायथं यज ॥५८॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये मनुष्या ईश्वरनिर्मितानेतन्मन्त्रोक्तयज्ञादीन्पदार्थान् विद्ययोपयोगाय दधति ते स्विष्टानि सुखानि लभन्ते ॥५८॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (वसुधेयस्य) संसार के बीच में (वसुवने) ऐश्वर्य्य को सेवने वाले सज्जन मनुष्य के लिये (स्विष्टकृत्) सुन्दर चाहे हुए सुख का करने हारा (देवः) दिव्य सुंदर (अग्निः) आग (देवान्) उत्तम गुण कर्म स्वभावों वाले पृथिवी आदि को (यथायथम्) यथायोग्य (यक्षत्) प्राप्त हो वा जैसे (होतारा) पदार्थों के ग्रहण करने हारे (अश्विना) पवन और बिजुलीरूप अग्नि (इन्द्रम्) सूर्य (वाचा) वाणी से (सरस्वतीम्) विशेष ज्ञानयुक्त (वाचम्) वाणी से (अग्निम्) अग्नि (सोमम्) और चन्द्रमा को यथायोग्य चलाते हैं वा जैसे (स्विष्टकृत) अच्छे सुख का करने वाला (स्विष्टः) सुन्दर और सब का चाहा हुआ (सुत्रामा) भलीभांति पालने हारा (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त राजा (सविता) सूर्य (वरुणः) जल का समुदाय (भिषक्) रोगों का विनाश करने हारा वैद्य (इष्टः) संग करने योग्य

(देवः) दिव्यस्वभाव वाला (वनस्पतिः) पीपल आदि (स्विष्टाः) सुंदर चाहा हुआ सुख जिन से हो वे (आज्यपाः) पीने योग्य रस को पीने हारे (देवाः) दिव्य स्वरूप विद्वान् (अग्निना) बिजुली के साथ (स्विष्टः) (होता) देने वाला कि जिस से सुन्दर चाहा हुआ काम हो (स्विष्टकृत्) तथा उत्तम चाहे हुए काम को करने वाला (अग्निः) अग्नि (होत्रे) देने वाले के लिये (यशः) कीर्त्ति करने हारे धन के (न) समान (इन्द्रियम्) जीव के चिन्ह कान आदि इन्द्रियां (ऊर्जम्) बल (अपचितिम्) सत्कार और (स्वधाम्) अन्न को (दधत्) प्रत्येक को धारण करे वा जैसे इन उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥५८॥

भावार्थः--इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०-- जो मनुष्य ईश्वरके बनाये हुए इस मंत्र में कहे यज्ञ आदि पदार्थों को विद्या से उपयोग के लिये धारण करते हैं वे सुन्दर चाहे हुए सुखों को पाते हैं ॥ ५८ ॥

अग्निमद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अग्न्यादयो
देवताः । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न्पुरो॒डाशा॑न्ब॒ध्नन्न॒श्विभ्यां॒ छाग॑ᳪ सर॑स्वत्यै मे॒षमि॑न्द्राय॑ऽऋष॒भᳪ सु॒न्वन्न॒श्विभ्या॒ᳪ सर॑स्वत्या॒ऽइन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ सुरासो॒मान्॥५९॥

अग्निम् । अद्य । होतारम् । अवृणीत । अयम् । यजमानः । पचन् । पक्तीः । पचन् । पुरोडाशान् । बध्नन् । अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम् । छागम् । सरस्वत्यै । मेषम् । इन्द्राय । ऋषभम् । सुन्वन् । अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम् । सरस्वत्यै । इन्द्राय । सुत्राम्णऽइति सुऽत्राम्णे । सुरासोमानिति सुराऽसोमान् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) पावकम् (अद्य) इदानीम् (होतारम्) सुखानां दातारम् (अवृणीत) वृणोति (अयम्) (यजमानः) (पचन्) (पक्तीः) (पचन्) (पुरोडाशान्) पाकविशेषान् (बध्नन्) बध्नन्ति (अश्विभ्याम्) प्राणापानाभ्याम् (छागम्) (सरस्वत्यै) विज्ञानयुक्तायै वाचे (मेषम्) अविम् (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (ऋषभम्) वृषभम् (सुन्वन्) सुनुयुः (अश्विभ्याम्) (सरस्वत्यै) (इन्द्राय) राज्ञे (सुत्राम्णे) (सुरासोमान्) सुरया रसेन युक्तान् सोमान् पदार्थान् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽयं पक्तीः पचन् पुरोडाशान् पचन् यजमानो होतारमग्निमवृणीत यथाऽश्विभ्यां छागं सरस्वत्यै मेषमिन्द्रायर्षभं बध्नन्नश्विभ्यां सरस्वत्यै सुत्राम्ण इन्द्राय सुरासोमान्सुन्वंस्तथा यूयमद्य कुरुत ॥ ५९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा संगन्तारो वैद्या अपानार्थं छागदुग्धं वाग्वृद्ध्यर्थमविपयऐश्वर्यायगोःपयो रोगनिवारणायौषधिरसांश्चसंपाद्य सुसंस्कृतान्यन्नानि भुक्त्वा बलवन्तो भूत्वा दुष्टान् शत्रून् बध्नन्ति ते परमैश्वर्यं लभन्ते ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (पक्तीः) पचाने के प्रकारों को (पचन्) पचाता अर्थात् सिद्ध करता और (पुरोडाशान्) यज्ञ आदि कर्म में प्रसिद्ध पाकों को (पचन्) पचाता हुआ (यजमानः) यज्ञ करने हारा

(होतारम्) सुखों के देने वाले (अग्निम्) आग को (अवृणीत) स्वीकार वा जैसे (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के लिये (छागम्) छेरी (सरस्वत्यै) विशेष ज्ञान युक्त वाणी के लिये (मेषम्) भेड़ और (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (ऋषभम्) वैल को (बध्नन्) बांधते हुए वा (अश्विभ्याम्) प्राण, अपान (सरस्वत्यै) विशेष ज्ञान युक्त वाणी और (सुत्राम्णे) भली भांति रक्षा करने हारे (इन्द्राय) राजा के लिये (सुरासोमान्) उत्तम रस युक्त पदार्थों का (सुन्वन्) सार निकालते हैं वैसे तुम (अद्य) आज करो ॥ ५९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०— हे मनुष्यो जैसे पदार्थों को मिलाने हारे वैद्य अपान के लिये छेरी का दूध वाणी बढ़ने के लिये भेंड़ का दूध ऐश्वर्य के बढ़ने के लिये वैल रोग निवारण के लिये औषधियों के रसों को इकट्ठा और अच्छे संस्कार किये हुए अन्नों का भोजन कर उससे बलवान् हो कर दुष्ट शत्रुओं को बांधते हैं वैसे वे परम ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ५९ ॥

सूपस्थाइत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः ।
धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कृत्वा किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये इस वि० ॥

सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऽऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचताग्रभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥ ६० ॥

सूपस्थाऽइति सुऽउपस्थाः । अद्य । देवः । वनस्पतिः । अभवत् । अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम् । छागेन । सरस्वत्यै । मेषेण । इन्द्राय । ऋषभेण । अक्षन् । तान् । मेदस्तः । प्रति । पचता । अगृभीषत । अवीवृधन्त । पुरोडाशैः । अपुः । अश्विना । सरस्वती । इन्द्रः । सुत्रामेति सुऽत्रामा । सुरासोमानिति सुराऽसोमान् ॥ ६० ॥

पदार्थः—(सूपस्थाः) ये सुष्ठूपतिष्ठन्ति ते (अद्य) (देवः) दिव्यगुणः (वनस्पतिः) वटादिः (अभवत्) भवेत् (अश्विभ्याम्) प्राणापानाभ्याम् (छागेन) दुःखच्छेदकेन (सरस्वत्यै) वाचे (मेषेण) (इन्द्राय) (ऋषभेण)(अक्षन्) भुञ्जीरन् (तान्) (मेदस्तः) मेदसः स्निग्धान् (प्रति) (पचता) पचतानि पक्तव्यानि । अत्रौणादिकोऽतच् (अगृभीषत) गृह्णन्तु (अवीवृधन्त) वर्धन्ताम् (पुरोडाशैः) संस्कृतान्नविशेषैः (अपुः) पिबन्तु (अश्विना) प्राणाऽपानौ (सरस्वती) प्रशस्ता वाक् (इन्द्रः) परमैश्वर्यो राजा (सुत्रामा) सुष्ठुरक्षकः (सुरासोमान्) ये सुरयाऽभिषवेन सूयन्ते तान् ॥ ६० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽद्य सूपस्था देवो वनस्पतिरिव येन येनाश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रतिपचतागृभीषत पुरोडाशैरवीवृधन्ताश्विना सरस्वती सुत्रामेन्द्रः सुरासोमानपुस्तथा भवानभवन्भवेत् ॥६० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याश्छागादिदुग्धादिभिः प्राणाऽपानरक्षणाय स्निग्धान् पक्वान् पदार्थान् भुक्त्वोत्तमान् रसान् पीत्वा वर्धन्ते ते सुसुखं लभन्ते ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अद्य) आज (सूपस्थाः) भली भांति समीप स्थिर होने वाले और (देवः) दिव्य गुण वाला पुरुष (वनस्पतिः) वट वृक्ष आदि के समान जिस २ (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के लिये (छागेन) दुःख विनाश करने वाले छेरी आदि पशु से (सरस्वत्यै) वाणी के लिये (मेषेण) मेढ़ा से (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (ऋषभेण) बैल से (अक्षन्) भोग करें [उपयोग लें]; (तान्) उन (मेदस्तः) सुन्दर चिकने पशुओं के (प्रति) प्रति (पचता) पचाने योग्य वस्तुओं का (अगृभीषत) ग्रहण करें (पुरोडाशैः) प्रथम उत्तम संस्कार किये हुए विशेष अन्नों से (अवीवृधन्त) वृद्धि को प्राप्त हों (अश्विना) प्राण अपान (सरस्वती) प्रशंसित वाणी (सुत्रामा) भली भांति रक्षा करनेहारा (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् राजा (सुरासोमान्) जो अरक खींचने से उत्पन्न हों उन ओषधि रसों को (अपुः) पीवें वैसे आप (अभवत्) होओ ॥ ६० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य छेरी आदि पशुओं के दूध आदि से प्राण, अपान की रक्षा के लिये चिकने और पके हुए पदार्थों का भोजन कर उत्तम रसों को पीके वृद्धि को पाते हैं वे अच्छे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६० ॥

त्वामद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः ।
भुरिग् विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्तव वर्तें इस वि० ॥

त्वामद्यऽऋ॑ष ऽ आर्षेय ऽ ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्यऽ आ-सङ्गतेभ्यऽ एष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यतऽइति ता या देवा देव दाना-

न्यदुस्तान्यस्माऽआ च शास्स्वाचगुर-
स्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषि-
तो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि॥६१॥

त्वाम् । अद्य । ऋषे । आर्षेय । ऋषीणाम् । नपात् । अवृणीत । अयम् । यजमानः । वहुभ्यऽइति वहुऽभ्यः । आ । सङ्गतेभ्यऽइति सम्ऽगतेभ्यः । एषः । मे । देवेषु । वसु । वारि । आ । यक्ष्यते । इति । ता । या । देवाः । देव । दानानि । अदुः । तानि । अस्मै । आ । च । शास्स्व । आ । च । गुरस्व । इषितः । च । होतः । असि । भद्रवाच्यायेति भद्रऽवाच्याय । प्रेषितऽइति प्रऽइषितः । मानुषः । सूक्तवाकायेति सूक्तऽवाकाय । सूक्तेति सुऽउक्ता । ब्रूहि ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (अद्य) (ऋषे) मंत्रार्थवित् (आर्षेय) ऋषिषु साधुस्तत्संबुद्धौ । अत्र छान्दसोढक् (ऋषीणाम्) मंत्रार्थविदाम् (नपात्) अपत्यम् (अवृणीत) वृणोतु (अयम्) (यजमानः) यज्ञकर्त्ता (वहुभ्यः) (आ) (संगतेभ्यः) (योगिभ्यः) (एषः) (मे) मम (देवेषु) विद्वत्सु (वसु) धनम् (वारि) जलम् (आ) (यक्ष्यते) (इति) (ता) तानि (या) यानि (देवाः) विद्वांसः (देव) विद्वन् (दानानि दातव्यानि (अदुः) ददति (तानि)(अस्मै)(आ)(च)(शास्स्व.) शिक्ष (आ) (च) (गुरस्व) उद्यमस्व

(इषितः) इष्टः (च) (होतः) (असि) भव (भद्रवाच्याय) भद्रं वाच्यं यस्मै तस्मै (प्रेषितः) प्रेरितः (मानुषः) मनुष्यः (सूक्तवाकाय) सूक्तानि वाकेषु यस्य तस्मै (सूक्ता) सुष्ठुवक्तव्यानि (ब्रूहि) ॥ ६१ ॥

अन्वयः—हे ऋषे आर्षेय ऋषीणां नपाद्यजमानोऽयमद्य बहुभ्यः संगतेभ्यस्त्वामावृणीतैष देवेषु मे वसु वारि चावृणीत । हे देव य आयत्यते देवा या यानि दानान्यदुस्तानिचास्मै आशास्स्व प्रेषितः सन्नागुरस्व च हे होतरिषितो मानुषो भद्रवाच्याय सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहीति ता प्राप्तवांश्चासि ॥ ६१ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या बहूनां विदुषां सकाशाद्विद्वांसं वृत्वा वेदादिविद्या अधीत्य महर्षयो भवेयुस्तेन्यानध्यापयितुं शक्नुयुः । ये च दातार उद्यमिनः स्युस्ते विद्यां वृत्वा अविदुषामुपरि दयां कृत्वा विद्याग्रहणाय रोषेण संताड्यैतान्सुसभ्यान्कुर्युस्तेऽत्र सत्कर्त्तव्याः स्युरिति ॥ ६१ ॥

अत्र वरुणाग्निविद्वद्राजप्रजाशिल्पवाग्गृहाश्व्यनुहोत्रादिगुणवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्यपूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

पदार्थः—हे (ऋषे) मंत्रों के अर्थ जानने वाले वा हे (आर्षेय) मंत्रार्थ जानने वालों में श्रेष्ठ पुरुष (ऋषीणाम्) मंत्रों के अर्थ जानने वालों के (नपात्) सन्तान (यजमानः) यज्ञ करने वाला (अयम्) यह (अद्य) आज (बहुभ्यः) बहुत (संगतेभ्यः) योग्य पुरुषों से (त्वाम्) तुझको (आ, अवृणीत) स्वीकार करे (एषः) यह (देवेषु) विद्वानों में (मे) मेरे (वसु) धन (च) और (वारि) जल को स्वीकार करे हे (देव) विद्वान् जो (आयत्यते) सब ओर से संगत किया जाता (च) और (देवाः) विद्वान् जन (या) जिन (दानानि) देने योग्य पदार्थों को (अदुः) देते हैं (तानि) उन सभों को (अस्मै) इस यज्ञ करने वाले के लिये (आ, शास्स्व) अच्छेप्रकार कहो और (प्रेषितः) पढाया हुआ तू (आ,गुरस्व) अच्छे प्रकार उद्यम कर (च) और हे (होतः) देने हारे (इषितः) सब का चाहा हुआ (मानुषः) तू (भद्रवाच्याय (जिस) के लिये अच्छा कहना होता और

(सूक्तवाकाय) जिस के वचनों में अच्छे कथन अच्छे व्याख्यान हैं उस भद्र पुरुष के लिये (सूक्ता) अच्छी बोल चाल (ब्रूहि) बोलो (इति) इस कारण कि उक्त प्रकार से (ता) उन उत्तम पदार्थों को पाये हुए (असि) होते हो ॥ ६१ ॥

भावार्थः-जो मनुष्य बहुत विद्वानों से अति उत्तम विद्वान् को स्वीकार कर वेदादि शास्त्रों की विद्या को पढ़ कर महर्षि होवें वे दूसरों को पढ़ा सकें और जो देने वाले उद्यमी होवें वे विद्या को स्वीकार कर जो अविद्वान् हैं उन पर दया कर विद्या ग्रहण के लिये रोष से उन मूर्खों को ताड़ना दें और उन्हें अच्छे सभ्य करें वे इस संसार में सत्कार करने योग्य हैं ॥ ६१ ॥

इस अध्याय में वरुण अग्नि विद्वान् राजा प्रजा शिल्प अर्थात् कारीगरी वाणी घर अश्विन् शब्द के अर्थ ऋतु और होता आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ का पिछले अध्याय में कहे अर्थ के साथ मेल है यह जानना चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीमन्महाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते यजुर्वेदभाष्ये एकविंशोऽध्यायः समाप्तिमगात् ॥

॥अथ द्वाविंशोऽध्याय आरभ्यते॥

ओम् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

तेजोसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।
निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

तत्रादावाप्तो विद्वान् कथं वर्त्तेतेत्याह ॥

अब बाईसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उस के प्रथम मंत्र में आप्त सकलशास्त्रों का जानने वाला विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्ते इस वि० ॥

तेजोऽसि शुक्रमुमृतमायुष्पाऽ आयुर्मे पाहि । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥१॥

तेजः । असि । शुक्रम् । अमृतम् । आयुष्पाः । आयुःपाऽइत्यायुःऽपाः । आयुः । मे । पाहि । देवस्य । त्वा । सवितुः । प्रसवऽइति प्रऽसवे । अश्विनोः । बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम् । पूष्णः । हस्ताभ्याम् । आ । ददे ॥ १ ॥

पदार्थः—(तेजः) प्रकाशः (असि) (शुक्रम्) वीर्यम् (अमृतम्) स्वस्वरूपेण नाशरहितम् (आयुष्पाः) यः आयुः पाति सः (आयुः) जीवनम् (मे) मम (पाहि) (देवस्य) सर्वप्रकाशकस्य (त्वा) त्वाम् (सवितुः) सकलजगदुत्पादकस्य (प्रसवे) प्रसूयन्ते प्राणिनो यस्मिन् संसारे तस्मिन् (अश्विनोः) वायुविद्युतोः (बाहुभ्याम्) (पूष्णः) पुष्टिकर्त्तुः सूर्यस्य (हस्ताभ्याम्) (आ) (ददे) गृह्णामि ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नहं देवस्य सवितुर्जगदीश्वरस्य प्रसवेऽश्विनोर्धारणाकर्षणाभ्यामिव बाहुभ्यां पूष्णः किरणैरिव हस्ताभ्यां यन्त्वाददे यस्त्वममृतं शुक्रं तेज इवायुष्पा असि स त्वं स्वं दीर्घायुः कृत्वा मे ममाऽऽयुः पाहि ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०— यथा शरीरस्था विद्युच्छरीरं रक्षति यथा बाह्यौ सूर्यवायू जीवनहेतूस्तस्तथेश्वररचितेऽस्मिन् जगति आप्तो विद्वान् भवतीति सर्वैर्वेद्यम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मैं (देवस्य) सब के प्रकाश करने (सवितुः) और समस्त जगत् के उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये जिस में कि प्राणी आदि उत्पन्न होते उस संसार में (अश्विनोः) पवन और बिजुलीरूप आग के धारण और खैंचने आदि गुणों के समान (बाहुभ्याम्) भुजाओं और (पूष्णः) पुष्टि करने वाले सूर्य की किरणों के समान (हस्ताभ्याम्) हाथों से जिस (त्वा) तुझे (आ, ददे) ग्रहण करता हूं वा जो तू (अमृतम्) स्व स्वरूप से विनाश रहित (शुक्रम्) वीर्य्य और (तेजः) प्रकाश के समान जो (आयुष्पाः) आयुर्दा की रक्षा करने वाला (असि) है सो तू अपनी दीर्घ आयुर्दा कर के (मे) मेरी (आयुः) आयु की (पाहि) रक्षा कर ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे शरीर में रहने वाली बिजुली शरीर की रक्षा करती वा जैसे बाहरले सूर्य और पवन जीवन के हेतु हैं वैसे ईश्वर के बनाए इस जगत् में आप्त अर्थात् सकल शास्त्र का जानने वाला विद्वान् होता है यह सब को जानना चाहिये ॥ १ ॥

इमामित्यस्य यज्ञपुरुषऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैरायुः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को आयुर्दा कैसे बर्त्तनी चाहिये इस वि० ॥

इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वऽआयुषि विदथेषु कव्या । सा नोऽअस्मिन्त्सुतऽआबभूवऽऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥ २ ॥

इमाम् । अगृभ्णन् । रशनाम् । ऋतस्य । पूर्वे । आयुषि । विदथेषु । कव्या । सा । नः । अस्मिन् । सुते । आ । बभूव । ऋतस्य । सामन् । सरम् । आरपन्तीत्याऽरपन्ती ॥ २ ॥

पदार्थः—(इमाम्) (अगृभ्णन्) गृह्णीयुः (रशनाम्) व्यापिकां रज्जुमिव (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (पूर्वे) पूर्वस्मिन् (आयुषि) प्राणधारणे (विदथेषु) यज्ञादिषु (कव्या) कवयः । अत्र सुपां सु० इति विभक्तेर्ड्यादेशः (सा) (नः) अस्माकम् (अस्मिन्) (सुते) उत्पन्ने जगति (आ) (बभूव) भवति (ऋतस्य) सत्यस्य कारणस्य (सामन्) सामन्यन्ते कर्मणि (सरम्) प्राप्तव्यम् (आरपन्ती) व्यक्तशब्दं वदन्ती ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या या ऋतस्य सरमारपन्त्याबभूव यामिमामृतस्य रशनां विदथेषु पूर्व आयुषि कव्या अगृभ्णान् साऽस्मिन् सुते नः सामन्नाबभूव ॥ २ ॥

भावार्थः—यथा रशनया बद्धाः प्राणिन इतस्ततः पलायितुं न शक्नुवन्ति तथा युक्त्या धृतमायुरकाले न पलायते ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (ऋतस्य) सत्य कारण के (सरम्) पाने योग्य शब्द को (आरपन्ती) अच्छेप्रकार प्रगट बोलती हुई (आ, बभूव) भली भांति विख्यात होती वा जिस (इमाम्) इस को (ऋतस्य) सत्यकारण की (रशनाम्) व्याप्त होने वाली डोर के समान (विदथेषु) यज्ञादि कों में (पूर्वे) पहिली (आयुषि) प्राण धारण करने हारी आयुर्दा के निमित्त (कव्या) कवि मेधावी जन (अगृभ्णान्) ग्रहण करें (सा) वह बुद्धि (अस्मिन्) इस (सुते) उत्पन्न हुए जगत् में (नः) हमलोगों के (सामन्) अन्त के काम में प्रसिद्ध होती अर्थात् कार्य को समाप्ति पर्य्यन्त पहुँचाती है ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे डोर से बंधे हुए प्राणी इधर उधर भाग नहीं जा सकते वैसे युक्ति के साथ धारण की हुई आयु ठीक समय के विना नहीं भागजाती ॥ २ ॥

अभिधा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।
भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनर्विद्वान् कीदृशो भवतीत्याह ॥

फिर विद्वान् कैसा हो इस वि० ॥

अभिधा असि भुवनमसि युन्तासि धुर्ता । स त्वमुग्निं वैश्वानुरꣳ सुप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ॥ ३ ॥

अभिधाऽइत्यभिऽधाः । असि । भुवनम् । असि । यन्ता । असि । धर्त्ता । सः । त्वम् । अग्निम् । वैश्वानरम् । सप्रथसमितिसऽप्रथसम् । गच्छ । स्वाहाकृतऽइति स्वाहाऽकृतः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(अभिधाः) योऽभिदधाति सः (असि) (भुवनम्) उदकम् । भुवनमित्युदकना० निघं० १ । १२ (असि) (यन्ता) नियन्ता (असि) (धर्त्ता) सकलव्यवहारधारकः (सः) (त्वम्) (अग्निम्) पावकम् (वैश्वानरम्) विश्वेषु वस्तुषु नायकम् (सप्रथसम्) प्रख्यातत्वेन सह वर्त्तमानम् (गच्छ) (स्वाहाकृतः) सत्यक्रियया निष्पन्नः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यस्त्वं भुवनमिवास्यभिधा असि यन्तासि स स्वाहाकृतो धर्त्ता त्वं सप्रथसं वैश्वानरमग्निं गच्छ जानीहि ॥ ३ ॥

भावार्थः—यथा सर्वेषां प्राण्यप्राणिनां जीवनमूलं जलमग्निश्चास्ति तथा विद्वांसं सर्वे जानीयुः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो तू (भुवनम्) जल के समान शीतल (असि) है (अभिधाः) कहने वाला (असि) है वा (यन्ता) नियम करने हारा (असि) है (सः) वह (स्वाहाकृतः) सत्य क्रिया से सिद्ध हुआ (धर्त्ता) सब व्यवहारों का धारण करने हारा (त्वम्) तू (सप्रथसम्) विख्याति के साथ वर्त्तमान (वैश्वानरम्) समस्त पदार्थों में नायक (अग्निम्) अग्नि को (गच्छ) जान ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे सब प्राणी और अप्राणियों के जीने का मूल कारण जल और अग्नि है वैसे विद्वान् को सब लोग जानें ॥ ३ ॥

स्वर्गेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वे देवा देवताः ।
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्व॒गा त्वा॑ दे॒वेभ्यः॑ प्र॒जाप॑तये॒ ब्र॒ह्म॒न्नश्वं॑ भन्त्स्यामि दे॒वेभ्यः॑ प्र॒जाप॑तये॒ तेन॑ राध्यासम् । तं ब॑धान दे॒वेभ्यः॑ प्र॒जाप॑तये॒ तेन॑ राध्नुहि ॥ ४ ॥

स्व॒गेति॑ स्व॒ऽगा । त्वा॒ । दे॒वेभ्यः॑ । प्र॒जाप॑तय॒ इति॑ प्र॒जाऽप॑तये । ब्रह्म॑न् । अश्व॑म् । भ॒न्त्स्या॒मि॒ । दे॒वेभ्यः॑ । प्र॒जाप॑तय॒ऽ इति॑ प्र॒जाऽप॑तये । तेन॑ । रा॒ध्या॒स॒म् । तम् । ब॒धा॒न॒ । दे॒वेभ्यः॑ । प्र॒जाप॑तय॒ऽइति॑ प्र॒जाऽप॑तये । तेन॑ । रा॒ध्नु॒हि॒ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(स्वगा) स्वयं गच्छतीति स्वगास्तं स्वयंगामिनम् । अत्र विभक्तेर्डादेशः (त्वा) त्वाम् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (प्रजापतये) प्रजायाः पालकाय (ब्रह्मन्) विद्यया वृद्ध (अश्वम्) महान्तम् (भन्त्स्यामि) बद्धं करिष्यामि (देवेभ्यः) दिव्यगुणेभ्यः (प्रजापतये) प्रजापालकाय गृहस्थाय (तेन) (राध्यासम्) सम्यक् सिद्धो भवेयम् (तम्) (बधान) (देवेभ्यः) दिव्यगुणकर्मस्वभावेभ्यः (प्रजापतये) प्रजापालकाय (तेन) (राध्नुहि) सम्यक् सिद्धो भव ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन्नहं त्वा स्वगा करोमि देवेभ्यः प्रजापतयेऽश्वं भन्त्स्यामि तेन देवेभ्यः प्रजापतये राध्यासं तं त्वं बधान तेन देवेभ्यः प्रजापतये राध्नुहि ॥ ४ ॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैर्विद्या सुशिक्षाब्रह्मचर्य्यसत्सङ्गैः शरीरात्मनोर्महद्बलं संपाद्य दिव्यान गुणान् गृहीत्वा विद्वद्भ्यः सुखं दत्वा स्वस्य परेषां च वृद्धिः कार्या ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) विद्या से वृद्धि को प्राप्त मैं (त्वा) तुझे (स्वगा) आप जाने वाला करता हूं (देवेभ्यः) विद्वानों और (प्रजापतये) संतानों की रक्षा करने हारे गृहस्थ के लिये (अश्वम्) बड़े सर्वव्यापी उत्तम गुण को (भन्त्स्यामि) बांधूंगा (तेन) उस से (देवेभ्यः) दिव्य गुणों और (प्रजापतये) संतानों के पालने हारे गृहस्थ के लिये (राध्यासम्) अच्छे प्रकार सिद्ध होऊं (तम्) उसको तू (बधान) बांध (तेन) उस से (देवेभ्यः) दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वालों तथा (प्रजापये) प्रजा पालने वाले के लिये (राध्नुहि) अच्छे प्रकार सिद्ध होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्या अच्छी शिक्षा ब्रह्मचर्य और अच्छे संग से शरीर और आत्मा के अत्यन्त बल को सिद्ध दिव्य गुणों को ग्रहण और विद्वानों के लिये सुख दे कर अपनी और पराई वृद्धि करें ॥ ४ ॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो-
देवताः । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्याः कान् वर्द्धयेयुरित्याह ॥

फिर मनुष्य किन को बढ़ावें इस वि० ॥

प्र॒जाप॑तये त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मीन्द्रा॒-
ग्निभ्यां॑ त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि वा॒यवे॑ त्वा॒
जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यो॒-
जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि सर्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यो॒

जुष्टं प्रोक्षामि । योऽर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः परो मर्त्तः परः श्वा ॥ ५ ॥

प्रजापतय इति प्रजाऽपतये । त्वा । जुष्टम् । प्र । उक्षामि । इन्द्राग्निभ्यामितीन्द्राग्निऽभ्याम् । त्वा । जुष्टम् । प्र । उक्षामि । वायवे । त्वा । जुष्टम् । प्र । उक्षामि । विश्वेभ्यः । त्वा । देवेभ्यः । जुष्टम् । प्र । उक्षामि । सर्वेभ्यः । त्वा । देवेभ्यः । जुष्टम् । प्र । उक्षामि । अर्वन्तम् । जिघांसति । तम् । अभि । अमीति । वरुणः । परः । मर्त्तः । परः । श्वा ॥ ५ ॥

पदार्थः--(प्रजापतये) प्रजापालकाय (त्वा) त्वाम् (जुष्टम्) प्रीतम् (प्रोक्षामि) प्रकृष्टतयाऽभिषिञ्चामि (इन्द्राग्निभ्याम्) जीवाग्निभ्याम् (त्वा) (जुष्टम्) (प्रोक्षामि) (वायवे) पवनाय (त्वा) (जुष्टम्) (प्रोक्षामि) (विश्वेभ्यः) अखिलेभ्यः (त्वा) त्वाम् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (जुष्टम्) (प्रोक्षामि) (सर्वेभ्यः) समग्रेभ्यः (त्वा) (देवेभ्यः) दिव्येभ्यः पृथिव्यादिपदार्थेभ्यः (जुष्टम्) (प्रोक्षामि) (यः) (अर्वन्तम्) शीघ्रगामिनमश्वम् (जिघांसति) हन्तुमिच्छति (तम्) (अभि) अमीति) प्राप्नोति (वरुणः) श्रेष्ठः (परः) उत्कृष्टः (मर्त्तः) मनुष्यः (परः) (श्वा) कुक्कुरः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यः परो वरुणो मर्त्तोऽर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति यः परः श्वेव वर्त्तते यस्तं निवारयति तं प्रजापतये जुष्टं त्वा प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां जुष्टं त्वा प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं त्वा प्रोक्षामि सर्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं त्वा प्रोक्षामि ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या उत्तमान् पशून् हिंसितुमिच्छेयुस्ते सिंहवद्धन्तव्याः य एतान् रक्षितुं यतेरस्ते सर्वरक्षणायाधिकर्त्तव्याः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (यः) जो (परः) उत्तम और (वरुणः) श्रेष्ठ (मर्त्तः) मनुष्य (अर्वन्तम्) शीघ्रचलने हारे घोड़े को (जिघांसति) ताड़ना देने वा चलाने की इच्छा करता है (तम्) उस को (अभि, अमीति) सब ओर से प्राप्त होता है और जो (परः) अन्य मनुष्य (श्वा) कुत्ते के समान वर्त्तमान अर्थात् दुष्कर्मी है उस को जो रोकता है उस (प्रजापतये) प्रजा की पालना करने वाले के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (इन्द्राग्निभ्याम्) जीव और अग्नि के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (वायवे) पवन के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (सर्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य पृथिवी आदि पदार्थों के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम पशुओं के मारने की इच्छा करते हैं वे सिंह के समान मारने चाहियें और जो इन पशुओं की रक्षा करने को अच्छा यत्न करते हैं वे सब की रक्षा करने के लिये अधिकार देनेयोग्य हैं ॥ ५ ॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।
भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्याः कथं वर्त्तरन्नित्याह ॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस वि० ॥

अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॒पां

मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥ ६ ॥

अग्नये । स्वाहा । सोमाय । स्वाहा । अपाम् । मोदाय । स्वाहा । सवित्रे । स्वाहा । वायवे । स्वाहा । विष्णवे । स्वाहा । इन्द्राय । स्वाहा । बृहस्पतये । स्वाहा । मित्राय । स्वाहा । वरुणाय । स्वाहा ॥ ६ ॥

पदार्थः— (अग्नये) पावकाय (स्वाहा) श्रेष्ठया क्रियया (सोमाय) ओषधिगणशोधनाय (स्वाहा) (अपाम्) जलानाम् (मोदाय) आनन्दाय (स्वाहा) सुखप्रापिका क्रिया (सवित्रे) सूर्याय (स्वाहा (वायवे) (स्वाहा) (विष्णवे) व्यापकाय विद्युद्रूपाय (स्वाहा) (इन्द्राय) जीवाय (स्वाहा) (बृहस्पतये) बृहतां पालकाय (स्वाहा) (मित्राय) सख्ये (स्वाहा) सत्क्रिया (वरुणाय) श्रेष्ठाय (स्वाहा) उत्तमा क्रिया ॥ ६ ॥

अन्वयः— यदि मनुष्या अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाऽपां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय वरुणाय स्वाहा क्रियेरंस्तर्हि किं किं सुखं न प्राप्येत ॥ ६ ॥

भावार्थः— हे मनुष्या यदग्नौ संस्कृतं घृतादिकं हविर्हूयते तदोषधिजलं सूर्यतेजो वायुविद्युतौ च संशोध्यैश्वर्यवर्द्धनप्राणापानप्रजारक्षण-श्रेष्ठसत्कारनिमित्तं जायते किंचिदपि द्रव्यं स्वरूपतो नष्टं न भवति

किन्तु अवस्थान्तरं प्राप्य सर्वत्रैव परिणतं जायते अतएव सुगन्धमिष्टपुष्टिरोगनाशकगुणैर्युक्तानि द्रव्याण्यग्नौ प्रक्षिप्यौषध्यादिशुद्धिद्वारा जगदारोग्यं सम्पादनीयम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—यदि मनुष्य (अग्नये) अग्नि के लिये (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया वा (सोमाय) ओषधियों के शोधने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा (अपाम्) जलों के सम्बन्ध से जो (मोदाय) आनन्द होता है उस के लिये (स्वाहा) सुख पंहुचाने वाली क्रिया वा (सवित्रे) सूर्यमण्डल के अर्थ (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा (वायवे) पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विष्णवे) विजुलीरूप आग में (स्वाहा) उत्तम क्रिया (इन्द्राय) जीव के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (बृहस्पतये) बड़ों की पालना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (मित्राय) मित्र के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वरुणाय) श्रेष्ठ के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया करें तो कौन२ सुख न मिले ? ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो आग में उत्तमता से सिद्ध किया हुआ घी आदि हवि होमा जाता है वह ओषधि जल सूर्य के तेज वायु और विजुली को अच्छे प्रकार शुद्ध कर ऐश्वर्य को बढ़ाने प्राण अपान और प्रजा की रक्षा रूप श्रेष्ठों के सत्कार का निमित्त होता है कोई द्रव्यस्वरूप से नष्ट नहीं होता किन्तु अवस्थान्तर को पा के सर्वत्र ही परिणाम को प्राप्त होता है इसी से सुगन्ध मीठापन पुष्टि देने और रोगविनाश करने हारे गुणों से युक्त पदार्थ आग में छोड़ कर ओषधि आदि पदार्थों की शुद्धि के द्वारा संसार का नीरोगपन सिद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥

हिंकारायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः ।
अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैर्जगत् कथं शोधनीयमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को जगत् कैसे शुद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

हिङ्काराय स्वाहा हिंकृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धा-

यस्वाहाघ्रातायस्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा संहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

हिंकारायेति हिम्ऽकाराय । स्वाहा । हिंकृतायेति हिम्ऽकृताय । स्वाहा । क्रन्दते । स्वाहा । अवक्रन्दायेत्यवऽक्रन्दाय । स्वाहा । प्रोथते । स्वाहा । प्रप्रोथायेति प्रऽप्रोथाय । स्वाहा । गन्धाय । स्वाहा । घ्राताय । स्वाहा । निविष्टायेति निऽविष्टाय । स्वाहा । उपविष्टायेत्युपऽविष्टाय । स्वाहा । सन्दितायेति समऽदिताय । स्वाहा । वल्गते । स्वाहा । आसीनाय । स्वाहा । शयानाय । स्वाहा । स्वपते । स्वाहा । जाग्रते । स्वाहा । कूजते । स्वाहा । प्रबुद्धायेति प्रऽबुद्धाय । स्वाहा । विजृम्भमाणायेति विऽजृम्भमाणाय । स्वाहा । विचृतायेति विऽचृताय । स्वाहा । संहानायेति समऽहानाय । स्वाहा । उपस्थितायेत्युपऽस्थिताय । स्वाहा । अयनायेत्याऽअयनाय । स्वाहा । प्रायणाय । प्रायनायेति प्रऽअयनाय । स्वाहा ॥ ७ ॥

पदार्थः—(हिंकाराय) यो हिंकरोति तस्मै (स्वाहा) (हिंकृताय) हिं कृतं येन तस्मै (स्वाहा) (क्रन्दते) आह्वानं रोदनं वा कुर्वते (स्वाहा) (अवक्रन्दाय) नीचैः कृताह्वानाय (स्वाहा) (प्रोथते) पर्याप्ताय (स्वाहा) (प्रप्रोथाय) अत्यन्तं पर्याप्ताय (स्वाहा) (गन्धाय) (स्वाहा) (घ्राताय) योऽघ्रायि तस्मै (स्वाहा) (निविष्टाय) यो निविशते तस्मै (स्वाहा) (उपविष्टाय) य उपविशति तस्मै (स्वाहा) (संदिताय) यः सम्यगदीयते खण्डयते तस्मै (स्वाहा) (वल्गते) गच्छते (स्वाहा) (आसीनाय) स्थिताय (स्वाहा) (शयानाय) शेते तस्मै (स्वाहा) स्वपते प्राप्तसुषुप्तये (स्वाहा) (जाग्रते) (स्वाहा) (कूजते) अप्रकटशब्दोच्चारकाय (स्वाहा) (प्रबुद्धाय) प्रकृष्टज्ञानवते (स्वाहा) (विजृम्भमाणाय) विशेषेणांगविनामकाय (स्वाहा) (विचृताय) ग्रन्थकाय (स्वाहा) (संहानाय) संहन्यंते यस्मिंस्तस्मै (स्वाहा) (उपस्थिताय) प्राप्तसमीपत्वाय (स्वाहा) (आयनाय) समन्ताद्विज्ञानाय (स्वाहा) (प्रायणाय) (स्वाहा) ॥ ७ ॥

अन्वयः—यैर्मनुष्यैर्हिंकाराय स्वाहा हिंकृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा संहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा क्रियन्ते तैर्दुःखानि वियोज्य सुखानि लभ्यन्ते ॥ ७ ॥

भावार्थः— मनुष्यैरग्निहोत्रादियज्ञे यावद्धूयते तावत्सर्वं प्राणिनां सुखकारकं भवति ॥ ७ ॥

पदार्थः— जिन मनुष्यों ने (हिंकाराय) जो हिं ऐसा शब्द करता उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (हिंकृताय) जिसने हिं शब्द किया उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (क्रन्दते) बुलाते वा रोते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अवक्रन्दाय) नीचे होकर बुलाने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रोथते) सब कर्मों में परिपूर्ण के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रप्रोथाय) अत्यन्त पूर्ण के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (गन्धाय) सुगन्धित के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (घ्राताय) जो सूंघा गया उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निविष्टाय) जो निरंतर प्रवेश करता बैठता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उपविष्टाय) जो बैठता उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (संदिताय) जो भली भांति दिया जाता उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वल्गते) जाते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आसीनाय) बैठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शयानाय) सोते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (स्वपते) नींद जिसको प्राप्त हुई उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (जाग्रते) जागते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (कूजते) कूजते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रबुद्धाय) उत्तम ज्ञान वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विजृम्भमाणाय) अच्छे प्रकार जंभाई लेने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विचृताय) विशेष रचना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (संहानाय) जिससे संघात पदार्थों का समूह किया जाता उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उपस्थिताय) समीपस्थित हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आयनाय) अच्छे प्रकार विशेष ज्ञान के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (प्रायणाय) पहुंचाने हारे के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया की उन मनुष्यों को दुःख छूट के सुख प्राप्त होते हैं । ७ ॥

भावार्थः— मनुष्यों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ में जितना होम किया जाता है उतना सब प्राणियों के लिये सुख करने वाला होता है ॥ ७ ॥

यते स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रयत्नवन्तो जीवादयो देवताः। निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥

यते। स्वाहा। धावते। स्वाहा। उद्द्रावायेत्युत्ऽद्रावाय स्वाहा। उद्द्रुतायेत्युत्ऽद्रुताय। स्वाहा। शूकाराय। स्वाहा। शूकृताय। स्वाहा। निषण्णाय। निसन्नायेति निऽसन्नाय। स्वाहा। उत्थिताय। स्वाहा। जवाय। स्वाहा। बलाय। स्वाहा। विवर्त्तमानायेति

विऽवर्त्तमानाय । स्वाहा । विवृत्तायेति विऽवृत्ताय । स्वाहा । विधून्वानायेति विधून्वानाय । स्वाहा । विधूतायेति विऽधूताय । स्वाहा । शुश्रूषमाणाय । स्वाहा । शृण्वते । स्वाहा । ईक्षमाणाय । स्वाहा । ईक्षिताय । स्वाहा । वीक्षितायेति विऽईक्षिताय । स्वाहा । निमेषायेति निऽमेषाय । स्वाहा । यत् । अत्ति । तस्मै । स्वाहा । यत् । पिबति । तस्मै । स्वाहा । यत् । मूत्रम् । करोति । तस्मै । स्वाहा । कुर्वते । स्वाहा । कृताय । स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—(यते) प्रयतमानाय (स्वाहा) सत्क्रिया (धावते) (स्वाहा) (उद्द्रावाय) ऊर्ध्वंगताय द्रवीभूताय (स्वाहा) (उद्द्रुताय) उत्कर्षंगताय (स्वाहा) (शूकाराय) क्षिप्रकारिणे (स्वाहा) (शूकृताय) क्षिप्रं कृताय (स्वाहा) (निषण्णाय) निश्चयेन स्थिताय (स्वाहा) (उत्थिताय) कृतोत्थानाय (स्वाहा) (जवाय वेगाय(स्वाहा) (बलाय)(स्वाहा) (विवर्त्तमानाय) विशेषेण वर्त्तमानाय (स्वाहा) (विवृत्ताय) विविधतया कृतवर्त्तमानाय(स्वाहा)(विधून्वानाय)यो विविधं धुनोति तस्मै(स्वाहा) (विधूताय) येन विविधं धूतं कम्पितं तस्मै (स्वाहा) (शुश्रूषमाणाय) श्रोतुमिच्छते (स्वाहा) (शृण्वते) यः शृणोति तस्मै (स्वाहा) (ईक्षमाणाय)दर्शकाय (स्वाहा) (ईक्षिताय) अन्येन दृष्टाय (स्वाहा) (वीक्षिताय) विशेषेण कृतदर्शनाय (स्वाहा) (निमेषाय) (स्वाहा)(यत्) (अत्ति) भक्षयति(तस्मै) (स्वाहा) (यत्) (पिबति) (तस्मै) (स्वाहा)

(यत्) (मूत्रम्) (करोति) (तस्मै) (स्वाहा) (कुर्वते) (स्वाहा) (कृताय) (स्वाहा) ॥ ८ ॥

अन्वयः—ये मनुष्या यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद् द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा कुर्वन्ति ते सर्वाणि सुखानि लभन्ते ॥ ८ ॥

भावार्थः—ये प्रयत्नधावनादीनां साधकानि सुगन्ध्यादिहोमप्रभृतीनि च कर्माणि कुर्वन्ति ते सर्वाणीष्टानि वस्तूनि प्राप्नुवन्ति ॥८॥

पदार्थः—जो मनुष्य (यते) अच्छा यत्न करते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (धावते) दौड़ते हुए के लिये (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया (उद्द्रावाय) ऊपर को गये हुए गीले पदार्थ के लिये (स्वाहा) सुन्दर क्रिया (उद्द्रुताय) उत्कर्ष को प्राप्त हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूकाराय) शीघ्रता करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूकृताय) शीघ्र किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निषण्णाय) निश्चय से बैठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उत्थिताय) उठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (जवाय) वेग के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (बलाय) बल के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विवर्त्तमानाय) विशेष रीति से वर्त्तमान होते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विवृत्ताय) विशेष-रीति से वर्त्ताव

किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विधून्वानाय) जो पदार्थ विधुनता है उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विधूताय) जिस ने नानाप्रकार से विधूना उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शुश्रूषमाणाय) सुना चाहते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शृण्वते) सुनते के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (ईक्षमाणाय) देखते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (ईक्षिताय) और से देखे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वीक्षिताय) भली भांति देखे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निमेषाय) आंखों के पलक उठने बैठने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (अत्ति) खाता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (पिबति) पीता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (मूत्रम्) मूत्र (करोति) करता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (कुर्वते) करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (कृताय) किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः— जो अच्छे यत्न और दौड़ने आदि क्रियाओं को सिद्ध करने वाले काम तथा सुगन्धि आदि वस्तुओं के होम आदि कामों को करते हैं वे समस्त सुख और चाहे हुए पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्रऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथेश्वरविषयमाह ॥

अब ईश्वर के वि० ॥

तत्स॑वितुर्वरे॑ण्यं भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ९ ॥

तत् । स॒वि॒तुः । वरे॑ण्यम् । भर्गः॑ । दे॒वस्य॑ । धी॒म॒हि॒ । धियः॑ । यः । नः॒ । प्र॒चो॒दया॒दिति॑ प्रऽचो॒दया॑त् ॥ ९ ॥

पदार्थः-(तत्)(सवितुः)सकलजगदुत्पादकस्य(वरेण्यम्)वरेण्यमुवर्त्तुमर्हमत्युत्तमम्(भर्गः)सर्वदोषप्रदाहकं तेजोमयं शुद्धम्

(देवस्य) स्वप्रकाशस्वरूपस्य सर्वैः कमनीयस्य सर्वसुखप्रदस्य (धीमहि) दधीमहि (धियः) प्रज्ञाः (यः) परमात्मा (नः) अस्माकम् (प्रचोदयात्) ॥ ९ ॥

अन्वयः— हे मनुष्याः सवितुर्देवस्य यद्वरेण्यं भर्गो वयं धीमहि तदेव यूयं धरत यो नः सर्वेषां धियः प्रचोदयात् सोन्तर्यामी सर्वैरुपासनीयः ॥ ९ ॥

भावार्थः— सर्वैर्मनुष्यैः सच्चिदानन्दस्वरूपं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानं विहायैतस्य स्थानेऽन्यस्य कस्य चित्पदार्थस्योपासनास्थापनं कदाचिन्नैव कार्य्यं कस्मै प्रयोजनाययोऽस्माभिरुपासितः सन्नस्माकं बुद्धीरधर्माचरणान्निवर्त्य धर्माचरणे प्रवर्त्तयेत् । येनशुद्धाः सन्तो वयं तं परमात्मानं प्राप्यैहिकपारमार्थिके सुखे भुञ्जीमहीत्यस्मै ॥ ९ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो (सवितुः) समस्त संसार उत्पन्न करनेहारे (देवस्य) आपसे आपही प्रकाश रूप सब के चाहने योग्य समस्त सुखों के देने हारे परमेश्वर के जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम (भर्गः) समस्त दोषों के दाह करने तेजोमय शुद्धस्वरूप को हम लोग (धीमहि) धारण करते हैं (तत्) उसको तुमलोग धारण करो (यः) जो (नः) हम सब लोगोंकी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरे अर्थात् उनको अच्छेर कामों में लगावे वह अन्तर्यामी परमात्मा सब के उपासना करने के योग्य है॥९॥

भावार्थः— सब मनुष्यों को चाहिये कि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्धि मुक्तस्वभाव सबके अन्तर्यामी परमात्मा को छोड़के उसकी जगह में अन्य किसी पदार्थ की उपासना का स्थापन कभी न करें किस प्रयोजन के लिये कि जो हम लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा हमारी बुद्धियों को अधर्म के आचरण से छुड़ाके धर्म के आचरण में प्रवृत करे जिसे शुद्ध हुए हमलोग उस परमात्मा को प्राप्त होकर इस लोक और परलोक के सुखों को भोगें इस प्रयोजन के लिये ॥ ९ ॥

हिरण्यपाणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

हिर॑ण्यपाणिमूतये॑ सवि॒तार॒मुप॑ह्वये । सचेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम् ॥ १० ॥

हिर॑ण्यपाणि॒मिति॒ हिर॑ण्यऽपाणि॒म् । ऊ॒तये॑ । स॒वि॒तार॑म् । उप॑ । ह्व॒ये॒ । सः । चेता॑ । दे॒वता॑ । प॒दम् ॥१०॥

पदार्थः— (हिरण्यपाणिम्) हिरण्यानि सूर्य्यादीनि तेजांसि पाणौ स्तवने यस्य तम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (सवितारम्) सकलैश्वर्य्यप्रापकम् (उप) (ह्वये) ध्यानयोगेनाह्वये (सः) (चेत्ता) सम्यग्ज्ञानस्वरूपत्वेन सत्याऽसत्यज्ञापकः (देवता) उपासनीय इष्टदेव एव (पदम्) प्राप्तुमर्हम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यमहमूतये हिरण्यपाणिं पदं सवितारमुपह्वये स चेत्ता देवतास्तीति यूयं विजानीत ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यैरितः पूर्वमन्त्रार्थस्य विवरणं वेदितव्यम् । चेतनस्वरूपस्य परमात्मन उपासनां विहाय कस्याप्यन्यस्य जडस्योपासना कदापि नैव कार्या नहि जडमुपासितं सद्धानिलाभकारकं रक्षकं च भवति तस्माच्चेतनैः सर्वैर्जीवैश्चेतनो जगदीश्वर एवोपासनीयो नेतरो जडत्वादिगुणयुक्तः पदार्थः ॥ १० ॥

पदार्थः--हे मनुष्यो मैं जिस (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (हिरण्यपाणिम्) जिस की स्तुति करने में सूर्य आदि तेज हैं (पदम्) उस पाने योग्य (सवितारम् (समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले जगदीश्वर को (उपह्वये) ध्यान के योग से बुलाता हूं (सः) वह (चेत्ता) अच्छे ज्ञान स्वरूप होने से सत्य और मिथ्या का जनाने वाला (देवता) उपासना करने योग्य इष्ट देव ही है यह तुम सब जानो ॥ १० ॥

भावार्थः-मनुष्यों को योग्य है कि इस मंत्र से ले के पूर्वोक्त मंत्र गायत्री जो कि गुरुमंत्र है उसी के अर्थ का तात्पर्य है ऐसा जानें । चेतन स्वरूप परमात्मा की उपासना को छोड़ किसी अन्य जड़ की उपासना कभी न करें क्योंकि उपासना अर्थात् सेवा किया हुआ जड़ पदार्थ हानि लाभ कारक और रक्षा करने हारा नहीं होता इस से चित्तवान् समस्त जीवों को चेतन स्वरूप जगदीश्वर ही की उपासना करनी योग्य है अन्य जड़ता आदि गुण युक्त पदार्थ उपास्य नहीं ॥ १० ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

दे॒वस्य॒ चेत॑तो म॒हीम्प्रस॑वि॒तुर्ह॑वाम॑हे । सुम॒ति॒ᳪ स॒त्यरा॑धसम् ॥ ११ ॥

दे॒वस्य॑ । चेत॑तः । म॒हीम् । प्र । स॒वि॒तुः । ह॒वा॒म॒हे॒ । सु॒म॒तिमिति॑ सुऽम॒तिम् । स॒त्यरा॑धस॒मिति॑ स॒त्यऽरा॑धसम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(देवस्य) स्तोतुमर्हस्य (चेततः) चेतनस्वरूपस्य (महीम्) महतीम् (प्र) (सवितुः) सर्वसंसारोत्पादकस्य (हवामहे) आदद्याम (सुमतिम्) शोभनां प्रज्ञाम् (सत्यराधसम्) सत्यं राध्नोतियया ताम् ॥ ११ ॥

अन्वयः--हे मनुष्या यथा वयं सवितुश्चेततो देवस्येश्वरस्योपासनां कृत्वा महीं सत्यराधसं सुमतिं प्रवृणीमहे तथैतमुपास्यैतां यूयं प्राप्नुत ॥ ११ ॥

भावार्थः--हे मनुष्या येन चेतनस्वरूपेण जगदीश्वरेणाखिलं जगदुत्पादितं तस्यैवाराधनेन सत्यविद्यायुक्तां प्रज्ञां यूयं प्राप्तुं शक्नुथ नेतरस्यजडस्याराधनेन ॥११॥

पदार्थः--हे मनुष्यो जैसे हम लोग (सवितुः) समस्त संसार के उत्पन्न करने हारे (चेततः) चेतनस्वरूप (देवस्य) स्तुति करने योग्य ईश्वर की उपासना कर (महीम्) बड़ी (सत्यराधसम्) जिस से जीव सत्य को सिद्ध करता है उस (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि को (प्र, वृणीमहे) ग्रहण करते हैं वैसे उस परमेश्वर की उपासना कर उस बुद्धि को तुम लोग प्राप्त होओ॥११॥

भावार्थः--हे मनुष्यो जिस चेतनस्वरूप जगदीश्वर ने समस्त संसार को उत्पन्न किया है उस की आराधना उपासना से सत्यविद्यायुक्त उत्तम बुद्धि को तुम लोग प्राप्त हो सकते हो किन्तु इतर जड़ पदार्थ की आराधनासे कभी नहीं ॥ ११ ॥

सुष्टुतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता ।
गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह
फिर उसी वि० ॥

सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳ सवितुरीमहे। प्र देवाय मतीविदे॥ १२॥

सुष्टुतिम् सुस्तुतिमिति सुऽस्तुतिम् । सुमतीवृधः । सुमतिवृध इति सुमतिऽवृधः । रातिम् । सवितुः । ईमहे । प्र । देवाय मतीविदे । मतिविद इति मतिऽविदे ॥ १२ ॥

पदार्थः--(सुष्टुतिम्) शोभनां स्तुतिम् (सुमतीवृधः) यः सुमतिं वर्द्धयति तस्य । अत्र संहितायां दीर्घः (रातिम्) दानम् (सवितुः) सर्वोत्पादकस्य (ईमहे) याचामहे (प्र) (देवाय) विद्यां कामयमानाय (मतीविदे) यो मतिं ज्ञानं विन्दति तस्मै अत्र । संहितायामिति दीर्घः ॥ १२ ॥

अन्वयः--हे मनुष्या यथा वयं सुमतीवृधः सवितुरीश्वरस्यसुष्टुतिं कृत्वैतस्मान्मतीविदे देवाय रातिं प्रेमहे तथैतामस्माद्यूयमपियाचध्वम् ॥ १२ ॥

भावार्थः-- अत्र वाचकलु०--यदा२परमेश्वरस्य प्रार्थना कार्य्या तदा २ स्वार्था परार्था वा सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्ता प्रज्ञैव याचनीया यस्यां प्राप्तायां जीवाः सर्वाणि सुखसाधनानि प्राप्नुवन्ति ॥ १२ ॥

पदार्थः--हे मनुष्यो जैसे हम लोग (सुमतीवृधः) जो उत्तम मति को बढ़ाता (सवितुः) सब को उत्पन्न करता उस ईश्वर की (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति कर इस से (मतीविदे) जो ज्ञान को प्राप्त होता है उस (देवाय) विद्या आदि गुणों की कामना करने वाले मनुष्य के लिये (रातिम्) देने को (प्रेमहे) भली भांति मांगते हैं वैसे इस देने की क्रिया को इस ईश्वर से तुम लोग भी मांगो ॥ १२ ॥

भावार्थः--इस मंत्र में वाचकलु०--जब २ परमेश्वर की प्रार्थना करने योग्य हो तब २ अपने लिये वा और के लिये समस्त शास्त्र के विज्ञान से युक्त उत्तम बुद्धि ही मांगनी चाहिये जिस के पाने पर समस्त सुखों के साधनों को जीव प्राप्त होते हैं ॥

रातिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुपह्वये । आसवं देववीतये ॥ १३ ॥

रातिम् । सत्पतिमिति सत्ऽपतिम् । महे । सवितारम् । उप । ह्वये । आसवमित्याऽसवम् । देववीतय इति देवऽवीतये ॥ १३ ॥

पदार्थः--(रातिम्) दातारम् (सत्पतिम्) सतां जीवानां पदार्थानां वा पालकम् (महे) महत्यै (सवितारम्) सकलजगदुत्पादकम् (उप) (ह्वये) उपस्तुयाम् (आसवम्) समन्तादैश्वर्ययुक्तम् (देववीतये) दिव्यानां गुणानां विदुषां वा प्राप्तये ॥ १३ ॥

अन्वयः--हे मनुष्या यथाऽहं महे देववीतये रातिमासवं सत्पतिं सवितारमुपह्वये तथा यूयमप्येनं प्रशंसत॥१३॥

भावार्थः--अत्र वाचकलु०--यदि मनुष्या धर्मार्थकामसिद्धिं कामयेरँस्तर्हि परमात्मानमेवोपास्य तदाऽऽज्ञायां वर्त्तेरन् ॥ १३ ॥

पदार्थः--हे मनुष्यो जैसे मैं (महे) बड़ी (देववीतये) दिव्यगुण और विद्वानों की प्राप्ति के लिये (रातिम्) देने हारे (आसवम्) सब ओर से ऐश्वर्ययुक्त (सत्पतिम्) सत्य वा नित्य विद्यमान जीव वा पदार्थों की पालना करने और (सवितारम्) समस्त संसार को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर की (उपह्वये) ध्यान योग से समीप में स्तुति करूं वैसे तुम भी इस की प्रशंसा करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—यदि मनुष्य धर्म अर्थ और काम की सिद्धि को चाहे तो परमात्मा की ही उपासना कर उस ईश्वर की आज्ञा में वर्त्ते ॥ १३ ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि०

दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्म॒तिमा॑स॒वं वि॒श्वदे॑व्यम् । धि॒या भगं॑ मनामहे ॥ १४ ॥

दे॒वस्य॑ । स॒वि॒तुः । म॒तिम् । आ॒स॒वमित्या॑ऽस॒वम् । वि॒श्वदे॑व्य॒मिति॑ वि॒श्वऽदे॑व्यम् । धि॒या । भग॑म् । म॒ना॒म॒हे॒ ॥ १४ ॥

पदार्थः—(देवस्य) सकलसुखप्रदातुः (सवितुः) सकलैश्वर्य्यप्रदातुः (मतिम्) प्रज्ञाम् (आसवम्) सकलैश्वर्य्यहेतुम् (विश्वदेव्यम्) विश्वेभ्यो देवेभ्यो हितम् (धिया) प्रज्ञया (भगम्) उत्तमैश्वर्य्यम् (मनामहे) याचामहे ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं सवितुर्देवस्य परमात्मनः सकाशान्मतिमासवं च प्राप्य तया धिया सर्वं विश्वदेव्यं भगं मनामहे तथा यूयमपि कुरुत ॥ १४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरोपासनया प्रज्ञां प्राप्यैतया पूर्णमैश्वर्य्यं विधाय सर्वप्राणिहितं संसाधनीयम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (सवितुः) सकल ऐश्वर्य और (देवस्य) समस्त सुख देनेहारे परमात्मा के निकट से (मतिम्) बुद्धि

और (आसवम्) समस्त ऐश्वर्य के हेतु को प्राप्त होकर उस (धिया) बुद्धि से समस्त (विश्वदेव्यम्) सब विद्वानों के लिये हितदेने हारे (भगम्) उत्तम ऐश्वर्य को (मनामहे) मांगते हैं वैसे तुम लोग भी मांगो ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वरकी उपासना से उत्तम बुद्धि को पाके उस से पूर्ण ऐश्वर्य का विधान कर सब प्राणियों के हित को सम्यक् सिद्ध करें ॥ १४ ॥

अग्निमित्यस्य सुतम्भर ऋषिः । निचृद्गायत्री-छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ यज्ञकर्मविषयमाह ॥

अब यज्ञकर्म वि० ॥

अ॒ग्नि स्तोमे॑न बोधय समिधा॒नोऽअम॑र्त्यम् । ह॒व्या दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥ १५ ॥

अ॒ग्निम् । स्तोमे॑न । बोधय । समिधा॒नऽइति॑ सम्ऽइधा॒नः । अम॑र्त्यम् । ह॒व्या । दे॒वेषु॑ । नः । द॒धत् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) पावकम् (स्तोमेन) इन्धनसमूहेन (बोधय) (समिधानः) प्रदीप्यमानः (अमर्त्यम्) कारणरूपेण मरणधर्मरहितम् (हव्या) आदातुं दातुमर्हाणि (देवेषु) दिव्येषु वाय्वादिषु (नः) अस्मभ्यम् (दधत्) दधाति ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यः समिधानोऽग्निर्देवेषु हव्या नो दधत् तममर्त्यमग्निं स्तोमेन बोधय प्रदीपय ॥ १५ ॥

भावार्थः- यदाग्नौ समिधः प्रक्षिप्य सुगन्ध्यादि द्रव्यं जुहुयुस्तर्ह्ययं तद्वाय्वादिषु विस्तार्य सर्वान् प्राणिनः सुखयति ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो (समिधानः) भली भांति दीपता हुआ अग्नि (देवेषु) दिव्य वायु आदि पदार्थों में (हव्या) लेने देने योग्य पदार्थों को (नः) हमारे लिये (दधत्) धारण करता है उस (अमर्त्यम्) कारणरूप अर्थात् परमाणुभाव से विनाश होने के धर्म से रहित (अग्निम्) आग को (स्तोमेन) इन्धनसमूह से (बोधय) चिताओ अर्थात् अच्छे प्रकार जलाओ ॥ १८ ॥

भावार्थः—यदि अग्नि में समिधा छोड़ दिव्य २ सुगन्धित पदार्थ को होमें तो यह अग्नि उस पदार्थ को वायु आदि में फैला के सब प्राणियों को सुखी करता है ॥ १८ ॥

स हव्यवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
पुनरग्निः कीदृशोऽस्तीत्याह ॥
फिर अग्नि कैसा है इस वि० ॥

स ह॒व्य॒वाडम॑र्त्य उ॒शिग्दू॒तश्चनो॑हितः ।
अ॒ग्निर्धि॒या समृ॑ण्वति ॥ १९ ॥

सः । ह॒व्य॒वाडिति॑ ह॒व्य॒ऽवाट् । अम॑र्त्यः । उ॒शिक् । दू॒तः । चनो॑हित॒ इति॒ चनः॑ऽहितः । अ॒ग्निः । धि॒या । सम् । ऋ॒ण्व॒ति॒ ॥ १९ ॥

पदार्थः—(सः) (हव्यवाट्) यो हव्यं वहति देशान्तरं प्रापयति सः (अमर्त्यः)मृत्युधर्मरहितः (उशिक्)कान्तिमान् (दूतः)दूत इव वर्त्तमानः (चनोहितः)यश्चनांसि अन्नानि हिनोति प्रापयति सः(अग्निः) पावकः (धिया)कर्मणा(सम्) (ऋण्वति)प्राप्नोति ॥ १६ ॥

अन्वयः—हेमनुष्या योऽमर्त्यो हव्यवाडुशिग्दूतश्च-नोहितोऽग्निरस्ति स धिया समृण्वति ॥ १६ ॥

भावार्थः—यथा कयार्थ प्रेषितो दूतः कार्यसाधको भवति तथा सम्प्रयोजितोग्निः सुखकार्य्यसिद्धिकरो भवति ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अमर्त्यः) मृत्युधर्म से रहित (हव्यवाट्) होमे हुए पदार्थ को एक देश से दूसरे देश में पहुंचाता (उशिक्) प्रकाशमान (दूतः) दूत के समान वर्त्तमान (चनोहितः) और जो अन्नों की प्राप्ति कराने वाला (अग्निः) अग्नि है (सः) वह (धिया) कर्म अर्थात् उस के उपयोगी शिल्प आदि काम से (सम्, ऋण्वति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

भावार्थः—जैसे काम के लिये भेजा हुआ दूत करने योग्य काम को सिद्ध करने हारा होता है वैसे अच्छे प्रकार युक्त किया हुआ अग्नि सुखसंबन्धी कार्य्य की सिद्ध करने हारा होता है ॥ १६ ॥

अग्निं दूतमित्यस्य विश्वरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अथाग्निगुणा उच्यन्ते ॥

अब अग्नि के गुणों के वि० ॥

अ॒ग्निं दू॒तं पु॒रो द॑धे हव्य॒वाह॒मुप॑ ब्रुवे। दे॒वाँ२॥ आसा॑दयादि॒ह ॥ १७ ॥

अ॒ग्निम्। दू॒तम्। पु॒रः। द॒धे। ह॒व्य॒वाह॒मिति॑ हव्य॒ऽवाह॑म्। उप॑। ब्रु॒वे॒। दे॒वान्। आ। सा॒द॒या॒त्। इ॒ह ॥ १७ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) वह्निम् (दूतम्) दूतवत् कार्यसाधकम् (पुरः) अग्रतः (दधे) धरामि (हव्यवाहम्) यो हव्यानि अत्तुमर्हाणि वहति प्रापयति तम् (उप) (ब्रुवे) उपदिशामि (देवान्) दिव्यान् भोगान् (आ) समन्तात् (सादयात्) सादयेत् प्रापयेत् (इह) अस्मिन् संसारे ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या य इह देवानासादयात्तं हव्यवाहं दूतमग्निं पुरोदधे युष्मान् प्रत्युपब्रुवे यूयमप्येवं कुरुतेति ॥ १७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथाऽग्निर्दिव्यसुखप्रदोऽस्ति तथा वाय्वादयोऽपि वर्तन्त इति वेद्यम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इह) इस संसार में (देवान्) दिव्य भोगों को (आ, सादयात्) प्राप्त करावे उस (हव्यवाहम्) भोजन करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति कराने और (दूतम्) दूत के समान कार्यसिद्धि करनेहारे (अग्निम्) अग्नि को (पुरः) आगे (दधे) धरता हूं और तुम लोगों के प्रति (उप, ब्रुवे) उपदेश करता हूं कि तुम लोग भी ऐसे ही किया करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे अग्नि दिव्य सुखों का देने वाला है वैसे पवन आदि भी पदार्थ सुख देने में प्रवर्त्तमान हैं यह जानना चाहिये ॥ १७ ॥

अजीजन इत्यस्यारुणत्रसदस्यू ऋषी । पवमानो देवता । पिपीलिकामध्या विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः सूर्य रूपोऽग्निः कीदृश इत्याह ॥

फिर सूर्य रूप अग्नि कैसा है इस वि० ॥

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥

अजीजनः । हि । पवमान । सूर्यम् । विधारऽइति विऽधारे । शक्मना । पयः । गोजीरयेति गोऽजीरया । रꣳहमाणः । पुरन्ध्येति पुरम्ऽध्या ॥ १८ ॥

पदार्थः--(अजीजनः) जनयति (हि) खलु (पवमान) पवित्रकारक (सूर्यम्) सवितृमण्डलम् (विधारे) धारये स्मि (शक्मना) कर्मणा । शक्मेति कर्मनाम निघं० २।१ (पयः) उदकम् (गोजीरया) गवां जीरया जीवनक्रियया (रंहमाणः) गच्छन् (पुरन्ध्या) यया पुरं दधाति तया ॥ १८ ॥

अन्वयः-- हे पवमानाग्निवत्पवित्र जन योऽग्निः पुरन्ध्या रंहमाणः सूर्यमजीजनस्तं शक्मना गोजीरया पयश्चाऽहं विधारे हि ॥ १८ ॥

भावार्थः-- यदि विद्युत्सूर्यस्य कारणं न स्यात्तर्हि सूर्योत्पत्तिः कथं स्याद्यदि सूर्यो न स्यात्तर्हि भूगोलधृतिर्वृष्ट्या गवादिपशुजीवनं च कथं स्यात् ॥ १८ ॥

पदार्थः— हे (पवमान) पवित्र करनेहारे अग्नि के समान पवित्रजन तू जो अग्नि (पुरन्ध्या) जिस क्रिया से नगरी को धारण करता उस से (रंहमाणः) जाता हुआ (सूर्यम्) सूर्य को (अजीजनः) प्रगट करता उसको और (शक्मना) कर्म वा (गोजीरया) गौ आदि पशुओं की जीवन क्रिया से (पयः) जलको मैं (विधारे) विशेष करके धारण करता (हि) ही हूं ॥१८॥

भावार्थः— जो विजुली सूर्य्य का कारण न होती तो सूर्य्य की उत्पत्ति कैसे होती जो सूर्य न हो तो भुगोल का धारण और वर्षा से गो आदि पशुओं का जीवन कैसे हो? ॥ १८ ॥

विभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा असि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि । देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितं रक्षत । इह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥

विभूरिति विऽभूः । मात्रा । प्रभूरिति प्रऽभूः । पित्रा । अश्वः । असि । हयः । असि । अत्यः । असि । मयः । असि । अर्वा । असि । सप्तिः । असि । वाजी । असि । वृषा । असि । नृमणाः । नृमना इति नृऽमनाः । असि । ययुः । नाम । असि । शिशुः । नाम । असि । आदित्यानाम् । पत्वा । अनु । इहि । देवाः । आशापालाः । आशापाला इत्याशाऽपालाः । एतम् । देवेभ्यः । अश्वम् । मेधाय । प्रोक्षितमिति प्रऽउक्षितम् । रक्षत । इह । रन्तिः । इह । रमताम् । इह । धृतिः । इह । स्वधृतिरिति स्वऽधृतिः । स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः--(विभूः) व्यापकः (मात्रा) जननीवद्वर्त्तमानया पृथिव्या (प्रभूः) समर्थः (पित्रा) वायुना (अश्वः) योऽश्नुते व्याप्नोति मार्गान्सः (असि) अस्ति । अत्र सर्वत्रः व्यत्ययः (हयः) हय इव शीघ्रगामी (असि) (अत्यः) योऽति सततं गच्छति सः (असि) (मयः) सुखकारी (अर्वा) यः सर्वान् ऋच्छति सः (असि) (सप्तिः) मूर्त्तद्रव्यसम्बन्धी (असि) (वाजी) वेगवान् (असि) (वृषा) वृष्टिकर्त्ता (असि) (नृमणाः) यो नृषु नेतृषु पदार्थेषु मन इव सद्योगामी (असि) (ययुः) यो याति सः (नाम) अभ्यसनीयः (असि) (शिशुः) यः श्यति तनूकरोति सः (नाम) वाग् । नामेति वङ्नाम० निघं० १।११ (असि) (आदित्यानाम्) मासानाम् (पत्वा) योऽधः पतति सः (अनु) (इहि) एति (देवाः) विद्वांसः (आशापालाः) य आशा दिशः पालयन्ति (एतम्) वन्हिम् (देवेभ्यः) दिव्यभोगेभ्यः (अश्वम्) व्याप्तिशीलम् (मेधाय) संगमाय बुद्धिप्रापणाय दुष्टहिंसनाय वा (प्रोक्षितम्) जलेन सिक्तम् (रक्षत) (इह) (रन्तिः) रमणम् (इह) (रमताम्) क्रीडतु (इह) (धृतिः) धैर्यम् (इह) (स्वधृतिः) स्वस्य धारणम् (स्वाहा) सत्यया क्रियया ॥१९ ॥

अन्वयः—हे आशापाला देवा यूयं यो मात्रा विभूः पित्रा प्रभूरश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वाऽसि सप्तिरसि वाज्यसि वृषाऽसि नृमणा असि ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वाऽन्विहि एतमश्वं स्वाहा

देवेभ्यो मेधाय प्रोक्षितं रक्षत येनेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्यात् ॥ १९ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः पृथिव्यादिषु व्यापकं सर्वेभ्यो वेगवद्भ्योऽतिशयेन वेगवन्तं वह्निं गुणकर्मस्वभावतो विजानन्ति ते सुखेनेह क्रीडन्ति ॥ १९ ॥

पदार्थः— हे (आशापालाः) दिशाओं के पालने वाले (देवाः) विद्वानो तुम जो लोग (मात्रा) माता के समान वर्त्तमान पृथिवी से (विभूः) व्यापक (पित्रा) पिता रूप पवन से (प्रभूः) समर्थ और (अश्वः) मार्गों को व्याप्त होने वाला (असि) है (हयः) घोड़े के समान शीघ्र चलने वाला (असि) है (अत्यः) जो निरन्तर जाने वाला (असि) है (मयः) सुख का करने वाला (असि) है (अर्वा) जो सब को प्राप्त होने हारा (असि) है (सप्तिः) मूर्तिमान् पदार्थों का संबन्ध करने वाला (असि) है (वाजी) वेगवान् (असि) है (वृषा) वर्षा का करने वाला (असि) है (नृमणाः) सब प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त कराने हारे पदार्थों में मन के समान शीघ्र जाने वाला (असि) है (ययुः) जो प्राप्ति कराता वा जाता ऐसे (नाम) नाम वाला (असि) है जो (शिशुः) व्यवहार के योग्य विषयों को सूक्ष्म करती ऐसी (नाम) उत्तम वाणी (असि) है जो (आदित्यानाम्) महीनों के (पत्वा) नीचे गिरता (अन्विहि) अन्वित अर्थात् मिलता है (एतम्) इस (अश्वम्) व्याप्त होने वाले अग्नि को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (देवेभ्यः) दिव्यभोगों के लिये तथा (मेधाय) अच्छे गुणों के मिलाने बुद्धि की प्राप्ति करने वा दुष्टों को मारने के लिये (प्रोक्षितम्) जल से सींचा हुआ (रक्षत) रक्खो जिससे (इह) इस संसार में (रन्तिः) रमण अर्थात् उत्तम सुख में रमना हो (इह) यहां (रमताम्) क्रीडा करें तथा (इह) यहां (धृतिः) सामान्य धारणा और (इह) यहां (स्वधृतिः) अपने पदार्थों की धारणा हो ॥१९॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी आदि लोकों में व्याप्त और समस्त वेग वाले पदार्थों में अतीव वेगवान् अग्नि को गुण कर्म और स्वभाव से जानते हैं वे इस संसार में सुख से रमते हैं ॥ १९ ॥

कायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापत्यादपो देवताः। आद्यस्य विराडतिधृतिः। उत्तरस्य निचृदतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अथ कस्मै प्रयोजनाय होमः कर्त्तव्यइत्याह॥

अब किस प्रयोजन के लिये होम करना चाहिये इस वि०॥

कार्य स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥ २० ॥

कार्य। स्वाहा। कस्मै। स्वाहा। कतमस्मै। स्वाहा। स्वाहा। आधिमित्याऽधिम्। आधीतायेत्याऽधीताय।

स्वाहा । मनः । प्रजापतय इति प्रजाऽपतये । स्वाहा । चित्तम् । विज्ञातायेति विऽज्ञाताय। अदित्यै । स्वाहा । अदित्यै । मह्यै । स्वाहा । अदित्यै । सुमृडीकायाऽइति सुऽमृडीकायै । स्वाहा । सरस्वत्यै । स्वाहा । सरस्वत्यै । पावकायै । स्वाहा । सरस्वत्यै । बृहत्यै । स्वाहा । पूष्णे । स्वाहा । पूष्णे । प्रपथ्यायेति प्रऽपथ्याय । स्वाहा । पूष्णे । नरन्धिषाय । स्वाहा । त्वष्ट्रे । स्वाहा । त्वष्ट्रे । तुरीपाय । स्वाहा । त्वष्ट्रे । पुरुरूपायेति पुरुऽरूपाय । स्वाहा । विष्णवे । स्वाहा । विष्णवे । निभूयपायेति निभूयऽपाय । स्वाहा । विष्णवे । शिपिविष्टायेति शिपिऽविष्टाय । स्वाहा ॥ २० ॥

पदार्थः—(काय)सुखसाधककायविदुषे (स्वाहा)सत्या क्रिया(कस्मै)सुखस्वरूपाय(स्वाहा) (कतमस्मै)बहूनां मध्ये वर्त्तमानाय(स्वाहा) (स्वाहा) (आधिम्)यः समन्ताद्दधाति तम्(आधीताय)समन्ताद्विद्यावृद्धये(स्वाहा)(मनः)(प्रजापतये)(स्वाहा)सत्या क्रिया(चित्तम्)स्मृतिसाधकम्(विज्ञाताय) (अदित्यै)पृथिव्यै । अदितिरिति पृथिवीना० निघं० १।१। (स्वाहा) (अदित्यै)नाशरहितायै (मह्यै) महत्यैवाचे(स्वाहा) (अदित्यै)जनन्यै (सुमृडीकायै) सुष्ठुसुखकारिकायै (स्वाहा (सरस्वत्यै)नद्यै(स्वाहा)(सरस्वत्यै)विद्यायुक्तायै वाचे(पावकायै)पवित्रकर्यै(स्वाहा)(सरस्वत्यै)विदुषां वाचे(बृहत्यै)

महत्यै(स्वाहा)(पूष्णे)पुष्टिकर्त्रे(स्वाहा)(पूष्णे)पुष्टाय(प्रपथ्याय)प्रकर्षेण पथ्यकरणाय(स्वाहा (पूष्णे)पोषकाय(नरन्धिषाय)यो नरान् दिधेष्टच् पदिशति तस्मै(स्वाहा)(त्वष्ट्रे)प्रकाशाय । त्विषइतोऽत्त्वम् । उणादौ पा० २।९५ अनेनायंसिद्धः (स्वाहा)त्वष्ट्रे)विद्याप्रकाशकाय(तुरीपाय)नौकानां पालकाय(स्वाहा)त्वष्ट्रे)प्रकाशकाय(पुरुरूपाय)बहुरूपाय (स्वाहा) (विष्णवे)व्यापकाय(स्वाहा) (निभूयपाय,यो नितरां रक्षितो भूत्वाऽन्यान् पालयति तस्मै(स्वाहा)(विष्णवे) (शिपिविष्टाय) शिपिष्वाक्रोशत्सु प्राणिषु व्याप्तया प्रविष्टाय(स्वाहा) ॥२०॥

अन्वयः—यैर्मनुष्यैः काय स्वाहा कस्मै स्वाहाकतमस्मै स्वाहाऽऽधिं प्राध्य स्वाहाऽऽधीताय स्वाहा प्रजापतये मनः स्वाहा विज्ञाताय चित्तमदित्यै स्वाहा मह्याऽअदित्यै स्वाहा सुडीकाया अदित्यै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पावकायै सरस्वत्यै स्वाहा बृहत्यै सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा प्रपथ्याय पूष्णे स्वाहा नरन्धिषाय पूष्णे स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा तुरीपायत्वष्ट्रे स्वाहा पुरुरूपाय त्वष्ट्रे स्वाहा विष्णवे स्वाहा निभूयपाय विष्णवे स्वाहा शिपिविष्टाय विष्णवे स्वाहा कृतास्ते कथं न सुखिनः स्युः ॥ २० ॥

भावार्थः-- ये विद्वत्सुखाऽध्ययनान्तः करणविज्ञानवाग्वाय्वादि शुद्धये यज्ञक्रिया कुर्वन्ति ते सुखिनोभवन्ति ॥ २० ॥

पदार्थः---जिन मनुष्यों ने (काय) सुख साधने वाले के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (कस्मै) सुख स्वरूप के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (कतमस्मै बहुतों में जो वर्त्तमान उस के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (आधिम्)जो

अच्छे प्रकार पदार्थों को धारण करता उस को प्राप्त हो कर (स्वाहा) सत्य क्रिया (आधीताय) सब ओर से विद्या वृद्धि के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (प्रजापतये) प्रजाजनों की पालना करने हारे के लिये (मनः) मन की (स्वाहा) सत्यक्रिया (विज्ञाताय) विशेष जाने हुए के लिये (चित्तम्) स्मृति सिद्ध कराने अर्थात् चेत दिलाने हारा चैतन्य मन (अदित्यै) पृथिवी के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (मह्यै) वड़ी (अदित्यै) विनाश रहित वाणी के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (सुमृडीकायै) अच्छा सुख करने हारी (अदित्यै) माता के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (सरस्वत्यै) नदी के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (पावकायै) पवित्र करने वाली (सरस्वत्यै) विद्यायुक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (बृहत्यै) बड़ी (सरस्वत्यै) विद्वानों की वाणी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (पूष्णे) पुष्टि करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रपथ्याय) उत्तमता से आराम के योग्य भोजन करने तथा (पूष्णे) पुष्टि के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (नरन्धिषाय) जो मनुष्यों को उपदेश देता है उस (पूष्णे) पुष्टि करने हारे के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (तुरीपाय) नौकाओं के पालने (त्वष्ट्रे) और विद्या प्रकाश करने हारे के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (पुरुरूपाय) बहुत रूप और (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (विष्णवे) व्याप्त होने वाले के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (निभूयपाय) निरंतर आप रक्षित हो औरों की पालना करने हारे (विष्णवे) सर्वव्यापक के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया तथा (शिपिविष्टाय) वचन कहते हुए चैतन्य प्राणियों में व्याप्ति से प्रवेश हुए (विष्णवे) व्यापक ईश्वर के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया किई वे कैसे न सुखी हों ॥ २० ॥

भावार्थः—जो विद्वानों के सुख, पढ़ने, अन्तःकरण के विशेष ज्ञान तथा वाणी और पवन आदि पदार्थों की शुद्धि के लिये यज्ञ क्रियाओं को करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ २० ॥

विश्वोदेवस्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वान् देवता।
आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥
पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि०॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम्। विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा॥ २१॥

विश्वः। देवस्य। नेतुः। मर्त्तः। वुरीत। सख्यम्। विश्वः। राये। इषुध्यति। द्युम्नम्। वृणीत। पुष्यसे। स्वाहा॥ २१॥

पदार्थः—(विश्वः) सर्वः (देवस्य) विदुषः (नेतुः) नायकस्य (मर्त्तः) मनुष्यः (वुरीत) वृणुयात्। अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं भहुलं छन्दसीति श्नपो लुक् लिङ्प्रयोगो ऽयम् (सख्यम्) मित्रत्वम् (विश्वः) (राये) धनाय (इषुध्यति) याचते शरान् धरति वा (द्युम्नम्) धनं यशो वा (वृणीत) (पुष्यसे) पुष्टये (स्वाहा)॥ २१॥

अन्वयः—यथा विश्वोमर्त्तो नेतुर्देवस्य सख्यं वुरीत यथावाविश्वो मर्त्यो राय इषुध्यति तथा स्वाहा पुष्यसे द्युम्नं वृणीत॥ २१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—सर्वे मनुष्या विद्वद्भिः सह सुहृदो भूत्वा विद्यां यशश्च गृहीत्वा श्रीमन्तोभूत्वा सुपथ्येन पुष्टाः सन्तु॥ २१॥

पदार्थः—जैसे (विश्वः) समस्त (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) नायक अर्थात् सब व्यवहारों की प्राप्ति कराने हारे (देवस्य) विद्वान् की (सख्यम्) मित्रता को (वुरीत) स्वीकार कर वा जैसे (विश्वः) समस्त मनुष्य (राये) धन के

लिये (इषुध्यति) याचना करता अर्थात् मंगनी मांगता वा बाणों को अपने २ धनुष् पर धारता है वैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया वा सत्य वाणी से (पुष्यसे) पुष्टि के लिये (द्युम्नम्) धन और यश को (वृणीत) स्वीकार करे ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मंत्रमें वाचकलु०—सब मनुष्य विद्वानों के साथ मित्र हो कर विद्या और यश का ग्रहण कर धन और कान्तिमान् हो कर उत्तम योग्य आहार वा अच्छे मार्ग से पुष्ट हों ॥ २१ ॥

आब्रह्मन्नित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः लिंगोक्ता देवताः ।
स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैः किमेष्टव्यमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस वि०

आ ब्रह्म॑न् ब्राह्म॒णो ब्र॑ह्मवर्च॒सी जा॑यतामा रा॒ष्ट्रे रा॑ज॒न्यः शूर॑ऽइष॒व्यो॒ऽति॑व्या॒धी म॑हार॒थो जा॑यतां॒ दोग्ध्री॑ धे॒नु-र्वोढा॑न॒ड्वाना॒शुः सप्ति॑ः पुर॑न्धि॒र्योषा॑ जि॒ष्णू र॑थे॒ष्ठाः स॒भेयो॒ युवास्य यज॑मा-नस्य वी॒रो जा॑यतां निका॒मे नि॑कामे नः प॒र्जन्यो॑ वर्षतु॒ फल॑वत्यो न॒ऽ ओष॑धयः पच्यन्तां योगक्षे॒मो न॑ः कल्पताम् ॥२२॥

आ । ब्रह्म॑न् । ब्रा॒ह्म॒णः । ब्र॒ह्म॒व॒र्च॒सीति॑ ब्रह्मऽवर्च॒सी । जा॒य॒ता॒म् । आ । रा॒ष्ट्रे । रा॒ज॒न्यः॑ । शूरः॑ । इ॒ष॒व्यः॑ । अ॒ति॒व्या॒धीत्य॑ति॒ऽव्या॒धी । म॒हा॒र॒थ इति॑ म॒हाऽर॒थः । जा॒य॒ता-

म् । दोग्ध्री । धेनुः । वोढा । अनड्वान् । आशुः । सप्तिः । पुरन्धिरिति पुरम्ऽधिः । योषा । जिष्णुः । रथेष्ठाः । रथेस्थाऽइति रथेऽस्थाः । सभेयः । युवा । आ । अस्य । यजमानस्य । वीरः । जायताम् । निकामे निकामऽइति निकामेऽनिकामे । नः । पर्जन्यः वर्षतु । फलवत्यऽइति फलऽवत्यः । नः । ओषधयः । पच्यन्ताम् । योगक्षेम इति योगऽक्षेमः । नः । कल्पताम् ॥ २२ ॥

पदार्थः--(आ) समन्तात् (ब्रह्मन्) विद्यादिना सर्वेभ्यो महन् परमात्मन् (ब्रह्मणः) वेदेश्वरवित् (ब्रह्मवर्चसी) वेदविद्याप्रदीप्तः (जायताम्) उत्पद्यताम् (आ) (राष्ट्रे) राज्ये (राजन्यः) राजपुत्रः (शूरः) निर्भयः (इषव्यः) इषुषु साधुः (अतिव्याधी) अतिशयेन व्यद्धुं शत्रूँस्ताडयितुं शीलं यस्य सः (महारथः) महान्तो रथाः वीरा वा यस्य सः (जायताम्) (दोग्ध्री) प्रपूरिका (धेनुः) गौः (वोढा) वाहकः (अनड्वान्) वृषभः (आशुः) शीघ्रगामी (सप्तिः) अश्वः (पुरन्धिः) या पुरून् बहून् दधाति सा (योषा) (जिष्णुः) जयशीलः (रथेष्ठाः) यो रथे तिष्ठति सः (सभेयः) सभायां साधुः (युवा) प्राप्तयौवनः (आ) (अस्य) (यजमानस्य) यो यजते देवान् विदुषः सत्करोति संगच्छते सुखानि ददाति वा तस्य (वीरः) विज्ञानवान् शत्रूणां प्रक्षेप्ता (जायताम्) (निकामेनिकामे) निश्चिते प्रत्येककामनायाम् (नः) अस्माकम् (पर्जन्यः) मेघः (वर्षतु) (फलवत्यः) बहूत्तमफलाः (नः) (अस्मभ्यम्) ओषधयः य-

वादयः (पच्यन्ताम्) परिपक्वा भवन्तु (योगक्षेमः) अप्राप्तस्य प्राप्तिलक्षणो योगस्तस्य रक्षणं क्षेमः (नः) अस्मभ्यम् (कल्पताम्) समर्थो भवतु ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन् यथा नो राष्ट्रे ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण आजायतामिषव्योऽतिव्याधी महारथः शूरो राजन्य आजायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा रथेष्ठा जिष्णुः सभेयो युवाऽऽजायतामस्य यजमानस्य राष्ट्रे वीरो जायतां नो निकामेनिकामे पर्जन्यो वर्षत्वोषधयः फलवत्यो नः पच्यन्तां नो योगक्षेमः कल्पताम् तथा विधेहि ॥ २२ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०—विद्वद्भिरीश्वरप्रार्थनया सहैवमनुष्ठेयं यतः पूर्णविद्याः शूरवीरा मनुष्याः स्त्रियश्च सुखप्रदाः पशवः सभ्या मनुष्या इष्टा वृष्टिर्मधुरफलयुक्ता अन्नौषधयो भवन्तु कामश्च पूर्णः स्यादिति ॥ २२ ॥

पदार्थः— हे (ब्रह्मन्) विद्यादिगुणों करके सब से बड़े परमेश्वर जैसे हमारे (राष्ट्रे) राज्य में (ब्रह्मवर्चसी) वेदविद्या से प्रकाश को प्राप्त (ब्राह्मणः) वेद और ईश्वर को अच्छा जानने वाला ब्राह्मण (आ, जायताम्) सब प्रकार से उत्पन्न हो (इषव्यः) बाण चलाने में उत्तम गुणवान् (अतिव्याधी) अतीव शत्रुओं को व्यधने अर्थात् ताड़ना देने का स्वभाव रखने वाला (महारथः) कि जिसके बड़े२ रथ और अत्यन्त बली वीर हैं ऐसा (शूरः) निर्भय (राजन्यः) राजपुत्र (आ, जायताम्) सब प्रकार से उत्पन्न हो (दोग्ध्री) कामना वा दूध से पूर्ण करने वाली (धेनुः) वाणी वा गौ (वोढा) भार लेजाने में समर्थ (अनड्वान्) बड़ा बलवान् बैल (आशुः) शीघ्र चलने हारा (सप्तिः) घोड़ा (पुरन्धिः) जो बहुत व्यवहारों को धारण करती है वह (योषा) स्त्री (रथेष्ठाः) तथा रथ पर स्थिर होने और (जिष्णुः)

शत्रुओं को जीतने वाला (सभेयः) सभा में उत्तम सभ्य (युवा) ज्वान पुरुष (आ, जायताम्) उत्पन्न हो (अस्य, यजमानस्य) जो यह विद्वानों का सत्कार करता वा सुखों की संगति करता वा सुखों को देता है इस राजा के राज्य में (वीरः) विशेष ज्ञानवान् शत्रुओं को हटाने वाला पुरुष उत्पन्न हो (नः) हमलोगों के (निकामे निकामे) निश्चय युक्त काम२ में अर्थात् जिस२ काम के लिये प्रयत्न करें उस२ काम में (पर्जन्यः) मेघ (वर्षतु) वर्षे (ओषधयः) ओषधि (फलवत्यः) वहुत उत्तम फलवाली (नः) हमारे लिये (पच्यन्ताम्) पकें (नः) हमारा (योगक्षेमः) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति लखाने वाले योग की रक्षा अर्थात् हमारे निर्वाह के योग्य पदार्थों की प्राप्ति (कल्पताम्) समर्थ हो वैसा विधान करो अर्थात् वैसे व्यवहार को प्रगट कराइये ॥ २२ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वानों को ईश्वर की प्रार्थना सहित ऐसा अनुष्ठान करना चाहिये कि जिससे पूर्णविद्या वाले शूरवीर मनुष्य तथा वैसे ही गुण वाली स्त्री, सुख देनेहारे पशु सभ्य मनुष्य चांही हुई वर्षा मिठे फलों से युक्त अन्न और ओषधि हों तथा कामना पूर्ण हो ॥ २२ ॥

प्राणायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः ॥
स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
पुनः किमर्थो होमो विधेय इत्याह ॥
फिर किस लिये होम का विधान करना चाहिये इस वि० ॥

प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥२३॥

प्राणाय । स्वाहा । अपानाय । स्वहा । व्यानायेति विऽआनाय । स्वाहा । चक्षुषे । स्वाहा । श्रोत्राय । स्वाहा । वाचे । स्वाहा । मनसे । स्वाहा ॥ २३ ॥

पदार्थः—(प्राणाय) य आभ्यन्तराद्बहिर्निःसरति तस्मै (स्वाहा) योगयुक्ता क्रिया (अपानाय) यो बहिर्देशादाभ्यन्तरं गच्छति तस्मै (स्वाहा) (व्यानाय) योविविधेष्वङ्गेष्वनिति व्याप्नोति तस्मै (स्वाहा) वैद्यकविद्या युक्ता वाक् (चक्षुषे) चष्टे पश्यति येन तस्मै (स्वाहा) प्रत्यक्षप्रमाणयुक्ता वाणी (श्रोत्राय)शृणोति येन तस्मै (स्वाहा) आप्तोपदेशयुक्ता गीः (वाचे) वक्ति यया तस्यै (स्वाहा) सत्यभाषणादियुक्ता भारती (मनसे) मननिमित्ताय सङ्कल्पविकल्पात्मने (स्वाहा) विचारयुक्तावाणी ॥ २३ ॥

अन्वयः— यैर्मनुष्यैः प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा च प्रयुज्यते ते विद्वांसोजायन्ते ॥ २३ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या यज्ञेन शोधितानि जलौषधिवाय्वन्नपत्रपुष्पफलरसकन्दादीन्यश्नन्ति तेऽरोगा भूत्वा प्रज्ञाबलारोग्यायुष्मन्तो जायन्ते ॥ २३ ॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (प्राणाय) जो पवन भीतर से बाहर निकलता है उस के लिये (स्वाहा) योगविद्या युक्त क्रिया (अपानाय) जो बाहर से भीतर को जाता है उस पवन के लिये (स्वाहा) वैद्यकविद्या युक्त-क्रिया (व्यानाय) जो विविध प्रकार के अङ्गों में व्याप्त होता है उस पवन के लिये (स्वाहा) वैद्यक विद्या युक्त वाणी (चक्षुषे) जिस से प्राणी देखता है उस नेत्र इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) प्रत्यक्ष प्रमाण युक्त वाणी (श्रोत्राय)जिस से सुनता है उस कर्णेन्द्रिय के लिये (स्वाहा) शास्त्रज्ञ विद्वान् के उपदेश युक्त वाणी (वाचे) जिस से बोलता है उस वाणी के लिये (स्वाहा)सत्य-भाषण आदि व्यवहारों से युक्त बोल चाल तथा (मनसे) विचार का निमि-

त संकल्प और विकल्पवान् मन के लिये (स्वाहा) विचार से भरी हुई वाणी प्रयोग की जाती अर्थात् भली भांति उच्चारण की जाती है वे विद्वान् होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, ओषधि, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरवी, आलू, कसेरू, रतालू और शकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते हैं वे नीरोग हो कर बुद्धि, बल, आरोग्यपन और आयुर्दा वाले होते हैं ॥ २३ ॥

प्राच्यै दिश इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । दिशो देवताः ।
निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
पुनः किमर्थो होमः कर्त्तव्य इत्याह ॥
फिर किस लिये होम करना चाहिये इस वि० ॥

प्राच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ दक्षि॑णायै दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ प्र॒तीच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहो॒दीच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहो॒र्ध्वायै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहावा॑च्यै दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ ॥ २४ ॥

प्राच्यै । दिशे । स्वाहा । अर्वाच्यै । दिशे । स्वाहा । दक्षिणायै । दिशे । स्वाहा । अर्वाच्यै । दिशे । स्वाहा । प्रतीच्यै । दिशे । स्वाहा । अर्वाच्यै । दिशे । स्वाहा । उदीच्यै । दिशे । स्वाहा । अर्वाच्यै । दिशे । स्वाहा । ऊर्ध्वायै । दिशे । स्वाहा । अर्वाच्यै । दिशे । स्वाहा । अवाच्यै । दिशे । स्वाहा । अर्वाच्यै । दिशे । स्वाहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—(प्राच्यै)या प्राञ्चति प्रथमादित्यसंयोगात् तस्यै (दिशे) (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र विद्यायुक्ता वाक् (अर्वाच्यै)यावागधोऽञ्चति तस्यै (दिशे)(स्वाहा)(दक्षिणायै)या पूर्वमुखस्य पुरुषस्य दक्षिणबाहुसन्निधौ वर्त्तते तस्यै (दिशे) (स्वाहा) (अर्वाच्यै) अधस्ताद्वर्त्तमानायै (दिशे) (स्वाहा)(प्रतीच्यै)या प्रत्यक् अञ्चति पूर्वमुखस्थितपुरुषस्य पृष्ठभागा तस्मै (दिशे) (स्वाहाअर्वाच्यै)(दिशे)(स्वाहा) (उदीच्यै)योदक् पूर्वाभिमुखस्य जनस्य वामभागमञ्चति तस्यै (दिशे) (स्वाहा) (अर्वाच्यै)(दिशे)(स्वाहा) (ऊर्ध्वायै) ऊर्ध्वं वर्त्तमानायै(दिशे)(स्वाहा) (अर्वाच्यै)या अवविरुद्धमञ्चति तस्यै उपदिशे(दिशे) (स्वाहा) (अवाच्यै)(दिशे) (स्वाहा)(अर्वाच्यै)(दिशे)(स्वाहा) ॥ २४ ॥

अन्वयः----यैर्विद्वद्भिः प्राच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे वाहोदीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहाऽवाच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा च विधीयंते ते सर्वतः कुशलिनो भवन्ति ॥ २४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याश्चतस्रो मुख्या दिशः सन्ति तथा चतस्र उपदिशोऽपि वर्त्तन्त एवमूर्ध्वाऽर्वाची च दिशौ वर्त्तेते ता मिलित्वा दश जायन्त इति वेद्यम् । अनवस्थिता इमा विभ्व्यश्च सन्ति यत्र स्वयं स्थितो भवेत् तद्देशमारभ्य सर्वासां कल्पना भवतीति विजानीत ॥ २४ ॥

पदार्थः— जिन विद्वानों ने (प्राच्यै) जो प्रथम प्राप्त होती अर्थात् प्रथम सूर्यमंडल का संयोग करती उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिः शास्त्रविद्यायुक्त वाणी (अर्वाच्यै) जो नीचे से सूर्यमंडल को प्राप्त अर्थात् जब विषुमती रेखा से उत्तर का सूर्य नीचे २ गिरता है उस नीचे की (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिः शास्त्रयुक्त वाणी (दक्षिणायै) जो पूर्वमुख वाले पुरुष के दाहिनी बांह के निकट है उस दक्षिण (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उक्त वाणी जो (अर्वाच्यै) निम्न है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उक्त वाणी (प्रतीच्यै) जो सूर्यमण्डल के प्रति मुख अर्थात् लोटने के समय में प्राप्त और पूर्वमुख वाले पुरुष के पीठ पीछे होती उस पश्चिम (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र युक्त वाणी (अर्वाच्यै) पश्चिम के नीचे जो (दिशे) दिशा है उस के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र युक्त वाणी (उदीच्यै) जो पूर्वाभिमुख पुरुष के वामभाग को प्राप्त होती उस उत्तम (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त-वाणी (अर्वाच्यै) पृथिवी गोल में जो उत्तर दिशा के तले दिशा है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (ऊर्ध्वायै) जो ऊपर को वर्त्तमान है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (अर्वाच्यै) जो विरुद्ध प्राप्त होती ऊपर वाली दिशा के नीचे अर्थात् कभी पूर्व गिनी जाती कभी उत्तर कभी दक्षिण कभी पश्चिम मानी जाती है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी और (अर्वाच्यै) जो सब से नीचे वर्त्तमान उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रविचार युक्त वाणी तथा (अर्वाच्यै) पृथिवी गोल में जो उक्त प्रत्येक कोण दिशाओं के तले की दिशा है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रविद्या युक्त वाणी विधान किई वे सब ओर कुशली अर्थात् आनन्दी होते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थः— हे मनुष्यो चार मुख्य दिशा और चार उपदिशा अर्थात् कोण दिशा भी वर्त्तमान हैं ऐसे ऊपर और नीचे की दिशा भी वर्त्तमान हैं वे मिल कर सब दश होती हैं यह जानना चाहिये और एकक्रम से निश्चय-

नहीं की हुई तथा अपनी २ कल्पना में समर्थ भी हैं उन को उन २ के अर्थ में समर्थ न करने की यह रीति है कि जहां मनुष्य आप स्थित हो उस देश को ले के सब की कल्पना होती है इस को जानो ॥ २४ ॥

अद्भ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जलादयो देवताः । अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒द्भ्यः स्वाहा॑ वा॒र्भ्यः स्वाहो॑द॒काय॒ स्वाहा॒ तिष्ठ॑न्तीभ्यः॒ स्वाहा॒ स्रव॑न्तीभ्य॒: स्वाहा॒ स्यन्द॑मानाभ्य॒: स्वाहा॒ कूप्या॑भ्यः॒ स्वाहा॒ सूद्या॑भ्य॒: स्वाहा॒ धार्या॑भ्य॒: स्वाहा॑र्ण॒वाय॒ स्वाहा॑ समु॒द्राय॒ स्वाहा॑ सरि॒राय॒ स्वाहा॑ ॥ २५ ॥

अ॒द्भ्यऽइत्य॒त्ऽभ्यः॑ । स्वाहा॑ । वा॒र्भ्यऽइति॑ वाः॒ऽभ्यः॑ । स्वाहा॑ । उ॒द॒काय॑ । स्वाहा॑ । तिष्ठ॑न्तीभ्यः । स्वाहा॑ । स्रव॑न्तीभ्यः । स्वाहा॑ । स्यन्द॑मानाभ्यः । स्वाहा॑ । कूप्या॑भ्यः । स्वाहा॑ । सूद्या॑भ्यः । स्वाहा॑ । धार्या॑भ्यः । स्वाहा॑ । अ॒र्ण॒वाय॑ । स्वाहा॑ । स॒मु॒द्राय॑ । स्वाहा॑ । स॒रि॒राय॑ । स्वाहा॑ ॥ २५ ॥

पदार्थः-(अद्भ्यः) जलेभ्यः (स्वाहा) शुद्धिकारिका क्रिया (वार्भ्यः) वरणीयेभ्यः (स्वाहा) (उदकाय) आर्द्रीकारकाय (स्वाहा) (तिष्ठन्तीभ्यः) स्थिराभ्यः (स्वाहा) (स्रवन्तीभ्यः) सद्योगामिनीभ्यः (स्वाहा) (स्य-

न्दमानाभ्यः) प्रस्रुताभ्यः (स्वाहा) (कूप्याभ्यः) कूपेषु भवाभ्यः (स्वाहा) (सूद्याभ्यः) सुष्टु क्लेदिकाभ्यः (स्वाहा) (धार्याभ्यः) धर्त्तुं योग्याभ्यः (स्वाहा) (अर्णवाय) बहून्यर्णांसि विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मै (स्वाहा) (समुद्राय) समुद्रवन्त्यापो यस्मिँस्तस्मै (स्वाहा) (सरिराय) कमनीयाय (स्वाहा) ॥ २५ ॥

अन्वयः—यैर्मनुष्यैर्यज्ञेषु सुगन्ध्यादिद्रव्यहवनायाऽद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहाऽर्णवाय स्वाहा सरिराय स्वाहा च विधीयते ते सर्वेषां सुखप्रदा जायन्ते ॥ २५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अग्नौ सुगन्ध्यादिद्रव्याणि जुहूयुस्ते जलादिशुद्धिकारका भूत्वा पुण्यात्मानो जायन्ते जलशुद्ध्यैव सर्वेषां शुद्धिर्भवतीति वेद्यम् ॥ २५ ॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों से यज्ञ कर्मों में सुगन्धि आदि पदार्थ होमने के लिये (अद्भ्यः) सामान्य जलों के लिये (स्वाहा) उन को शुद्ध करने की क्रिया (वार्भ्यः) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम जलों के लिये (स्वाहा) उन को शुद्ध करने की क्रिया (उदकाय) पदार्थों को गीले करने वा सूर्य्य की किरणों से ऊपर को जाते हुए जलके लिये (स्वाहा) उन को शुद्ध करने वाली क्रिया (तिष्ठन्तीभ्यः) बहते हुए जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (स्रवन्तीभ्यः) शीघ्र बहते हुए जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (स्यन्दमानाभ्यः) धीरे २ चलते जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (कूप्याभ्यः) कुएं में हुए जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (सूद्याभ्यः) भलीभांति भिगोने हारे अर्थात् वर्षा आदि से जो भिगोते हैं उन जलों के लिये (स्वाहा) उन के शुद्ध करने की क्रिया (धार्याभ्यः) धारण करने योग्य जो जल हैं उन के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (अर्णवाय) जिस में बहुत जल हैं

उस बड़े नद के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (समुद्राय) जिस में अच्छे प्रकार नद महानद नदीमहानदी झील झरना आदि के जल जा मिलते हैं उस सागर वा महासागर के लिये (स्वाहा) शुद्ध करनेवाली क्रिया और (सरिराय) अति सुन्दर मनोहर जल के लिये (स्वाहा) उसकी रक्षा करनेवाली क्रिया विधान किई है वे सबको सुख देने हारे होते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थः— जो मनुष्य आग में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमें वे जल आदि पदार्थों की शुद्धि करनेहारे हो पुण्यात्मा होते हैं और जलकी शुद्धि से-ही सब पदार्थों की शुद्धि होती है यह जानना चाहिये ॥ २५ ॥

वाताये्त्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वातादयो देवताः ।
विराडभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहा भ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वहाऽवस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाऽववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥ २६ ॥

वाताय । स्वाहा । धूमाय । स्वाहा । अभ्राय । स्वाहा । मेघाय । स्वाहा । विद्योतमानायेति विऽद्योतमानाय । स्वाहा । स्तनयते । स्वाहा । अवस्फूर्जतऽइत्यवऽस्फूर्जते ।

स्वाहा । वर्षते । स्वाहा । अववर्षतऽइत्यवऽवर्षते । स्वाहा । उग्रम् । वर्षते । स्वाहा । शीघ्रम् । वर्षते । स्वाहा उद्गृह्णतऽइत्युत्ऽगृह्णते । स्वाहा । उद्गृहीतायेत्युत्ऽगृहीताय । स्वाहा । प्रुष्णते । स्वाहा । शीकायते । स्वाहा । प्रुष्वाभ्यः । स्वाहा । ह्रादुनीभ्यः । स्वाहा । नीहाराय । स्वाहा ॥ २६ ॥

पदार्थः-- (वाताय) यो वाति तस्मै (स्वाहा) (धूमाय) (स्वाहा) (अभ्राय) मेघनिमित्ताय (स्वाहा) (मेघाय) यो मेहति सिञ्चति तस्मै (स्वाहा) (विद्योतमानाय) विद्युतः प्रवर्त्तकाय (स्वाहा) (स्तनयते) दिव्यं शब्दं कुर्वते (स्वाहा) (अवस्फूर्जते) अधोवज्रवद् घातं कुर्वते (स्वाहा) (वर्षते) यो वर्षति तस्मै (स्वाहा) (अववर्षते) (स्वाहा) (उग्रम्) तीव्रम् (वर्षते) (स्वाहा) (शीघ्रम्) तूर्णम् (वर्षते) (स्वाहा) (उद्गृह्णते) य ऊर्ध्वं गृह्णाति तस्मै (स्वाहा) (उद्गृहीताय) ऊर्ध्वं गृहीतं जलं येन तस्मै (स्वाहा) (प्रुष्णते) पुष्टिं पूरयते (स्वाहा) (शीकायते) यः शीकं सेचनं करोति तस्मै (स्वाहा) (प्रुष्वाभ्यः) पूर्णाभ्यः (ह्रादुनीभ्यः) अव्यक्तं शब्दं कुर्वतीभ्यः (स्वाहा) (नीहाराय) कुहकाय (स्वाहा) ॥ २६ ॥

अन्वयः--यैर्मनुष्यैर्वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाऽभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहाऽवस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाऽववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा च प्रयुज्यते ते प्राणप्रिया जायन्ते २६

भावार्थः—ये यथाविध्यग्निहोत्रादीन् कुर्वन्ति ते वा-य्वादिशोधका भूत्वा सर्वेषां हितकरा भवन्ति ॥ २६ ॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (वाताय) जो बहता है उस पवन के लिये (स्वाहा) उस को शुद्ध करने वाली यज्ञ क्रिया (धूमाय) धूम के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (अभ्राय) मेघ के कारण के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (मेघाय) मेघ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (विद्योतमानाय) बिजुली से प्रवृत्त हुए सघन बद्दल के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (स्तनयते) उत्तम शब्द करती हुई बिजुली के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (अवस्फूर्जते) एक दूसरे के घिसने से वज्र के समान नीचे को चोट करते हुए विद्युत् के लिये (स्वाहा) शुद्ध करने हारी यज्ञ क्रिया (वर्षते) जो बद्दल वर्षता है उस के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (अववर्षते) मिलावट से तले ऊपर हुए बद्दलों में जो नीचे वाला है उस बद्दलके लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (उग्रम्) अति तीक्ष्णता से (वर्षते) वर्षते हुए बद्दल के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (शीघ्रम्) शीघ्र लपट झपट से (वर्षते) वर्षते हुए बद्दल के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (उद्गृह्णते) ऊपर से ऊपर बद्दलों के ग्रहण करने वाले बद्दल के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (उद्गृहीताय) जिसने ऊपर से ऊपर जल ग्रहण किया उस बद्दल के लिये (स्वाहा) शुद्धि करने वाली यज्ञ क्रिया (पुष्णते) पुष्टि करते हुए मेघ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (शीकायते) जो सींचता अर्थात् ठहर २ के व-र्षता उस मेघ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (प्रुष्वाभ्यः) जो पूर्ण घन घोर वर्षा करते हैं उन मेघों के अवयवों के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (ह्रादु-नीभ्यः) अव्यक्त गड़ गड़ शब्द करते हुए बद्दलों के लिये (स्वाहा) शुद्धि करने वाली यज्ञ क्रिया और (नीहाराय) कुहर के लिये (स्वाहा) उस की शुद्धि करने वाली यज्ञ क्रिया की है वे संसार के प्राण पियारे होते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य यथाविधि अग्निहोत्र आदि यज्ञों को करते हैं वे पवन आदि पदार्थों के शोधने हारे होकर सब का हितकरने वाले होते हैं॥२६॥

अग्नयेस्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ पृथि॒व्यै स्वाहा॒ऽन्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑ दि॒वे स्वाहा॑ दि॒ग्भ्यः स्वाहाऽऽशा॑भ्यः॒ स्वाहो॒र्व्यै॒ दि॒शे स्वाहा॒र्वा॑च्यै॒ दि॒शे स्वाहा॑ ॥ २७ ॥

अ॒ग्नये॑ । स्वाहा॑ । सोमा॑य । स्वाहा॑ । इन्द्रा॑य । स्वाहा॑ । पृ॒थि॒व्यै । स्वाहा॑ । अ॒न्तरि॑क्षाय । स्वाहा॑ । दि॒वे । स्वाहा॑ । दि॒ग्भ्यऽइति॑ दि॒क्ऽभ्यः॑ । स्वाहा॑ । आशा॑भ्यः । स्वाहा॑ । उ॒र्व्यै॑ । दि॒शे । स्वाहा॑ । अ॒र्वाच्यै॑ । दि॒शे । स्वाहा॑ ॥ २७ ॥

पदार्थः--(अग्नये) जाठराग्नये (स्वाहा) (सोमाय) उत्तमाय रसाय (स्वाहा) (इन्द्राय) जीवाय विद्युते परमैश्वर्याय वा (स्वाहा) (पृथिव्यै) (स्वाहा) (अन्तरिक्षाय) आकाशाय (स्वाहा) (दिवे) प्रकाशाय (स्वाहा) (दिग्भ्यः) (स्वाहा) (आशाभ्यः) व्यापिकाभ्यः (स्वाहा) (उर्व्यै) बहुरूपायै (दिशे) (स्वाहा) (अर्वाच्यै) निम्नायै) (दिशे) (स्वाहा) ॥ २७ ॥

अन्वयः--मनुष्यैरग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहादिग्भ्यः

स्वाहाऽऽशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २७ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अग्निद्वारा ओषध्यादिषु सुगन्ध्यादिद्रव्यं विस्तारयेयुस्ते जगद्धितकराः स्युः ॥ २७ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को (अग्नये) जाठराग्नि अर्थात् पेट के भीतर अन्न पचाने वाली आग के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (सोमाय) उत्तम रस के लिये (स्वाहा) सुन्दर क्रिया (इन्द्राय) जीव बिजुली और परम ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (पृथिव्यै) पृथिवी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अन्तरिक्षाय) आकाश के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (दिवे) प्रकाश के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (दिग्भ्यः) पूर्वादि दिशाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आशाभ्यः) एक दूसरी में जो व्याप्त होरही अर्थात् ईशान आदि कोण दिशाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उर्व्यै) समय को पाकर अनेक रूप दिखाने वाली अर्थात् वर्षा गर्मी शरदी के समय के रूप की अलग २ प्रतीति कराने वाली (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उत्तमक्रिया और (अर्वाच्यै) नीचे की (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया अवश्य विधान करनी चाहिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के द्वारा अर्थात् आग में होम कर ओषधी आदि पदार्थों में सुगन्धि आदि पदार्थ का विस्तार करें वे जगत् के हित करने वाले होवें ॥ २७ ॥

नक्षत्रेभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । नक्षत्रादयो देवताः । भुरिगष्टी छन्दसी । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वाहार्द्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऽऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः

स्वाहा सँवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥

नक्षत्रेभ्यः । स्वाहा । नक्षत्रियेभ्यः । स्वाहा । अहोरात्रेभ्यः । स्वाहा । अर्द्धमासेभ्यऽइत्यर्द्धऽमासेभ्यः । स्वाहा । मासेभ्यः । स्वाहा । ऋतुभ्यऽइत्यृतुऽभ्यः । स्वाहा । आर्त्तवेऽभ्यः । स्वाहा । सँवत्सराय । स्वाहा । द्यावापृथिवीभ्याम् । स्वाहा । चन्द्राय । स्वाहा । सूर्याय । स्वाहा । रश्मिभ्यऽइति रश्मिऽभ्यः । स्वाहा । वसुभ्यऽइति वसुऽभ्यः । स्वाहा । रुद्रेभ्यः । स्वाहा । आदित्येभ्यः । स्वाहा । मरुद्भ्यऽइति मरुत्ऽभ्यः । स्वाहा । विश्वेभ्यः । देवेभ्यः । स्वाहा । मूलेभ्यः । स्वाहा । शाखाभ्यः । स्वाहा । वनस्पतिभ्यऽइति वनस्पतिऽभ्यः । स्वाहा । पुष्पेभ्यः । स्वाहा । फलेभ्यः । स्वाहा । ओषधीभ्यः । स्वाहा ॥ २८ ॥

पदार्थः—(नक्षत्रेभ्यः) अक्षीणेभ्यः (स्वाहा) (नक्षत्रियेभ्यः) नक्षत्राणां समूहेभ्यः (स्वाहा) (अहोरात्रेभ्यः) अहर्निशेभ्यः (स्वाहा) (अर्द्धमासेभ्यः) (स्वाहा) (मासेभ्यः) (स्वाहा) (मासेभ्यः) (स्वहा) (ऋतुभ्यः) (स्वाहा) (आर्त्तवेभ्यः) ऋतुजातेभ्यः (स्वाहा) (संवत्सराय) (स्वाहा) (द्यावापृथिवीभ्याम्) भूमिप्रकाशाभ्याम् (स्वाहा) (चन्द्राय) (स्वाहा) (सूर्याय) (स्वाहा) (रश्मिभ्यः) किरणेभ्यः (स्वाहा) (वसुभ्यः) पृथिव्यादिभ्यः (स्वाहा) (रुद्रेभ्यः) प्राणजीवेभ्यः (स्वाहा) (आदित्येभ्यः) अविनाशिभ्यः कालावयवेभ्यः (स्वाहा) (मरुद्भ्यः) (स्वाहा) (विश्वेभ्यः) सर्वेभ्यः (देवेभ्यः) दिव्यगुणेभ्यः (स्वाहा) (मूलेभ्यः) (स्वाहा) (शाखाभ्यः) (स्वाहा) (वनस्पतिभ्यः) (स्वाहा) (पुष्पेभ्यः (स्वाहा) (फलेभ्यः) (स्वाहा) (ओषधिभ्यः) (स्वाहा) ॥ २८ ॥

अन्वयः—मनुष्यैर्नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽर्द्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहर्त्तुभ्यः स्वाहाऽऽर्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहाऽऽदित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा चावश्यमनुष्ठेयाः ॥ २८ ॥

भावार्थः-मनुष्या नित्यं सुगन्ध्यादिद्रव्यमग्नौ प्रक्षिप्य तद्वायुरश्मिद्वारा वनस्पत्यौषधिमूलशाखापुष्पफलादिषु प्रवेश्यसर्वेषां पदार्थानां शुद्धिं कृत्वाऽऽरोग्यं सम्पादयन्तु ॥ २८ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि (नक्षत्रेभ्यः) जो पदार्थ कभी नष्ट नहीं होते उन के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (नक्षत्रियेभ्यः) उक्त पदार्थों के समूहों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अहोरात्रेभ्यः) दिन रात्रि के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अर्द्धमासेभ्यः) शुक्र कृष्ण पक्ष अर्थात् पखवाड़ों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (मासेभ्यः) महीनों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (ऋतुभ्यः) वसंत आदि छः ऋतुओं के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (आर्त्तवेभ्यः) ऋतुओं में उत्पन्न हुए ऋतु २ के पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (संवत्सराय) वर्षों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (द्यावापृथिवीभ्याम्) प्रकाश और भूमि के लिये (स्वाहा) उत्तम् यज्ञ क्रिया (चन्द्राय) चन्द्रलोक के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (सूर्याय) सूर्य लोक के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (रश्मिभ्यः) सूर्य आदि की किरणों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (वसुभ्यः) पृथिवी आदि लोकों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (रुद्रेभ्यः) दश प्राणों के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (आदित्येभ्यः) काल के अवयव जो अविनाशी हैं उन के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (मरुद्भ्यः) पवनों के लिये (स्वाहा) उन के अनुकूल क्रिया (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिये (स्वाहा) सुन्दर क्रिया (मूलेभ्यः) सभों की जड़ों के लिये (स्वाहा) तदनुकूल क्रिया (शाखाभ्यः) शाखाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (पुष्पेभ्यः) फूलों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (फलेभ्यः) फलों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (ओषधिभ्यः) ओषधियों के लिये (स्वाहा) नित्य उत्तम क्रिया अवश्य करनी चाहिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्य नित्य सुगन्ध्यादि पदार्थों को अग्नि में छोड़ अर्थात् हवन कर पवन और सूर्य की किरणों द्वारा वनस्पति, ओषधि, मूल, शाखा, पुष्प और फलादिकों में प्रवेश करा के सब पदार्थों की शुद्धि कर आरोग्यता की सिद्धि करें ॥ २८ ॥

पृथिव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः ।
निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥

पृथिव्यै । स्वाहा । अन्तरिक्षाय । स्वाहा । दिवे । स्वाहा । सूर्य्याय । स्वाहा । चन्द्राय । स्वाहा । नक्षत्रेभ्यः । स्वाहा अद्भ्य इत्यत्ऽभ्यः । स्वाहा । ओषधीभ्यः । स्वाहा । वनस्पतिभ्य इति वनस्पतिऽभ्यः । स्वाहा । परिप्लवेभ्य इति परिऽप्लवेभ्यः । स्वाहा । चराचरेभ्यः स्वाहा । सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—(पृथिव्यै) विस्तृतायै धरित्र्यै (स्वाहा) उत्तमयज्ञक्रिया (अन्तरिक्षाय) आकाशाय (स्वाहा) उक्ता क्रिया (दिवे) विद्युतः शुद्धये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (सूर्याय) आदित्यमण्डलाय (स्वाहा) तदनुरूपा क्रिया (चन्द्राय) चन्द्रमण्डलाय (स्वाहा) उत्तमक्रिया

(नक्षत्रेभ्यः) तारकेभ्यः (स्वाहा) (अद्भ्यः) (स्वाहा) (ओषधीभ्यः) (स्वाहा) (वनस्पतिभ्यः) (स्वाहा) (परिप्लवेभ्यः) तारकेभ्यः (स्वाहा) (चराचरेभ्यः) स्थावरजंगमेभ्यः (स्वाहा) (सरीसृपेभ्यः) सर्प्पादिभ्यः (स्वाहा) ॥ २९ ॥

अन्वयः—यदि मनुष्याः पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा प्रयुञ्जीरँस्तर्हि सर्वंशुद्धं कर्त्तुं प्रभवेयुः ॥ २९ ॥

भावार्थः—ये सुगन्ध्यादि द्रव्यं पृथिव्यादिष्वग्निद्वारा विस्तार्य्य वायुजलद्वारा ओषधीषु प्रवेश्य सर्वं संशोध्याऽऽरोग्यं सम्पादयन्ति त आयुर्वर्द्धका भवन्ति ॥ २९ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (पृथिव्यै) विथरी हुई इस पृथिवी के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अन्तरिक्षाय) अवकाश अर्थात् पदार्थों के बीच की पोल के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (दिवे) बिजुली की शुद्धि के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (सूर्य्याय) सूर्य्यमण्डल की उत्तमता के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (चन्द्राय) चन्द्रमण्डल के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (नक्षत्रेभ्यः) अश्विनी आदि नक्षत्रलोकों की उत्तमता के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अद्भ्यः) जलों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (ओषधीभ्यः) ओषधियों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (वनस्पतिभ्यः) वट वृक्ष आदि के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (परिप्लवेभ्यः) जो सब ओर से आते जाते उन तारागणों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (चराचरेभ्यः) स्थावर जङ्गम जीवों और जड पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया तथा (सरीसृपेभ्यः) जो रिंगते हैं उन सर्प्पआदि जीवों के लिये स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करें तो वे सब की शुद्धि करने को समर्थ हों ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो सुगन्धित आदि पदार्थ को पृथिवी आदि पदार्थों में अग्नि के द्वारा विस्तार के अर्थात् फैला के पवन और जल के द्वारा ओषधि आदि पदार्थों में प्रवेश करा सब को अच्छे प्रकार शुद्ध कर आरोग्यपन को सिद्ध कराते हैं वे आयुर्दा के बढ़ाने वाले होते हैं ॥ २९ ॥

असवइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वस्वादयो देवताः। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रियेस्वाहा गणपतये स्वाहाऽभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतये स्वाहा ॥ ३० ॥

असवे। स्वाहा। वसवे। स्वाहा। विभुवऽइति विऽभुवे। स्वाहा। विवस्वते। स्वाहा। गणश्रियऽइति गणऽश्रिये। स्वाहा। गणपतयऽइति गणऽपतये। स्वाहा। अभिभुवऽइत्यभिऽभुवे। स्वाहा। अधिपतयऽइत्यधिऽपतये। स्वाहा। शूषाय। स्वाहा। सꣳसर्पायेति सम्ऽसर्पाय। स्वाहा। चन्द्राय। स्वाहा। ज्योतिषे। स्वाहा। मलिम्लुचाय। स्वाहा। दिवा। पतये। स्वाहा॥ ३० ॥

पदार्थः--(असवे) प्राणाय (स्वाहा) (वसवे) योऽस्मिन् शरीरे वसति तस्मै जीवाय (स्वाहा) विभुवे) व्यापकाय वायवे (स्वाहा) (विवस्वते) सूर्याय (स्वाहा) (गणश्रिये) या गणानां समूहानां श्रीः शोभा तस्यै विद्युते (स्वाहा) (गणपतये) समूहानां पालकाय वायवे (स्वाहा) (अभिभुवे) अभिमुखं भावुकाय (स्वाहा (अधिपतये) सर्वस्वामिने राज्ञे (स्वाहा) (शूपाय) बलाय सैन्याय (स्वाहा)(संसर्पाय) यः सम्यक् सर्पति गच्छति तस्मै (स्वाहा) (चन्द्राय) सुवर्णाय । चन्द्रमिति हिरण्यनाम० निघं० १।२ (स्वाहा) (ज्योतिषे) प्रदीपनाय (स्वाहा) (मलिम्लुचाय) स्तेनाय । मलिम्लुच इति स्तेननाम० निघं० ३।२४ (स्वाहा) (दिवापतये) दिनस्य पालकाय सूर्याय (स्वाहा) ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयमसवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहा ऽभिभुवे स्वाहाऽधिपतये स्वाहा शूपाय स्वाहा संसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवापतये स्वाहा च प्रयुङ्ध्वम्॥३०॥

भावार्थः--मनुष्यैः प्राणादिशुद्धयेऽग्नौ पुष्टिकरादि द्रव्यं होतव्यम् ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम (असवे) प्राणों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (वसवे) जो इस शरीर में वसता है उस जीव के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (विभुवे) व्याप्त होने वाले पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (विवस्वते) सूर्य के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (गणश्रिये) जो पदार्थों के लिये समूहों की शोभा बिजुली है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम

यज्ञ क्रिया (गणपतये) पदार्थों के समूहों को पालने हारे पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अभिभुवे) सन्मुख होने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अधिपतये) सब के स्वामी राजा के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूषाय) बल और तीक्ष्णता के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (संसर्पाय) जो भली भांति करके रिंगे उस जीव के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (चन्द्राय) सुवर्ण के लिये (स्वाहा) उक्तक्रिया (ज्योतिषे) ज्योतिः अर्थात् सूर्य चन्द्र और तारागणों के प्रकाश के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया (मलिम्लुचाय) चोर के लिये (स्वाहा) उस के प्रबन्ध करने की क्रिया तथा (दिवापतये) दिन के पालने हारे सूर्य के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञक्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्राण आदि की शुद्धि के लिये आग में पुष्टि करने वाले आदि पदार्थ का होम करें ॥ ३० ॥

मधवे स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मासा देवताः ।
भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांहसस्पतये स्वाहा ॥ ३१ ॥

मधवे । स्वाहा । माधवाय । स्वाहा । शुक्राय । स्वाहा । शुचये । स्वाहा । नभसे । स्वाहा । नभस्याय ।

स्वाहा । इषाय । स्वाहा । ऊर्जाय । स्वाहा । सहसे । स्वाहा । सहस्याय । स्वाहा । तपसे । स्वाहा । तपस्याय । स्वाहा । अꣳहसः । पतये । स्वाहा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(मधवे) मधुरादिगुणोत्पादकाय चैत्राय-(स्वाहा) माधवाय) वैशाखाय (स्वाहा ; (शुक्राय) शुद्धिकराय ज्यैष्ठाय (स्वाहा) (शुचये) पीवत्रकरायाऽऽ-षाढाय (स्वाहा) (नभसे) जलवर्षकाय श्रावणाय (स्वाहा) (नभस्याय) नभसि भवाय भाद्राय (स्वाहा) (इषाय) अन्नोत्पादकायाऽऽश्विनाय (स्वाहा) (ऊ-र्जाय) बलान्नोत्पादकाय कार्त्तिकाय (स्वाहा) (सहसे) बलप्रदाय मार्गशीर्षाय (स्वाहा) (सहस्याय) सहसि सा-धवे पौषाय (स्वाहा) (तपसे) तपउत्पादकाय माघाय (स्वाहा) (तपस्याय) तपसि साधवे फाल्गुनाय (स्वाहा) (अंहसः) श्लिष्टस्य (पतये) पालकाय (स्वा-हा) ॥ ३१ ॥

अन्वयः--हे मनुष्या भवन्तो मधवे स्वाहा माध-वाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांऽहसस्पतये स्वाहा चानुतिष्ठन्तु ॥ ३१ ॥

भावार्थः—ये प्रतिदिनमग्निहोत्रादियज्ञं युक्ताहार विहारं च कुर्वन्ति तेऽरोगा भूत्वा दीर्घायुषो भवन्ति ॥३१ ॥

पदार्थः---- हे मनुष्यो आपलोग (मधवे) मीठेपन आदि को उत्पन्न करने हारे चैत्र के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (माधवाय) मधुरपन में उत्तम वैशाख

के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (शुक्राय) जल आदि को पवन के योग से निर्मल करने हारे ज्येष्ठ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (शुचये) वर्षा के योग से भूमि आदि को पवित्र करने वाले आषाढ़ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (नभसे) भली भांति सघन घन बद्दलों की घन घोर सुनवाने वाले श्रावण के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (नभस्याय) आकाश में वर्षा से प्रसिद्ध होने हारे भादों के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (इषाय) अन्न को उत्पन्न कराने वाले क्वार के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (ऊर्जाय) बल और अन्न को उत्पन्न कराने वा बलयुक्त अन्न अर्थात् कुआंर में फूले हुए बाजरा आदि अन्न को पकाने पुष्ट करने हारे कार्तिक के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (सहसे) बल देने वाले अगहन के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (सहस्याय) बल देने में उत्तम पौष के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (तपसे) ऋतु बदलने से धीरे २ शीत की निवृत्ति और जीवों के शरीरों में गरमी की प्रवृत्ति कराने वाले माघ के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया (तपस्याय) जीवों के शरीरों में गरमी की प्रवृत्ति कराने में उत्तम फाल्गुन मास के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया और (अंहसः) महीनों में मिले हुए मलमास के (पतये) पालने वाले के लिये (स्वाहा) यज्ञक्रिया का अनुष्ठान करो ॥ ३१ ॥

भावार्थः— जो मनुष्य प्रतिदिन अग्नि होत्र आदि यज्ञ और अपनी प्रकृति के योग्य आहार और विहार आदि को करते हैं वे नीरोग होकर बहुत जीने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥

वाजायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वाजादयो देवताः ।
अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय को अगलेमंत्र में कहते हैं ॥

वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑ पि॒जाय॒ स्वाहा॒ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ स्वः॒ स्वाहा॑ मू॒र्ध्ने स्वाहा॑ व्यश्नु॒विने॒ स्वाहान्त्या॑-

य स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥ ३२ ॥

वाजाय । स्वाहा । प्रसवायेति प्रऽसवाय । स्वाहा । अपिजाय । स्वाहा । क्रतवे । स्वाहा । स्वरिति स्वः । स्वाहा । मूर्ध्ने । स्वाहा । व्यश्नुविनइति विऽअश्नुविने । स्वाहा । आन्त्याय । स्वाहा । आन्त्याय । भौवनाय । स्वाहा । भुवनस्य । पतये । स्वाहा । अधिपतयइत्यधिऽपतये । स्वाहा । प्रजापतयइतिप्रजाऽपतये । स्वाहा ॥ ३२ ॥

पदार्थः— (वाजाय) अन्नाय (स्वाहा) (प्रसवाय) उत्पादकाय (स्वाहा) (अपिजाय) उत्पन्नाय (स्वाहा) (क्रतवे) प्रज्ञायै कर्मणे वा (स्वाहा) (स्वः) सुखाय (स्वाहा) (मूर्ध्ने) मस्तकशुद्धये स्वाहा) (व्यश्नुविने) व्यापिने बोध्याय (स्वाहा) (आन्त्याय) (स्वाहा) (आन्त्याय) अन्ते भवाय (भौवनाय) भुवने भवाय (स्वाहा) (भुवनस्य पतये) सर्वजगत्स्वामिने (स्वाहा) (अधिपतये) सर्वाधिष्ठात्रे (स्वाहा) (प्रजापतये) सर्वप्रजापालकाय (स्वाहा) ॥ ३२ ॥

अन्वयः— भो मनुष्या यूयं वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहाऽऽन्त्याय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा च सदा प्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ ३२ ॥

भावार्थः--ये मनुष्या अन्नापत्यगृहप्रज्ञामूर्धादिशोधनेन सुखवर्द्धनाय सत्यां क्रियां कुर्वन्ति ते परमात्मानमुपास्य प्रजाऽधिपतयो भवन्ति ॥ ३२ ॥

पदार्थः-- हे मनुष्यो तुम (वाजाय) अन्न के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रसवाय) पदार्थों की उत्पत्ति करने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अपिजाय) घर के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (क्रतवे) बुद्धि वा कर्म के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (स्वः) अत्यन्त सुख के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (मूर्द्धने) शिर की शुद्धि होने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (व्यश्नुविने) व्याप्त होने वाले वीर्य के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आन्त्याय) व्यवहारों के अन्त में होने वाले व्यवहार के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया अन्त में होने वाले (भौवनाय)जो संसार में प्रसिद्ध होता उसके लिये(स्वाहा) उत्तम क्रिया (भुवनस्य) संसार की (पतये) पालना करने वाले स्वामी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अधिपतये) सबके अधिष्ठाता अर्थात् सब पर जो एक शिक्षा देता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (प्रजापतये) सब प्रजाजनों की पालना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया को सब कभी भली भांति युक्त करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः-- जो मनुष्य अन्न, संतान, घर, बुद्धि और शिर, आदि के शोधन से सुख बढ़ाने के लिये सत्यक्रिया को करते हैं वे परमात्मा की उपासना करके प्रजा के अधिक पालना करने वाले होते हैं ॥ ३२॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। आयुरादयो देवताः।
प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यैः स्वकीयं सर्वस्वं कस्यानुष्ठानायसमर्प्पणीयमित्याह॥

मनुष्यों को अपना सर्वस्व अर्थात् सब पदार्थ समूह किस के अनुष्ठानके लिये भली भांति अर्प्पण करना चाहिये इस वि० ॥

आयुर्य॒ज्ञेन॑ कल्पताᳬस्वाहा॑ प्रा॒णो य॒ज्ञेन॑ कल्पताᳬस्वाहा॑ऽपा॒नो य॒ज्ञेन॑ कल्पताᳬस्वाहा॑ व्या॒नो य॒ज्ञेन॑

कल्पताᳪ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहाऽऽत्मा यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳪ स्वाहा ॥ ३३ ॥

आयुः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। प्राणः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। अपानऽइत्यपऽआनः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। व्यानऽइति विऽआनः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। उदानऽइत्युत्ऽआनः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। समानऽइति समऽआनः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। चक्षुः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। श्रोत्रम्। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। वाग्। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। मनः। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। आत्मा। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। ब्रह्मा। यज्ञेन। कल्पताम्। स्वाहा। ज्योतिः। यज्ञेन। कल्पताम् स्वाहा। स्वरितिस्वः।

यज्ञेन । कल्पताम् । स्वाहा । पृष्ठम् । यज्ञेन । कल्पताम् । स्वाहा । यज्ञः । यज्ञेन । कल्पताम् । स्वाहा ॥ ३३ ॥

पदार्थः–(आयुः) एति जीवनं येन तत् (यज्ञेन) परमेश्वरस्य विदुषां च सत्करणेन संगतेन कर्मणा विद्यादिदानेन सह (कल्पताम्) समर्प्पयतु (स्वाहा) सत्क्रियया (प्राणः) जीवनमूलो वायुः (यज्ञेन) योगाभ्यासादिना (कल्पताम्) (स्वाहा) (अपानः) अपानयति दुःखं येन सः (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (व्यानः) सर्वसंधिषु व्याप्तश्चेष्टानिमित्तः (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (उदानः) उदानिति बलयति येन सः (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (समानः) समानयति रसं येन सः (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (चक्षुः) नेत्रम् (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (श्रोत्रम्) ज्ञानेन्द्रियाणामुपलक्षणम् (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (वाक्) कर्मेन्द्रियाणामुपलक्षणम् (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (मनः) अन्तःकरणम् (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (आत्मा) जीवः (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (ब्रह्मा) चतुर्वेदवित् (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (ज्योतिः) ज्ञानप्रकाशः (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (स्वः) सुखम् (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (पृष्ठम्) प्रश्नं शिष्टं च (यज्ञेन) (कल्पताम्) (स्वाहा) (यज्ञः) व्यापकः परमेश्वरः । यज्ञो वै विष्णुः, इति शतपथे (यज्ञेन) परमात्मना (कल्पताम्) (स्वाहा) ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिरेवमेपितव्यमस्माकमायुः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां प्राणः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतामपानः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां व्यानःस्वाहा यज्ञेन सह कल्पतामुदानःस्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां समानस्स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां चक्षुः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां श्रोत्रं स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां वाक्स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतांमनः स्वाहा यज्ञेनसाकं कल्पतामात्मास्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां ब्रह्मा स्वाहा यज्ञेनसहकल्पतां ज्योतिस्स्वाहायज्ञेन सह कल्पतां स्वः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां पृष्ठं स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतां यज्ञः स्वाहा यज्ञेन सह कल्पतामिति॥३३॥

भावार्थः—मनुष्यैर्यावज्जीवनं शरीरं प्राणा अन्तःकरणमिन्द्रियाणि सर्वोत्तमा सामग्री च यज्ञाय विधेया येन निष्पापाः कृतकृत्या भूत्वा परमात्मानं प्राप्येहाऽमुत्र सुखमाप्नुयुः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को ऐसी इच्छा करना चाहिये कि हमारी (आयुः) आयु कि जिस से हम जीते हैं वह (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार से मिले हुए कर्म और विद्या आदि देने के साथ (कल्पताम्) समर्थित हो (प्राणः) जीवाने का मूल मुख्य कारण पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया और (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (अपानः) जिस से दुःख को दूर करता है वह पवन (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) श्रेष्ठ काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (व्यानः) सब संधियों में व्याप्त अर्थात् शरीर को चलाने कर्म कराने आदि का जो निमित्त है वह पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) उत्तम काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (उदानः) जिस से बली होता है वह पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) उत्तम कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (समानः) जिस से अंग२ में अन्न पहुंचाया जाता है वह पवन

(स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (चक्षुः) नेत्र (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम् समर्पित हो (श्रोत्रम्) कान आदि इन्द्रियां जो कि पदार्थों का ज्ञान कराती हैं (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हों (वाक्) वाणी आदि कर्मेन्द्रियां (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) अच्छे काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हों (मनः) मन अर्थात् अन्तःकरण (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (आत्मा) जीव (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (ब्रह्मा) चार वेदों के जानने वाला (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञादि सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्थ हो (ज्योतिः) ज्ञान का प्रकाश (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (स्वः) सुख (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (पृष्ठम्) पूछना वा जो बचा हुआ पदार्थ हो वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (यज्ञः) यज्ञ अर्थात् व्यापक परमात्मा (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) अपने साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जितना अपना जीवन शरीर प्राण, अन्तःकरण, दशों इंद्रियां, और सब से उत्तम सामग्री हो उस को यज्ञ के लिये समर्पित करें जिस से पापरहित कृतकृत्य होके परमात्मा को प्राप्त हो कर इस जन्म और द्वितीय जन्म में सुख को प्राप्त होवें ॥ ३३ ॥

एकस्मा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता ।
भुरिगुष्णिक् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनः किमर्थो यज्ञोऽनुष्ठातव्य इत्याह ॥
फिर किस के अर्थ यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस वि० ॥

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याᳬं स्वाहा श॒ताय॒ स्वाहैकश॒ताय॒ स्वाहा॒ व्यु॑ष्ट्यै॒ स्वाहा॑ स्व॒र्गाय॒ स्वाहा॑ ॥ ३४ ॥

एकस्मै । स्वाहा । द्वाभ्याम् । स्वाहा । शताय । स्वाहा । एकशतायेत्येकऽशताय । स्वाहा । व्युष्ट्या इति विऽउष्ट्यै । स्वाहा । स्वर्गायेति स्वःगाय । स्वाहा ॥३४॥

पदार्थः—(एकस्मै) अद्वितीयाय परमात्मने (स्वाहा) सत्या क्रिया (द्वाभ्याम्) कार्यकारणाभ्याम् (स्वाहा) (शताय) असंख्याताय पदार्थाय (स्वाहा) (एकशताय) एकाधिकाय शताय (स्वाहा) (व्युष्ट्यै) प्रदीप्तायै दाहक्रियायै (स्वाहा) (स्वर्गाय) सुखगमकाय पुरुषार्थाय (स्वाहा) ॥ ३४ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या युष्माभिरेकस्मै स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा च संप्रयोज्या ॥ ३४ ॥

भावार्थः-मनुष्यैर्भक्तिविशेषेणाऽद्वितीय ईश्वरः प्रेमपुरुषार्थाभ्यामसंख्याता जीवाश्च प्रसन्नाः कार्य्या येनाऽभ्युदयिकनैःश्रेयसिके सुखे प्राप्येतामिति ॥ ३४ ॥

अत्रायुर्वृद्ध्यग्नियज्ञगायत्र्यर्थसर्वपदार्थशोधनविधानादिवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिर्वेद्या ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो तुम लोगों को-(एकस्मै) एक अद्वितीय परमात्मा के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (द्वाभ्याम्) दो अर्थात् कार्य और कारण के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (शताय) अनेक पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (एकशताय) एक सौ एक व्यवहार वा पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (व्युष्ट्यै) प्रकाशित हुई पदार्थों को जलाने की क्रिया के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (स्वर्गाय) सुख को प्राप्त होने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया भली भांति युक्त करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

भावार्थः— मनुष्यों को चाहिये कि विशेष भक्ति से जिसके समान दूसरा नहीं वह ईश्वर तथा प्रीति और पुरुषार्थ से असंख्य जीवों को प्रसन्न करें जिस से संसार का सुख और मोक्ष सुख प्राप्त होवे ॥ ३४ ॥

इस अध्याय में आयु, वृद्धि, अग्नि के गुण कर्म, यज्ञ, गायत्री मंत्र का अर्थ और सब पदार्थों के शोधने के विधान आदि का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछिले अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीमन्महाविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यांविभूषिते यजुर्वेदभाष्ये द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥२२॥

अथ त्रयोविंशाऽध्यायारम्भः ॥

—०-:-०—

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो
देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अथेश्वरः किं करोतीत्याह ॥

अब तेईसवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम
मंत्र में ईश्वर क्या करता है इस वि० ॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑
जा॒तः पति॒रेक॑ आसीत् । स दा॑धार
पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑
विधेम ॥ १ ॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ इति॑ हिरण्यऽग॒र्भः । सम् । अ॒व॒र्त्त॒त ।
अग्रे॑ । भू॒तस्य॑ । जा॒तः । पति॑ः । एक॑ः । आ॒सी॒त् ।
सः । दा॒धा॒र॒ । पृ॒थि॒वीम् । द्याम् । उ॒त । इ॒माम् । कस्मै॑ ।
दे॒वाय॑ । ह॒विषा॑ । वि॒धे॒म ॥ १ ॥

पदार्थः—(हिरण्यगर्भः) हिरण्यानि सूर्य्यादीनि
ज्योतींषि गर्भे यस्य कारणरूपस्य सः (सम्)
सम्यक् (अवर्त्तत) (अग्रे) सृष्टेः प्राक् (भूत-
स्य) उत्पन्नस्य कार्य्यरूपस्य (जातः) प्रादुर्भूतः

(पतिः) स्वामी (एकः) असहायोऽद्वितीयेश्वरः (आसीत्) (सः) (दाधार) धृतवान् धरति धरिष्यति वा। अत्र तुजादीनामित्यभ्यासदैर्घ्यम् (पृथिवीम्) विस्तीर्णां भूमिम् (द्याम्) सूर्य्यादिकां सृष्टिम् (उत) (इमाम्) प्रत्यक्षाम् (कस्मै) सुखस्वरूपाय (देवाय) सर्वसुखप्रदात्रे परमात्मने (हविषा) आत्मादिसर्वस्वदानेन (विधेम) परिचरेम सेवेमहि। विधेमेति परिचरणकर्मा० निघं० ३।४ ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो भूतस्य जगतोऽग्रे हिरण्यगर्भः समवर्त्तताऽस्य सर्वस्यैको जातः पतिरासीत्स इमां पृथिवीमुत द्यां दाधार तस्मै कस्मै देवाय यथा वयं हविषा विधेम तथा यूयमपि विधत्त ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदा सृष्टिः प्रलयं गत्वा प्रकृतिस्था भवति पुनरुत्पद्यते तस्या अग्रे य एकः परमात्मा जाग्रन् सन्भवति तदानीं सर्वे जीवा मूर्छिता इव भवन्ति स कल्पान्ते प्रकाशरहितां पृथिव्यादिरूपां प्रकाशसहितां सूर्यादिलोकप्रभृतिं सृष्टिं विधाय धृत्वा सर्वेषां कर्मानुकूलतया जन्मानिदत्वा सर्वेषां निर्वाहाय सर्वान्पदार्थान् विधत्ते स एव सर्वैरुपासनीयो देवोऽस्तीति वेद्यम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (भूतस्य) उत्पन्न कार्यरूप जगत् के (अग्रे) पहिले (हिरण्यगर्भः) सूर्य चन्द्र तारे आदि ज्योति गर्भरूप जिस के भीतर हैं वह सूर्य आदि कारणरूप पदार्थों में गर्भ के समान व्यापक स्तुति करने योग्य (समवर्त्तत) अच्छे प्रकार वर्त्तमान और इस सब जगत् का (एकः) एक ही (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) पालना करने हारा (आसीत्)होता है (सः)

वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) विस्तारयुक्त पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य आदि लोकों को रच के इन को (दाधार) तीनों काल में धारण करता है उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सुख देने हारे परमात्मा के लिये जैसे हमलोग (हविषा) सर्वस्वदान करके उस की (विधेम) परिचर्या सेवा करें वैसे तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जब सृष्टि प्रलय को प्राप्त हो कर प्रकृति में स्थिर होती है और फिर उत्पन्न होती है उस के आगे जो एक जागता हुआ परमात्मा वर्त्तमान रहता है तब सब जीव मूर्छा सी पाये हुए होते हैं वह कल्प के अन्त में प्रकाश रहित पृथिवी आदि सृष्टि तथा प्रकाश सहित सूर्य आदि लोकों की सृष्टि का विधान धारण और सब जीवों के कर्मों के अनुकूल जन्म दे कर सब के निर्वाह के लिये सब पदार्थों का विधान करता है वही सब को उपासना करने योग्य देव है यह जानना चाहिये ॥ १ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । निचृदाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥ २ ॥

उपयामगृहीतऽइत्युपयामऽगृहीतः । असि । प्रजापतयऽइति प्रजाऽपतये । त्वा । जुष्टम् । गृह्णामि । एषः । ते । योनिः । सूर्यः । ते । महिमा । यः । ते । अहन् । संवत्सरे । महिमा । सम्बभूवेति सम्ऽबभूव । यः । ते । वायौ । अन्तरिक्षे । महिमा । सम्बभूवेति सम्ऽबभूव । यः । ते । दिवि । सूर्ये । महिमा । सम्बभूवेति सम्ऽबभूव । तस्मै । ते । महिम्ने । प्रजापतयऽइति प्रजाऽपतये । स्वाहा । देवेभ्यः ॥ २

पदार्थः--(उपयामगृहीतः) यो यामैर्यमसम्बन्धिभिः कर्मभिरुपसमीपे गृहीतः साक्षात्कृतः (असि) प्रजापालकाय राज्ञे (त्वा) त्वाम् (जुष्टम्) प्रीतं सेवितं वा (गृह्णामि) (एषः) (ते) तव (योनिः) जगत्कारणं प्रकृतिः (सूर्यः) सवितृमण्डलम् (ते) तव (महिमा) माहात्म्यम् (यः) (ते) तव (अहन्) दिने (संवत्सरे) वर्षे (महिमा) (सम्बभूव) सम्भूतोऽस्ति (यः) (ते) (वायौ) (अन्तरिक्षे) (महिमा) (सम्बभूव) (यः) (ते) (दिवि) विद्युति सूर्यप्रकाशे वा (सूर्ये) (महिमा) (सम्बभूव) (तस्मै) (ते) तुभ्यम् (महिम्ने) महते भावाय (प्रजापतये) प्रजापालकाय (स्वाहा) सत्क्रियायुक्ता प्रज्ञा (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः ॥ २ ॥

अन्वयः—हे भगवन् जगदीश्वर यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं जुष्टं त्वा प्रजापतयेऽहं गृह्णामि यस्य ते एष योनिरस्ति यस्ते सूर्यो महिमा यस्तेऽहन् सं-

वत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै महिम्ने प्रजापतये ते देवेभ्यश्च स्वाहा सर्वः संग्राह्या ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्या यस्य परमेश्वरस्येदं सर्वं जगन्महिमानं प्रकाशयति तस्योपासनां विहायान्यस्य कस्य चित्तस्य स्थाने चोपासना नैव कार्या यः कश्चिद्ब्रूयात्परमेश्वरस्य सत्त्वे किं प्रमाणमिति तं प्रति यदिदं जगद्वर्त्तते तत्सर्वं परमेश्वरं प्रमाणयतीत्युत्तरं देयम् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे भगवन् जगदीश्वर जो आप (उपयामगृहीतः) यम जो योगाभ्यास सम्बन्धी काम हैं उन से समीप में साक्षात् किये अर्थात् हृदयाकाश में प्रगट किये हुए (असि) हैं उन (जुष्टम्) सेवा किये हुए वा प्रसन्न किये (त्वा) आप को (प्रजापतये) प्रजापालन करने हारे राजा की रक्षा के लिये मैं (गृह्णामि)ग्रहण करता हूं जिन (ते) आप की (एषः) यह (योनिः) प्रकृति जगत् का कारण है जो (ते) आप का (सूर्यः) सूर्यमण्डल (महिमा) बड़ाई रूप तथा (यः) जो (ते) आप की (अहन्) दिन और (संवत्सरे) वर्ष में नियम बंधनद्वारा (महिमा) बड़ाई (सम्बभूव) संभावित है (यः) जो (ते) आप की (वायौ) पवन और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (महिमा) बड़ाई (सम्बभूव) प्रसिद्ध है तथा (यः) जो (ते) आप की (दिवि) बिजुली अर्थात् सूर्य आदि के प्रकाश और (सूर्ये)सूर्य में (महिमा) बड़ाई (सम्बभूव) प्रत्यक्ष है (तस्मै) उस (महिम्ने,प्रजापतये) प्रजापालन रूप बड़ाई वाले (ते) आप के लिये और (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (स्वाहा) उत्तम विद्यायुक्त बुद्धि सब को ग्रहण करनी चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस परमेश्वर के महिमा को यह सब जगत् प्रकाश करता है उस परमेश्वर की उपासना को छोड़ और किसी की उपासना उस के स्थान में नहीं

करनी चाहिये और जो कोई कहे कि परमेश्वर के होने में क्या प्रमाण है उस के प्रति जो यह जगत् वर्त्तमान है सो सब परमेश्वर का प्रमाण कराता है यह उत्तर देना चाहिये ॥ २ ॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

य: प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव । यऽईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

यः । प्राणतः । निमिषतऽइति निऽमिषतः । महित्वेति महिऽत्वा । एकः । इत् । राजा । जगतः । बभूव । यः । ईशे । अस्य । द्विपदऽइतिद्विऽपदः । चतुष्पदः । चतुष्पद इति चतुःऽपदः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ ३ ॥

पदार्थः—(यः) परमात्मा (प्राणतः) प्राणिनः (निमिषतः) नेत्रादिना चेष्टां कुर्वतः (महित्वा) स्वमहिम्ना (एकः) अद्वितीयोऽसहायः (इत्) एव (राजा) अधिष्ठाता (जगतः) संसारस्य (बभूव) (यः) (ईशे) ईष्टे (अस्य) (द्विपदः) मनुष्यादेः (चतुष्पदः) गवादेः (कस्मै) आनन्दरूपाय (देवाय) कमनीयाय (हविषा) भक्तिविशेषेण (विधेम) परिचरेम ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं य एक इन्महित्वा निमिषतः प्राणतो द्विपदश्चतुष्पदोऽस्य जगतो राजा बभूव योऽस्येशे तस्मै कस्मै देवाय हविषा विधेम तथाऽस्य भक्तिविशेषो भवद्भिर्विधेयः ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या य एक एव सर्वस्य जगतो महाराजाधिराजोऽखिलजगन्निर्मातासकलैश्वर्ययुक्तो महात्मा न्यायाधीशोऽस्ति तस्यैवोपासनेन धर्मार्थकाममोक्षफलानि प्राप्य सर्वे भवन्तः सन्तुष्यन्तु ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (यः) जो (एकः) एक (इत्) ही (महित्वा) अपनी महिमा से (निमिषतः) नेत्र आदि से चेष्टा को करते हुए (प्राणतः) प्राणी रूप (द्विपदः) दो पग वाले मनुष्य आदि वा (चतुष्पदः) चार पग वाले गौ आदि पशुसंबन्धी इस (जगतः) संसार का (राजा) अधिष्ठाता (बभूव) होता है और (यः) जो (अस्य) इस संसार का (ईशे) सर्वोपरिस्वामी है उस (कस्मै) आनन्दस्वरूप (देवाय) अतिमनोहर परमेश्वर की (हविषा) विशेष भाव से भक्ति (विधेम) सेवा करें वैसे विशेष भक्ति भाव आपलोगों को भी विधान करना चाहिये ॥ ३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जो एक ही सब जगत् का महाराजाधिराज समस्त जगत् का उत्पन्न करने हारा सकल ऐश्वर्ययुक्त महात्मा न्यायाधीश है उसी की उपासना से तुम सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों को पाकर संतुष्ट होओ ॥ ३ ॥

उपयामगृहीतइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता
विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा । यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि

महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

उपयामगृहीतऽइत्युपयामऽगृहीतः । असि । प्रजापतयऽइति प्रजाऽपतये । त्वा । जुष्टम् । गृह्णामि । एषः । ते । योनिः । चन्द्रमाः । ते । महिमा । यः । ते । रात्रौ । संवत्सरे । महिमा । सम्बभूवेति सम्ऽबभूव । यः । ते । पृथिव्याम् । अग्नौ । महिमा । सम्बभूवेति सम्ऽबभूव । यः । ते । नक्षत्रेषु । चन्द्रमसि । महिमा । सम्बभूवेति सम्ऽबभूव । तस्मै । ते । महिम्ने । प्रजापतयऽइति प्रजाऽपतये । देवेभ्यः । स्वाहा ॥ ४ ॥

पदार्थः— (उपयामगृहीतः) उपयामेन सत्कर्मणा योगाभ्यासेन गृहीतः स्वीकृतः (असि) (प्रजापतये) प्रजापालकाय (त्वा) त्वाम् (जुष्टम्) सेवितम् (गृह्णामि) (एषः) (ते) तव सृष्टौ (योनिः) जलम् । योनिरित्युदकना० निघं० १ । १२ (चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः (ते) तव (महिमा) (यः) (ते) तव (रात्रौ) (संवत्सरे) (महिमा) (सम्बभूव) (यः) (ते) तव (पृथिव्याम्) अन्तरिक्षे भूमौ वा (अग्नौ) विद्युति (महिमा) (संबभूव) (यः) (ते) तव (नक्षत्रेषु) कारणरूपेण नाशरहितेषु लोकान्तरेषु (चन्द्रमसि) चन्द्रलोके (महिमा) (सम्बभूव) (तस्मै) (ते) तव (महिम्ने) (प्रजापतये) (देवेभ्यः) (स्वाहा) सत्याचरणयुक्ता क्रिया ॥ ४ ॥

अन्वयः— हे जगदीश्वर यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं त्वा जुष्टं प्रजापतयेऽहं गृह्णामि यस्य ते सृष्टौ योनिर्जलं यस्य ते सृष्टौ चन्द्रमा महिमा यस्य ते यो रात्रौ संवत्सरे महिमा च सम्बभूव यस्ते सृष्टौ पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्य ते सृष्टौ यो नक्षत्रेषु चन्द्रमसि च महिमा सम्बभूव तस्य ते तस्मै महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यश्च स्वाहाऽस्माभिरनुष्ठेया ॥ ४ ॥

भावार्थः— हे मनुष्या यस्य महिम्ना सामर्थ्येन सर्वं जगद्विराजते यस्यानन्तो महिमास्ति यस्य सिद्धौ रचनाविशिष्टं सर्वं जगद्दृष्टान्तमस्ति तमेव सर्वे मनुष्या उपासीरन् ॥ ४ ॥

पदार्थः— हे जगदीश्वर जो आप (उपयामगृहीतः) सत्कर्म अर्थात् योगाभ्यास आदि उत्तम काम से स्वीकार किये हुए (असि) हो उन (त्वा, जुष्टम्) सेवा किये हुए आप को (प्रजापतये) प्रजा की पालना करने वाले राजा की रक्षा के लिये मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता अर्थात् मनमें धरता हूं जिन (ते) आप के संसार में (यः) यह (योनिः) जल वा जिन (ते) आप का संसार में (चन्द्रमाः) चन्द्रलोक (महिमा) बड़प्पन वा जिन (ते) आप का (यः) जो (रात्रौ) रात्रि और (संवत्सरे) वर्ष में (महिमा) बड़प्पन (सम्बभूव) सम्भव हुआ, होता और होगा (यः) जो (ते) आप की सृष्टि में (पृथिव्याम्) अन्तरिक्ष वा भूमि और (अग्नौ) आग में (महिमा) बड़प्पन (सम्बभूव) सम्भव हुआ होता और होगा तथा जिन (ते) आप सृष्टि में (यः) जो (नक्षत्रेषु) कारण रूप से विनाश को न प्राप्त होने वाले लोक लोकान्तरों में और (चन्द्रमसि) चन्द्रलोक में (महिमा) बड़प्पन (सम्बभूव) सम्भव हुआ होता और होगा उन (ते) आप (तस्मै) उस (महिम्ने) बड़प्पन (प्रजापतये) प्रजापालने हारे राजा (देवेभ्यः) और विद्वानों के लिये (स्वाहा) सत्याचरण युक्त क्रिया का हमलोगों को अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस के महिमा सामर्थ्य से सब जगत् विराजमान जिसका अनन्त महिमा और जिस की सिद्धि करने में रचना से भरा हुआ समस्त जगत् दृष्टान्त है उसी की सब मनुष्य उपासना करें ॥ ४ ॥

युञ्जन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता ।
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनरीश्वरः कीदृशोऽस्तीत्याह ॥

फिर ईश्वर कैसा है इस वि० ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तम्परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥

युञ्जन्ति । ब्रध्नम् । अरुषम् । चरन्तम् । परि । तस्थुषः । रोचन्ते । रोचनाः । दिवि ॥ ५ ॥

पदार्थः—(युञ्जन्ति) युक्तं कुर्वन्ति (ब्रध्नम्) महान्तम् (अरुषम्) अरुःषु मर्मसु सीदन्तम् (चरन्तम्) प्राप्नुवन्तम् (परि) सर्वतः (तस्थुषः) स्थावरान् (रोचन्ते) प्रकाशन्ते (रोचनाः) दीप्तयः (दिवि) ॥ ५ ॥

अन्वयः—ये परितस्थुषश्चरन्तं विद्युत मिव वर्त्तमानमरुषं ब्रध्नम्परमात्मानमात्मना सह युञ्जन्ति ते दिवि सूर्ये रोचनाः किरणा इव रोचन्ते ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा प्रतिब्रह्माण्डे सूर्यः प्रकाशते तथा सर्वस्मिन् जगति परमात्मा प्रकाशते ये योगाभ्यासेनाऽन्तर्यामिणं परमात्मानं स्वमात्मना युञ्जते ते सर्वतः प्रकाशिता जायन्ते ॥ ५ ॥

पदार्थः—जो पुरुष (परि) सब ओर से (तस्थुषः) स्थावर जीवों को (चर-

न्तम्) प्राप्त होते हुए बिजुली के समान वर्त्तमान (अरुषम्) प्राणियों के मर्मस्थल जिन में पीड़ा होने से प्राण का वियोग शीघ्र हो जाता है उन स्थानों की रक्षा करने के लिये स्थिर होते हुए (ब्रध्नम्) सब से बड़े सर्वोपरि विराजमान परमात्मा को अपने आत्मा के साथ (युञ्जन्ति) युक्त करते हैं वे (दिवि) सूर्य में (रोचनाः) किरणों के समान (रोचन्ते) परमात्मा में प्रकाशमान होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सूर्य प्रकाशमान है वैसे सर्व जगत् में परमात्मा प्रकाशमान है जो योगाभ्यास से उस अन्तर्यामि परमेश्वर को अपने आत्मा से युक्त करते हैं वे सब ओर से प्रकाश को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

युञ्जन्त्यस्येति प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । विराड्-
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ केनेश्वरः प्राप्तव्य इत्याह ॥

अब किस से ईश्वर की प्राप्ति होने योग्य है इस वि० ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ६ ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरीऽइति हरी । विपक्षसेति विऽपक्षसा । रथे । शोणा । धृष्णूऽइति धृष्णू । नृवाहसेति नृऽवाहसा ॥ ६ ॥

पदार्थः—(युञ्जन्ति) अस्य जीवस्य (काम्या) कमनीयौ (हरी) हरणशीलौ (विपक्षसा) विविधैः परिगृहीतौ (रथे) याने (शोणा) रक्तगुणविशिष्टौ (धृष्णू) दृढौ (नृवाहसा) नृणां वाहकौ ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा शिक्षकाः काम्या हरी विपक्षसा शोणा धृष्णू नृवाहसा रथे युञ्जन्ति तथा योगिनोऽस्य परमेश्वरस्य मध्य इन्द्रियाणि मनः प्राणाँश्च युञ्जन्ति ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा मनुष्याः सुशिक्षितैर्हयैर्युक्तेन यानेन स्थानान्तरं सद्यः प्राप्नुवन्ति तथैव विद्यासत्सङ्गयोगाभ्यासैः परमात्मानं क्षिप्रं प्राप्नुवन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे शिक्षा करने वाले सज्जन (काम्या) मनोहर (हरी) ले जाने हारे (विपक्षसा) जोकि विविध प्रकारों से भली भांति ग्रहण किये हुए (शोणा) लाल २ रंग से युक्त (धृष्णू) अतिपुष्ट (नृवाहसा) मनुष्यों को एक देश से दूसरे देश को पहुंचाने हारे दो घोड़ों को (रथे) रथ में (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं वैसे योगीजन (अस्य) इस परमेश्वर के बीच इन्द्रियां अन्तःकरण और प्राणों को युक्त करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे मनुष्य अच्छे सिखाये हुए घोड़ों से युक्त रथ से एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र प्राप्त होते हैं वैसे ही विद्या सज्जनों का संग और योगाभ्यास से परमात्मा को शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

यद्वात इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यः कस्य संगं कुर्यादित्याह ॥

फिर मनुष्य किसका संग करे इस वि० ॥

यद्वातोऽअपोऽअगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् । एतꣳस्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्तयासि नः ॥ ७ ॥

यत् । वातः । अपः । अगनीगन् । प्रियाम् । इन्द्रस्य । तन्वम् । एतम् । स्तोतः । अनेन । पथा । पुनः । अश्वम् । आ । वर्त्तयासि । नः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(यत्) यं कलायन्त्राश्वम् (वातः) वायुः (अपः) जलानि (अगनीगन्) प्राप्नुवन्ति (प्रियाम्) कमनीयम् (इन्द्रस्य) विद्युतः (तन्वम्) विस्तृतं शरीरम् (एतम्) (स्तोतः) स्तावक (अनेन) (पथा) मार्गेण (पुनः) (अश्वम्) आशुगामिनम् (आ) (वर्त्तयासि) वर्त्तयेः (नः) अस्मान् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे स्तोतर्यथा शिल्पिजना इन्द्रस्य प्रियां तन्वं वात इव प्राप्य यद्यमपोऽगनीगँस्तथैतमश्वमनेन पथा त्वं प्राप्नोषि पुनर्नोऽस्मानावर्त्तयासि तं भवन्तं वयं सत्कुर्याम ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या ये युष्मान् सुमार्गेण गमयन्ति तत्सङ्गेन यूयं वायुविद्युदादिविद्यां प्राप्नुत ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (स्तोतः) स्तुति करने हारे जन जैसे शिल्पी लोग (इन्द्रस्य) बिजुली के (प्रियाम्) अतिसुन्दर (तन्वम्) विस्तारयुक्त शरीर को (वातः) पवन के समान पा कर (यत्) जिस कलायन्त्र रूपी घोड़े और (अपः) जलों को (अगनीगन्) प्राप्त होते हैं वैसे (एतम्) इस (अश्वम्) शीघ्र चलने हारे कलायन्त्र रूप घोड़े को (अनेन) उक्त बिजुली रूप (पथा) मार्ग से आप प्राप्त होते (पुनः) फिर (नः) हमलोगों को (आ, वर्त्तयासि) भली भांति वर्त्ताते अर्थात् इधर उधर लेजाते हो उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जो तुम को अच्छे मार्ग से चलाते हैं उन के संग से तुम लोग पवन और बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

वसवइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वाय्वादयो देवताः ।
अत्यष्टिश्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्वन्तीत्याह ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस वि० ॥

वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वा-ञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा । भूर्भुवः स्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्य ऽएतदन्नमत्त देवा एतदन्नमद्धि प्रजापते ॥ ८ ॥

वसवः । त्वा । अञ्जन्तु । गायत्रेण । छन्दसा । रुद्राः । त्वा । अञ्जन्तु । त्रैष्टुभेन । त्रैस्तुभेनेति त्रैऽस्तुभेन । छन्दसा । आदित्याः । त्वा । अञ्जन्तु । जागतेन । छन्दसा । भूः । भुवः । स्वः । लाजी३न् । शाची३न् । यव्ये । गव्ये । एतत् । अन्नम् । अत्त । देवाः । एतत् । अन्नम् । अद्धि । प्रजापत ऽइति प्रजाऽपते ॥ ८ ॥

पदार्थः—(वसवः) प्रथमकल्पा विद्वांसः (त्वा) त्वाम् (अञ्जन्तु) कामयन्ताम् (गायत्रेण) गायत्रीछन्दोवाच्येन (छन्दसा) अर्थेन (रुद्राः) मध्यमकल्पा विद्वांसः (त्वा) त्वाम् (अञ्जन्तु)(त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप्प्रकाशितेनाऽर्थेन (छन्दसा) (आदित्याः) उत्तमा विद्वांसः (त्वा) (अञ्जन्तु) (जागतेन) जगतीछन्दः प्रकाशितेनाऽर्थेन (छन्दसा) स्वच्छन्देन (भूः) इमं लोकम् (भुवः) अन्तरिक्षस्थान् (स्वः) प्रकाशस्थांल्लोकान् (लाजीन्)

स्वस्वकक्षायां चलितान् (शाचीन्) व्यक्तान् (यव्ये) यवानां भवने क्षेत्रे जातम् (गव्ये) गोर्विकारे (एतत्) अन्नम्) (अत्त) भक्षयत (देवाः) विद्वांसः (एतत्) (अन्नम्) (अद्धि) भुङ्क्ष्व (प्रजापते) प्रजारक्षक ॥ ८ ॥

अन्वयः--हे प्रजापते वसवो गायत्रेण छन्दसा यन्त्वाऽञ्जन्तु रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा यन्त्वाऽञ्जन्त्वादित्या जागतेन छन्दसा यन्त्वाऽञ्जन्तु स त्वमेतदन्नमद्धि । हे देवा यूयं यव्ये गव्ये एतदन्नमत्त लाजीन् शाचीन् भूर्भुवः स्वर्लोकान् प्राप्नुत च ॥ ८ ॥

भावार्थः--ये विद्वांसः साङ्गोपाङ्गान् वेदान् मनुष्यानध्यापयन्ति ते धन्यवादार्हा भवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः--हे (प्रजापते) प्रजाजनों को पालने हारे राजन् (वसवः) प्रथम कक्षा के विद्वान् (गायत्रेण) गायत्री छन्द से कहने योग्य (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वाम्) आप को (अञ्जन्तु) चाहें (रुद्राः) मध्यम कक्षा के विद्वान् जन (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् छन्द से प्रकाश किये हुए (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन(त्वा) आप को (अञ्जन्तु) चाहें वा (आदित्याः) उत्तम कक्षा के विद्वान् जन (जागतेन) जगती छन्द से प्रकाशित किये हुए (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वा) आप को (अञ्जन्तु) चाहें सो आप (एतत्) इस (अन्नम्) अन्न को (अद्धि) खाइये हे (देवाः) विद्वानो तुम (यव्ये) यवों के खेत में उत्पन्न (गव्ये) गौ के दूध दही आदि उत्तम पदार्थ में मिले हुए (एतम्) इस (अन्नम्) अन्न को (अत्त) खाओ तथा (लाजीन्) अपनी २ कक्षा में चलते हुए (शाचीन्) प्रगट (भूः) इस प्रत्यक्ष लोक (भुवः) अन्तरिक्षस्थ लोक और (स्वः) प्रकाश में स्थिर सूर्य्यादि लोकों को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन अंगों और उपांगों (अंगों के अंगों) से युक्त चारों वेदों को मनुष्यों को पढ़ाते हैं वे धन्यवाद के योग्य होते हैं ॥ ८ ॥

कः स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता ।
निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ विद्वांसः किं किं प्रष्टव्या इत्याह ॥

अब विद्वान् जनों को क्या क्या पूछना चाहिये इस वि० ॥

कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः । किꣳस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥९॥

कः । स्वित् । एकाकी । चरति । कः । ऊँऽइत्यूँ । स्वित् । जायते । पुनरिति पुनः । किम् । स्वित् । हिमस्य । भेषजम् । किम् । ऊँऽइत्यूँ । आवपनमित्याऽवपनम् । महत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(कः) (स्वित्) प्रश्ने (एकाकी) असहायः (चरति) गच्छति (कः) (उ) वितर्के (स्वित्) (जायते) (पुनः) (किम्) (स्वित्) (हिमस्य) शीतस्य (भेषजम्) औषधम् (किम्) (उ) (आवपनम्) समन्ताद्वपति यस्मिंस्तत् (महत्) विस्तीर्णम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो वयं युष्मान् कः स्विदेकाकी चरति क उ स्वित् पुनः पुनर्जायते किं स्विद्धिमस्य भेषजं किमु महदावपनमस्तीति पृच्छामः ॥ ९ ॥

भावार्थः—एतेषां प्रश्नानामुत्तरस्मिन्मन्त्र उत्तराणि कथितानीति वेद्यम् । मनुष्या ईदृशानेव प्रश्नान्कुर्युः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो हम लोग तुम को यह पूछते हैं कि (कः, स्वित्) कौन (एकाकी) एका एकी अकेला (चरति) विचरता है (उ) और (कः, स्वित्) कौन (पुनः) बार २ (जायते) प्रगट होता है (किं, स्वित्) क्या (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध और (किम्) क्या (उ) तो (महत्) बड़ा (आवपनम्) बीज बोने का स्थान है ॥ ९ ॥

भावार्थः—इन उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र में कहे हुए हैं यह जानना चाहिये । मनुष्यों को योग्य है कि सदा इसी प्रकार के प्रश्न किया करें ॥ ९ ॥

सूर्य्यइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता

अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ पूर्वोक्तप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

अब पिछिले मंत्र में कहे प्रश्नों के उत्तरों को कहते हैं ॥

सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥१०॥

सूर्य्यः । एकाकी । चरति । चन्द्रमाः । जायते । पुनरिति॒ऽपुनः । अग्निः । हिमस्य । भेषजम् । भूमिः । आवपनमित्यावपनम् । महत् ॥ १० ॥

पदार्थः—(सूर्य्यः) सविता (एकाकी) (चरति) (चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः (जायते) (पुनः) (अग्निः) पावकः (हिमस्य) (भेषजम्) (भूमिः) (आवपनम्) (महत्) ॥ १० ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासवो मनुष्याः सूर्य्य एकाकी चरति पुनश्चन्द्रमाः प्रकाशितो जायते । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिर्महदावपनमस्तीति यूयं वित्त ॥१०॥

भावार्थः—अस्मिन् संसारे सूर्य्यः स्वाकर्षणेन स्वस्यैव कक्षायां वर्त्तते तस्यैव प्रकाशेन चन्द्रादयो लोकाः प्रकाशिता भवन्ति । अग्निना तुल्यं शीतनिवारकं वस्तु पृथिव्या तुल्यं महत् क्षेत्रं किमपि नास्तीति मनुष्यैर्वेदितव्यम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे जानने की इच्छा करने वाले मनुष्यो (सूर्य्यः) सूर्य्य (एकाकी) विना सहाय अपनी कक्षा में (चरति) चलता है (पुनः) फिर इसी सूर्य के प्रकाश से (चन्द्रमाः) चन्द्रलोक (जायते) प्रकाशित होता है (अग्निः) आग (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध (भूमिः) पृथिवी (महत्) बड़ा (आवपनम्) बोने का स्थान है इस को तुम लोग जानो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस संसार में सूर्य लोक अपनी आकर्षण शक्ति से अपनी ही कक्षा में वर्त्तमान है और उसी के प्रकाश से चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं अग्नि के समान शीत के हटाने को कोई वस्तु और पृथिवी के तुल्य बड़ा पदार्थों के बोने का स्थान नहीं है यह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ १० ॥

कास्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता ।
अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

फिर प्रश्नों को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किᳪस्विदासीद्बृहद्वयः । का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ११ ॥

का । स्वित् । आसीत् । पूर्वचित्तिरिति पूर्वऽचित्तिः । किम् । स्वित् । आसीत् । बृहत् । वयः । का । स्वित् । आसीत् । पिलिप्पिला । का । स्वित् । आसीत् । पिशङ्गिला ॥ ११ ॥

पदार्थः--(का) (स्वित्) (आसीत्) अस्ति (पूर्वचित्तिः) पूर्वा चासौ चित्तिः प्रथमा स्मृतिविषया (किम्) (स्वित्) (आसीत्) (बृहत्) महत् (वयः) यो वेति गच्छति स पक्षी (का) (स्वित्) (आसीत्) (पिलिप्पिला) आर्द्रीभूता चिक्कणा शोभना । श्रीर्वै पिलिप्पिला श० १३ । २ । ६ । १६ । (का) (स्वित्) (आसीत्) (पिशङ्गिला) या पिशं प्रकाशरूपं गिलति सा । पिशमिति रूपनाम ॥ ११ ॥

अन्वयः--हे विद्वांसो वयं युष्मान् प्रति कास्वित्पूर्वाचित्तिरासीत्किंस्विद्बृहद्वय आसीत्का स्वित्पिलिप्पिलाऽऽसीत्का स्वित्पिशङ्गिलाऽऽसीदिति पृच्छामः ॥ ११ ॥

भावार्थः--एतेषामुत्तराण्यग्रेतने मंत्र सन्ति यदि विदुषः प्रति प्रश्नान्न कुर्युस्तर्हि विद्वांसोऽपि न भवेयुः ॥ ११ ॥

पदार्थः--हे विद्वानो हम लोग तुम्हारे प्रति पूछते हैं कि (का, स्वित्) कौन (पूर्वचित्तिः) स्मरण का प्रथम पहिला विषय (आसीत्) हुआ है (किं, स्वित्) कौन (बृहत्) बड़ा (वयः) उड़ने हारा पक्षी (आसीत्) है (का, स्वित्) कौन (पिलिप्पिला) पिलिपिली चिकनी वस्तु (आसीत्) तथा (का,स्वित्) कौन (पिशङ्गिला) प्रकाश रूप को निगल जाने वाली वस्तु है ॥ ११ ॥

भावार्थः--इन प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र में हैं जो विद्वानों के प्रति न पूछें तो आप विद्वान् भी न हों ॥ ११ ॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्युदादयो देवताः ।
निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ प्राक्प्रश्नोत्तराण्याह ॥

अब पिछले प्रश्नों के उत्तरों को कहते हैं ॥

द्यौरा॑सीत्पू॒र्वचि॑त्ति॒रश्व॑ आसीद्बृ॒हद्वयः॑ । अवि॑रासीत्पिलिप्पि॒ला रात्रि॑रासीत्पिशङ्गि॒ला ॥१२॥

द्यौः । आसीत् । पूर्वचित्तिरिति पूर्वऽचित्तिः । अश्वः । आसीत् । बृहत् । वयः । अविः । आसीत् । पिलिप्पिला । रात्रिः । आसीत् । पिशङ्गिला ॥ १२ ॥

पदार्थः—(द्यौः) दिव्यगुणप्रदा वृष्टिः । द्यौर्वै वृष्टिः । शत० कां० १३।२।६।१४ (आसीत्) अस्ति (पूर्वचित्तिः) प्रथमस्मृतिविषया (अश्वः) योऽश्नुते मार्गान् सोऽग्निः (आसीत्) (बृहत्) महत् (वयः) यो वेति गच्छति सः (अविः) रक्षणादिकर्त्री पृथिवी (आसीत्) (पिलिप्पिला) (रात्रिः) (आसीत्) (पिशङ्गिला) ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासवः पूर्वचित्तिर्द्यौरासीद्बृहद्वयोऽश्व आसीत् पिलिप्पिलाऽविरासीत्पिशंगिला रात्रिरासीदिति यूयं बुध्यध्वम् ॥ १२ ॥

भावार्थः—हवनसूर्यरूपाद्यग्नितापेन सर्वगुणसंपन्नाऽन्नादिना संसारस्थितिनिमित्ता वृष्टिर्जायते ततः सर्वरत्नाढ्या भूर्भवति। सूर्याग्निनिमित्तेनैव प्राणिनां शयनाय रात्रिर्जायते ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे जानने की इच्छा करने वालो (पूर्वचित्तिः) प्रथम स्मृति का विषय (द्यौः) दिव्यगुण देने हारी वर्षा (आसीत्) है (बृहत्) बड़े (वयः) उड़ने हारे (अश्वः) मार्गों को व्याप्त होने वाले पक्षी के तुल्य अग्नि (आसीत्) है (पिलिप्पिला) वर्षा से पिलिपिली चिकनी शोभायमान (अविः) अन्नादि से रक्षा आदि उत्तमगुण प्रगट करने वाली पृथिवी (आसीत्) है और (पिशंगिला) प्रकाशरूप को निगलने अर्थात् अन्धकार करने हारी (रात्रिः) रात (आसीत्) है यह तुम जानो ॥१२॥

भावार्थः—हवन और सूर्य रूपादि अग्नि के ताप से सब गुणों से युक्त अन्नादि से संसार की स्थिति करने वाली वर्षा होती है उस वर्षा से सब ओषधि आदि उत्तम पदार्थ युक्त पृथिवी होती और सूर्य्य रूप अग्नि से ही प्राणियों के विश्राम के लिये रात्रि होती है॥१२॥

वायुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मादयो देवताः ।

भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ।

अथ विद्वद्भिर्मनुष्याः क्व योजनीया इत्याह ॥

अब विद्वानों को मनुष्य कहां युक्त करने चाहिये इस वि० ॥

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या । एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्माकृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥ १३ ॥

वायुः । त्वा । पचतैः । अवतु । असितग्रीवऽइत्यसितऽग्रीवः । छागैः । न्यग्रोधः । चमसैः । शल्मलिः । वृद्ध्या । एषः । स्यः । राथ्यः । वृषा । पड्भिरिति पड्ऽभिः । चतुर्भिरिति चतुःऽभिः । आ । इत् । अगन् । ब्रह्मा । अकृष्णः । च । नः । अवतु । नमः । अग्नये ॥ १३ ॥

पदार्थः—(वायुः) आदिमः स्थूलः कार्य्यरूपः (त्वा) त्वाम् (पचतैः) परिपाकपरिणामैः (अवतु) रक्षतु (असितग्रीवः) असिता कृष्णा ग्रीवा शिखा यस्य सः (छागैः) छेदनैः (न्यग्रोधः) वटः (चमसैः) मेघैः (शल्मलिः) वृक्षविशेषः (वृध्या) वर्द्धनेन (एषः) (स्यः) सः (राथ्यः) रथेषु हिता रथ्यास्तासु कुशलः (वृषा) वर्षकः (पड्भिः) पादैः । अत्र वर्णव्यत्ययेन दस्य डः (चतुर्भिः) (आ) (इत्) एवं (अगन्) गच्छति (ब्रह्मा) चतुर्वेदवित् (अकृष्णः) अविद्यान्धकाररहितः (च) (नः) अस्मान् (अवतु) प्रवेशयतु (नमः) अन्नम् (अग्नये) प्रकाशमानाय विदुषे ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् पचतैर्वायुश्छागैरसितग्रीवश्चमसैर्न्यग्रोधो वृद्ध्या शल्मलिस्त्वावतु य एष राथ्यो वृषा स्य चतुर्भिः पड्भिरित्त्वाऽगन् योऽकृष्णो ब्रह्मा च नोऽस्मानवतु तस्माअग्नये विद्यया प्रकाशमानाय नमो देयम् ॥ १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या वायुः प्राणेनाग्निपाचनेन सूर्यो वृष्ट्या वृक्षाः फलादिभिरश्वादयो गत्या विद्वांसः शिक्षया युष्मान्रक्षन्ति तान् यूयं विजानीत विदुषस्सत्कुरुत च ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी जन (पचतैः) अच्छे प्रकार पाकों से (वायुः) स्थूल कार्यरूप पवन (छागैः) काटने की क्रियाओं से (असितग्रीवः) काली चोटियों वाला अग्नि और (चमसैः) मेघों से (न्यग्रोधः) वट वृक्ष (वृध्या) उन्नति के साथ (शल्मलिः) सेंबरवृक्ष (त्वा) तुझ को (अवतु) पाले जो (एषः) यह (राथ्यः) सड़कों में चलने

में कुशल और (वृषा) सुखों की वर्षा करने हारा है (स्यः) वह (चतुर्भिः, पद्भिः, इत्) जिन से गमन करता है उन चारों पगों से तुझ को (आऽगन्) प्राप्त हो (च) तथा जो (अकृष्णः) अविद्या रूप अन्धकार से पृथक् (ब्रह्मा) चार वेदों को जानने हारा उत्तम विद्वान् (नः) हम लोगों को सब गुणों में (अवतु) पहुंचावे उस (अग्नये) विद्या के प्रकाशमान चारों वेदों को पढ़े हुए विद्वान् के लिये (नमः) अन्न देना चाहिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो पवन श्वासा आदि के चलाने, आग अन्न आदि के पकाने, सूर्यमण्डल वर्षा, वृक्ष फल आदि, घोड़े आदि मगन और विद्वान् शिक्षा से तुम्हारी रक्षा करते हैं उन को तुम जानो और विद्वानों का सत्कार करो ॥ १३ ॥

सꣳशितो रश्मिनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मा देवता ।

निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः । सꣳशितोऽअप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥ १४ ॥

सꣳशितऽइतिसम्ऽशितः । रश्मिना । रथः । सꣳशितऽइतिसम्ऽशितः । रश्मिना । हयः । सꣳशितऽइतिसम्ऽशितः । अप्स्वित्यप्ऽसु । अप्सुजाऽइत्यप्सुऽजाः । ब्रह्मा । सोमपुरोगवऽइतिसोमऽपुरोगवः ॥ १४ ॥

पदार्थः—(संशितः) सम्यक्सूक्ष्मीकृतः (रश्मिना) किरणसमूहेन (रथः) रमणसाधनः (संशितः) (रश्मिना) (हयः) अश्वः (संशितः)स्तुतः (अप्सु)

प्राणेषु (अप्सुजाः) प्राणेषु जायमानः (ब्रह्मा) महान्योगी विद्वान् (सोमपुरोगवः) सोम ओषधिगणबोध ऐश्वर्ययोगो वा पुरोगामी यस्य सः ॥ १४ ॥

अन्वयः—यदि मनुष्यै रश्मिना रथः संशितो रश्मिना हयः शंसितोऽप्स्वप्सुजाः सोमपुरोगवो ब्रह्मा संशितः क्रियेत तर्हि किं २ सुखं न लभ्येत ॥ १४ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः पदार्थविज्ञानेन विद्वांसो भवन्ति तेऽन्यान् कारयित्वा प्रशंसा प्राप्नुवन्तु ॥ १४ ॥

पदार्थः—जो मनुष्यों से (रश्मिना) किरणसमूह से (रथः) आनन्द को सिद्ध कराने वाला यान (संशितः) अच्छे प्रकार सूक्ष्म कारीगरी से बनाया (रश्मिना) लगाम की रस्सी आदि से (हयः) घोड़ा (शंसितः) भली भांति चलने में तीक्ष्ण अर्थात् उत्तम किया तथा (अप्सु) प्राणों में (अप्सुजाः) जो प्राण वायु रूप से संचार करने वाला पवन वा वाष्प (सोमपुरोगवः) ओषधियों का बोध और ऐश्वर्य्य का योग जिस से पहिले प्राप्त होने वाला है वह ब्रह्मा बड़ा योगी विद्वान् (संशितः) अति प्रशंसित किया जाय तो क्या२ सुख न मिले ॥ १४ ॥

भावार्थः— जो मनुष्य पदार्थों के विशेष ज्ञान से विद्वान् होते हैं वे औरों को विद्वान् करके प्रशंसा को पावें ॥ १४ ॥

स्वयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वान् देवता ।

निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ जिज्ञासवः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

अब पढ़ने वा उत्तम विद्या बोध चाहने वाले कैसे हों इस वि० ।

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व । महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥१५॥

स्वयम् । वाजिन् । तन्वम् । कल्पयस्व स्वयम् । यजस्व । स्वयम् । जुषस्व । महिमा । ते । अन्येन । न । सन्नशऽइति सम्ऽनशे ॥ १५ ॥

पदार्थः—(स्वयम्) (वाजिन्) जिज्ञासो (तन्वम्) शरीरम् (कल्पयस्व) समर्थयस्व (स्वयम्) (यजस्व) संगच्छस्व (स्वयम्) (जुषस्व) सेवस्व (महिमा) प्रतापः (ते) तव (अन्येन) (न) (सन्नशे) सम्यक् नश्येत् ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे वाजिंस्त्वं स्वयं तन्वं कल्पयस्व स्वयं विदुषो यजस्व स्वयं जुषस्व च यतस्ते महिमाऽन्येन सह न संनशे ॥ १५ ॥

भावार्थः—यथाग्निः स्वयं प्रकाशः स्वयं सङ्गतः स्वयं सेवमानोऽस्ति तथा ये जिज्ञासवः स्वयं पुरुषार्थयुक्ता भवन्ति तेषां महिमा कदाचिन्न नश्यति ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) बोध चाहने वाले जन तू (स्वयम्) आप (तन्वम्) अपने शरीर को (कल्पयस्व) समर्थ कर (स्वयम्) आप अच्छे विद्वानों को (यजस्व) मिल और (स्वयम्) आप उन की (जुषस्व) सेवा कर जिससे (ते) तेरी (महिमा) बड़ाई तेरा प्रताप (अन्येन) और के साथ (न) मत (संनशे) नष्ट हो ॥ १५ ॥

भावार्थः—जैसे अग्नि आप से आप प्रकाशित होता आप मिलता तथा आप सेवा को प्राप्त है वैसे जो बोध चाहने वाले जन आप पुरुषार्थयुक्त होते हैं उनका प्रताप बड़ाई कभी नहीं नष्ट होती ॥ १५ ॥

नवाइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । विराड् जगती छन्दः निषादः स्वरः ॥

अथ मनुष्याः किदृशा भवेयुरित्याह ॥

अब मनुष्य कैसे हों इस वि०॥

न वाऽउऽएतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२॥ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः । यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १६ ॥

न । वै । ऊँऽइत्यूँ । एतत् । म्रियसे । न । रिष्यसि । देवान् । इत् । एषि । पथिभिरिति पथिऽभिः । सुगेभिरिति सुऽगेभिः । यत्र । आसते सुकृतऽइति सुऽकृतः । यत्र । ते । ययुः । तत्र । त्वा । देवः । सविता । दधातु ॥ १६ ॥

पदार्थः-- (न) निषेधे (वै) निश्चयेन (उ) वितर्के (एतत्) म्रियसे (न) (रिष्यसि) हिंन्धि (देवान्) दिव्यान् गुणान् विदुषो वा (इत्) एव (एषि) प्राप्नोषि (पथिभिः) मार्गैः (सुगेभिः) सुखेन गन्तुं योग्यैः (यत्र) (आसते) उपविशन्ति (सुकृतः) धर्मात्मानः (यत्र) (यत्र) (ते) योगिनो विद्वांसः (ययुः) यान्ति (तत्र) (त्वा) त्वाम् (देवः) स्वप्रकाशः (सविता) सकलजगदुत्पादकः परमेश्वरः (दधातु) धरतु ॥ १६ ॥

अन्वयः--हे विद्यार्थिन् यत्र ते सुकृत आसते सुखं ययुर्यत्र सुगेभिः पथिभिस्त्वं देवानेषि यत्रैतदु वर्त्तते स्थितस्त्वं न म्रियसे न वै रिष्यसि तत्रेत् त्वा सविता देवो दधातु ॥ १६ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्याः स्वस्वरूपं जानीयुस्तर्हि तेऽविनाशित्वं विद्युः। यदि धर्म्येण मार्गेण गच्छेयुस्तर्हि सुकृतामानन्दं प्राप्नुयुः। यदि परमात्मानं सेवेरँस्तर्हि सत्ये मार्गे जीवान् दध्युः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी (यत्र) जहां (ते) वे (सुकृतः) धर्मात्मा योगी विद्वान् (आसते) बैठते और सुख को (ययुः) प्राप्त होते हैं वा (यत्र) जहां (सुगेभिः) सुख से जाने के योग्य (पथिभिः) मार्गों से तू (देवान्) दिव्य अच्छे२ गुण वा विद्वानों को (एषि) प्राप्त होता है और जहां (एतत्) यह पूर्वोक्त सब वृतान्त (उ) तो वर्त्तमान है और स्थिर हुआ तू (न) नहीं (म्रियसे) नष्ट हो (न, वै) नहीं (रिष्यसि) दूसरे का नाश करे (तत्र) वहां (इत्) ही (त्वा) तुझे (सविता) समस्त जगत् का उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर (देवः) जोकि आप प्रकाशमान है—वह (दधातु) स्थापन करे ॥ १६ ॥

भावार्थः जो मनुष्य अपने२ रूप को जानें तो अविनाशी भाव को जान सकें जो धर्म्मयुक्त मार्ग से चलें तो अच्छे कर्म करने हारों के आनन्द को पावें जो परमात्मा की सेवा करें तो जीवों को सत्यमार्ग में स्थापन करें ॥ १६ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः।

अतिशक्वर्यौ छन्दसी। पञ्चमः स्वरः ॥

अथ के पशव इत्याह ॥

अब पशु कौन हैं इस वि० ॥

अ॒ग्निः प॒शुरा॑सी॒त्तेना॑यजन्त॒ स ए॒तं लो॒कम॑जय॒द्य॑स्मि॑न्न॒ग्निः स ते॑ लो॒को भ॑विष्यति॒ तज्जे॑ष्यसि॒ पिबै॒ता अ॒पः। वा॒युः प॒शुरा॑सी॒त्तेना॑यजन्त॒ स ए॒तं

लोकमंजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽ अपः। सूर्य्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्य्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽ अपः ॥ १७ ॥

अग्निः । पशुः । आसीत् । तेन । अयजन्त । सः । एतम् । लोकम् । अजयत् । यस्मिन् । अग्निः । सः । ते । लोकः । भविष्यति । तम् । जेष्यसि । पिब । एताः । अपः । वायुः । पशुः । आसीत् । तेन । अयजन्त । सः । एतम् । लोकम् । अजयत् । यस्मिन् । वायुः । सः । ते । लोकः । भविष्यति । तम् । जेष्यसि । पिब । एताः । अपः । सूर्य्यः । पशुः । आसीत् । तेन । अयजन्त । सः । एतम् । लोकम् । अजयत् । यस्मिन् । सूर्य्यः । सः । ते । लोकः । भविष्यति । तम् । जेष्यसि । पिब । एताः । अपः ॥ १७ ॥

पदार्थः—(अग्निः) वन्हिः (पशुः) दृश्यः (आसीत्) अस्ति (तेन) (अयजन्त) यजन्तु (सः) (एतम्) (लोकम्) द्रष्टव्यम् (अजयत्) जयति (यस्मिन्) लोके (अग्निः) (सः) (ते) तव (लोकः) (भविष्यति) (तम्)

(जेष्यसि) (पिब) (एताः) (अपः) जलानि (वायुः) (पशुः) द्रष्टव्यः (आसीत्) (तेन) (अयजन्त) (सः) (एतम्) वाय्वधिष्ठातृकम् (लोकम्) (अजयत्) जयति (यस्मिन्) (वायुः) (सः) (ते) (लोकः) (भविष्यति) (तम्) (जेष्यसि) उत्कर्षयसि (पिब) (एताः) (अपः) प्राणान् (सूर्यः) (पशुः) दृश्यः (आसीत्) (तेन) (अयजन्त) (सः) (एतम्) सूर्याधिष्ठितम् (लोकम्) (अजयत्) जयति (यस्मिन्) (सूर्यः) (सः) (ते) (लोकः) (भविष्यति) (तम्) (जेष्यति) (पिब) (एताः) (अपः) व्यापकान् प्रकाशान् ॥ १७ ॥

अन्वयः— हे जिज्ञासो यस्मिन् सोऽग्निः पशुरासीत्तेनाऽयजन्त तेन त्वं यज यथा स विद्वाँस्तेनैतं लोकमजयत्तथैतं जय तं चेज्जेष्यसि तर्हि सोऽग्निस्ते लोको भविष्यति । अतस्त्वमेता यज्ञेन शोधिता अपः पिब यस्मिन् स वायुः पशुरासीत्तेन यजमाना अयजन्त तेन त्वं यज यथा स एतं लोकमजयत्तथा त्वं जय यदि त्वं जेष्यसि तर्हि स वायुस्ते लोको भविष्यति, अतस्त्वमेता अपः पिब यस्मिन्त्सं सूर्य्यः पशुरासीत्तेनायजन्त यथा सएतं लोकमजयत्तथा त्वं जय यदि त्वं तं जेष्यसि तर्हि स सूर्यस्ते लोको भविष्यति तस्मात्त्वमेता अपः पिब ॥१७॥

भावार्थः— हे मनुष्याः सर्वेषु यज्ञेष्वग्न्यादीनेव पशून् जानन्तु नैव प्राणिनोऽत्र हिंसनीया होतव्या वा सन्ति य एवं विदित्वा सुगन्धयादि द्रव्याणि सुसंस्कृत्याऽग्नौ जुह्वति तानि वायुं सूर्य्यं च प्राप्य वृष्टिद्वारा निवर्त्य ओषधीः प्राणान्

शरीरं बुद्धिं च क्रमेण प्राप्य सर्वान्प्राणिन आल्हादयन्ति । एतत्कर्त्तारः पुण्यस्य महत्त्वेन परमात्मानं प्राप्य महीयन्ते ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्या बोध चाहने वाले पुरुष ! (अस्मिन्) जिस देखने योग्य लोक में (सः) वह (अग्निः) अग्नि (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है (तेन) उस से जिस प्रकार यज्ञ करने वाले (अयजन्त) यज्ञ करें उस प्रकार से तू यज्ञ कर जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस (लोकम्) देखने योग्य स्थान को (अजयत्) जीतता है वैसे इस को जीत यदि (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो वह (अग्निः) अग्नि (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इस से तू (एताः) इन यज्ञ से शुद्ध किये हुए (अपः) जलों को (पिब) पी (यस्मिन्) जिस में (सः) वह (वायुः) पवन (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है और जिस से यज्ञ करने वाले (अयजन्त) यज्ञ करें (तेन) उस से तू यज्ञ कर जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस वायु मण्डल के रहने के (लोकम्) लोक को (अजयत्) जीते वैसे तू जीत जो (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो वह (वायुः) पवन (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इस से तू (एताः) इन (अपः) यज्ञ से शुद्ध किये हुए प्राण रूपी पवनों को (पिब) धारण कर (यस्मिन्) जिस में वह (सूर्य्यः) सूर्य्यमण्डल (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है (तेन) उस से (अयजन्त) यत्न करने वाले यज्ञ करें जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस सूर्य्यमण्डल के ठहरने के (लोकम्) लोक को (अजयत्) जीतता है वैसे तू जीत जो तू (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो (सः) वह (सूर्यः) सूर्यमण्डल (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इस से तू (एताः) यज्ञ से शुद्ध किये हुए (अपः) संसार में व्याप्त हो रहे सूर्यप्रकाशों को (पिब) ग्रहण कर ॥ १७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो सब यज्ञों में अग्नि आदि को ही पशु जानो किन्तु

प्राणी इन यज्ञों में मारने योग्य नहीं न होमने योग्य हैं जो ऐसे जान कर सुगन्धि आदि अच्छे २ पदार्थों को भली भांति बना आग में होम करने हारे होते हैं वे पवन और सूर्य को प्राप्त होकर वर्षा के द्वारा वहां से छूट कर ओषधी, प्राण, शरीर और बुद्धि को क्रम से प्राप्त होकर सब प्राणियों को आनन्द देते हैं इस यज्ञ कर्म के करने वाले पुण्य की बहुताई से परमात्मा को प्राप्त होकर सत्कार युक्त होते हैं ॥ १७ ॥

अथ प्राणायेत्यस्य मंत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं किं विज्ञेयमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या २ जानना चाहिये इस वि० ॥

प्राणाय स्वाहांपानाय स्वाहां व्यानाय स्वाहां । अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मां नयति कश्चन । ससंस्त्यश्वकः सुभंद्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् ॥ १८ ॥

प्राणार्यं । स्वाहां । अपानार्यं । स्वाहां । व्यानायेतिविऽआनायं । स्वाहां । अम्बें । अम्बिके । अम्बालिके । न । मा । नयति । कः । चन । ससंस्ति । अश्वकः । सुभद्रिकामिति सुऽभद्रिकाम् । कांपीलवासिनीमिति कांपीलऽवासिनीम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(प्राणाय) प्राणपोषणाय (स्वाहा) सत्या वाक् (अपानाय) (स्वाहा) (व्यानाय) (स्वाहा) (अम्बे) मातः (अम्बिके) पितामहि (अम्बालिके) प्रपितामहि (न) निषेधे (मा) माम् (नयति) वशे स्थापयति (कः) (चन) कोऽपि (ससस्ति) स्वपिति (अश्वकः) अश्व इव गन्ता जनः (सुभद्रिकाम्) सुष्ठुकल्याणकारिकाम् (कांपीलवासिनीम्)

कं सुखं पीलति बध्नाति गृह्णातीति कंपीलः स्वार्थेऽण् तं वासयितुं शीलमस्याः स्तां लक्ष्मीम् ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे अम्बेऽम्बिकेऽम्बालिके कश्चनाश्वको यां कांपीलवासिनीं सुभद्रिकामादाय ससस्ति न मा नयति अतोऽहं प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा च करोमि ॥ १८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा माता पितामही प्रपितामह्यऽपत्यानि सुशिक्षां नयति तथा युष्माभिरपि स्वसन्तानाः शिक्षणीयाः । धनस्य स्वभावोऽस्ति यत्रेदं संचीयते तान्निद्रालून लसानकर्महीनान् करोति । अतो धनं प्राप्यापि पुरुषार्थ एव कर्त्तव्यः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (अम्बे) माता (अम्बिके) दादी (अम्बालिके) वा परदादी (कश्चन) कोई (अश्वकः) घोड़े के समान शीघ्रगामी जन जिस (कांपीलवासिनीम्) सुखग्राही मनुष्य को वसाने वाली (सुभद्रिकाम्) उत्तम कल्याण करने हारी लक्ष्मी को ग्रहण कर (ससस्ति) सोता है वह (मा) मुझे (न) नहीं (नयति) अपने वश में लाती इस से मैं (प्राणाय) प्राण के पोषण के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (अपानाय) दुःख के हटाने के लिये (स्वाहा) सुशिक्षित वाणी और (व्यानाय) सब शरीर में व्याप्त होनेवाले अपने आत्मा के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी को युक्त करता हूं ॥ १८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे माता दादी परदादी अपने २ सन्तानों को अच्छी सिखावट पहुंचाती हैं वैसे तुम लोगों को भी अपने सन्तान शिक्षित करने चाहियें धन का स्वभाव है कि जहां यह इकट्ठा होता है उन जनों को निद्रालु आलसी और कर्महीन कर देता है इस से धन पा कर भी मनुष्य को पुरुषार्थ ही करना चाहिये ॥ १८ ॥

गणानां त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। गणपतिर्देवता।

शक्वरीछन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनर्मनुष्यैः कीदृशः परमात्मोपासनीय इत्याह॥

फिर मनुष्य को कैसे परमात्मा की उपासना करनी चाहिये इस वि०॥

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥ १९॥

गणानाम्। त्वा। गणपतिमिति गणऽपतिम्। हवामहे। प्रियाणाम्। त्वा। प्रियपतिमिति प्रियऽपतिम्। हवामहे। निधीनामिति निऽधीनाम्। त्वा। निधिपतिमिति निधिऽपतिम्। हवामहे। वसोऽइति वसो। मम। आ। अहम्। अजानि। गर्भधमिति गर्भऽधम्। आ। त्वम्। अजासि। गर्भधमिति गर्भऽधम्॥ १९॥

पदार्थः—(गणानाम्) समूहानाम् (त्वा) त्वाम् (गणपतिम्) समूहपालकम् (हवामहे) स्वीकुर्महे (प्रियाणाम्) कमनीयानाम् (त्वा) (प्रियपतिम्) कमनीयं पालकम् (हवामहे) (निधीनाम्) विद्यादिपदार्थपोषकाणाम् (त्वा) (निधिपतिम्) निधीनां पालकम् (हवामहे) (वसो) वसन्ति भूतानि यस्मिन्त्स वसुस्तत्सम्बुद्धौ (मम) (आ) (अहम्) (अजानि) जानीयाम्

(गर्भधम्) यो गर्भं दधाति तम् (आ) (त्वम्) (अजासि) प्राप्नुयः (गर्भधम्) प्रकृतिम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर वयं गणानां गणपतिं त्वा हवामहे प्रियाणां प्रियपतिं त्वा हवामहे । निधीनां निधिपतिं त्वा हवामहे । हे वसो मम न्यायाधीशो भूयाः । यं गर्भधं त्वमाजासि तं गर्भधमहमाजानि ॥ १९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यः सर्वस्य जगतो रक्षक इष्टानां विशेषतैश्वर्य्याणां प्रदाता प्रकृतेः पतिः सर्वेषां बीजानि विदधाति तमेव जगदीश्वरं सर्वेउपासीरन् ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर हम लोग (गणानाम्) गणों के बीच (गणपतिम्) गणों के पालने हारे (त्वा) आप को (हवामहे) स्वीकार करते (प्रियाणाम्) अति-प्रिय सुन्दरों के बीच (प्रियपतिम्) अतिप्रिय सुन्दरों के पालने हारे (त्वा) आप की (हवामहे) प्रशंसा करते (निधीनाम्) विद्या आदि पदार्थों की पुष्टि करने हारों के बीच (निधिपतिम्) विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करने हारे (त्वा) आप को (हवामहे) स्वीकार करते हैं हे (वसो) परमात्मन् जिस आप में सब प्राणी वसते हैं सो आप (मम) मेरे न्यायाधीश हूजिये जिस (गर्भधम्) गर्भ के समान संसार को धारण करने हारी प्रकृति को धारण करने हारे (त्वम्) आप (आ, अजासि) जन्मादि दोषरहित भली भांति प्राप्त होते हैं उस (गर्भधम्) प्रकृति के धर्त्ता आप को (अहम्) मैं (आ, अजानि) अच्छे प्रकार जानूं ॥ १९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो सब जगत् की रक्षा चाहे हुए सुखों का विधान ऐश्वर्यों को भली भांति देता प्रकृति का पालक और सब बीजों का विधान करता है उसी जगदीश्वर की उपासना सब करो ॥१९॥

ताउभावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते ।
स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ राजप्रजाजनाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह॥

अथ राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

ताऽउभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥२०॥

तौ । उभौ । चतुरः । पदः । सम्प्रसारयावेति सम्ऽप्रसारयाव । स्वर्गऽइति स्वःऽगे लोके । प्र । ऊर्णुवाथाम् । वृषा । वाजी । रेतोधाऽइति रेतःऽधाः । रेतः । दधातु ॥ २० ॥

पदार्थः- (तौ) प्रजाराजानौ (उभौ) (चतुरः) धर्मार्थकाममोक्षान् (पदः) प्राप्तव्यान् (संप्रसारयाव) विस्तारयावः (स्वर्गे) सुखमये (लोके) द्रष्टव्ये (प्र) (ऊर्णुवाथाम्) प्राप्नुयाथाम् (वृषा) दुष्टानां शक्तिबन्धकः (वाजी) विज्ञानवान् (रेतोधाः) यो रेतः श्लेषमालिङ्गनं दधाति सः (रेतः) वीर्यं पराक्रमम् (दधातु) ॥ २० ॥

अन्वयः— हे राजप्रजे युवां उभौ तौ यथा स्वर्गे लोके चतुरः पदः प्रोर्णुवाथां तथैतानाव्रामध्यापकोपदेशकौ संप्रसारयाव यथा रेतोधा वृषा वाजी राजा प्रजासु रेतो वीर्यं दध्यात्तथा प्रजापि दधातु ॥ २० ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०—यदि राजप्रजे पितापुत्रवद्वर्त्तेयातां तर्हि धर्मार्थकाममोक्षफलसिद्धिं यथावत्प्राप्नुयातां यथा राजा प्रजासुखबले वर्द्धयेत्तथा प्रजा अपि राज्ञः सुखबले उन्नयेत् ॥२० ॥

पदार्थः-हे राजा प्रजा जनो तुम (उभा) दोनों (तौ) प्रजा राजाजन जैसे (स्वर्गे) सुख से भरे हुए (लोके) देखने योग्य व्यवहार वा पदार्थ में (चतुरः) चारों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पदः) जो कि पाने योग्य हैं उन को (प्रोर्णुवाथाम्) प्राप्त होओ वैसे इन का हम अध्यापक और उपदेशक दोनों (संप्रसारयाव) विस्तार करें जैसे (रेतोधाः) आलिंगन अर्थात् दूसरे से मिलने को धारण करने और (वृषा) दुष्टों के सामर्थ्य वर्षाने अर्थात् उन की शक्ति को रोकने हारा (वाजी) विशेष ज्ञानवान् राजा प्रजाजनों में (रेतः) अपने पराक्रम को स्थापन करे वैसे प्रजाजन (दधातु) स्थापन करें ॥२०॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो राजा प्रजा पिता और पुत्र के समान अपना वर्त्ताव वर्तें तो धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष फल की सिद्धि को यथावत् प्राप्त हों जैसे राजा प्रजा के सुख और बल को बढ़ावे वैसे प्रजा भी राजा के सुख और बल की उन्नति करे ॥ २० ॥

उत्सक्थ्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । न्यायाधीशो देवता ।

भुरिग् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनाराज्ञा दुष्टाचाराः सम्यग् दण्डनीया इत्याह ॥

फिर राजा को दुष्टाचारी प्राणी भलीभांति दण्ड देने योग्य हैं इस वि० ॥

उत्स॑क्थ्या॒ अव॑ गु॒दं धे॑हि॒ सम॒ञ्जिं चा॑रया वृषन् । य स्त्री॒णां जी॑व॒भोज॑नः ॥ २१ ॥

उत्स॑क्थ्या॒ऽइत्युत्ऽस॑क्थ्याः । अव॑ । गु॒दम् । धे॒हि॒ । सम् । अ॒ञ्जिम् । चा॒र॒य॒ । वृ॒ष॒न् । यः । स्त्री॒णाम् । जी॒व॒भोज॑न॒ऽइति॑ जी॒व॒ऽभोज॑नः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(उत्सक्थ्याः) ऊर्द्ध्वे सक्थिनी यस्यास्तस्याः प्रजायाः (अव) (गुदम्) क्रीड़ाम् (धेहि) (सम्) (अञ्जिम्) प्रसिद्धन्यायम् (चारय)

प्रापय । अत्र संहितायामिति दीर्घः (वृषन्) शक्तिमन् (यः) (स्त्रीणाम्) (जीवभोजनः) जीवा भोजनं भक्षणं यस्य सः ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे वृषन् यः स्त्रीणां जीवभोजनो व्यभिचारी व्यभिचारिणी वा स्त्री वर्त्तेत । तं तां च निगृह्योत्सक्थ्यास्ताडय स्वप्रजायां च गुदमव धेह्यञ्जिं संचारय ॥ २१ ॥

भावार्थः—हे राजन् ये विषयसेवायां क्रीडन्तो जनाः क्रीडन्त्यः स्त्रियो वा व्यभिचारं वर्द्धयेयुस्तेताश्च तीव्रेण दण्डेन शासनीयाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (वृषन्) शक्तिमन् (यः) जो (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के बीच (जीवभोजनः) प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्तप्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्त्तमान हो उस पुरुष और उस स्त्री को बांध कर (उत्सक्थ्याः) ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करके और अपनी प्रजा के मध्य (अव,गुदम्) उत्तम सुख को (धेहि) धारण करो और (अञ्जिम्) अपने प्रगट न्याय को (संचारय) भली भांति चलाओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—हे राजन् जो विषय सेवा में रमते हुए जन वा वैसी स्त्री व्यभिचार को बढ़ावें उन २ को प्रबल दण्ड से शिक्षा देनी चाहिये ॥ २१ ॥

यकासकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते ।

विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति । आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥२२॥

यका । असकौ । शकुन्तिका । आहलक् । इति । वञ्चति । आ । हन्ति । गभे । पसः । निगल्गलीति । धारका ॥ २२ ॥

पदार्थः—(यका) या (असकौ) असौ प्रजा (शकुन्तिका) अल्पा पक्षिणीव निर्बला (आहलक्) समन्ताद्धलं विलेखनमञ्चति सः (इति) अनेन प्रकारेण (वञ्चति) प्रलम्भते (आ) (हन्ति) (गभे) प्रजायाम् (पसः) राष्ट्रम् (निगल्गलीति) भृशं निगलतीव वर्त्तते (धारका) सुखस्य धर्त्री ॥ २२ ॥

अन्वयः—यस्यां गभे राजा पसो राष्ट्रमाहन्ति सा धारका प्रजा निगल्गलीति यतो यकाऽसकौ शकुन्तिका शकुन्तिकेव वर्त्तते तस्मादिमाहलप्रजा वञ्चतीति ॥ २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदि राजा न्यायेन प्रजाया रक्षणं न कुर्याद् कृत्वा करं गृह्णीयात्तर्हि यथा प्रजाः क्रमशः क्षीणा भवन्ति तथा राजापि नष्टो भवति । यदि विद्याविनयाभ्यां प्रजाः संरक्षेत्तर्हि राजप्रजे सर्वतो वर्द्धेताम् ॥ २२ ॥

पदार्थः—जिस (गभे) प्रजा में राजा अपने (पसः) राज्य को (आहन्ति) जाने वा प्राप्त हो वह (धारका) सुख की धारण करनेवाली प्रजा (निगल्गलीति) निरन्तर सुख को निगलती सी वर्त्तमान होती है और जिस से (यका) जो (असकौ) यह प्रजा (शकुन्तिका) छोटी चिड़िआ के समान निर्बल है इस से इस प्रजा को (आहलक्) अच्छे प्रकार जो हल भूमि से करोदता है उस को प्राप्त होने वाला अर्थात् हल से जुती हुई भूमि से कर को लेने वाला राजा (वञ्चतीति) ऐसे वञ्चता अपना कर धन लेता है कि जैसे प्रजा सुख को प्राप्त हो ॥ २२ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में वाचकलु०—यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे और प्रजा से कर लेवे तो जैसे२ प्रजा नष्ट हो वैसे राजा भी नष्ट होता है। यदि विद्या और विनय से प्रजा की भली भांति रक्षा करे तो राजा और प्रजा सब ओर से वृद्धि को पावें ॥ २२ ॥

यकोऽसकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजप्रजे देवते। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यकोऽसकौ शकुन्तक आहलगिति वञ्चति। विवक्षतइव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥ २३ ॥

यकः। असकौ। शकुन्तकः। आहलक्। इति। वञ्चति। विवक्षतइवेति विवक्षतःऽइव। ते। मुखम्। अध्वर्यो इत्यध्वर्यो। मा। नः। त्वम्। अभि। भाषथाः ॥ २३ ॥

पदार्थः—(यकः) यः (असकौ) असौ राजा (शकुन्तकः) निर्बलः पक्षीव (आहलक्) समन्ताद्विलिखितं यथास्यात्तथा (इति) (वञ्चति) वञ्चितो भवति (विवक्षतइव) वक्तुमिच्छोरिव (ते) तव (मुखम्) आस्यम् (अध्वर्यो) योऽध्वरमिवाचरति तत्सम्बुद्धौ (मा) (नः) अस्मान् (त्वम्) (अभि) (भाषथाः) वदेः ॥ २३ ॥

अन्वयः— हे अध्वर्यो त्वं नो माभिभाषथा मिथ्याभाषणं विवक्षत इव ते मुखं मा भवतु यद्येवं यकोऽसकौ करिष्यसि तर्हि शकुन्तक इव राजाऽऽहलगिति न वञ्चति ॥ २३ ॥

भावार्थः- अत्रवाचकलु०-राजा कदाचिन्मिथ्याप्रतिज्ञः परुषवादी न स्यान्न कंचिद्वञ्चयेत् । यद्ययमन्यायं कुर्यात्तर्हि स्वयमपि प्रजाभिर्वञ्चितः स्यात् ॥ २३ ॥

पदार्थः हे (अध्वर्यो) यज्ञ के समान आचरण करने हारे राजा (त्वम्) तू (नः) हम लोगों के प्रति (मा, अभिभाषथाः) झूठ मत बोलो और (विवक्षत इव) बहुत गप्प सप्प बकते हुए मनुष्य के मुख के समान (ते) तेरा (मुखम्) मुख मत हो यदि इस प्रकार (यकः) जो (असकौ) यह राजा गप्प सप्प करेगा तो (शकुन्तकः) निर्बल पखेरू के समान (आहलक्) भली भांति उच्छिन्न जैसे हो (इति) इस प्रकार (वञ्चति) ठगा जायगा ॥ २३ ॥

भावार्थः--इस मंत्र में वाचकलु०--राजा कभी झूठी प्रतिज्ञा करने और कटु-वचन बोलनेवाला न हो तथा न किसी को ठगे जो यह राजा अन्याय करे तो आप भी प्रजा जनों से ठगा जाय ॥ २३ ॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूमिसूर्यौ देवते ।

निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ।

फिर उसी वि० ।

माता च॑ ते पि॒ता च॑ तेऽग्रं॑ वृ॒क्षस्य॑ रोहतः ।
प्रति॑लामी॒ति ते॑ पि॒ता ग॒भे मु॒ष्टिमत॑ꣳसयत् ॥२४॥

माता । च । ते । पिता । च । ते । अग्रम् । वृक्षस्य । रोहतः । प्रतिलामि । इति । ते । पिता । गभे । मुष्टिम् । अतꣳसयत् ॥ २४ ॥

पदार्थः-(माता) पृथिवीव वर्त्तमाना माता (च) (ते) तव (पिता) सूर्य्य इव वर्त्तमानः पिता (च) (ते) तव (अग्रम्) मुख्यश्रियम् (वृक्षस्य) व्रश्चितुं छेत्तुं योग्यस्य संसाराख्यस्य राजस्य (रोहतः) (प्रतिलामि) स्निह्यामि (इति) (ते) तव (पिता) (गभे) प्रजायाम् (मुष्टिम्) मुष्ट्या धनग्राहकं राज्यम् (अतंसयत्) तंसयत्यलंकरोति ॥ २४ ॥ इयं वै माताऽसौ पिता वाभ्यामेवैनं स्वर्गं लोकं गमयत्यग्रं वृक्षस्य रोहत इति । श्रीर्वै राष्ट्रस्याग्रꣳ श्रियमेवैनꣳ राष्ट्रस्याग्रं गमयति प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयदिति । विड्वै गभो राष्ट्रं मुष्टी राष्ट्रमेवाविश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः ॥ श० कां० १२ अ० २ ब्रा० १ कं ७ ॥

अन्वयः—हे राजन् यदि ते पृथिवीव माता च सूर्य्य इव ते पिता च वृक्षस्याग्रं रोहतः । यदि ते पिता गभे मुष्टिमतं सयत्तर्हि प्रजाजनोऽहम्प्रतिलामीति ॥ २४ ॥

भावार्थः—यौ मातापितरौ पृथिवीसूर्य्यवद्धैर्यविद्याप्रकाशितौ न्यायेन राज्यं पालयित्वाग्र्यां श्रियं प्राप्य प्रजाभूषयित्वा स्वस्य पुत्रं राजनीत्या युक्तं कुर्यातां तौ राज्यं कर्तुमर्हेताम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे राजन् यदि (ते) आप की (माता) पृथिवी के तुल्य सहन शील मान करने वाली माता (च) और (ते) आप का (पिता) सूर्य्य के समान तेजस्वी पालन करने वाला पिता (च) भी (वृक्षस्य) छेदन करने योग्य संसार रूप वृक्ष के राज्य की (अग्रम्) मुख्य श्री शोभा वा लक्ष्मी पर

(रोहतः) आरूढ होते हैं आप का (पिता) पिता (गर्भे) प्रजा में (मुष्टिम्) मुट्ठी से धन लेने वाले राज्य को धन लेकर (अतंसयत्) प्रकाशित करता है तो मैं (इति) इस प्रकार प्रजाजन (प्र,तिलामि) भली भांति उस राजा से प्रीति करता हूं ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो माता पिता पृथिवी और सूर्य्य के तुल्य धैर्य और विद्या से प्रकाश को प्राप्त न्याय से राज्य को पाल कर उत्तम लक्ष्मी वा शोभा को पाकर प्रजा को सुशोभित कर अपने पुत्र को राजनीति से युक्त करें वे राज्य करने को योग्य हों ॥ २४ ॥

मातावेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूमिसूर्य्यौ देवते ।
निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनर्मातापितरौ कीदृशौ भवेतामित्याह ॥

फिर माता पिता कैसे हों इस वि० ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः ।
विवक्षत इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥२५॥

माता । च । ते । पिता । च । ते । अग्रे । वृक्षस्य । क्रीडतः । विवक्षतऽइतिविऽवक्षतःऽइव । ते । मुखम् । ब्रह्मन् । मा । त्वम् । वदः । बहु ॥ २५ ॥

पदार्थः—(माता) पृथिवीवज्जननी (च) (ते) (पिता) सूर्यवद्वर्तमानः (च) (ते) (अग्रे) विद्याराजलक्ष्म्यां (वृक्षस्य) राज्यस्य मध्ये (क्रीडतः) (विवक्षत इव) (ते) तव (मुखम्) (ब्रह्मन्) चतुर्वेदवित् (मा) (त्वम्) (वदः) वदेः (बहु) ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन् यस्य ते माता च यस्य ते पिता च वृक्षस्याग्रे क्रीडतस्तस्य ते विवक्षत इव यन्मुखं तेन त्वं बहु मा वदः ॥ २५ ॥

भावार्थः—यौ मातापितरौ सुशीलौ धर्मात्मानौ श्रीमन्तौ कुलीनौ भवेतां ताभ्यां शिक्षित एवं पुत्रो मितभाषी भूत्वा कीर्त्तिमाप्नोति ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) चारों वेदों के जानने वाले सज्जन जिस (ते) सूर्य के समान तेजस्वी आप की (माता) पृथिवी के समान माता (च) और जिन (ते) आप का (पिता) पिता (च) भी (वृक्षस्य) संसार रूप राज्य के बीच (अग्रे) विद्या और राज्य की शोभा में (क्रीडतः) रमते हैं उन (ते) आप का (विवक्षत इव) बहुत कहा चाहते हुए मनुष्य के मुख के समान (मुखम्) मुख है उस से (त्वम्) तू (बहु) बहुत (मा) मत (वदः) कहा कर ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो माता पिता सुशील धर्मात्मा लक्ष्मीवान् कुलीन हों उन्हों ने सिखाया हुआ ही पुत्र प्रमाण युक्त थोड़ा बोलने वाला होकर कीर्ति को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । श्रीर्देवता ।
अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुना राजपुरुषः कामुत्कृष्टां कुर्युरित्याह ॥

फिर राज पुरुष किस की उन्नति करें इस वि० ॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव ।
अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव ॥२६॥

ऊर्ध्वाम्। एनाम्। उत्। श्रापय। गिरौ। भारम्। हरन्निवेति हरन्ऽइव। अथ। अस्यै। मध्यम्। एधताम्। शीते। वाते। पुनन्निवेति पुनन्ऽइव॥ ॥ २६ ॥

पदार्थः—(ऊर्ध्वाम्) उत्कृष्टाम् (एनाम्) राज्यश्रिया युक्तां प्रजाम् (उत्) (श्रापय) ऊर्ध्वं नय (गिरौ) पर्वते (भारम्) (हरन्निव) (अथ) (अस्यै) अस्याः (मध्यम्) (एधताम्) वर्द्धताम् (शीते) (वाते) वायौ (पुनन्निव) पृथक् कुर्वन्निव॥ २६॥ ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापयेति। श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः श्रियमेवास्मै राष्ट्रमूर्ध्वमुच्छ्रयति गिरौ भारꣳहरन्निवेति। श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः श्रियमेवास्मै राष्ट्रꣳसंनह्यत्यथो श्रियमेवास्मिन् राष्ट्रमधिनिदधाति। अथास्यै मध्यमेधतामिति श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यꣳश्रियमेव राष्ट्रे मध्यतोऽन्नाद्यं ददाति शीते वाते पुनन्निवेति क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतं क्षेममेवास्मै करोति। श० का० १३ ब्रा० २ कं० १। २। ३। ४॥

अन्वयः—हे राजन् त्वं गिरौ भारं हरन्निवैनामूर्ध्वामुच्छ्रापय। अथास्यै मध्यं प्राप्य शीते वाते पुनन्निव भवानेधताम्॥ २६॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा कश्चिद्भारवान् शिरसि पृष्ठे वा भारमुत्थाप्य गिरिमारुह्योपरि स्थापयेत्तथा राजा श्रियमुन्नतिभावं नयेत्। यथा वा कृषीवला बुसादिभ्योऽन्नं पृथक्कृत्य भुक्त्वा वर्द्धन्ते तथा सत्यन्यायेन सत्यासत्ये पृथक् कृत्य न्यायकारी राजा नित्यं वर्द्धते॥ २६॥

पदार्थः—हे राजन् तू (गिरौ) पर्वत पर (भारम्) भार (हरन्निव) पहुंचाते हुए के समान (एनाम्) इस राज्य लक्ष्मी युक्त (ऊर्ध्वाम्) उत्तम कक्षा वाली प्रजा को (उ-

च्छ्रापय) सदा अधिक २ उन्नति दिया कर (अथ) अब (अस्यै) इस प्रजा के (मध्यम्) मध्य भाग लक्ष्मी को पाकर (शीते) शीतल (वाते) पवन में (पुनन्निव) खेती करने वालों की क्रिया से जैसे अन्न आदि शुद्ध हो या पवन के योग से जल स्वच्छ हो वैसे आप (एधताम्) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालं०—राजा जैसे कोई बोझा ले जाने वाला अपने शिर वा पीठ पर बोझा को उठा पर्वत पर चढ़ उस भार को ऊपर स्थापन करे वैसे लक्ष्मी को उन्नति होने को पहुंचावे वा जैसे खेती करने वाले भूसा आदि से अन्न को अलग कर उस अन्न को खा के बढ़ते हैं वैसे सत्य न्याय से सत्य असत्य को अलग कर न्याय करने द्वारा राजा नित्य बढ़ता है ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वमेनमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । श्रीर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद् गिरौ भारꣳहरन्निव। अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव॥२७॥

ऊर्ध्वम् । एनम् । उत् । श्रयतात् । गिरौ । भारम् । हरन्निवेति हरन्ऽइव । अथ । अस्य । मध्यम् । एजतु । शीते । वाते । पुनन्निवेति पुनन्ऽइव ॥ २७ ॥

पदार्थः—(ऊर्ध्वम्) अग्रगामिनम् (एनम्) राजानम् (उच्छ्रयतात्) उच्छ्रितं कुर्यात् (गिरौ) पर्वते (भारम्) (हरन्निव) (अथ) (अस्य) राष्ट्रस्य (मध्यम्) (एजतु) सत्कर्मसु चेष्टताम् (शीते) (वाते) (पुनन्निव)॥२७॥

अन्वयः—हे प्रजास्थ विद्वन् भवान् गिरौ भारं हरन्निवैनं राजानमूर्द्धमुच्छ्रयतात् । अथास्य मध्यं प्राप्य शीते वाते पुनन्निवैजतु ॥ २७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथासूर्यो मेघमण्डले जलभारं नीत्वा वर्षयित्वा सर्वानुन्नयति तथैव प्रजा राजपुरुषानुन्नयेदधर्माचरणाद्बिभीयाच्च ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे प्रजास्थ विद्वान् आप (गिरौ) पर्वत पर (भारम्) भार को (हरन्निव) पहुंचाने के समान (एनम्) इस राजा को (ऊर्ध्वम्) सब व्यवहारों में अग्रगन्ता (उच्छ्रयतात्) उन्नति युक्त करें (अथ) इस के अनन्तर जैसे (अस्य) इस राज्य के (मध्यम्) मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर (शीते) शीतल (वाते) पवन में (पुनन्निव) शुद्ध होते हुए अन्न आदि के समान (एजतु) उत्तम कर्मों में चेष्टा किया कीजिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में दो उपमालं०—जैसे सूर्य मेघमण्डल में जल के भार को पहुंचा और वहां से वर्षाके सब को उन्नति देता है वैसे ही प्रजा जन राजपुरुषों को उन्नति दें और अधर्म के आचरण से डरें ॥ २७ ॥

यदस्याइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।
निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यदस्याऽ अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्कावि॑दस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥२८॥

यत् । अस्याः । अꣳहुभेद्याऽइत्यꣳहुऽभेद्याः । कृधु । स्थूलम् । उपातसदित्युपऽअतसत् । मुष्कौ । इत् । अस्याः । एजतः । गोशफऽइति गोऽशफे । शकुलाविवेतिशकुलौऽइव ॥ २८ ॥

पदार्थः—(यत्) यः (अस्याः) प्रजायाः (अंहुभेद्याः) अंहुमपराधं या भिनत्ति तस्याः (कृधु) ह्रस्वम् । कृधिवति ह्रस्वनाम० निघं० ३ । २ । (स्थूलम्) महत् कर्म (उपातसत्) उपभूषयेत् (मुष्कौ) मूषकौ (इत्) एव (अस्याः) (एजतः) कम्पयतः (गोशफे) गोखुरचिन्हे (शकुलाविव) ह्रस्वौ मत्स्याविव ॥ २८ ॥

अन्वयः—यद्यो राजा राजपुरुषश्चास्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलं कर्मोपातसत्तावस्या एजतो गोशफे शकुलाविव मुष्काविदेजतः ॥ २८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा प्रीतिमन्तौ मत्स्यावल्पेपि जलाशये निवसतस्तथा राजराजपुरुषावल्पेऽपि करलाभे न्यायेन प्रीत्या वर्त्तेयातां यदि दुःखच्छेदिकायाः प्रजायाः स्वल्पमहदुत्तमं कर्म प्रशंसयेतां तर्हि तौ प्रजा उपरक्ताः कृत्वा स्वविषये प्रीतिं कारयेताम् ॥ २८ ॥

पदार्थः—(यत्) जो राजा वा राजपुरुष (अस्याः) इस (अंहुभेद्याः) अपराध का विनाश करने वाली प्रजा के (कृधु) थोड़े और (स्थूलम्) बहुत कर्म को (उपातसत्) सुशोभित करें वे दोनों (अस्याः) इस को (एजतः) कर्म कराते हैं और वे आप (गोशफे) गौ के खुर से भूमि में हुए गढ़ेले में (शकुलाविव) छोटी दो मछलियों के समान (मुष्कौ) प्रजा से पाये हुए कर को चोरते हुए कंपते हैं ॥ २८ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमालं०-जैसे एक दूसरे से प्रीति रखने वाली मछली छोटी ताल तलैया में निरन्तर बसती हैं वैसे राजा और राजपुरुष थोड़े भी कर के लाभ में न्यायपूर्वक प्रीति के साथ वर्त्तें और यदि दुःख को दूर करने वाली प्रजा के थोड़े बहुत उत्तम काम की प्रशंसा करें तो वे दोनों प्रजा जनों को प्रसन्न कर अपने में उन से प्रीति करावें ॥ २८ ॥

यद्देवासइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः । सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥२६॥

यत् । देवासः । ललामगुमिति ललामऽगुम् । प्र । विष्टीमिनम् । आविषुः । सक्थ्ना । देदिश्यते । नारी । सत्यस्य । अक्षिभुव इत्यक्षिऽभुवः । यथा ॥२९॥

पदार्थः—(यत्) यम् (देवासः) विद्वांसः (ललामगुम्) येन न्यायेनप्रशस्तं गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति तम् (प्र) (विष्टीमिनम्) विशिष्टा बहवः ष्टीमा आर्द्रीभूताः पदार्था विद्यन्ते यस्मिँस्तम् (आविषुः) व्याप्नुयुः (सक्थ्ना) शरीरावयवेन (देदिश्यते) भृशमुपदिश्येत (नारी) नरस्य स्त्री (सत्यस्य) (अक्षिभुवः) यदक्षिणि भवति प्रत्यक्षं तस्य (यथा) ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे राजन् यथा सत्यस्याक्षिभुवो मध्ये वर्त्तमाना देवासः सक्थ्ना नारीव यद्विष्टीमिनं ललामगुं न्यायं प्राविषुर्यथाचाऽऽप्तेन सत्यमेव देदिश्यते तथा त्वमाचर ॥ २९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमा०—यथा शरीराङ्गैः स्त्रीपुरुषौ लक्ष्येते तथा प्रत्यक्षादिप्रमाणैः सत्यं लक्ष्यते तेन सत्येन विद्वांसो यथा प्राप्तव्यमार्द्रभावं प्राप्नुयुस्तथेतरे राजप्रजास्थाः स्त्रीपुरुषा विद्यया विनयं प्राप्य सुखमन्विच्छन्तु ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे राजन् (यथा) जैसे (सत्यस्य) सत्य (अक्षिभुवः) आंख के सामने प्रगट हुए प्रत्यक्ष व्यवहार के मध्य में वर्त्तमान (देवासः) विद्वान् लोग (सक्थ्ना) जांघ वा और अपने शरीर के अंग से (नारी) स्त्री के समान (यत्) जिस (विष्टीमिनम्) जिस में सुन्दर बहुत गीले पदार्थ विद्यमान हैं (ललामगुम्) और जिस से मनोवाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं ऐसे न्याय को (प्राविषुः) व्याप्त हों वा जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन सत्य का (देदिश्यते) निरन्तर उपदेश करें वैसे आप आचरण करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे शरीर के अंगों से स्त्री पुरुष लखे जाते हैं हैं वैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सत्य लखा जाता है उस सत्य से विद्वान् लोग जैसे पाने योग्य कोमलता को पावें वैसे और राजा प्रजा के स्त्री पुरुष विद्या से नम्रता को पाकर सुख को ढूंढें ॥ २९ ॥

यद्धरिणइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता ।
निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः स राजा कथमाचरेदित्याह ॥

फिर वह राजा कैसे आचरण करे इस वि० ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते ।
शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

यत्। हरिणः। यवम्। अत्ति। न। पुष्टम्। पशु। मन्यते। शूद्रा। यत्। अर्य्यजारेत्यर्य्यऽजारा। न। पोषाय। धनायति ॥ ३० ॥

पदार्थः—(यत्) यः (हरिणः) पशुः (यवम्) (अत्ति) (न) (पुष्टम्) (पशु) पशुम् (मन्यते) (शूद्रा) शूद्रस्य स्त्री (यत्) या (अर्य्यजारा) अर्य्यौस्वामिवैश्यौ जारयति वयसा हन्ति सा (न) निषेधे (पोषाय) पुष्टये (धनायति) आत्मनो धनमिच्छति ॥ ३० ॥

अन्वयः—यत् यो राजा हरिणो यवमत्तीव पुष्टं पशु न मन्यते स यद्यर्य्यजारा शूद्रेव पोषाय न धनायति ॥ ३० ॥

भावार्थः—यो राजा पशुवद्व्यभिचारे वर्त्तमानः प्रजापुष्टिं न करोति स धनाढ्या शूद्रा जारा दासीव सद्यो रोगी भूत्वा पुष्टिं विनाश्य धनहीनतया दरिद्रः सन् म्रियते तस्माद्राजा कदाचित्परस्त्र्या व्यभिचारं च नाचरेत् ॥ ३० ॥

पदार्थः—(यत्) जो राजा (हरिणः) हरिण जैसे (यवम्) खेत में उगे हुए जौ आदि को (अत्ति) खाता है वैसे (पुष्टं) पुष्ट (पशु) देखने योग्य अपने प्रजा जन को (न) नहीं (मन्यते) मानता अर्थात् प्रजा को रुष्ट पुष्ट नहीं देख के खाता है वह (यत्) जो (अर्य्यजारा) स्वामी वा वैश्य कुल को अवस्था से बुड्ढा करने हारी दासी (शूद्रा,) शूद्र की स्त्री के समान (पोषाय) पुष्टि के लिये (न) नहीं (धनायति) अपने को धन चाहता है ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो राजा पशु के समान व्यभिचार में वर्त्तमान प्रजा की पुष्टि को नहीं करता वह धनाढ्य शूद्र कुल की स्त्री जो कि जार कर्म करती हुई दासी है उस

के समान शीघ्र रोगी होकर अपनी पुष्टि का विनाश कर के धन हीनता से दरिद्र हुआ मरता है इस से राजा न कभी ईर्ष्या और न व्यभिचार का आचरण करे ॥ ३० ॥

यद्धरिणइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः स राजा केन हेतुना नश्यतीत्याह ॥

फिर वह राजा किस हेतु से नष्ट होता है इस वि० ॥

यद्ध॑रि॒णो यव॒मत्ति॒ न पु॒ष्टं ब॒हु मन्य॑ते। शू॒द्रो यदर्यं॑यै जा॒रो न पोष॒मनु॑ मन्यते ॥ ३१ ॥

यत् । ह॒रि॒णः । यव॑म् । अत्ति॑ । न । पु॒ष्टम् । ब॒हु । मन्य॑ते । शू॒द्रः । यत् । अर्य्या॑यै । जा॒रः । न । पोष॑म् । अनु॑ । म॒न्य॒ते ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(यत्) यः (हरिणः) (यवम्) (अत्ति) भक्षयति (न) (पुष्टम्) प्रजाजनम् (बहु) अधिकम् (मन्यते) जानाति (शूद्रः) मूर्खकुलोत्पन्नः (यत्) यः (अर्य्यायै) अर्य्यायाः स्वामिनो वैश्यस्य वा स्त्रियाः (जारः) व्यभिचारेण वयो हन्ता (न) निषेधे (पोषम्) पुष्टम् (अनु) (मन्यते) ॥ ३१ ॥

अन्वयः—यद्यः शूद्रोऽर्य्यायै जारो भवति स यथा पोषं नाऽनुमन्यते यत् यो राजा हरिणो यवमत्तीव पुष्टं प्रजाजनं बहु न मन्यते स सर्वतः क्षीणो जायते ॥ ३१ ॥

भावार्थः—अत्रवाचकलु०—यदि राजा राजपुरुषाश्च परस्त्रीवेश्यागमनाय पशुवद्वर्त्तन्ते तान् सर्वे विद्वांसः शूद्रानिवजानन्ति यथा शूद्रः

आर्य्यकुले जारो भूत्वा सर्वान् संकरयति तथा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याःशूद्रकुले व्यभिचारं कृत्वा वर्णसंकरनिमित्ता भूत्वा नश्यन्ति ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (शूद्रः) मूर्खों के कुल में जन्मा हुआ मूढजन (अर्य्यायै) अपने स्वामी अर्थात् जिस का सेवक उसकी वा वैश्य कुल की स्त्री के अर्थ (जारः) जार अर्थात् व्यभिचार से अपनी अवस्था का नाश करने वाला होता है वह जैसे (पोषम्) पुष्टि का (न) नहीं (अनुमन्यते) अनुमान रखता वा (यत्) जो राजा (हरिणः) हरिण जैसे (यवम्) उगे हुए जौ आदि को (अत्ति) खाता है वैसे (पुष्टम्) धन सन्तान स्त्री सुख ऐश्वर्य्य आदि से पुष्ट अपने प्रजा जन को (बहु) अधिक (न) नहीं (मन्यते) मानता वह सब ओर से क्षीण नष्ट और भ्रष्ट होता है ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मंत्रमें वाचकलु०—जो राजा और राजपुरुष परस्त्री और वेश्यागमन के लिये पशु के समान अपना वर्त्ताव करते हैं उन को सब विद्वान् शूद्र के समान जानते हैं जैसे शूद्र मूर्खजन श्रेष्ठों के कुल में व्यभिचारी होकर सब को वर्णसंकर कर देता है वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्र कुल में व्यभिचार करके वर्णसंकर के निमित्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥

दधिक्राव्णइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता ।
अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः स राजा कस्येव किं वर्द्धयेदित्याह ॥

फिर वह राजा किस के समान क्या बढ़ावे इस वि० ॥

दधिक्राव्णो॑ऽअकारिषं जि॒ष्णोरश्व॑स्य वा॒जिनः॑ । सु॒र॒भि नो॒ मुखा॑ कर॒त् प्र ण॒ऽआयू॑ᳪषि तारिषत् ॥ ३२ ॥

दधिक्राव्णइति दधिऽक्राव्णः । अकारिषम् । जिष्णोः । अश्वस्य । वाजिनः । सुरभि । नः । मुखा । करत् । प्र । नः । आयूंषि । तारिषत् ॥३२॥

पदार्थः—(दधिक्राव्णः) यो दधीन् पोषकान्धारकान् वा काम्यति तस्य (अकारिषम्) कुर्याम् (जिष्णोः) जयशीलस्य (अश्वस्य) आशुगामिनः (वाजिनः) बहुवेगवतः (सुरभि) प्रशस्तसुगन्धियुतानि (नः) अस्माकम् (मुखा) मुखानि (करत्) कुर्य्यात् (प्र) (नः) (अस्माकम्) (आयूंषि) (तारिषत्) सन्तारयेत् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे राजन् यथाऽहं दधिक्राव्णो वाजिनो जिष्णोरश्वस्येव वीर्यमकारिषं तथा भवान् नः सुरभि मुखेव वीर्यं प्रकरन्न आयूंषि तारिषत् ॥३२॥

भावार्थः—यथाऽश्वशिक्षका अश्वान् वीर्यरक्षणनियमेन बलिष्ठान् संग्रामे विजयनिमित्तान् कुर्वन्ति तथैवाध्यापकोपदेशकाः कुमारान् कुमारींश्च पूर्णेन ब्रह्मचर्यसेवनेन विद्यायुक्तान् विदुषीश्च कृत्वा शरीरात्मबलाय प्रवर्त्य दीर्घायुषो युद्धशालीनान् सम्पादयेयुः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे मैं (दधिक्राव्णः) जो धारण पोषण करने वालों को प्राप्त होता (वाजिनः) बहुत वेगयुक्त (जिष्णोः) जीतने और (अश्वस्य) शीघ्र जाने वाला है उस घोड़े के समान पराक्रम को (अकारिषम्) करूं वैसे आप (नः) हम लोगों के (सुरभि) सुगन्धि युक्त (मुखा) मुखों के तुल्य पराक्रम को (प्र,करत्) भली भांति करो और (नः) हमारे (आयूंषि) आयुओं को (तारिषत्) उन की अवधि के पार पहुंचाओ ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जैसे घोड़ों के सिखाने वाले घोड़ों को पराक्रम की रक्षा के नियम से बलिष्ठ और संग्राम में जिताने वाले करते हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करने हारे कुमार और कुमारियों को पूरे ब्रह्मचर्य्य के सेवन से पण्डित पण्डिता कर उन को शरीर और आत्मा के बल के लिये प्रवृत्त करा के बहुत आयु वाले और अति युद्ध करने में कुशल बनावें ॥ ३२ ॥

गायत्रीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह

फिर उसी वि०

**गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३३॥**

गायत्री । त्रिष्टुप् । त्रिस्तुविति त्रिऽस्तुप् । जगती । अनुष्टुप् । अनुस्तुवित्यनुऽस्तुप् । पङ्क्त्या । सह । बृहती । उष्णिहा । ककुप् । सूचीभिः । शम्यन्तु । त्वा ॥ ३३ ॥

पदार्थः--(गायत्री) गायन्तं त्रायमाणा (त्रिष्टुप्) याऽध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकानि त्रीणि सुखानि स्तोभते स्तभ्नाति सा (जगती) जगद्वद्विस्तीर्णा (अनुष्टुप्) यया ऽनुष्टोभते सा (पङ्क्त्या) विस्तृतया क्रियया (सह) (बृहती) महदर्था (उष्णिहा) यया उषः स्निह्यति तथा (ककुप्) लालित्ययुक्ता (सूचीभिः) सीवनसाधिकाभिः (शम्यन्तु) (त्वा) त्वाम् ॥३३॥

अन्वयः-- हे विद्वन् ये विद्वांसः पङ्क्त्या सह गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुबुष्णिहा सह बृहती ककुप्सूचीभिरिव त्वा त्वां शम्यन्तु तांस्त्वं सेवस्व ॥ ३३ ॥

भावार्थः-- ये विद्वांसो गायत्र्यादिछन्दोऽर्थविज्ञापनेन मनुष्यान् विदुषः कुर्वन्ति सूच्या छिन्नं वस्त्रमिव भिन्नमतान्यनुसंदधत्यैकमत्ये स्थापयन्ति ते जगत्कल्याणकारका भवन्ति ॥ ३३ ॥

पदार्थः— हे विद्वान् जो विद्वान् जन (पंक्त्या) विस्तारयुक्त पंक्ति छन्द के (सह) साथ जो (गायत्री) गाने वाले की रक्षा करती हुई गायत्री (त्रिष्टुप्) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों दुःखों को रोकने वाला त्रिष्टुप् (जगती) जगत् के समान विस्तीर्ण अर्थात् फैली हुई जगती (अनुष्टुप्) जिस से पीछे से संसार के दुःखों को रोकते हैं वह अनुष्टुप् तथा (उष्णिहा) जिस से प्रातःसमय की वेला को प्राप्ति करता है उस उष्णिह् छन्द के साथ (बृहती) गम्भीर आशय वाली बृहती (ककुप्) ललित पदों के अर्थ से युक्त ककुप्छन्द (सूचीभिः) सूइयों से जैसे वस्त्र सिआ जाता है वैसे (त्वा) तुझको (शम्यन्तु) शान्ति युक्त करें या सब विद्याओं का बोध करावें उनका तू सेवन कर ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् गायत्री आदि छन्दों के अर्थ को बताने से मनुष्यों को विद्वान् करते हैं और सूई से फटे वस्त्र को सींवें त्यों अलग२ मतवालों का सत्य में मिलाप कर देते हैं और उन को एक मत में स्थापन करते हैं वे जगत् के कल्याण करने वाले होते हैं ॥ ३३ ॥

द्विपदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवताः ।
निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
पुनर्विद्वांसः किं कुर्युरित्याह ॥
फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः । विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥

द्विपदाऽइति द्विऽपदाः । याः । चतुष्पदाऽइति चतुःऽपदाः । त्रिपदाऽइति त्रिऽपदाः । याः । च । षट्पदाऽइति षट्ऽपदाः । विच्छन्दाऽइति विऽच्छन्दाः । याः । च । सच्छन्दाऽइति सऽच्छन्दाः । सूचीभिः । शम्यन्तु । त्वा ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(द्विपदाः) द्वे पदे यासु ताः (याः) (चतुष्पदाः) चत्वारि पदानि यासु ताः (त्रिपदाः) त्रीणि पदानि यासु ताः (याः) (च) (षट्पदाः) षट् पदानि यासु ताः (विच्छन्दाः) विविधानि छन्दांस्यूर्जनानि यासु ताः (याः) (च) (सच्छन्दाः) समानानि छन्दांसि यासु ताः (सूचीभिः) अनुसंधानसाधिकाभिः क्रियाभिः(शम्यन्तु) (त्वा) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—ये विद्वांसः सूचीभिर्या द्विपदा याश्चतुष्पदा याश्त्रिपदा या श्च षट्पदा या विच्छन्दा याश्च सच्छन्दास्त्वां ग्राहयित्वा शम्यन्तु शमं प्रापयन्तु तान् नित्यं सेवस्व ॥ ३४ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो मनुष्यान् ब्रह्मचर्यनियमेन वीर्यवृद्धिं प्रापय्यारोगान् जितेन्द्रियान् विषयासक्तिविरहान्कृत्वा धर्म्ये व्यवहारे चालयन्ति ते सर्वेषां पूज्या भवन्ति ॥ ३४ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् जन (सूचीभिः) सन्धियों को मिला देने वाली क्रियाओं से (याः) जो (द्विपदाः) दो २ पद वाली वा जो (चतुष्पदाः) चार ४ पद वाली वा (त्रिपदाः) तीन पदों वाली (च) और (याः) जो (षट्पदाः) छः पदों वाली जो (विच्छन्दाः) अनेकविध पराक्रमों वाली (च) और (याः) जो (सच्छन्दाः) ऐसी हैं कि जिन में एक से छन्द हैं वे क्रिया (त्वा) तुम को ग्रहण कराके (शम्यन्तु) शान्ति सुख को प्राप्त करावें उन का नित्य सेवन करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य नियम से वीर्य्य वृद्धि को पहुंचा कर नीरोग जितेन्द्रिय और विषयासक्ति से रहित करके धर्मयुक्त व्यवहार में चलाते हैं वे सब को पूज्य अर्थात् सत्कार करने के योग्य होते हैं ॥ ३४ ॥

महानाम्न्यइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवता ।
भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनर्विद्वांसः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥
फिर विद्वान् कैसे हों इस वि० ॥

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः । मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥

महानाम्न्य इति महाऽनाम्न्यः । रेवत्यः । विश्वाः । आशाः । प्रभूवरीरिति प्रऽभूवरीः । मैघीः । विद्युत इति विऽद्युतः । वाचः । सूचीभिः । शम्यन्तु । त्वा ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(महानाम्न्यः) महन्नाम यासां ताः (रेवत्यः) बहुधनयुक्ताः (विश्वाः) अखिलाः (आशाः) दिशः (प्रभूवरीः) प्रभुत्वयुक्ताः (मैघीः) मेघानामिमाः (विद्युतः) (वाचः) (सूचीभिः) (शम्यन्तु) (त्वा) त्वाम् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो सूचीभिर्या महानाम्न्यो रेवत्यः प्रभूवरीर्विश्वा आशा इव मैघीर्विद्युतश्च वाचस्त्वा शम्यन्तु तास्त्वं गृहाण ॥ ३५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—येषां वाचो दिग्वत्सर्वासु विद्यासु व्यापिका मेघस्था विद्युदिव सर्वार्थप्रकाशिकाः सन्ति ते शान्त्या जितेन्द्रियत्वं प्राप्य महाकीर्त्तयो जायन्ते ॥ ३५ ॥

पदार्थ—हे ज्ञान चाहने हारे (सूचीभिः) सन्धान करने वाली क्रियाओं से जो (महानाम्न्यः) बड़े नाम वाली (रेवत्यः) बहुत प्रकार के धन और (प्रभूवरीः) प्रभुता से युक्त (विश्वाः) समस्त (आशाः) दिशाओं के समान

(मैघीः) वा मेघों की तड़फ (विद्युतः) जो बिजुली उन के समान (वाचः) वाणी (त्वा) तुझ को (शम्यन्तु) शान्तियुक्त करें उन का तू ग्रहण कर ॥ ३५ ॥

भावार्थ :—इस मंत्र में वाचकलु०—जिन की वाणी दिशा के तुल्य सब विद्याओं में व्याप्त होने और मेघ में ठहरी हुई बिजुली के समान अर्थ का प्रकाश करने वाली हैं वे विद्वान् शांति से जितेन्द्रियता को प्राप्त होकर बड़ी कीर्त्ति वाले होते हैं ॥ ३५ ॥

नार्यइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः ।
भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ कन्याः कियद्ब्रह्मचर्यं कुर्युरित्याह ॥

अब कन्या कितना ब्रह्मचर्य करें इस वि० ॥

नार्य॑स्ते॒ पत्न्यो॒ लोम॒ विचि॑न्वन्तु मनी॒षया॑ । दे॒वानां॒ पत्न्यो॒ दिशः॑ सू॒चीभिः॑ शम्यन्तु त्वा ॥३६॥

नार्यैः । ते॒ । पत्न्यः॑ । लोम॑ । वि । चि॒न्वन्तु॒ । म॒नी॒षया॑ । दे॒वाना॑म् । पत्न्यः॑ । दिश॑ः । सू॒चीभिः॑ । श॒म्य॒न्तु॒ । त्वा॒ ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(नार्यः) नराणां स्त्रियः (ते) तव (पत्न्यः) स्त्रियः (लोम) अनुकूलं वचनम् (वि) (चिन्वन्तु) सञ्चितं कुर्वन्तु (मनीषया) मनसईषणकर्त्र्या प्रज्ञया (देवानाम्) विदुषाम् (पत्न्यः) स्त्रियः (दिशः) (सूचीभिः) अनुसंधानक्रियाभिः (शम्यन्तु) (त्वा) त्वाम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः— हे विदुष्यध्यापिके याः कुमार्य्यो मनीषया ते लोम विचिन्वन्तु ता देवानां नार्य्यः पत्न्यो भवन्तु हे कुमारि या देवानां पत्न्यो भूत्वा सूचीभिः दिश इव शुद्धा विदुष्यः सन्ति तास्त्वा त्वां शम्यन्तु ॥ ३६ ॥

भावार्थः—याः कन्या आद्ये वयसि आषोडशादाचतुर्विंशद्वर्षब्रह्मचर्य्येण विद्यासुशिक्षाः प्राप्य स्वसदृशानां पत्न्यः स्युस्ता दिश इव सुप्रकाशितकीर्त्तयो भवन्ति ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे पण्डिता पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री जो कुमारी (मनीषया) तीक्ष्ण बुद्धि से (ते) तेरी (लोम) अनुकूल आज्ञा को (विचिन्वन्तु) इकट्ठा करें वे (देवानाम्) पण्डितों की (नार्य्यः) पण्डितानी हों हे कुमारी जो पण्डितों की (पत्न्यः) पण्डितानी होके (सूचीभिः) मिलाप की क्रियाओं से (दिशः) दिशाओं के समान शुद्ध पाक विद्या पढ़ी हुई हैं वे (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति और ज्ञान दें ॥ ३६ ॥

भावार्थः—जो कन्या प्रथम अवस्था में सोलह वर्षकी अवस्था से चौबीस वर्षकी अवस्था तक ब्रह्मचर्यसे विद्या उत्तम शिक्षाओं पाकर अपने सदृश पुरुषों की पत्नी हों वे दिशाओं के समान उत्तम प्रकाशयुक्त कीर्ति वाली हों ॥ ३६ ॥

रजताइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्ताः कीदृशो भवेयुरित्याह ॥

फिर वे कैसी हों इस वि० ॥

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः । अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥

रजताः । हरिणीः । सीसाः । युजः । युज्यन्ते । कर्मभिरिति कर्मऽभिः । अश्वस्य । वाजिनः । त्वचि । सिमाः । शम्यन्तु । शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(रजताः) अनुरक्ताः (हरिणीः) प्रशस्ता हरो हरणं विद्यते यासां ताः (सीसाः) प्रेमबन्धिकाः । अत्र षिञ् बन्धने, इत्यस्मादौणादिकः क्स, प्रत्ययोऽन्येषामपीति दीर्घः (युजः) समाहिताः (युज्यन्ते) (कर्मभिः) धर्म्याभिः क्रियाभिः (अश्वस्य) व्याप्तुं शीलस्य (वाजिनः) प्रशस्तबलवतः (त्वचि) संवरणे (सिमाः) प्रेम्णा बद्धाः (शम्यन्तु) आनन्दन्तु (शम्यन्तीः) शमं प्राप्नुवतीः प्रापयन्त्यो वा ॥ ३७ ॥

अन्वयः—यथा स्वयंवरा वाजिनोऽश्वस्य त्वचि संयुज्यन्ते तथा कर्मभी-रजता हरिणीः सीसा युजः शम्यन्तीः सिमा हृद्यान् पतीन् प्राप्य शम्यन्तु ॥ ३७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या ये सुशिक्षिताः स्वयंवरा भूत्वा स्त्रीपुरुषाः स्वेच्छया परस्परस्मिन् प्रीता विवाहं कुर्वन्ति ते भद्रान् लावण्यगुणस्वभावयुक्तान् सन्तानानुत्पाद्य सदानन्दन्ति ॥ ३७ ॥

पदार्थः—जैसे स्वयंवर विवाह से विवाही हुई स्त्री (वाजिनः) प्रशंसित बल युक्त (अश्वस्य) उत्तम गुणों में व्याप्त अपने पति के (त्वचि) उढ़ाने में (युज्यन्ते) संयुक्त की जाती अर्थात् पति को वस्त्र उढ़ाने आदि सेवा में लगाई जाती हैं वैसे (कर्मभिः) धर्म युक्त क्रियाओं से (रजताः) अनुराग अर्थात् प्रीति को प्राप्त हुई (हरिणीः) जिन का प्रशंसित स्वीकार करना है वे (सीसाः) प्रेमवाली (युजः) सावधान चित्त उचित काम करने वाली (शम्यन्तीः) शान्ति को प्राप्त होती वा प्राप्त कराती हुई वा (सिमाः) प्रेम से बंधी स्त्री अपने हृदय से प्रिय पतियों को प्राप्त हो के (शम्यन्तु) आनन्द भोगें ॥ ३७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त आप विवाह का

प्राप्त स्त्री पुरुष अपनी इच्छा से एक-दूसरे से प्रीति किये हुए विवाह को करते हैं वे लावण्य अर्थात् अति सुन्दरता गुण और उत्तम स्वभाव युक्त सन्तानों को उत्पन्न कर सदा आनन्द युक्त होते हैं ॥ ३७ ॥

कुविदङ्गेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभासदो देवताः ।
निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथाऽध्यापकाऽध्येतारः कीदृशाः स्युरित्याह ॥

अब पढ़ने और पढ़ाने हारे कैसे हों इस वि० ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति ॥ ३८ ॥

कुवित् । अङ्ग । यवमन्त इति यवऽमन्तः । यवम् । चित् । यथा । दान्ति । अनुपूर्वमित्यनुऽपूर्वम् । वियूयेति विऽयूय । इहेहेतीहऽइह । एषाम् । कृणुहि । भोजनानि । ये । बर्हिषः । नमऽउक्तिमिति नमःऽउक्तिम् । यजन्ति ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(कुवित्) बहुविज्ञानयुक्तः (अङ्ग) मित्र (यवमन्तः) बहुयवादिधान्ययुक्ताः (यवम्) धान्यसमूहम् (चित्) अपि (यथा) (दान्ति) छिन्दन्ति (अनुपूर्वम्) आनुकूल्यमनतिक्रम्य (वियूय) वियोज्य संमिश्रय च (इहेह) अस्मिन्नस्मिन्व्यवहारे (एषाम्) जनानाम् (कृणुहि) कुरु (भोजनानि)

पालनार्थान्यन्नानि(ये) (बर्हिषः) जलस्य (नमउक्तिम्) नमसोऽन्नस्य वचनम् (यजन्ति) सङ्गच्छन्ते ॥ ६८ ॥

अन्वयः--हे अङ्ग कुवित्त्वमिहेहैषां यथा यवमन्तो कृषीवलाः यवं वियूय चिदनुपूर्वं दान्ति ये च बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति तेषां भोजनानि कृणुहि ॥३८॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०--हे अध्यापकाध्येतारो यूयं यथा कृषीवलाः परस्परस्य क्षेत्राणि पर्यायेण लुनन्ति बुसादिभ्योऽन्नानि पृथक्कृत्याऽन्यान्भोजयित्वा स्वयं भुञ्जते तथैवेह विद्याव्यवहारे निष्कपटतया विद्यार्थिभिरध्यापकानां सेवामध्यापकैर्विद्यार्थिनां विद्यावृद्धिं च कृत्वा परस्परान् भोजनादिना सत्कृत्य सर्व आनन्दन्तु ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र (कुवित्) बहुत विज्ञानयुक्त तू (इहेह) इस २ व्यवहार में (एषाम्) इन मनुष्यों से (यथा) जैसे (यवमन्तः) बहुत जौ आदि अन्न युक्त खेती करनेवाले (यवम्) जौ आदि अनाज के समूह को बुस आदि से (वियूय) पृथक् कर (चित्) और (अनुपूर्वम्) क्रम से (दान्ति) छेदन करते हैं उन के और (ये) जो (बर्हिषः) जल वा (नम उक्तिम्) अन्न सबन्धी वचन को (यजन्ति) कह कर सत्कार करते हैं उन के (भोजनानि) भोजनों को (कृणुहि) करो ॥ ३८ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमालं०- हे पढ़ाने और पढ़ने वालो तुम लोग जैसे खेती करने हारे एक दूसरे के खेत को पारी से काटते और भूसा से अन्न को अलग कर औरों को भोजन कराके फिर आप भोजन करते हैं वैसे ही यहां विद्या के व्यवहार में

निष्कपट भाव से विद्यार्थियों को पढ़ाने वालों की सेवा और पढ़ाने वालों को विद्यार्थियों की विद्यावृद्धि कर एक दूसरे को खान पान से सत्कार कर सब कोई आनन्द भोगें ॥३८॥

कस्त्वाछ्यतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अध्यापको देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनरध्यापका विद्यार्थिनां कीदृशीं परीक्षां गृह्णीयुरित्याह ॥

फिर पढ़ानेवाले विद्यार्थियों की कैसी परीक्षा लेवें इस वि० ॥

कस्त्वाछ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति । क उं ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥

कः । त्वा । आछ्यति । कः । त्वा । वि । शास्ति । कः । ते । गात्राणि । शम्यति । कः । ऊँऽइत्यूँ । ते । शमिता । कविः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(कः) (त्वा) त्वाम् (आछ्यति) समन्ताच्छिनत्ति (कः) (त्वा) त्वाम् (वि) (शास्ति) विशेषेणोपदिशति (कः) (ते) तव (गात्राणि) अङ्गानि (शम्यति) शाम्यति शमं मापयति । अत्र वाछन्दसीति दीर्घत्वाभावः (कः) (उ) वितर्के (ते) तव (शमिता) यज्ञस्य कर्त्ता (कविः) सर्वशास्त्रवित् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे अध्येतस्त्वा त्वां क आछ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति क उ ते शमिता कविरध्यापकोऽस्ति ॥ ३९ ॥

भावार्थः—अध्यापका अध्येतॄन्प्रत्येवं परीक्षायां पृच्छेयुः के युष्माकमध्ययनं छिन्दन्ति के युष्मानध्ययनायोपदिशन्ति केऽङ्गानां शुद्धिं योग्यां चेष्टां च ज्ञापयन्ति कोऽध्यापकोऽस्ति किमधीतं किमध्येतव्यमस्तीत्यादि पृष्ट्वा सुपरीक्ष्योत्तमानुत्साह्याधमान् धिक्कृत्वा विद्यापुन्नयेयुः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे पढ़ने वाले विद्यार्थि जन (त्वा) तुझे (कः) कौन (आछ्यति) छेदन करता (कः) कौन (त्वा) तुझे (विशास्ति) अच्छा सिखाता (कः) कौन (ते) तेरे (गात्राणि) अङ्गों को (शम्यति) शान्ति पहुंचाता और (कः) कौन (उ) तो (ते) तेरा (शमिता) यज्ञ करनेवाला (कविः) समस्त शास्त्र को जानता हुआ पढ़ाने हारा है ॥ ३९ ॥

भावार्थः—अध्यापक लोग पढ़ने वालों के प्रति ऐसे परीक्षा में पूछें कि कौन तुम्हारे पढ़ने को काटते अर्थात् पढ़ने में विघ्न करते कौन तुम को पढ़ने के लिये उपदेश देते हैं-कौन अङ्गों की शुद्धि और योग्य चेष्टा को जनाते हैं कौन पढ़ाने वाला है क्या पढ़ा क्या पढ़ने योग्य है. ऐसे२ पूछ उत्तम परीक्षा कर उत्तम विद्यार्थियों को उत्साह देकर दुष्ट स्वभाव वालों को धिक्कार देके विद्या की उन्नति करावें ॥ ३९ ॥

ऋतवस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवताः ।
अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः स्त्रीपुरुषाः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस वि० ॥

ऋतवस्तऽऋतुथा पर्वं शमितारो विशासतु । संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥४०॥

ऋतवः । ते । ऋतुथेत्यृतुऽथा । पर्वं । शमितारः । वि । शासतु । संवत्सरस्य । तेजसा । शमीभिः । शम्यन्तु । त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—(ऋतवः) वसन्ताद्याः (ते) तव (ऋतुथा) ऋतुभ्यः (पर्व) पालनम् (शमितारः) अध्ययनाध्यापनाख्ये यज्ञे शमादिगुणानां प्रापकाः (वि, शासतु) विशेषेणोपदिशन्तु (संवत्सरस्य) (तेजसा) जलेन तेज इत्युदकना० निघं० १ । १२ । (शमीभिः) कर्मभिः (शम्यन्तु) (त्वा) त्वाम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् यथा ते ऋतव ऋतुथा पर्वेव शमितारोऽध्येतारं विशासतु संवत्सरस्य तेजसा शमीभिस्त्वा त्वां शम्यन्तु तांस्त्वं सदैव सेवस्व ॥ ४० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा ऋतवः पर्यायेण स्वानि स्वानि लिङ्गान्यभिपद्यन्ते तथैव स्त्रीपुरुषाः पर्यायेण ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्रमान् कृत्वा ब्राह्मणा ब्राह्मण्यश्चाऽध्यापयेयुः । क्षत्रियाः प्रजा रक्षन्तु वैश्याः कृष्यादिकमुन्नयन्तु शूद्राश्चैतान् सेवन्तामिति ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी जन जैसे (ते) तेरे (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (ऋतुथा) ऋतु२ के गुणों से (पर्व) पालना करें (शमितारः) वैसे पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ में शम दम आदि गुणों की प्राप्ति कराने हारे अध्यापक पढ़ने वालों को (वि, शासतु) विशेषता से उपदेश करें (संवत्सरस्य) और संवत् के (तेजसा) जल (शमीभिः) और कर्मों से (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति दें उनकी तू सदैव सेवा कर ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०— जैसे ऋतु पारी से अपने२ चिन्हों को प्राप्त होते हैं वैसे स्त्री पुरुष पारी से ब्रह्मचर्य गार्हस्थ का धर्म वानप्रस्थ वन में रह कर तप करना और संन्यास आश्रम को करके ब्राह्मण और ब्राह्मणी पढ़ावें क्षत्रिय और क्षत्रिया प्रजा की रक्षा करें वैश्य और वैश्या खेती आदि की उन्नति करें और शूद्र शूद्रा उक्त ब्राह्मण आदि की सेवा किया करें ॥ ४० ॥

अर्द्धमासा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवताः ।
अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ बालकेषु मात्रादायः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

अब बालकों में माता आदि कैसे वर्त्ते इस वि० ॥

अर्द्धमासाः परूंषि ते मासा आच्छ्यन्तु शम्यन्तः । अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

अर्द्धमासा इत्यर्द्धमासाः । परूंषि । ते । मासाः । आ । छ्यन्तु । शम्यन्तः । अहोरात्राणि । मरुतः । विलिष्टमिति विलिष्टम् । सूदयन्तु । ते ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(अर्द्धमासाः) कृष्णशुक्लपक्षाः (परूंषि) कठोराणि वचनानि (ते) तव (मासाः) चैत्रादयः (आ) समंतात् (छ्यन्तु) छिन्दन्तु (शम्यन्तः) शांतिं प्रापयन्तः (अहोरात्राणि)(मरुतः) मनुष्याः (विलिष्टम्) विरुद्धमल्पमपि व्यसनम् (सूदयन्तु) दूरी कारयन्तु (ते) तव ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन्नहोरात्राण्यर्द्धमासा मासाश्चायूंषीव ते तव परूंषि शम्यन्तो मरुतो दुर्व्यसनान्याछ्यन्तु ते तव मासा विलिष्टं सूदयन्तु॥४१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदि मातापित्रध्यापकोपदेशकातिथयो-बालानां दुर्गुणान्न निवर्त्तयेयुस्तर्हि ते शिष्टा कदाचिन्नभवेयुः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी लोग (अहोरात्राणि) दिन रात (अर्द्धमासाः) उजेले अंधियारे पखवाड़े और (मासाः) चैत्रादि महीने जैसे आयु अर्थात् उमरों को काटते हैं वैसे (ते) तेरे (परूंषि) कठोर वचनों को (शम्यन्तः) शान्ति पहुंचाते हुए (मरुतः) उत्तम मनुष्य दुष्ट कामों का (आछ्यन्तु) विनाश करें और (ते) तेरे (विलिष्टम्) थोड़े भी कुव्यसन को (सूदयन्तु) दूर करें ॥ ४१ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में वाचकलु०—जो माता पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा अतिथि लोग बालकों के दुष्ट गुणों को न निवृत्त करें तो वे शिष्ट अर्थात् उत्तम कभी न हों ॥ ४१ ॥

दैव्या इत्यस्य प्रजापति ऋषिः । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथाध्यापकादयः कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

अब पढ़ानेवाले आदि सज्जन कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

दैव्या॑ अध्व॒र्यव॒स्त्वाच्छ्य॑न्तु॒ वि च॑ शासतु ।
गात्रा॑णि पर्व॒शस्ते॒ सिमा॑ः कृ॒ण्वन्तु॒ शम्य॑न्ती ॥४२॥

दैव्याः । अध्वर्यवः । त्वा । आ । छ्यन्तु । वि । च । शासतु । गात्राणि । पर्वशऽइति पर्वऽशः । ते । सिमाः । कृण्वन्तु । शम्यन्तीः ॥ ४२ ॥

पदार्थः- (दैव्याः) देवेषु विद्वत्सु कुशलाः (अध्वर्यवः) आत्मनोऽहिंसामध्वरमिच्छन्तः (त्वा) त्वाम् (आ) (छ्यन्तु) छिन्दन्तु (वि) (च) (शासतु) उपदिशन्तु (गात्राणि) अङ्गानि (पर्वशः) सन्धितः (ते) तव (सिमाः) प्रेमबद्धाः (कृण्वन्तु) (शम्यन्तीः) दुष्टस्वभावं निवारयन्त्यः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् विद्यार्थिनि वा दैव्या अध्वर्यवस्त्वा विशासतु च ते तव दोषानाच्छ्यन्तु पर्वशो गात्राणि परीक्षन्तां सिमाः शम्यन्तीः सत्यो मातरोऽप्येवं शिक्षां कृण्वन्तु ॥ ४२ ॥

भावार्थः—अध्यापकोपदेशकाऽतिथयो यदा बालकान् शिक्षयेयुस्तदा दुर्गुणान् विनाश्य विद्यां प्रापयेयुरेवमध्यापकोपदेशिका विदुष्यः स्त्रियोऽपि कन्याः प्रत्याचरेयुः । वैद्यकशास्त्ररीत्या शरीरावयवान सम्यक् परीक्ष्यौषधान्यपि प्रदद्युः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी वा विद्यार्थिनी (दैव्याः) विद्वानों में कुशल (अध्वर्यवः) अपनी रक्षा रूप यज्ञ को चाहते हुए अध्यापक उपदेशक लोग (त्वा) तुझे (वि,शासतु) विशेष उपदेश दें (च) और (ते) तेरे दोषों का (आ,छ्यन्तु) विनाश करें (पर्वशः) संधिर से (गात्राणि) अङ्गों को परखें (सिमाः) प्रेम से बंधी हुई (शम्यन्तीः) दुष्ट स्वभाव को दूर करती हुई माता आदि सती स्त्रियां भी ऐसी ही शिक्षा (कृण्वन्तु) करें ॥ ४२ ॥

भावार्थः—अध्यापक उपदेशक और अतिथि लोग जब बालकों को सिखलावें तब दोषों का विनाश कर उन को विद्या की प्राप्ति करावें ऐसे पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री भी कन्याओं के प्रति आचरण करें और वैद्यक शास्त्र की रीति से शरीर के अङ्गों की अच्छे प्रकार परीक्षा कर औषधि भी देवें ॥ ४२ ॥

द्यौरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनरध्यापकादयः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

फिर अध्यापकादि कैसे हों इस वि० ॥

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते । सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥ ४३ ॥

द्यौः । ते । पृथिवी । अन्तरिक्षम् । वायुः । छिद्रम् । पृणातु । ते । सूर्यः । ते । नक्षत्रैः । सह । लोकम् । कृणोतु । साधुयेति साधुऽया ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(द्यौः) प्रकाशरूपा विद्युत् (ते) तव (पृथिवी) भूमिः (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (वायुः) पवनः (छिद्रम्) इंद्रियम् (पृणातु) सुखयतु (ते) तव (सूर्यः) सविता (ते) तव (नक्षत्रैः) (सह) (लोकम्) दर्शनीयम् (कृणोतु) (साधुया) साधु सत्यम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे शिष्येऽध्यापिके त्वा यथा द्यौः पृथिव्यन्तरिक्षं वायुः सूर्यो नक्षत्रैः सह चन्द्रश्च ते छिद्रं पृणातु ते तव व्यवहारं साध्नोतु तथा ते तव साधुया लोकं कृणोतु ॥ ४३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा पृथिव्यादयः सुखप्रदाः सूर्यादयः प्रकाशकाः पदार्थाः सन्ति तथैवाऽध्यापका उपदेशकाश्चाऽध्यापिका अप्युपदेशिकाश्च सर्वान् सन्मार्गस्थान् कृत्वा विद्याप्रकाशं जनयन्तु ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे पढ़ने वा पढ़ाने हारी स्त्रियो जैसे (द्यौः) प्रकाशरूप बिजुली (पृथिवी) भूमि, (अन्तरिक्षम्) आकाश (वायुः) पवन (सूर्यः) सूर्य्य लोक और (नक्षत्रैः) तारागणों के (सह) साथ चन्द्रलोक (ते) तेरे (छिद्रम्) प्रत्येक इन्द्रिय को (पृणातु) सुख देवें (ते) तेरे व्यवहार को सिद्ध करें वैसे (ते) तेरे (साधुया) उत्तम सत्य (लोकम्) देखने योग्य लोक को (कृणोतु) सिद्ध करे ॥ ४३ ॥

भावार्थः--इस मंत्र में वाचकलु०--जैसे पृथिवी आदि सुख देने और सूर्य आदि पदार्थ प्रकाश करने वाले हैं वैसे ही पढाने वाले और उपदेश करने वाले वा पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री सब को अच्छे मार्ग में स्थापन कर विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करें ॥ ४३ ॥

शन्तइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । उष्णिक्-
छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुनर्मात्रादिभिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर माता आदि को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

शन्ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः । शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥ ४४ ॥

शम् । ते । परेभ्यः । गात्रेभ्यः । शम् । अस्तु । अवरेभ्यः । शम् । अस्थभ्यऽइत्यस्थऽभ्यः । मज्जभ्यऽइति मज्जऽभ्यः । शम् । ऊँऽइत्यूँ । अस्तु । तन्वै । तव ॥ ४४ ॥

पदार्थः--(शम्) सुखम् (ते) तुभ्यम् (परेभ्यः) उत्कृष्टेभ्यः (गात्रेभ्यः) (शम्) (अस्तु) (अवरेभ्यः) मध्यस्थेभ्यो निकृष्टेभ्यो वा (शम्) (अस्थभ्यः) अस्थिभ्यः । छन्दस्यपि दृश्यत इत्यनेन हलादावप्यनङ् (मज्जभ्यः) (शम्) (उ) (अस्तु) (तन्वै) शरीराय (तव) ॥ ४४ ॥

अन्वयः--हे विद्यामिच्छो यथा पृथिव्यादितत्त्वं तव तन्वे शमस्तु परेभ्यो गात्रेभ्यः शम्ववरेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्तु । अस्थभ्यो मज्जभ्यः शमस्तु तथा स्वकीयैरुत्तमगुणकर्मस्वभावैरध्यापकास्ते शंकरा भवन्तु ॥ ४४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा मातापित्राऽध्यापकोपदेशकैः सन्तानानां दृढाङ्गानि दृढा धातवश्च स्युर्यैः कल्याणं कर्त्तुमर्हेयुस्तथाऽध्यापनीयमुपदेष्टव्यं च ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे विद्या चाहने वाले जैसे पृथिवी आदि तत्व (तव) तेरे (तन्वै) शरीर के लिये (शम्) सुख हेतु (अस्तु) हो वा (परेभ्यः) अत्यन्त उत्तम (गात्रेभ्यः) अङ्गों के लिये (शम्) सुख (उ) और (अवरेभ्यः) उत्तमों से न्यून मध्य तथा निकृष्ट अङ्गों के लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो और (अस्थभ्यः) हड्डी मज्जभ्यः) और शरीर में रहने वाली चरबी के लिये (शम्) सुख हेतु हो वैसे अपने उत्तम गुण कर्म और स्वभाव से अध्यापक लोग (ते) तेरे लिये सुख के करने वाले हों ॥४४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे माता, पिता, पढ़ाने और उपदेश करने वालों को अपने सन्तानों के पुष्ट अंग और पुष्ट धातु हों जिन से दूसरों के कल्याण करने के योग्य हों वैसे पढ़ाना और उपदेश करना चाहिये ॥ ४४ ॥

कः स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता ।

निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ विदुषः प्रति प्रश्ना एवं कर्त्तव्या इत्याह ॥

अब विद्वानों के प्रति प्रश्न ऐसे करने चाहियें इस वि० ॥

कः स्विदेकाकी चरति क उं स्विज्जायते पुनः । किं स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥ ४५ ॥

कः । स्वित् । एकाकी । चरति । कः । ऊँ३इत्यूँ । स्वित् । जायते । पुनरिति पुनः । किम् । स्वित् । हिमस्य । भेषजम् । किम् । ऊँ इत्यूँ । आवपनमित्यावपनम् । महत् ॥ ४५ ॥

पदार्थः— (कः) (स्वित्) (एकाकी) असहायोऽद्वितीयः (चरति) प्राप्तोस्ति (कः) (उ) (स्वित्) अपि (जायते) (पुनः) (किम्) (स्वित्) (हिमस्य) शीतस्य (भेषजम्) औषधम् (किम्) (उ) (आवपनम्) समन्तात्सर्वाधारम् (महत्) ॥ ४५ ॥

अन्वयः— हे विद्वन् अस्मिन् संसारे कःस्विदेकाकी चरति क उ स्वित्पुनर्जायते किं स्विद्धिमस्य भेषजं किमु महदावपनमस्तीति वदस्व ॥ ४५ ॥

भावार्थः—असहायः को भ्रमति शीतनिवारकः कः, कः पुनःपुनरुत्पद्यते महदुत्पत्तिस्थानं किमस्तीत्येतेषां प्रश्नानामुत्तरेण मन्त्रेण समाधानानि वेदितव्यानि ॥४५॥

पदार्थः—हे विद्वान् इस संसार में (कः, स्वित्) कौन (एकाकी) एकाएकी अकेला (चरति) चलता वा प्राप्त होता है (उ) और (कः, स्वित्) कौन (पुनः) फिर २ (जायते) उत्पन्न होता (किं, स्वित्) कौन (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध (किम्, उ) और क्या (महत्) बड़ा (आवपनम्) अच्छे प्रकार सब बीज बोने का आधार है इस सब को आप कहिये ॥ ४५ ॥

भावार्थः—विनासहाय के कौन भ्रमता, कौन फिर २ उत्पन्न होता शीत की निवृत्ति कर्त्ता कौन और बड़ा उत्पत्ति का स्थान क्या है इन सब प्रश्नों के समाधान अगले मंत्र से जानने चाहियें ॥ ४५ ॥

सूर्यइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यादयो देवताः ।
अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः पूर्वोक्तप्रश्नोत्तराण्याह ॥

फिर पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥४६॥

सूर्य्यः । एकाकी । चरति । चन्द्रमाः । जायते । पुनरिति पुनः । अग्निः । हिमस्य । भेषजम् । भूमिः । आवपनमित्याऽवपनम् । महत् ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(सूर्यः) सूर्यलोकः (एकाकी) असहायः (चरति) (चन्द्रमाः) आह्लादकरश्चन्द्रः (जायते) प्रकाशितो भवति (पुनः) पश्चात् (अग्निः) पावकः (हिमस्य) शीतस्य (भेषजम्) औषधम् (भूमिः) भवन्ति भूतानि यस्यां सा पृथिवी (आवपनम्) समन्ताद्वपन्ति यस्मिँस्तत् (महत) विस्तीर्णम् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमाः पुनर्जायतेऽग्निर्हिमस्य भेषजं महदावपनं भूमिरस्तीति ॥ ४६ ॥

भावार्थः—हे विद्वांसो सूर्यः स्वस्यैव परिधौ भ्रमति न कस्यचिल्लोकस्य परितः। चन्द्रादिलोकास्तेनैव प्रकाशिता भवन्ति । अग्निरेव शीतविनाशकस्सर्वबीजवपनार्थं महत् क्षेत्रं भूमिरेवास्तीति यूयं विजानीत ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जानने की इच्छा करने वाले पुरुष (सूर्य्यः) सूर्य लोक (एकाकी) अकेला (चरति) स्वपरिधि में घूमता है (चन्द्रमाः) आनन्द देने वाला चन्द्रमा (पुनः) फिर २ (जायते) प्रकाशित होता है (अग्निः) पावक (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध और (महत्) बड़ा (आवपनम्) अच्छे प्रकार बोने का आधार कि जिस में सब वस्तु बोते हैं (भूमिः) वह भूमि है ॥ ४६ ॥

भावार्थः—हे विद्वानो सूर्य अपनी ही परिधि में घूमता है किसी लोकान्तर के चारों ओर नहीं घूमता चन्द्रादि लोक उसी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं अग्नि ही शीत का नाशक और सब बीजों के बोने को बड़ा क्षेत्र भूमि ही है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ४६ ॥

किं स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता ।

अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

फिर प्रश्नों को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

किंस्वित्सूर्य्यसमं ज्योतिः किंसमुद्रसमंसरः । किंस्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥

किम् । स्वित् । सूर्यसममिति सूर्यऽसमम् । ज्योतिः । किम् । समुद्रसममिति समुद्रऽसमम् । सरः । किम् । स्वित् । पृथिव्यै । वर्षीयः । कस्य । मात्रा । न । विद्यते ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(किम्) (स्वित्) (सूर्यसमम्) सूर्येण तुल्यम् (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूपम् (किम्) (समुद्रसमम्) (सरः) सरन्ति जलानि यस्मिन् त-

ड़ागे तत् (किम्) (स्वित्) (पृथिव्यै) पृथिव्याः । अत्र पञ्चम्यर्थे चतुर्थी (वर्षीयः) वृद्धम् (कस्य) (मात्रा) मीयते यया सा (न) (विद्यते) भवति ॥ ४७ ॥

अन्वयः---हे विद्वन् किं स्विसूर्यसमं ज्योतिः किं समुद्रसमं सरः किंस्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यत इति ॥ ४७ ॥

भावार्थः--आदित्यवत्तेजस्वि समुद्रवदुदधि भूमेरधिकं च किं कस्य च परिमाणं नास्तीत्येतेषां प्रश्नानामुत्तराणि परस्मिन् मंत्रे वेदितव्यानि ॥ ४७ ॥

पदार्थः--हे विद्वान् (किं,स्वित्) कौन (सूर्यसमम्) सूर्य के समान (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (किम्) कौन (समुद्रसमम्), समुद्र के समान (सरः) जिस में जल बहते वा गिरते वा आते जाते हैं ऐसा तालाब (किं,स्वित्) कौन (पृथिव्यै) पृथिवी से (वर्षीयः) अतिबड़ा और (कस्य) किस का (मात्रा) जिस से तोल हो वह परिमाण (न) नहीं (विद्यते) विद्यमान हैं ॥ ४७ ॥

भावार्थ:--आदित्य के तुल्य तेजस्वी, समुद्र के समान जलाधार और भूमि से बड़ा कौन है और किस का परिमाण नहीं है इन चार प्रश्नों का उत्तर अगले मंत्र में जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

ब्रह्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मादयो देवताः ।

अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथैतेषामुत्तराण्याह ॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः । इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

ब्रह्म । सूर्य्यसमुमिति सूर्य्यंऽसमम् । ज्योतिः। द्यौः । सुमुद्रसं- मुमिति समुद्रऽसंमम् । सरः । इन्द्रः । पृथिव्यै । वर्षीयान् । गोः । तु । मात्रा । न । विद्यते ॥ ४८ ॥

पदार्थः– (ब्रह्म) बृहत् सर्वेभ्यो महदनन्तम् (सूर्य्यसमम्) (ज्योतिः) प्रकाशकम् (द्यौः) अन्तरिक्षम् (समुद्रसमम्) समुद्रेण समानः (सरः) (इन्द्रः) सूर्य्यः (पृथिव्यै) पृथिव्याः (वर्षीयान्) अतिशयेन वृद्धो महान् (गोः) वाचः (तु) (मात्रा) (न) (विद्यते) भवति ॥ ४८ ॥

अन्वयः–हे जिज्ञासो त्वं सूर्य्यसमं ज्योतिर्ब्रह्म समुद्रसमं सरो द्यौः पृथिव्यै वर्षीयानिन्द्रो गोस्तु मात्रा न विद्यतइति विजानीहि ॥ ४८ ॥

भावार्थः— न किंचित्स्वप्रकाशेन ब्रह्मणा समं ज्योतिर्विद्यते सूर्य्यप्रकाशेन युक्तेन मेघेन तुल्यो जलाशयः सूर्य्येण तुल्यो लोकेशो वाचा तुल्यं व्यवहारसाधकं किंचिदपि वस्तु न भवतीति सर्वे निश्चिन्वन्तु ॥ ४८ ॥

पदार्थः— हे ज्ञान चाहने वाले जन तू (सूर्य्यसमम्) सूर्य के समान- (ज्योतिः) स्वप्रकाशस्वरूप (ब्रह्म) सब से बड़े अनन्त परमेश्वर (समुद्रसमम्) समुद्र के समान (सरः) ताल (द्यौः) अन्तरिक्ष (पृथिव्यै) पृथिवी से (वर्षीयान्) बड़ा (इन्द्रः) सूर्य और (गोः) वाणी का (तु) तो (मात्रा) मान परिमाण (न) नहीं (विद्यते) विद्यमान है इसको जान ॥ ४८ ॥

भावार्थः–कोई भी आप प्रकाशमान जो ब्रह्म है उसके समान ज्योति विद्यमान नहीं वा सूर्य के प्रकाश से युक्त मेघ के समान जल के ठहरने का स्थान वा सूर्यमण्डल

के तुल्य लोकेश वा वाणी के तुल्य व्यवहार का सिद्ध करनेहारा कोई भी पदार्थ नहीं होता इसका निश्चय सब करें ॥ ४८ ॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः प्रष्टृसमाधातारौ देवते ।
अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

फिर प्रश्नों को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ । येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशाँ ३ऽ ॥ ४९ ॥

पृच्छामि । त्वा । चितये । देवसखेति देवऽसख । यदि । त्वम् । अत्र । मनसा । जगन्थ । येषु । विष्णुः । त्रिषु । पदेषु । आऽइष्टऽइत्याऽइष्टः । तेषु । विश्वम् । भुवनम् । आ । विवेश ॥४९॥

पदार्थः—(पृच्छामि) (त्वा) त्वाम् (चितये) चेतनाय (देवसख) देवानां विदुषां सुहृद् (यदि) (त्वम्) (अत्र) (मनसा) अन्तःकरणेन (जगन्थ) (येषु) (विष्णुः) व्यापकेश्वरः (त्रिषु) त्रिविधेषु (पदेषु) नामस्थानजन्माख्येषु (एष्टः) (तेषु) (विश्वम्) (भुवनम्) (आ) (विवेश) आविष्टो व्याप्तोऽस्ति ॥ ४९ ॥

अन्वयः—हे देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ तर्हि त्वा चितये पृच्छामि यो विष्णुर्येषु त्रिषु पदेष्वेष्टोऽस्ति तेषु व्याप्तः सन् विश्वं भुवनमाविवेश तं च पृच्छामि ॥ ४९ ॥

भावार्थः—हे विद्वन् यश्चेतनः सर्वव्यापी पूजितुं योग्यः परमेश्वरोऽस्ति तं मह्यमुपदिश ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (देवसख) विद्वानों के मित्र (यदि) जो (त्वम्) तू (अत्र) यहां (मनसा) अन्तःकरण से (जगन्थ) प्राप्त हो तो (त्वा) तुझे (चितये) चेतन के लिये (पृच्छामि) पूछता हूं जो (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (येषु) जिन (त्रिषु) तीन प्रकार के (पदेषु) प्राप्त होने योग्य जन्म नाम और स्थान में (एष्टः) अच्छे प्रकार इष्ट है (तेषु) उन में व्याप्त हुआ (विश्वम्) सम्पूर्ण (भुवनम्) पृथिवी आदि लोकों को (आ, विवेश) भली भांति प्रवेश कर रहा है उस परमात्मा को भी तुझ से पूछता हूं ॥ ४९ ॥

भावार्थः—हे विद्वान् जो चेतनस्वरूप सर्वव्यापी पूजा, उपासना, प्रशंसा, स्तुति करने योग्य परमेश्वर है उस का मेरे लिये उपदेश करो ॥ ४९ ॥

अपीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथैतेषामुत्तराण्याह ।

अब उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र० ॥

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमाविवेश । सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम् ॥ ५० ॥

अपि । तेषु । त्रिषु । पदेषु । अस्मि । येषु । विश्वम् । भुवनम् । आविवेशेत्यांऽविवेश । सद्यः । परि । एमि । पृथिवीम् । उत । द्याम् । एकेन । अङ्गेन । दिवः । अस्य । पृष्ठम् ॥ ५० ॥

पदार्थः— (अपि) (तेषु) पूर्वोक्तेषु (त्रिषु) (पदेषु) प्राप्तुं योग्येषु नामस्थानजन्माख्येषु (अस्मि) (येषु) (विश्वम्) अखिलम् (भुवनम्) जगत् (आविवेश) समन्ताद्विष्टमस्ति (सद्यः) (परि) सर्वतः (एमि) प्राप्तो- ऽस्मि (पृथिवीम्) भूमिमन्तरिक्षं वा (उत) (द्याम्) सर्वं प्रकाशम् (एकेन) (अङ्गेन) कमनीयेन (दिवः) प्रकाशमानस्य सूर्य्यादिलोकस्य (अस्य) (पृष्ठम्) आधारम् ॥ ५० ॥

अन्वयः— हे मनुष्या यो जगत्स्रष्टेश्वरोऽहं येषु त्रिषु पदेषु विश्वं भुवनमाविवेश तेष्वप्यहं व्याप्तोऽस्मि । अस्य दिवः पृष्ठं पृथिवीमुत द्यां चैकेनाङ्गेन सद्यः पर्य्येमि तं मां सर्वे यूयमुपाध्वम् ॥ ५० ॥

भावार्थः— यथा सर्वान्मनुष्यान् प्रतीश्वर उपदिशति — अहं कार्य्य- कारणात्मके जगति व्याप्तोऽस्मि मया विनैकः परमाणुरप्यव्याप्तो नास्ति । सोऽहं यत्र जगन्नास्ति तत्राप्यनन्तस्वरूपेण पूर्णोऽस्मि । यदिदं जगदतिवि- स्तीर्णं भवन्तः पश्यन्ति तदिदं मत्सन्निधावेकाणुमात्रमपि नास्तीति तथैव विद्वान् विज्ञापयेत् ॥ ५० ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो जो जगत् का रचने हारा ईश्वर मैं (येषु) जिन (त्रिषु) तीन (पदेषु) प्राप्त होने योग्य जन्म नाम स्थानों में (विश्वम्)

समस्त (भुवनम्) जगत् (आविवेश) सब ओर से प्रवेश को प्राप्त हो रहा है (तेषु) उन जन्म नाम और स्थानों में (अपि) भी मैं व्याप्त (अस्मि) हूं (अस्य) इस (दिवः) प्रकाशमान सूर्यआदि लोकों के (पृष्ठम्) ऊपरले भाग (पृथिवीम्) भूमि वा अन्तरिक्ष (उत) और (द्याम्) समस्त प्रकाश को (एकेन) एक (अङ्गेन) अति मनोहर प्राप्त होने योग्य व्यवहार वा देश से (सद्यः) शीघ्र (परि, एमि) सब ओर से प्राप्त हूं उस मेरी उपासना तुम सब किया करो ॥ ५० ॥

भावार्थः— जैसे सब जीवों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि मैं कार्य्य कारणात्मक जगत् में व्याप्त हूं मेरे विना एक परमाणु भी अव्याप्त नहीं है सो मैं जहां जगत् नहीं है वहां भी अनन्त स्वरूप से परिपूर्ण हूं जो इस अतिविस्तारयुक्त जगत् को आप लोग देखते हैं सो यह मेरे आगे अणुमात्र भी नहीं है इस बात को वैसे ही विद्वान् सब को जनावे ॥ ५० ॥

केष्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पुरुषेश्वरो देवता ।
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथेश्वरविषये प्रश्नावाह ॥

अब ईश्वर विषय में दो प्रश्न कहते हैं ॥

केष्वन्तः पुरु॑ष॒ आ वि॑वेश॒ कान्य॒न्तः पुरु॑षे॒ अर्पि॑तानि । ए॒तद्ब्र॑ह्म॒न्नुप॑ वल्हामसि त्वा॒ किꣳ स्वि॑न्नः॒ प्रति॑ वोचा॒स्यत्र॑ ॥ ५१ ॥

केषु । अन्तरित्यन्तः । पुरुषः । आ । विवेश । कानि । अन्तरित्यन्तः । पुरुषे । अर्पितानि । एतत् । ब्रह्मन् । उप ।

व॒ह्ला॒म॒सि । त्वा॒ । किम् । स्वि॒त् । नः॒ । प्रति॑ । वो॒चा॒सि॒ । अत्र॑ ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(केषु) (अन्तः) मध्ये (पुरुषः) सर्वत्र पूर्णः (आ) विवेश) प्रविष्टोऽस्ति (कानि) (अन्तः) मध्ये (पुरुषे) (अर्पितानि) स्थापितानि (एतत्) (ब्रह्मन्) ब्रह्मविद्विद्वन् (उप) (वह्लामसि) प्रधाना भवामः (त्वा) त्वाम् (किम्) (स्वित्) (नः) अस्मान् (प्रति) (वोचासि) उच्याः। अत्र लेटि मध्यमैकवचने वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीत्युमागमः (अत्र) ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे ब्रह्मन् केषु पुरुषोऽन्तराविवेश कानि पुरुषेऽन्तरर्पितानि येन वयमुपवह्लामसि । एतत्त्वा त्वां पृच्छामस्तत्किंस्विदस्त्यत्र नः प्रतिवोचासि ॥ ५१ ॥

भावार्थः—चतुर्वेदविद्विद्वानितरैर्जनैरेवं प्रष्टव्यः । हे वेदविद्विद्वन् पूर्णः परमेश्वरः केषु प्रविष्टोऽस्ति कानि च तदन्तर्गतानि सन्ति । एतत्पृष्टो भवान् यथार्थ्येन ब्रवीतु येन वयं प्रधानपुरुषा भवेम ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) वेदज्ञविद्वन् (केषु) किन में (पुरुषः) सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर (अन्तः) भीतर (आ, विवेश) प्रवेश कर रहा है और (कानि) कौन (पुरुषे) पूर्ण ईश्वर में (अन्तः) भीतर (अर्पितानि) स्थापन किये हैं जिस ज्ञान से हम लोग (उप, वह्लामसि) प्रधान हों (एतत्) यह (त्वा) आप को पूछते हैं सो (किं, स्वित्) क्या है (अत्र) इस में (नः) हमारे (प्रति) प्रति (वोचासि) कहिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः—इतर मनुष्यों को चाहिये कि चारों वेद के ज्ञाता विद्वान् को ऐसे पूछें कि वेदज्ञ विद्वन् पूर्ण परमेश्वर किन में प्रविष्ट है और कौन उस के अन्तर्गत है यह बात आप से पूछी है यथार्थता से कहिये जिस के ज्ञान से हम उत्तम पुरुष हों ॥ ५१ ॥

पञ्चस्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्वमन्त्रोक्तप्रश्नयोरुत्तरमाह ॥

पूर्व मंत्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र में कहते हैं ॥

पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि। एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥

पञ्चस्विति पञ्चऽसु । अन्तरित्यन्तः । पुरुषः । आ । विवेश । तानि । अन्तरित्यन्तः । पुरुषे । अर्पितानि । एतत् । त्वा । अत्र । प्रतिमन्वान इति प्रतिऽमन्वानः । अस्मि । न । मायया । भवसि । उत्तरइत्युत्ऽतरः । मत् ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(पञ्चसु) भूतेषु तन्मात्रासु वा (अन्तः) (पुरुषः) पूर्णः परमात्मा (आ) (विवेश) स्वव्याप्त्याऽऽविष्टोऽस्ति (तानि) भूतानि तन्मात्राणि वा (अन्तः) मध्ये (पुरुषे) पूर्णे परमात्मनि (अर्पितानि) स्थापितानि (एतत्) (त्वा) त्वाम् (अत्र) (प्रतिमन्वानः) प्रत्यक्षेण विजानन् (अस्मि) (न) (मायया) प्रज्ञया मायेति प्रज्ञाना० निघं० ३।९ (भवसि) (उत्तरः) उत्कृष्टं तारयति समादधाति सः (मत्) मम सकाशात् ॥ ५२ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश तानि पुरुषेऽन्तरर्पितानि । एतदत्र त्वा प्रतिमन्वानोऽहं समाधातास्मि यदि मायया युक्तस्त्वं भवसि तर्हि मदुत्तरः समाधाता कश्चिन्नास्तीति विजानीहि ॥ ५२ ॥

भावार्थः—परमेश्वर उपदिशति हे मनुष्या मदुत्तरः कोऽपि नास्ति। अहमेव सर्वेषामाधारः सर्वमभिव्याप्य धरामि। मयि व्याप्ते सर्वाणि वस्तूनि स्वस्वनियमे स्थितानि सन्ति हे सर्वोत्तमा योगिनो विद्वांसो भवन्तो ममेदं विज्ञानं विज्ञापयत ॥५२॥

पदार्थः—हे जानने की इच्छा वाले पुरुष (पञ्चसु) पांच भूतों वा उन की सूक्ष्म मात्राओं में (अन्तः) भीतर (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा (आ,विवेश) अपनी व्याप्ति से अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है (तानि) वे पञ्चभूत वा तन्मात्रा (पुरुषे) पूर्ण परमात्मा पुरुष के (अन्तः) भीतर (अर्पितानि) स्थापित किये हैं (एतत्) यह (अत्र) इस जगत् में (त्वा) आप को (प्रतिमन्वानः) प्रत्यक्ष जानता हुआ मैं समाधान कर्त्ता (अस्मि) हूं जो (मायया) उत्तम बुद्धि से युक्त तू (भवसि) होता है तो (मत्) मुझ से (उत्तरः) उत्तम समाधान कर्त्ता कोई भी (न) नहीं है यह तू जान ॥ ५२ ॥

भावार्थः—परमेश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो मेरे ऊपर कोई भी नहीं है मैं ही सब का आधार सब में व्याप्त हो के धारण करता हूं मेरे व्याप्त होने से सब पदार्थ अपने २ नियम में स्थित हैं। हे सब से उत्तम योगी विद्वान् लोगो आप लोग इस मेरे विज्ञान को जनाओ ॥ ५२ ॥

कास्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रष्टा देवता।
अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

फिर भी अगले मंत्र में प्रश्नों को कहते हैं ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳस्विदासीद्बृहद्वयः। का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ५३॥

का । स्वित् । आसीत् । पूर्वचित्तिरिति पूर्वऽचित्तिः । किम् । स्वित् । आसीत् । बृहत् । वयः । का । स्वित् । आसीत् । पिलिप्पिला । का । स्वित् । आसीत् । पिशङ्गिला ॥ ५३ ॥

पदार्थः— (का) (स्वित्) (आसीत्) (पूर्वचित्तिः) पूर्वस्मिन्ननादौ सञ्चयनाख्या (किम्) (स्वित्) (आसीत्) (बृहत्) महत् (वयः) प्रजननात्मकम् (का) (स्वित्) (आसीत्) (पिलिप्पिला) आर्द्रीभूता (का) (स्वित्) (आसीत्) (पिशङ्गिला)अवयवान्तःकर्त्री ॥ ५३ ॥

अन्वयः— हे विद्वन्नत्र जगति का स्वित्पूर्वचित्तिरासीत् किं स्विद् बृहद्वय आसीत्का स्वित् पिलिप्पिला आसीत्का स्वित् पिशङ्गिला आसीदिति भवन्तं पृच्छामि ॥ ५३ ॥

भावार्थः— अत्र चत्वारः प्रश्नास्तेषां समाधानानि परस्मिन्मन्त्रे द्रष्टव्यानि ॥ ५३ ॥

पदार्थ:— हे विद्वन् इस जगत् में (का, स्वित्) कौन (पूर्वचित्तिः) पूर्व अनादि समय में संचित होनेवाली (आसीत्) है (किं, स्वित्) क्या (बृहत्) बड़ा (वयः) उत्पन्न स्वरूप (आसीत्) है (का, स्वित्) कौन (पिलिप्पिला) पिलिपिली चिकनी (आसीत्) है और (का, स्वित) कौन (पिशङ्गिला) अवयवों को भीतर करने वाली (आसीत्) है यह आप को पूछता हूं ॥ ५३ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में चार प्रश्न हैं उनके समाधान अगले मंत्र में देखने चाहियें ॥ ५३ ॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता ।
निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

पूर्व मंत्र के प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र० ॥

द्यौरा॑सीत्पूर्वचि॑त्तिरश्व॑ आसीद्बृहद्वयः॑ । अवि॑रासीत्पिलिप्पि॒ला रात्रि॑रासीत्पिशङ्गि॒ला ॥ ५४ ॥

द्यौः । आ॒सी॒त् । पू॒र्वचि॑त्ति॒रिति॑ पू॒र्वऽचि॑त्तिः । अश्वः॑ । आ॒सी॒त् । बृ॒हत् । वयः॑ । अविः॑ । आ॒सी॒त् । पि॒लि॒प्पि॒ला । रात्रिः॑ । आ॒सी॒त् । पि॒श॒ङ्गि॒ला ॥ ५४ ॥

पदार्थः— (द्यौः) विद्युत् (आसीत्) (पूर्वचित्तिः) प्रथमं चयनम् (अश्वः) महत्तत्त्वम् (आसीत्) (बृहत्) महत् (वयः) प्रजननात्मकम् (अविः) रक्षिका प्रकृतिः (आसीत्) (पिलिप्पिला) (रात्रिः) रात्रिवद् वर्त्तमानः प्रलयः (आसीत्) (पिशङ्गिला) सर्वेषामवयवानां निगलिका ॥ ५४ ॥

अन्वयः— हे जिज्ञासो द्यौः पूर्वचित्तिरासीदश्वो बृहद्वय आसीदविः पिलिप्पिलाऽऽसीद्रात्रिः पिशङ्गिलाऽऽसीदिति त्वं विजानीहि ॥ ५४ ॥

भावार्थः— हे मनुष्या याऽतीवसूक्ष्मा विद्युत्सा प्रथमा परिणतिर्महदाख्यं द्वितीया परिणतिः, प्रकृतिर्मूलकारणमपरिणतिः, प्रलयः सर्वस्थूलविनाशकोऽस्तीति विजानीत ॥ ५४ ॥

पदार्थः— हे जिज्ञासु मनुष्य (द्यौः) बिजुली (पूर्वचितिः) पहिला संचय (आसीत्) है (अश्वः) महत्तत्व (बृहत्) बड़ा (वयः) उत्पत्ति स्वरूप (आसीत्) है (अविः) रक्षा करने वाली प्रकृति (पिलिप्पिला) पिलिपिली चिकनी (आसीत्) है (रात्रिः) रात्रि के समान वर्त्तमान प्रलय (पिशङ्गिला) सब अवयवों को निगलने वाला (आसीत्) है यह तू जान ॥ ५४ ॥

भावार्थः— हे मनुष्यो जो अतिसूक्ष्म विद्युत् है सो प्रथम परिणाम, महत्तत्वरूप द्वितीय परिणाम और प्रकृति सब का मूल कारण परिणाम से रहित है और प्रलय सब स्थूल जगत् का विनाशरूप है यह जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

का ईमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता ।
अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

फिर अगले मंत्र में प्रश्न कहते हैं ॥

का ई॑मरे पिशङ्गि॒ला का ई॑ कु॒रुपि॑शङ्गि॒ला । क ई॑मा॒स्कन्द॑मर्षति॒ क ई॒ पन्थां॒ वि स॑र्पति ॥ ५५ ॥

का । ईम् । अरे । पिशङ्गिला । का । ईम् । कुरुपिशङ्गिलेति कुरुऽपिशङ्गिला । कः । ईम् । आस्कन्दमित्याऽस्कन्दम् । अर्षति । कः । ईम् । पन्थाम् । वि । सर्पति ॥ ५५ ॥

पदार्थः— (का) (ईम्) समुच्चये (अरे) नीचसंबोधने (पिशङ्गिला) रूपावरणकारिणी (का) (ईम्) (कुरुपिशङ्गिला) (कः) (ईम्) (आस्कन्दम्) (अर्षति) प्राप्नोति (कः) (ईम्) उदकस्य (पन्थाम्) मार्गम् (वि) (सर्पति) ॥ ५५ ॥

अन्वयः—अरे स्त्रि का ईं पिशङ्गिला का ईं कुरुपिशङ्गिला क ईमास्कन्दमर्षति क ईं पन्थां विसर्पतीति समाधेहि ॥ ५५ ॥

भावार्थः— केन रूपमाव्रियते केन कृष्यादिर्नश्यते कः शीघ्रं धावति कश्च मार्गे प्रसरतीति चत्वारः प्रश्नास्तेषामुत्तराणि परस्मिन्मन्त्रे वेदितव्यानि ॥ ५५ ॥

पदार्थः-- (अरे) हे विदुषि स्त्रि (का,ईम्) कौन वार २ (पिशङ्गिला) रूप का आवरण करने हारी (का, ईम्) कौन वार २ (कुरुपिशङ्गिला) यवादि अन्नों के अवयवों को निगलने वाली (क,ईम्) कौन वार २ (आस्कन्दम्) न्यारी २ चाल को (अर्षति) प्राप्त होता और (कः) कौन (ईम्) जल के (पन्थाम्) मार्ग को (वि, सर्पति) विशेष पसर के चलता है ॥ ५५ ॥

भावार्थः— किससे रूप का आवरण और किस से खेती आदि का विनाश होता कौन शीघ्र भागता और कौन मार्ग में पसरता है ये चार प्रश्न हैं इन के उत्तर अगले मंत्र में जानो ॥ ५५ ॥

अजेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता ।
स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

पूर्व मंत्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र में कहते हैं ॥

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला । शश आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥ ५६ ॥

अजा । अरे ॥ पिशङ्गिला । श्वावित् । श्वविदिति श्वऽवित् । कुरुपिशङ्गिलेति कुरुऽपिशङ्गिला । शशः ।

आस्कन्दमित्याऽस्कन्दम् । अर्षति । अहिः । पन्थाम् । वि । सर्पति ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(अजा) जन्मरहिता प्रकृतिः (अरे) सम्बोधने (पिशङ्गिला) (श्वावित्) पशुविशेष इव (कुरुपिशङ्गिला) कुरोः कृतस्य कृष्यादेः पिशान्यङ्गानि गिलति सा (शशः) पशुविशेष इव वायुः (आस्कन्दम्) समन्तादुत्प्लुत्य गमनम् (अर्षति) प्राप्नोति (अहिः) मेघः (पन्थाम्) पन्थानम् (वि, सर्पति) विविधतया गच्छति ॥ ५६ ॥

अन्वयः—अरे मनुष्या अजा पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिलाऽस्ति शश आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां विसर्पतीति विजानीत ॥ ५६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या अजा याऽजा प्रकृतिः सर्वकार्यप्रलयाधिकारिणी कार्यकारणाख्या स्वकार्यं स्वस्मिन् प्रलापयति । या सेधा कृष्यादिकं विनाशयति यो वायुः शश इव गच्छन् सर्वं शोषयति यो मेघः सर्पइव गच्छति तान् विजानीत ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(अरे) हे मनुष्यो (अजा) जन्मरहित प्रकृति (पिशङ्गिला) विश्व के रूप को प्रलय समय में निगलनेवाली (श्वावित्) सेही (कुरुपिशङ्गिला) किये हुए खेती आदि के अवयवों का नाश करती है (शशः) खरहा के तुल्य वेगयुक्त कृषि आदि में खरखराने वाला वायु (आस्कन्दम्) अच्छे प्रकार कूदके चलने अर्थात् एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ को शीघ्र (अर्षति) प्राप्त होता और (अहिः) मेघ (पंथाम्) मार्ग में (वि, सर्पति) विविध प्रकार से जाता है इस को तुम जानो ॥ ५६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो प्रकृति सब कार्यरूप जगत् का प्रलय करने हारी कार्य्यकारणरूप अपने कार्य को अपने में लय करने हारी है जो सेही खेती आदि का विनाश करती है जो वायु खरहा के समान चलता हुआ सब को सुखाता है और जो मेघ सांप के समान पृथिवी पर जाता है उन सब को जानो ॥ ५६ ॥

कत्यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥
फिर भी अगले मंत्र में प्रश्न कहते हैं ॥

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः । यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतार ऋतुशो यजन्ति ॥ ५७ ॥

कति । अस्य । विष्ठाः । विस्था इति विऽस्थाः । कति । अक्षराणि । कति । होमासः । कतिधा । समिद्ध इति समऽइद्धः । यज्ञस्य । त्वा । विदथा । पृच्छम् । अत्र । कति । होतारः । ऋतुश इत्यृतुऽशः । यजन्ति ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(कति) (अस्य) (विष्ठाः) विशेषण तिष्ठति यज्ञो यासु ताः (कति) (अक्षराणि) उदकानि । अक्षरमित्युदकना० निघं० १ । १२ (कति) (होमासः) दानाऽऽदानानि (कतिधा) कतिप्रकारैः (समिद्धः) ज्ञानादिप्रकाशकाः समिद्रूपाः । अत्र छान्दसो वर्णागमस्तेन धस्य द्वित्वं सम्पन्नम्

(यज्ञस्य) संयोगादुत्पन्नस्य जगतः (त्वा) त्वाम् (विद्था) विज्ञानानि (पृच्छम्) पृच्छामि (अत्र) (कति) (होतारः) (ऋतुशः) ऋतुमृतुं प्रति (यजन्ति) संगच्छन्ते ॥ ५७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नस्य यज्ञस्य कति विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमसः कतिधा समिद्धः कति होतार ऋतुशो यजन्तीत्यत्र विषये विद्था त्वाऽहं पृच्छम् ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इदं जगत्क तिष्ठति कत्यस्य निर्माणसाधनानि कति व्यापारयोग्यानि कतिविधं ज्ञानादिप्रकाशकं कति व्यवहर्त्तार इति पञ्च प्रश्नास्तेषामुत्तराण्युत्तरत्र वेद्यानि ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (अस्य) इस (यज्ञस्य) संयोग से उत्पन्न हुए संसाररूप यज्ञ के (कति) कितने (विष्ठाः) विशेष कर संसाररूप यज्ञ जिन में स्थित हो वे (कति) कितने इस के (अक्षराणि) जलादि साधन (कति) कितने (होमासः) देने लेने योग्य पदार्थ (कतिधा) कितने प्रकारों से (समिद्धः) ज्ञानादि के प्रकाशक पदार्थ समिधरूप (कति) कितने (होतारः) होता अर्थात् देने लेने आदि व्यवहार के कर्त्ता (ऋतुशः) वसन्तादि प्रत्येक ऋतु में (यजन्ति) संगम करते हैं इसप्रकार (अत्र) इस विषय में (विद्था) विज्ञानों को (त्वा) आप से मैं (पृच्छम्) पूछता हूं ॥ ५७ ॥

भावार्थः—यह जगत् कहां स्थित है, कितने इस की उत्पत्ति के साधन, कितने व्यापार के योग्य वस्तु, कितने प्रकार का ज्ञानादि प्रकाशक वस्तु और कितने व्यवहार करने हारे हैं इन पांच प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र में जान लेना चाहिये ॥ ५७ ॥

षडस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समिधा देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

पूर्व मंत्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र में कहते हैं ॥

षड॑स्य वि॒ष्ठाः श॒तम॒क्षरा॑ण्यशी॒ति-र्होमाः॑ स॒मिधो॑ ह ति॒स्रः । य॒ज्ञस्य॑ ते वि॒दथा॒ प्र ब्र॑वीमि स॒प्त होता॑र ऋतु॒शो य॑जन्ति ॥ ५८ ॥

षट् । अ॒स्य॒ । वि॒ष्ठाः । वि॒स्था इति॑ वि॒ऽस्थाः । श॒तम् । अ॒क्षरा॑णि । अ॒शी॒तिः । होमाः॑ । स॒मिध॒ इति॑ स॒म्ऽइधः॑ । ह॒ । ति॒स्रः । य॒ज्ञस्य॑ । ते॒ । वि॒दथा॑ । प्र । ब्र॒वी॒मि॒ । स॒प्त । होता॑रः । ऋ॒तु॒श इत्यृ॑तु॒ऽशः । य॒ज॒न्ति॒ ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(षट्) ऋतवः (अस्य) (विष्ठाः) (शतम्) (अक्षराणि) उदकानि (अशीतिः) उपलक्षणमेतदसंख्यस्य (होमाः) (समिधः) समिध्यते प्रदीप्यते ज्ञानं याभिस्ताः (ह) किल (तिस्रः) (यज्ञस्य) (ते) तुभ्यम् (विदथा) विज्ञानानि (प्र) प्रकर्षेण (ब्रवीमि) (सप्त) पञ्च प्राणा मनश्चात्मा च (होतारः) दातारश्चादातारः (ऋतुशः) यजन्ति ॥ ५८ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासवोऽस्य यज्ञस्य षट् विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमास्तिस्रो ह समिधः सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति तस्य विदथा ते ऽहं प्रब्रवीमि॥ ५८ ॥

भावार्थः—हे ज्ञानमीप्सवो जना यस्मिन् यज्ञे षड् ऋतवः स्थितिसाधका असंख्यानि जलादीनि वस्तूनि व्यवहारसाधकानि बहवो व्यवहारयोग्याः पदार्थाः सर्वे प्राणयप्राणिनो होत्रादयः संगच्छन्ते यत्र च ज्ञानादिप्रकाशिका त्रिविधा विद्याः सन्ति तं यज्ञं यूयं विजानीत ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु लोगो (अस्य) इस (यज्ञस्य) संगत जगत् के (षट्) छः ऋतु (विष्ठाः) विशेष स्थिति के आधार (शतम्) असंख्य (अक्षराणि) जलादि उत्पत्ति के साधन (अशीतिः) असंख्य (होमाः) देने लेने योग्य वस्तु (तिस्रः) आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीन (ह) प्रसिद्ध (समिधः) ज्ञानादि की प्रकाशक विद्या (सप्त) पांच प्राण, मन और आत्मा सात (होतारः) देने लेने आदि व्यवहार के कर्त्ता (ऋतुशः) प्रति वसन्तादि ऋतु में (यजन्ति) संगत होते हैं उस जगत् के (विदथा) विज्ञानों को (ते) तेरे लिये मैं (प्रब्रवीमि) कहता हूं ॥ ५८ ॥

भावार्थः—हे ज्ञान चाहने वाले लोगो जिस जगत्रूप यज्ञ में छः ऋतु स्थिति के साधक असंख्य जलादि वस्तु व्यवहारसाधक बहुत व्यवहार के योग्य पदार्थ और सब प्राणी अप्राणी होता आदि संगत होते हैं और जिस में ज्ञान आदि का प्रकाश करने वाली तीन प्रकार की विद्या हैं, उस यज्ञ को तुम लोग जानो ॥ ५८ ॥

को ऽस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

फिर भी अगले मंत्र में प्रश्नों को कहते हैं ॥

को अ॒स्य वे॑द॒ भुव॑नस्य॒ नाभिं॒ को द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षम् । कः सूर्य॑स्य

वेद बृह॒तो ज॒नित्रं॒ को वे॑द च॒न्द्रम॑सं य॒तो॒जाः ॥ ५९ ॥

कः । अ॒स्य । वे॒द॒ । भुव॑नस्य । नाभि॑म् । कः । द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ द्यावा॑पृथि॒वी । अ॒न्तरि॑क्षम् । कः । सूर्य॑स्य । वे॒द॒ । बृ॒ह॒तः । ज॒नित्र॑म् । कः । वे॒द॒ । च॒न्द्रम॑सम् । य॒तो॒जा इति॑ य॒तः॒ऽजाः ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(कः) (अस्य) (वेद) जानाति (भुवनस्य) सर्वाधिकरणस्य संसारस्य (नाभिम्) मध्यमाङ्गं बन्धनस्थानम् (कः) (द्यावापृथिवी) (सूर्य्यभूमी (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (कः) (सूर्यस्य) सवितृमण्डलस्य (वेद) जानाति (बृहतः) महतः (जनित्रम्) कारणं जनकं वा कः) (वेद) (चन्द्रमसम्) चन्द्रलोकम् (यतोजाः) यस्माज्जातः ॥ ५९ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नस्य भुवनस्य नाभिं को वेद को द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वेद को बृहतः सूर्यस्य जनित्रं वेद यो यतोजास्तं चन्द्रमसं च को वेदेति समाधेहि ॥ ५९ ॥

भावार्थः—अस्य जगतो धारकं बन्धनं भूमिसूर्यान्तरिक्षाणि महतः सूर्यस्य कारणं यस्मादुत्पन्नश्चन्द्रस्तं च को वेदेति चतुर्णां प्रश्नानामुत्तराणि परस्मिन्मन्त्रे सन्तीति वेदितव्यम् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (अस्य) इस (भुवनस्य) सब के आधारभूत संसार के (नाभिम्) बन्धन के स्थान मध्यभाग को (कः) कौन (वेद) जानता (कः) कौन (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी तथा (अन्तरिक्षम्) आकाश को जानता (कः) कौन (बृहतः) बड़े (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल के (जनित्रम्) उपादान वा निमित्त

कारण को (वेद) जानता और जो (यतोजाः) जिस से उत्पन्न हुआ है उस चन्द्रमा के उत्पादक को और (चन्द्रमसम्) चन्द्रलोक को (कः) कौन (वेद) जानता है इन का समाधान कीजिये ॥ ५९ ॥

भावार्थः--इस जगत् के धारण कर्त्ता बन्धन, भूमि सूर्य अन्तरिक्ष, महान् सूर्य के कारण और चन्द्रमा जिस से उत्पन्न हुआ है उस को कौन जानता है इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र में हैं यह जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

वेदाहमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

पूर्व मंत्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र में कहते हैं ॥

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् । वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ६० ॥

वेद । अहम् । अस्य । भुवनस्य । नाभिम् । वेद । द्यावापृथिवी इति द्यावापृथिवी । अन्तरिक्षम् । वेद । सूर्यस्य । बृह-

तः । जनित्रम् । अथो इत्यथो । वेद । चन्द्रमसम् । यतोजा इति यतःऽजाः ॥ ६० ॥

पदार्थः—(वेद (अहम्) (अस्य) (भुवनस्य) (नाभिम्) बन्धनम् (वेद) (द्यावापृथिवी) प्रकाशाप्रकाशौ लोकसमूहौ (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (वेद) (सूर्य्यस्य) (बृहतः) महत्परिमाणयुक्तस्य (जनित्रम्) (अथो) (वेद) (चन्द्रमसम्) (यतोजाः) ॥ ६० ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासोऽस्य भुवनस्य नाभिमहं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वेद बृहतः सूर्य्यस्य जनित्रं वेद। अथो यतोजास्तं चन्द्रमसञ्चाहं वेद॥६०॥

भावार्थः—विद्वान् ब्रूयात्—हे जिज्ञासोऽस्य जगतो बन्धमृस्थितिकारणं लोकत्रयस्य कारणं सूर्य्याचन्द्रमसोश्चोपादाननिमित्ते एतत्सर्वमहं जानामि ब्रह्मैवास्य सर्वस्य निमित्तं कारणं प्रकृतिश्चोपादानमिति ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासो पुरुष (अस्य) इस (भुवनस्य) सब के अधिकरण जगत् के (नाभिम्) बन्धन के स्थान कारण रूप मध्यभाग परब्रह्म को (अहम्) मैं (वेद) जानता हूं तथा (द्यावापृथिवी) प्रकाशित और अप्रकाशित लोकसमूहों और (अन्तरिक्षम्) आकाश को भी (वेद) मैं जानता हूं (बृहतः) बड़े (सूर्य्यस्य) सूर्यलोक के (जनित्रम्) उपादान तैजस कारण और निमित्त कारण ब्रह्म को (वेद) मैं जानता हूं (अथो) इस के अनन्तर (यतोजाः) जिस परमात्मा से उत्पन्न हुआ जो चन्द्र उस परमात्मा को तथा (चन्द्रमसम्) चन्द्रमा को (वेद) मैं जानता हूं ॥६०॥

भावार्थ—विद्वान् उत्तर देवे कि हे जिज्ञासु पुरुष इस जगत् के बन्धन अर्थात् स्थिति के कारण प्रकाशित अप्रकाशित मध्यस्थ आकाश इन तीनों लोक के कारण और सूर्य्य चन्द्रमा के उपादान और निमित्त कारण इस सब को मैं जानताहूं ब्रह्म ही इस सब का निमित्त कारण और प्रकृति उपादान कारण है ॥ ६० ॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनः प्रश्नानाह ॥

फिर भी अगले मंत्र में प्रश्नों को कहते हैं ॥

पृच्छामि त्वा पर॒मन्तं पृ॑थि॒व्याः पृच्छामि॒ यत्र॒ भुव॑नस्य॒ नाभिः॑। पृ॒च्छामि॑ त्वा वृष्णो॒ अश्व॑स्य॒ रेतः॑ पृ॒च्छामि॑ वा॒चः प॑र॒मं व्यो॑म ॥ ६१ ॥

पृ॒च्छामि॑ । त्वा॒ । पर॑म् । अन्त॑म् । पृ॒थि॒व्याः । पृ॒च्छामि॑ । यत्र॑ । भुव॑नस्य । नाभिः॑ । पृ॒च्छामि॑ । त्वा॒ । वृष्णः॑ । अश्व॑स्य । रेतः॑ । पृ॒च्छामि॑ । वा॒चः । प॒र॒मम् । व्यो॒मेति॒ वि॒ऽओ॑म ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(पृच्छामि) (त्वा) त्वाम् (परम्) परभागस्थम् (अन्तम्) सीमानम् (पृथिव्याः) पृच्छामि (यत्र (भुवनस्य) (नाभिः) मध्याकर्षणेन बन्धकम् (पृच्छामि) (त्वा) त्वाम् (वृष्णः) सेचकस्य (अश्वस्य) बलवतः (रेतः) वीर्यम् (पृच्छामि) (वाचः) वाण्याः (परमम्) प्रकृष्टम् (व्योम) आकाशरूपं स्थानम् ॥ ६१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नहं त्वा त्वां पृथिव्या अन्तं परं पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिरस्ति तं पृच्छामि यद् वृष्णोऽश्वस्य रेतोऽस्ति तत्पृच्छामि वाचः परमं व्योम त्वा पृच्छामीति वदोत्तराणि ॥ ६१ ॥

भावार्थः—पृथिव्याः सीमा लोकस्याकर्षणेन बन्धनं बलिनो जनस्य पराक्रमो वाक्पारगश्च कोऽस्तीत्येतेषां प्रश्नानामुत्तराणि परस्मिन् मंत्रे वेदितव्यानि ॥६१॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन मैं (त्वा) आप को (पृथिव्याः) पृथिवी के (अन्तम्, परम्) पर भाग अवधि को (पृच्छामि) पूछता (यत्र) जहां इस (भुवनस्य) लोक का (नाभिः) मध्य से खेंच के बन्धन करता है उस को (पृच्छामि) पूछता जो (वृष्णः) सेचन कर्त्ता (अश्वस्य) बलवान् पुरुष का (रेतः) पराक्रम है उस को (पृच्छामि) पूछता और (वाचः) तीन वेदरूप वाणी के (परमम्) उत्तम (व्योम) आकाशरूप स्थान को (त्वा) आप से (पृच्छामि) पूछता हूं आप उत्तर कहिये॥६१॥

भावार्थः—पृथिवी की सीमा क्या, जगत् का आकर्षण से बन्धन कौन, बली जन का पराक्रम कौन और वाणी का पारगन्ता कौन है इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र में जानने चाहियें ॥ ६१ ॥

इयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता ।
विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्वप्रश्नानामुत्तराण्याह ॥

पूर्व मंत्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अ० ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । अयꣳ सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ६२ ॥

इयम् । वेदिः । परः । अन्तः । पृथिव्याः । अयम् । यज्ञः । भुवनस्य । नाभिः । अयम् । सोमः । वृष्णः ।

अश्वस्य । रेतः । ब्रह्मा । अयम् । वाचः । परमम् । व्योमेति विऽओम ॥६२॥

पदार्थः—(इयम्) (वेदिः) मध्यरेखा (परः) (अन्तः) (पृथिव्याः) भूमेः (अयम्) (यज्ञः) सर्वैः पूजनीयो जगदीश्वरः (भुवनस्य) संसारस्य (नाभिः) (अयम्) (सोमः) ओषधिराजः (वृष्णः) वीर्यकरस्य (अश्वस्य) बलेन युक्तस्य जनस्य (रेतः) (ब्रह्मा) चतुर्वेदवित् (अयम्) (वाचः) वाण्याः (परमम्) (व्योम) स्थानम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो इयं वेदिः पृथिव्याः परोऽन्तोऽयं यज्ञो भुवनस्य नाभिरयं सोमो वृष्णोऽश्वस्य रेतोऽयं ब्रह्मा वाचः परमं व्योमास्तीति विद्धि ॥६२॥

भावार्थः—हे मनुष्या यद्यस्य भूगोलस्य मध्यस्था रेखा क्रियेत तर्हि सा उपरिष्टाद्भूमेरन्तं प्राप्नुवती सती व्याससंज्ञां लभेत । अयमेव भूमेरन्तोऽस्ति सर्वेषां मध्याकर्षणं जगदीश्वरः सर्वेषां प्राणिनां वीर्यकर ओषधिराजः सोमो वेदपारगा वाक्पारगोऽस्तीति यूयं विजानीत ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जन (इयम्) यह (वेदिः) मध्यरेखा (पृथिव्याः) भूमि के (परः) परभाग की (अन्तः) सीमा है (अयम्) यह प्रत्यक्ष गुणोंवाला (यज्ञः) सब को पूजनीय जगदीश्वर (भुवनस्य) संसार की (नाभिः) नियत स्थिति का बन्धक है (अयम्) यह (सोमः) ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम (वृष्णः) पराक्रम कर्त्ता (अश्वस्य) बलवान् जन का (रेतः) पराक्रम है और (अयम्) यह (ब्रह्म) चारों वेद का ज्ञाता (वाचः) तीन वेदरूप वाणी का (परमम्) उत्तम (व्योम) स्थान है तू इसको जान ॥ ६२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो इस भूगोल की मध्यस्थ रेखा की जावे तो वह ऊपर से भूमि के अन्त को प्राप्त होतीहुई व्यास संज्ञक होती है यही भूमि की सीमा है ।

सब लोकों के मध्य आकर्षण कर्त्ता जगदीश्वर है सब प्राणियों को पराक्रम कर्ता ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम है और वेदपारग पुरुष वाणी का पारगन्ता है यह तुम जानो ॥ ६२ ॥

सुभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समापाता देवता ।
विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वरः कीदृश इत्याह ॥

ईश्वर कैसा है इस वि० ॥

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे । दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥ ६३ ॥

सुभूरिति सुऽभूः । स्वयम्भूरिति स्वयम्ऽभूः । प्रथमः । अन्तः । महति । अर्णवे । दधे । ह । गर्भम् । ऋत्वियम् । यतः । जातः । प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(सुभूः) यः सुष्ठु भवतीति (स्वयम्भूः) यः स्वयम्भवत्युत्पत्तिनाशरहितः (प्रथमः) आदिमः (अन्तः) मध्ये (महति) (अर्णवे) यत्रार्णांस्युदकानि संबद्धानि सन्ति तस्मिन् संसारे (दधे) दधाति (ह) किल (गर्भम्) बीजम् (ऋत्वियम्) ऋतु सम्प्राप्तोऽस्य तम् (यतः) यस्मात् (जातः) (प्रजापतिः) प्रजापालकः सूर्यः ॥ ६३ ॥

अन्वयः— हे जिज्ञासो यतः प्रजापतिर्जातो यश्च सुभूः स्वयम्भूः प्रथमो जगदीश्वरो महत्यर्णवेऽन्तर्ऋत्वियं गर्भं दधे तं ह सर्वे जना उपासीरन् ॥ ६३ ॥

भावार्थः— यदि ये मनुष्याः सूर्य्यादीनां परं कारणं प्रकृतिं तत्र बीजधारकं परमात्मानं च विजानीयुस्तर्हि तेऽस्मिन्संसारे विस्तीर्णसुखा भवेयुः ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जन (यतः) जिस जगदीश्वर से (प्रजापतिः) विश्व का रक्षक सूर्य (जातः) उत्पन्न हुआ है और जो (सुभूः) सुन्दर विद्यमान (स्वयम्भूः) जो अपने आप प्रसिद्ध उत्पत्ति नाश रहित (प्रथमः) सब से प्रथम जगदीश्वर (महति) बड़े विस्तृत (अर्णवे) जलों से संबद्ध हुए संसार के (अन्तः) बीच (ऋत्वियम्) समयानुकूल प्राप्त (गर्भम्) बीज को (दधे) धारण करता है (ह) उसी की सब लोग उपासना करें ॥ ६३ ॥

भावार्थः—यदि जो मनुष्य लोग सूर्यादि लोकों के उत्तम कारण प्रकृति को और उस प्रकृति में उत्पत्ति की शक्ति को धारण करने हारे परमात्मा को जानें तो वे जन इस जगत् में विस्तृत सुख वाले होवें ॥ ६३ ॥

होता यक्षदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता ।
विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

ईश्वरः कथमुपास्य इत्याह

ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिये इस वि० ॥

होता॑ यक्षत्प्र॒जाप॑ति॒ꣳ सोम॑स्य महि॒म्नः । जु॒षतां॒ पिब॑तु॒ सोम॒ꣳ होत॒र्यज॑ ॥ ६४ ॥

होता । यक्षत् । प्रजापतिमिति प्रजाऽपतिम् । सोमस्य । महिम्नः ।
जुषताम् । पिबतु । सोमम् । होतः । यज ॥ ६४ ॥

पदार्थः— (होता) आदाता (यक्षत्) यजेत्पूजयेत् (प्रजापतिम्) विश्वस्य पालकं स्वामिनम् (सोमस्य) सकलैश्वर्य्ययुक्तस्य (महिम्नः) महतो भावस्य सकाशात् (जुषताम्) (पिबतु) (सोमम्) सर्वौषधिरसम् (होतः) दातः (यज) पूजय ॥ ६४

अन्वयः—हे होतर्यथा होता सोमस्य महिम्नः प्रजापतिं यक्षज्जुषतां च सोमं च पिबतु तथा त्वं यज पिब च ॥ ६४ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा विद्वांसोऽस्मिञ्जगति रचनादिविशेषैः परमात्मनो महिमानं विदित्वैनमुपासते तथैतं यूयमप्युपाध्वं यथेमे युक्त्यौषधानि सेवित्वाऽरोगा जायन्ते तथा भवन्तोऽपि भवन्तु ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने हारे जन जैसे (होता) ग्रहीता पुरुष (सोमस्य) सब ऐश्वर्य्य से युक्त (महिम्नः) बड़प्पन के होने से (प्रजापतिम्) विश्व के पालक स्वामी की (यक्षत्) पूजा करे वा उस को (जुषताम्) सेवन से प्रसन्न करे और (सोमम्) सब उत्तम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवे वैसे तू (यज) उस की पूजा कर और उत्तम ओषधि के रस को पिया कर ॥ ६४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में रचना आदि विशेष चिन्हों से परमात्मा के महिमा को जान के इस की उपासना करते हैं वैसे ही तुम लोग भी इस की उपासना करो जैसे ये विद्वान् युक्तिपूर्वक पथ्य पदार्थों का सेवन कर नीरोग होते हैं वैसे आप लोग भी हों ॥ ६४ ॥

प्रजापते नेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ रू॒पाणि॒ परि॒ ता ब॑भूव । यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्तु व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाम् ॥ ६५ ॥

प्रजा॑पत॒ इति॑ प्रजा॑ऽपते । न । त्वत् । ए॒तानि॑ । अ॒न्यः । विश्वा॑ । रू॒पाणि॑ । परि॑ । ता । ब॒भू॒व । यत्का॑मा॒ इति॑ यत्ऽका॑माः । ते॒ । जु॒हु॒मः । तत् । नः॒ । अ॒स्तु॒ । व॒यम् । स्या॒म॒ । पत॑यः । र॒यी॒णाम् ॥ ६५ ॥

पदार्थः—(प्रजापते) सर्वस्याः प्रजायाः पालक स्वामिन्नीश्वर (न) (त्वत्) तव सकाशात् (एतानि) पृथिव्यादीनि भूतानि (अन्यः) भिन्नः (विश्वा) सर्वाणि (रूपाणि) स्वरूपयुक्तानि (परि) (ता) तानि (बभूव) भवति (यत्कामाः) यः पदार्थः कामो येषां ते (ते) तव (जुहुमः) प्रशंसामः (तत्) कमनीयं वस्तु (नः) अस्मभ्यम् (अस्तु) भवतु (वयम्) (स्याम) भवेम (पतयः) स्वामिनः पालकाः (रयीणाम्) विद्यासुवर्णादिधनानाम् ॥ ६५ ॥

अन्वयः—हे प्रजापते परमात्मन्कश्चित्त्वदन्यस्ता तान्येतानि विश्वा रूपा-

णि वस्तूनि न परि बभूव । यत्कामा वयं त्वां जुहुमस्तन्नोऽस्तु तं कृपया वयं रयीणां पतयः स्याम् ॥ ६५ ॥

भावार्थः--यदि परमेश्वरादुत्तमं बृहदैश्वर्य्ययुक्तं सर्वशक्तिमद्वस्तु किंचिदपि नास्ति तर्हि तुल्यमपि न । यो विश्वात्मा विश्वस्रष्टाऽखिलैश्वर्य्यप्रद ईश्वरोऽस्ति तस्यैव भक्तिविशेषेण पुरुषार्थेनैहिकमैश्वर्य्यं योगाभ्यासेन पारमार्थिकं सामर्थ्यं प्राप्नुयाम ॥ ६५ ॥

अत्र परमात्ममहिमा सृष्टिगुणवर्णनं योगप्रशंसा प्रश्नोत्तराणि सृष्टिपदार्थप्रशंसनं राजप्रजागुणवर्णनं शास्त्राद्युपदेशोऽध्ययनमध्यापनं स्त्रीपुरुषगुणवर्णनं पुनः प्रश्नोत्तराणि परमेश्वरगुणवर्णनं यज्ञव्याख्या रेखागणितादि चोक्तमत एतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

पदार्थः--हे (प्रजापते) सब प्रजा के रक्षक स्वामिन् ईश्वर कोई भी (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न (ता) उन (एतानि) इन पृथिव्यादि भूतों तथा (विश्वा) सब (रूपाणि) स्वरूपयुक्त वस्तुओं पर (न) नहीं (परि,बभूव) बलवान् है (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले हो कर (वयम्) हम लोग आप की (जुहुमः) प्रशंसा करें (तत्) वह २ कामना के योग्य वस्तु (नः) हम को (अस्तु) प्राप्त हो (ते) आप की कृपा से हम लोग (रयीणाम्) विद्या सुवर्ण आदि धनों के (पतयः) रक्षक स्वामी (स्याम) होवें ॥ ६५ ॥

भावार्थः--जो परमेश्वर से उत्तम, बड़ा, ऐश्वर्ययुक्त, सर्वशक्तिमान् पदार्थ कोई भी नहीं है तो उस के तुल्य भी कोई नहीं जो सब का आत्मा सब का रचने वाला समस्त ऐश्वर्य का दाता ईश्वर है उस की भक्ति विशेष और अपने पुरुषार्थ से इस लोक के ऐश्वर्य और योगाभ्यास के सेवन से परलोक के सामर्थ्य को हम लोग प्राप्त हों ॥ ६५ ॥

इस अध्याय में परमात्मा के महिमा, सृष्टि के गुण, योग की प्रशंसा, प्रश्नोत्तर, सृष्टि के पदार्थों की प्रशंसा, राजा प्रजा के गुण, शास्त्र आदि का उपदेश, पठन पाठन, स्त्री पुरुषों के परस्पर गुण, फिर प्रश्नोत्तर, ईश्वर के गुण, यज्ञ की व्याख्या और रेखागणित आदि का वर्णन किया है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां श्रीमद्विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये त्रयोविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥

——:0:——

अथ चतुर्विंशाध्यायारम्भः ।

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

अश्वइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।
भुरिक् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।
अथ मनुष्यैः पशुभ्यः कीदृश उपकारो ग्राह्य इत्याह ॥

अब चौबीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मंत्र में मनुष्यों को पशुओं से कैसा उपकार लेना चाहिये इस विषय का वर्णन है ।

अश्व॑स्तूप॒रो गो॑मृग॒स्ते प्रा॑जाप॒त्याः कृ॒ष्णग्री॑व आग्ने॒यो र॒राटे॑ पु॒रस्ता॑त्सा॒रस्वती मे॒ष्य॒धस्ता॒द्धन्वो॑राश्वि॒नाव॒धोरा॑मौ बा॒ह्वोः सौ॑मापौ॒ष्णः श्या॒मो ना॒भ्यां᳖सौर्यया॒मौ श्वे॒तश्च॑ कृ॒ष्णश्च॑ पा॒र्श्वयो॑स्त्वा॒ष्ट्रौ लो॑म॒शस॑क्थौ स॒क्थ्योर्वा॑य॒व्यः श्वे॒तः पुच्छ॒ इन्द्रा॑य स्वप॒स्याय॑ वे॒हद्वै॑ष्ण॒वो वा॑म॒नः ॥ १ ॥

अश्वः । तूपरः । गोमृग इति गोऽमृगः । ते । प्राजापत्या इति प्राजाऽपत्याः । कृष्णग्रीव इति कृष्णऽग्रीवः । आग्नेयः । रराटे । पुरस्तात् । सारस्वती । मेषी । अधस्तात् । हन्वोः ।

आ॒श्विनौ॑ । अ॒धोरा॑मा॒वित्य॒धःऽरा॑मौ । बा॒ह्वोः॑ । सौ॒मा॒पौ॒ष्णः । श्या॒मः । ना॒भ्या॑म् । सौ॒र्य॒या॒मौ । श्वे॒तः । च॒ । कृ॒ष्णः । च॒ । पा॒र्श्वयोः॑ । त्वा॒ष्ट्रौ । लो॒म॒श॒स॒क्था॒विति॑ लो॒म॒शऽस॒क्थौ । स॒क्थ्योः॑ । वा॒य॒व्यः॑ । श्वे॒तः । पु॒च्छे । इन्द्रा॑य । स्व॒प॒स्या॒येति॑ सुऽअ॒प॒स्या॑य । वे॒हत् । वै॒ष्ण॒वः । वा॒म॒नः ॥ १ ॥

पदार्थः—(अश्वः) आशुगामी तुरङ्गः (तूपरः) हिंसकः (गोमृगः) गौरिव वर्त्तमानो गवयः (ते) (प्राजापत्याः) प्रजापतिः सूर्यो देवता येषान्ते (कृष्णग्रीवः) कृष्णा ग्रीवा यस्य सः (आग्नेयः) अग्निदेवताकः (रराटे) ललाटे (पुरस्तात्) आदितः (सारस्वती) सरस्वती देवता यस्याः सा (मेषी) शब्दकर्त्री मेषस्य स्त्री (अधस्तात्) (हन्वोः) मुखाऽवयवयोः (आश्विनौ) अश्विदेवताकौ (अधोरामौ) अधो रामणं ययोस्तौ (बाह्वोः) (सौमापौष्णः) सोमपूषदेवताकः (श्यामः) कृष्णवर्णः (नाभ्याम्) मध्ये (सौर्ययामौ) सूर्ययमसम्बन्धिनौ (श्वेतः) श्वेतवर्णः (च) कृष्णः) (च) (पार्श्वयोः) वामदक्षिणभागयोः (त्वाष्ट्रौ) त्वष्टृदेवताकौ (लोमशसक्थौ) लोमानि विद्यन्ते यस्य तल्लोमशं सक्थि ययोस्तौ (सक्थ्योः) पादावयवयोः (वायव्यः) वायुदेवताकः (श्वेतः) श्वेतवर्णः (पुच्छे) (इन्द्राय) ऐश्वर्ययुक्ताय (स्वपस्याय) शोभनान्यपांसि कर्माणि यस्य तस्मै (वेहत्) अकालेवृषभोपगमनेन गर्भघातिनी (वैष्णवः) विष्णुदेवताकः (वामनः) वक्राङ्गः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयमश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव आग्नेयः पुरस्ताद्रराटे मेषी सारस्वती अधस्ताद्धन्वोर्बाह्वोरधोरामावाश्विनौ सौ-

मापौष्णः श्यामो नाभ्यां पार्श्वयोः श्वेतश्च कृष्णश्च सौर्ययामौ सक्थ्योर्लोम-शसक्थौ त्वाष्ट्रौ पुच्छे श्वेतो वायव्यो वेहद्वैष्णवो वामनश्च स्वप्रस्यायेन्द्राय संयोजयत ॥ १ ॥

भावार्थः— ये मनुष्या अश्वादिभ्यः कार्य्याणि संसाध्यैश्वर्यमुन्नीय धर्म्याणि कर्माणि कुर्युस्ते सौभाग्यवन्तो भवेयुः । अत्र सर्वत्र देवतापदेन तत्तद्-गुणयोगात्पशवो वेदितव्याः ॥ १ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो तुम जो (अश्वः) शीघ्र चलने हारा घोड़ा (तूपरः) हिंसा करने वाला पशु (गोमृगः) और गौ के समान वर्त्तमान नीलगाय है (ते) वे (प्राजापत्याः) प्रजापालक सूर्य देवता वाले अर्थात् सूर्यमण्डल के गुणों से युक्त (कृष्णग्रीवः) जिस की काली गर्द्दन वह पशु (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला (पुरस्तात्) प्रथम से (रराटे) ललाट के निमित्त (मेषी) मेंढ़ी (सारस्वती) सरस्वती देवता वाली (अधस्तात्) नीचे से (हन्वोः) ठोढ़ी वामदक्षिण भागों के और (बाह्वोः) भुजाओं के निमित्त (अधोरामौ) नीचे रमण करने वाले (आश्विनौ) जिनका अश्वि-देवता वे पशु (सौमापौष्णः) सोम और पूषा देवता वाला (श्यामः) काले रंग से युक्त पशु (नाभ्याम्) तुन्दी के निमित्त और (पार्श्वयोः) वाई दाहिनी ओर के नियम (श्वेतः) सुफेद रंग (च) और (कृष्णः) काला रंग वाला (च) और (सौर्ययामौ) सूर्य वा यम सम्बन्धि पशु वा (सक्थ्योः) पैरों की गांठियों के पास के भागों के निमित्त (लोमशसक्थौ) जिस के बहुत रोम विद्यमान ऐसे गांठियों के पास के भागसे युक्त (त्वाष्ट्रौ) त्वष्टा देवता वाले पशु वा (पुच्छे) पूँछ के निमित्त (श्वेतः) सुफेद रंग वाला (वायव्यः) वायु जिस का देवता है वह पशु (वेहत) जो कामोद्दीपन समय के विना बैल के समीप जाने से गर्भ नष्ट करने वाली गौ वा (वैष्णवः)

विष्णु देवता वाला और (वामनः) नाटा शरीर से कुछ टेढ़े अंगवाला पशु इन सभों को (स्वपस्याय) जिस के सुन्दर २ कर्म उस (इन्द्राय) ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिये संयुक्त करो अर्थात् उक्त प्रत्येक अंग के आनन्द निमित्तक उक्त गुणवाले पशुओं को नियत करो ॥ १ ॥

भावार्थः— जो मनुष्य अश्व आदि पशुओं से कार्य्यों को सिद्ध कर ऐश्वर्य को उन्नति देके धर्म के अनुकूल काम करें वे उत्तम भाग्य वाले हों । इस प्रकरण में सब स्थानों में देवता पद से उस २ पद के गुण योग से पशु जानने चाहियें ॥ १ ॥

रोहितइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः ।
निचृत्संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः के पशवः कीदृशगुणा इत्याह ॥

फिर कौन पशु कैसे गुण वाले हैं इस वि० ॥

रोहि॑तो धू॒म्ररो॑हितः क॒र्कन्धु॑रोहित॒स्ते सौ॒म्या ब॒भ्रुर॑रु॒णब॑भ्रुः शु॒कब॑भ्रु॒स्ते वा॑रु॒णाः शि॑ति॒र॒न्ध्रोऽन्यतः॑शितिरन्ध्रः सम॒न्तशि॑तिरन्ध्र॒स्ते सा॑वि॒त्राः शि॑तिबा॒हुर॒न्यतः॑ शितिबाहुः सम॒न्तशि॑तिबाहु॒स्ते बा॑र्हस्प॒त्याः पृष॑ती क्षु॒द्रपृ॑षती स्थू॒लपृ॑षती॒ ता मै॑त्रावरु॒ण्यः॑ ॥ २ ॥

रोहितः । धूम्ररोहित इति धूम्रऽरोहितः । कर्कन्धुरोहित इति कर्कन्धुऽरोहितः । ते । सौम्याः । बभ्रुः । अरुणबभ्रुरित्यरुणऽबभ्रुः । शुकबभ्रुरिति शुकऽबभ्रुः । ते । वारुणाः । शितिरन्ध्र इति शितिऽरन्ध्रः । अन्यतःशितिरन्ध्र इत्यन्यतःऽशितिरन्ध्रः । समन्तशितिरन्ध्र इति समन्तऽशितिरन्ध्रः । ते । सावित्राः । शितिबाहुरिति शितिऽबाहुः । अन्यतःशितिबाहुरित्यन्यतःऽशितिबाहुः । समन्तशितिबाहुरिति समन्तऽशितिबाहुः । ते । बार्हस्पत्याः । पृषती । क्षुद्रपृषतीति क्षुद्रऽपृषती । स्थूलपृषतीति स्थूलऽपृषती । ताः । मैत्रावरुण्यः ॥ २ ॥

पदार्थः—(रोहितः) रक्तवर्णः (धूम्ररोहितः) धूम्ररक्तवर्णः (कर्कन्धुरोहितः) कर्कन्धुर्बदरीफलमिव रोहितः (ते) (सौम्याः) सोमदेवताकाः (बभ्रुः) नकुलसदृशवर्णः (अरुणबभ्रुः) अरुणेन युक्तो बभ्रुर्वर्णो यस्य सः (शुकबभ्रुः) शुकस्येव बभ्रुर्वर्णो यस्य सः (ते) (वारुणाः) वरुणदेवताकाः (शितिरन्ध्रः) शितिः श्वेतता रन्ध्रे यस्य सः (अन्यतःशितिरन्ध्रः) अन्यतोऽन्यस्मिन् रन्ध्राणीव शितयो यस्य सः (समन्तशितिरन्ध्रः) समन्ततो रन्ध्राणीव शितियः श्वेतचिन्हानि यस्य सः (ते) (सावित्राः) सवितृदेवताकाः (शितिबाहुः) शितयो बाह्वोर्यस्य सः (अन्यतःशितिबाहुः) अन्यतः शितयो बाबाह्वोर्यस्य सः (समन्तशितिबाहुः) समन्ताच्छितयो बाह्वोर्भुजस्थानयोर्यस्य सः (ते) (बार्हस्पत्याः) बृहस्पतिर्देवताकाः (पृषती) अङ्गैः सुसिक्ता (क्षुद्रपृषती) क्षुद्राणि पृषन्ति यस्याः सा (स्थूलपृषती) स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सा (ताः) (मैत्रावरुण्यः) प्राणोदानदेवताकाः ॥ २ ॥

अन्वयः— हे मनुष्या युष्माभिर्ये रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितश्च सन्ति ते सौम्याः । ये बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुश्च सन्ति ते वारुणाः । ये शितिरन्ध्रो ऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रश्च सन्ति ते सावित्राः । ये शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुश्च सन्ति ते बार्हस्पत्याः । याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती च सन्ति ता मैत्रावरुण्यो भवन्तीति बोध्यम् ॥ २ ॥

भावार्थः—ये चन्द्रादिगुणयुक्ताः पशवः सन्ति तैस्तत्तत्कार्यं मनुष्यैः साध्यम् ॥ २ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो तुम को जो (रोहितः) सामान्य लाल (धूम्ररोहितः) धुमेला लाल और (कर्कन्धुरोहितः) पके बेर के समान लाल पशु हैं (ते) वे (सौम्याः) सोमदेवता अर्थात् सोम गुण वाले । जो (बभ्रुः) न्योला के समान धुमेला (अरुणबभ्रुः) लालामी लिये हुए न्योले के समान रंगवाला और (शुकबभ्रुः) सुग्गा की समता को लिये हुए के समान रंगयुक्त पशु हैं (ते) वे सब (वारुणाः) वरुण देवता वाले अर्थात् श्रेष्ठ जो (शितिरन्ध्रः) शिति रन्ध्र अर्थात् जिसके मर्म स्थान आदि में सुपेदी (अन्यतःशितिरन्ध्रः) जो और अङ्ग से और अङ्ग में छेद से हो वैसी जिस के जहां तहां सुपेदी (समन्तशितिरन्ध्रः) और जिस के सब ओर से छेदों के समान सुपेदी के चिन्ह हैं (ते) वे सब (सावित्राः) सविता देवता वाले (शितिबाहुः) जिस के अगले भुजाओं में सुपेदी के चिन्ह (अन्यतः शितिबाहुः) जिस के और अंग से और अंग में सुपेदी के चिन्ह और (समन्तशितिबाहुः) जिस के सब ओर से अगले गोड़ों में सुपेदी के चिन्ह हैं ऐसे जो पशु हैं (ते) वे (बार्हस्पत्याः) बृहस्पति देवता वाले तथा जो (पृषती) सब अंगों से अच्छी छिट की हुई सी (क्षुद्रपृषती) जिस के छोटे २ रंग विरंग छींटे और (स्थूलपृषती) जिस के मोटे २ छींटे हैं (ताः) वे सब (मैत्रावरुण्यः) प्राण और उदान देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थः— जो चन्द्रमा आदि के उत्तम गुणवाले पशु हैं उन से उन२ के गुण के अनुकूल काम मनुष्यों को सिद्ध करने चाहियें ॥ २ ॥

शुद्धवाल इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
निचृदतिजगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनः कीदृशगुणाःपशव इत्याह ॥
फिर कैसे गुण वाले पशु हैं इस वि० ॥

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ३ ॥

शुद्धवाल इति शुद्धऽवालः । सर्वशुद्धवाल इति सर्वऽशुद्धवालः । मणिवाल इति मणिऽवालः । ते । आश्विनाः । श्येतः । श्येताक्ष इति श्येतऽअक्षः । अरुणः । ते । रुद्राय । पशुपतय इति पशुऽपतये । कर्णाः । यामाः । अवलिप्ता इत्यवऽलिप्ताः । रौद्राः । नभोरूपा इति नभःऽरूपाः । पार्जन्याः ॥ ३ ॥

पदार्थः (शुद्धवालः) शुद्धा वाला यस्य सः (सर्वशुद्धवालः) सर्वे शुद्धा वाला यस्य सः (मणिवालः) मणिरिव वाला यस्य स (ते) (अश्विनाः) सूर्यचन्द्रदेवताकाः (श्येतः) श्वेतवर्णः (श्यताक्षः) श्येते अक्षिणी यस्य सः (अरुणः) रक्तवर्णः (ते) (रुद्राय) दुष्टानां रोदकाय (पशुपतये) पशूनां पालकाय (कर्णाः) यैः कार्याणि कुर्वन्ति ते (यामाः) वायुदेवताकाः (अवलिप्ताः) अवलिप्तान्युपचितान्यङ्गानि येषान्ते (रौद्राः) प्राणादिदेवताकाः (नभोरूपाः) नभ इव रूपं येषान्ते (पार्जन्याः) मेघदेवताकाः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्ये शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालश्च सन्ति ते आश्विनाः। ये श्येतः श्येताक्षोऽरुणश्च सन्ति ते पशुपतये रुद्राय। ये कर्णाः सन्ति ते यामाः। येऽवलिप्ताः सन्ति ते रौद्राः। ये नभोरूपाः सन्ति ते पार्जन्याश्च वेदितव्याः॥ ३॥

भावार्थः—यो यस्य पशोर्देवताऽस्ति स तद्गुणोऽस्तीति वेद्यम् ॥ ३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (शुद्धवालः) जिस के शुद्ध बाल वा शुद्ध छोटे २ अंग (सर्वशुद्धवालः) जिस के समस्त शुद्ध बाल और (मणिवालः) जिस के मणि के समान चिलकते हुए बाल हैं ऐसे जो पशु (ते) वे सब (आश्विनाः) सूर्य चन्द्र देवता वाले अर्थात् सूर्य चन्द्रमा के समान दिव्य गुण वाले। जो (श्येतः) सुपेद रंगयुक्त (श्येताक्षः) जिस की सुपेद आंखें और (अरुणः) जो लाल रंग वाला है (ते) वे (पशुपतये) पशुओं की रक्षा करने और (रुद्राय) दुष्टों को रुलानेहारे के लिये। जो ऐसे हैं कि (कर्णाः) जिन से काम करते हैं वे (यामाः) वायु देवता वाले (अवलिप्ताः) जिन के उन्नति युक्त अंग अर्थात् स्थूल शरीर हैं वे (रौद्राः) प्राण वायु आदि देवता वाले तथा (नभोरूपाः) जिन का आकाश के समान नीला रूप है ऐसे जो पशु हैं वे सब (पार्जन्याः) मेघ देवता वाले जानने चाहियें॥ ३॥

भावार्थः—जो जिस पशु का देवता है वह उस का गुण है यह जानना चाहिये॥ ३॥

पृश्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। मारुतादयो देवताः।
विराडतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि० ॥

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः

सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्तऽऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्तऽउषस्याः ॥ ४ ॥

पृश्निः। तिरश्चीनपृश्निरिति तिरश्चीनऽपृश्निः। ऊर्ध्वपृश्निरित्यूर्ध्वऽपृश्निः। ते। मारुताः। फल्गूः। लोहितोर्णीति लोहितऽऊर्णी। पलक्षी। ताः। सारस्वत्यः। प्लीहाकर्णः। प्लीहकर्ण इति प्लीहऽकर्णः। शुण्ठाकर्णः। शुण्ठकर्ण इति शुण्ठऽकर्णः। अध्यालोहकर्ण इत्यध्यालोहऽकर्णः। ते। त्वाष्ट्राः। कृष्णग्रीव इति कृष्णऽग्रीवः। शितिकक्षऽइति शितिऽकक्षः। अञ्जिसक्थऽइत्यञ्जिऽसक्थः। ते। ऐन्द्राग्नाः। कृष्णाञ्जिरिति कृष्णऽअञ्जिः। अल्पाञ्जिरित्यल्पऽअञ्जिः। महाञ्जिरिति महाऽअञ्जिः। ते। ऊषस्याः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(पृश्निः) प्रष्टव्यः (तिरश्चीनपृश्निः) तिरश्चीनः पृश्निः स्पर्शो यस्य सः (ऊर्ध्वपृश्निः) ऊर्ध्व उत्कृष्टः पृश्निः स्पर्शो यस्य सः (ते) (मारुताः) मरुद्देवताकाः (फल्गूः) या फलानि गच्छति प्राप्नोति सा (लोहितोर्णी) लोहिता ऊर्णा यस्याः सा (पलक्षी) पले चञ्चले अक्षिणी यस्याः सा (ताः) (सारस्वत्यः) सरस्वती देवताकाः (प्लीहाकर्णः) प्लीहेव कर्णो यस्य सः (शुण्ठाकर्णः) शुण्ठौ शुष्कौ कर्णौ यस्य सः (अध्यालोहकर्णः)

अधिगतं च तल्लोहं च सुवर्णं तद्वद्वर्णो यस्य सः । लोहमिति हिरण्यनामं० निघं० १ । २ (ते) (त्वाष्ट्राः) त्वष्टृदेवताकाः (कृष्णग्रीवः) कृष्णा ग्रीवा यस्य सः (शितिकक्षः) शिती श्वेतौ कक्षौ पार्श्वौ यस्य सः (अञ्जिसक्थः) अञ्जीनि प्रसिद्धानि सक्थीनि यस्य सः (ते) (ऐन्द्राग्नाः) वायुविद्युद्देवताकाः (कृष्णाञ्जिः) कृष्णा त्रिलिखिता अञ्जिर्गतिर्यस्य सः (अल्पाञ्जिः) अल्पगतिः (महाञ्जिः) महागतिः (ते) (उषस्याः) उषोदेवताकाः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निश्च सन्ति ते मारुताः । याः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी च सन्ति ताः सारस्वत्यः । ये प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णश्च सन्ति ते त्वाष्ट्राः । ये कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थश्च सन्ति त ऐन्द्राग्नाः । ये कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिमहाञ्जिश्च सन्ति त उषस्याश्च भवन्तीति वेद्यम् ॥ ४ ॥

भावार्थः—ये पशवः पक्षिणश्च वायुगुणा ये नदीगुणा ये सूर्य्यगुणा ये वायुविद्युद्गुणा ये चोषोगुणाः सन्ति तैस्तदनुकूलानि कार्य्याणि साधनीयानि ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (पृश्निः) पूछने योग्य (तिरश्चीनपृश्निः) जिस का तिरछा स्पर्श और (ऊर्ध्वपृश्निः) जिस का ऊंचा वा उत्तम स्पर्श है (ते) वे (मारुताः) वायु देवता वाले । जो (फल्गूः) फलों को प्राप्त हों (लोहितोर्णी) जिस की लाल ऊर्णा अर्थात् देह के बाल और (पलक्षी) जिस की चंचल चपल आंखें ऐसे जो पशु हैं (ताः) वे (सारस्वत्यः) सरस्वती देवता वाले (प्लीहाकर्णः) जिस के कान में प्लीहा रोग के आकार चिन्ह हों (शुण्ठाकर्णः) जिस के सूखे कान और जिस के (अध्यालोहकर्णः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा देवता वाले जो (कृष्णग्रीवः)

काले गले वाले (शितिकक्षाः) जिस के पांजर की ओर सुपेद अंग और (अन्यजिस-पथः) जिस की प्रसिद्ध जङ्घा अर्थात् स्थूल होने से अलग विदित हों ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (ऐन्द्राग्नाः) पवन और विजुली देवता वाले तथा (कृष्णाञ्जिः) जिस की करोदी हुई चाल (अल्पाञ्जिः) जिस की थोड़ी चाल और (महाञ्जिः) जिस की बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (उषस्याः) उषा देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो पशु और पक्षी पवन गुण वा जो नदी गुण वा जो सूर्य गुण वा जो पवन और बिजुली गुण तथा जो प्रातः समय की वेला के गुण वाले हैं उन से उन्हीं के अनुकूल काम सिद्ध करने चाहियें ॥ ४ ॥

शिल्पाइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।
निचृद्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह
फिर उसी वि० ॥

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ५ ॥

शिल्पाः । वैश्वदेव्युइति वैश्वऽदेव्यः । रोहिण्यः । त्र्यवयइति त्रिऽअवयः । वाचे । अविज्ञाता इत्यविऽज्ञाताः । अदित्यै । सरूपा इति सऽरूपाः । धात्रे । वत्सतर्य्यः । देवानाम् । पत्नीभ्यः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(शिल्पाः) सुरूपाः शिल्पकार्यसाधिकाः (वैश्वदेव्यः) विश्वदेवदेवताकाः (रोहिण्यः) आरोढुमर्हाः (त्र्यवयः) त्रिविधाश्च ता अवयाश्च ताः (वाचे) (अविज्ञाताः) विशेषेणाज्ञाताः (अदित्यै) पृथिव्यै (सरूपाः) समानं रूपं यासां ताः (धात्रे) धारकाय (वत्सतर्यः) अतिशयेन वत्सा अल्पवयसः (देवानाम्) दिव्यगुणानां विदुषाम् (पत्नीभ्यः) भार्य्याभ्यः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्याः शिल्पा वैश्वदेव्यो वाचे रोहिण्यस्त्र्यवयोऽदित्या अविज्ञाताः धात्रे सरूपा देवानां पत्नीभ्यो वत्सतर्यश्चता विज्ञेयाः ॥ ५ ॥

भावार्थः—ये सर्वे विद्वांसः शिल्पविद्ययाऽनेकानि यानादीनि रचयेयुः पशूनां च पालनं कृत्वोपयोगं गृह्णीयुस्ते श्रीमन्तः स्युः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (शिल्पाः) जो सुन्दर रूपवान् और शिल्प कार्यों की सिद्धि करने वाली (वैश्वदेव्यः) विश्वेदेव देवता वाले (वाचे) वाणी के लिये (रोहिण्यः) नीचे से ऊपर को चढ़ने योग्य (त्र्यवयः) जो तीन प्रकार की भेड़ें (अदित्यै) पृथिवी के लिये (अविज्ञाताः) विशेष कर न जानी हुई भेड़ आदि (धात्रे) धारण करने के लिये (सरूपाः) एक से रूप वाली तथा (देवानाम्) दिव्यगुण वाले विद्वानों की (पत्नीभ्यः) स्त्रियों के लिये (वत्सतर्य्यः) अतीव छोटी २ थोड़ी अवस्था वाली बछियां जाननी चाहिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो सब विद्वान् शिल्प विद्या से अनेकों यान आदि बनावें और पशुओं की पालना कर उन से उपयोग लेवें वे धनवान् हों ॥ ५ ॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।
विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनां रोहिता रुद्राणां श्वेता अवरोकिण आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ६ ॥

कृष्णग्रीवा इति कृष्णऽग्रीवाः । आग्नेयाः । शितिभ्रव इति शितिभ्रवः । वसूनाम् । रोहिताः । रुद्राणाम् । श्वेताः । अवरोकिण इत्यवऽरोकिणः । आदित्यानाम् । नभोरूपा इति नभःऽरूपाः । पार्जन्याः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(कृष्णग्रीवाः) कृष्णा कर्षिका ग्रीवा निगरणं येषान्ते (आग्नेयाः) अग्निर्देवताकाः शितिश्वेताः भ्रूभ्रुकुटियोसां ताः (वसूनाम्) पृथिव्यादीनाम् (रोहिताः) रक्तवर्णाः (रुद्राणाम्) प्राणादीनाम् (श्वेताः) श्वेतवर्णाः (अवरोकिणः) अवरोधका (आदित्यानाम्) सूर्यसम्बन्धिनां मासानाम् (नभोरूपाः) नभ उदकमिव रूपं येषां ते (पार्जन्याः) मेघदेवताकाः ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये कृष्णग्रीवास्त आग्नेयाः । ये शितिभ्रवस्ते वसूनां ये रोहितास्ते रुद्राणां ये श्वेता अवरोकिणस्त आदित्यानां ये नभोरूपास्ते च पार्जन्याः बोध्याः ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरग्नेराकर्षणक्रिया पृथिव्यादीनां धारणाक्रिया वायूनां प्ररोहणक्रिया आदित्यानामवरोधिका मेघानां च जलवर्षिकाः क्रिया विदित्वा कार्येषूपयोज्याः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (कृष्णग्रीवाः) ऐसे हैं कि जिन की खिंची हुई गर्दन वा खिंचा हुआ खाना निगलना वे (आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले (शितिभ्रवः) जिन की सुपेद भौंहें हैं वे (वसूनाम्) पृथिवी आदि वसुओं के । जो (रोहिताः) लालरंग के हैं वे (रुद्राणाम्) प्राण आदि ग्यारह रुद्रों के । जो (श्वेताः) सुपेद रंग के और (अवरोकिणः) अवरोध करने अर्थात् रोकने वाले हैं वे (आदित्यानाम्) सूर्यसम्बन्धी महीनोंके और जो (नभोरूपाः) ऐसे हैं कि जिन का जल के समान रूप है वे जीव (पार्जन्याः) मेघदेवता वाले अर्थात् मेघ के सदृश गुणों वाले जानने चाहियें ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि की खींचने की पृथिवी आदि की धारण करने की पवनों की अच्छे प्रकार चढ़ने की सूर्य आदि की रोकने की और मेघों की जल वर्षाने की क्रिया को जान कर सब कामों में सम्यक् निरन्तर उपयुक्त किया करें ॥ ६ ॥

उन्नत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः ।
अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उन्नत ऋषभो वामनस्तऽऐन्द्रावैष्णवा उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तऽऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्-

माषा आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः॥ ७ ॥

उन्नत इत्युत्ऽनतः । ऋषभः । वामनः । ते । ऐन्द्रावैष्णवाः । उन्नतइत्युत्ऽनतः । शितिबाहुरिति शितिऽबाहुः । शितिपृष्ठइति शितिऽपृष्ठः । ते । ऐन्द्राबार्हस्पत्याः।वा शुकरूपाइति शुकऽरूपाः । वाजिनाः । कल्माषाः । आग्निमारुता इत्याग्निऽमारुताः । श्यामाः । पौष्णाः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(उन्नतः) उच्छ्रितः (ऋषभः) श्रेष्ठः (वामनः) वक्राङ्गः (ते) (ऐन्द्रावैष्णवाः) विद्युद्वायुदेवताकाः (उन्नतः) (शितिबाहुः) शितितनूकर्त्तारौ बाहू इव बलं यस्य सः (शितिपृष्ठः) शितिस्तनूकरणं पृष्ठं यस्य सः (ते) (ऐन्द्राबार्हस्पत्याः) वायुसूर्यदेवताकाः (शुकरूपाः) शुकस्य रूपमिव रूपं येषान्ते (वाजिनाः) वेगवन्तः (कल्माषाः) श्वेतकृष्णवर्णाः (आग्निमारुताः) अग्निवायुदेवताकाः (श्यामाः) श्यामवर्णाः (पौष्णाः) पुष्टिनिमित्तमेघदेवताकाः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या भवाद्भिर्ये उन्नत ऋषभो वामनश्च सन्ति । ये ऐन्द्रावैष्णवाः य उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठश्च सन्ति त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः । ये शुकरूपा वाजिनः कल्माषाः सन्ति त आग्निमारुताः । ये श्यामाः सन्ति ते च पौष्णाः विज्ञेयाः ॥ ७ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः पशूनामुन्नतिं पुष्टिं च कुर्वन्ति ते नानाविधानि सुखानि लभन्ते ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (उन्नतः) ऊंचा (ऋषभः) और श्रेष्ठ (वामन) टेढ़े अंगों वाले नाटा पशु हैं (ते) वे (ऐन्द्रावैष्णवाः) बिजुली और पवन देवता वाले

जो (उन्नतः) ऊंचा (शितिबाहुः) जिस का दूसरे पदार्थ को काटती छांटती हुई भुजाओं के समान बल और (शितिपृष्ठः) (जिस की सूक्ष्म की हुई पीठ ऐसे जो पशु हैं (ते) वे (ऐन्द्राबार्हस्पत्याः) वायु और सूर्य देवता वाले (शुकरूपाः) जिन का सुग्गों के समान रूप और (वाजिनाः) वेग वाले (कल्माषाः) कबरे भी हैं वे (आग्निमारुताः) अग्नि और पवन देवता वाले तथा जो (श्यामाः) काले रंग के हैं वे (पौष्णाः) पुष्टि निमित्तक मेघ देवता वाले जानने चाहियें ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पशुओं की उन्नति और पुष्टि करते हैं वे नाना प्रकार के सुखों को पाते हैं ॥ ७ ॥

एता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्राग्न्यादयो देवताः ।
विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतएन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥

एताः । ऐन्द्राग्नाः । द्विरूपा इति द्विऽरूपाः । अग्नीषोमीयाः । वामनाः । अनड्वाहः । आग्नावैष्णवाः । वशाः । मैत्रावरुण्यः । अन्यतएन्य इत्यन्यतःऽएन्यः । मैत्र्यः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(एताः) पूर्वोक्ताः (ऐन्द्राग्नाः) वायुविद्युत्सङ्गिनः (द्विरूपाः) द्वे रूपे यासां ताः (अग्नीषोमीयाः) सोमाग्निदेवताकाः (वामनाः) वक्रावयवाः (अनड्वाहः) वृषभाः (आग्नावैष्णवाः) अग्निवायुदेवताकाः (वशाः) वन्ध्या गावः (मैत्रावरुण्यः) प्राणोदानदेवताकाः (अन्यतएन्यः) या अन्यतो यन्ति प्राप्नुवन्ति ताः (मैत्र्यः) मित्रस्य प्रिये वर्त्तमानाः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्या एता द्विरूपाः सन्ति ता ऐन्द्राग्नाः । ये वामना अनड्वाहः सन्ति तेऽग्नीषोमीया आग्नावैष्णवाश्च । या वशाः सन्ति ता मैत्रावरुण्यः । या अन्यतएन्यः सन्ति ताश्च मैत्र्यो विज्ञेयाः ॥ ८ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या वाय्वग्न्यादिगुणान्पशून् पालयन्ति ते सर्वोपकारका भवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (एताः) ये पूर्वोक्त (द्विरूपाः) द्विरूप पशु अर्थात् जिन के दो २ रूप हैं वे (ऐन्द्राग्नाः) वायु और बिजुली के संगी जो (वामनाः) टेढ़े अंगों वाले व नाटे और (अनड्वाहः) बैल हैं वे (अग्नीषोमीयाः) सोम और अग्नि देवता वाले तथा (आग्नावैष्णवाः) अग्नि और वायु देवता वाले जो (वशाः) बन्ध्या गौ हैं वे (मैत्रावरुण्यः) प्राण और उदान देवता वाली और जो (अन्यतएन्यः) कहीं से प्राप्त हों वे (मैत्र्यः) मित्र के प्रिय व्यवहार में जानने चाहियें ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य वायु और अग्नि आदि के गुणों वाले गौ आदि पशु हैं उन की पालना करते हैं वे सब का उपकार करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।
निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

कृ॒ष्णग्री॑वा आग्ने॒या ब॒भ्रवः॑ सौ॒म्याः श्वे॒ता वा॑य॒व्या अवि॑ज्ञाता॒ अदि॑त्यै॒ सरू॑पा धा॒त्रे व॑त्सत॒र्यो दे॒वानां॒ पत्नी॑भ्यः ॥ ९ ॥

कृष्णग्रीवा इति कृष्णऽग्रीवाः । आग्नेयाः । बभ्रवः । सौम्याः । श्वेताः । वायव्याः । अविज्ञाता इत्यविंऽज्ञाताः । अदित्यै । सरूपाऽइति सऽरूपाः । धात्रे । वत्सतर्य्यः । देवानाम् । पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(कृष्णग्रीवाः) कृष्णकण्ठाः (आग्नेयाः) अग्निदेवताकाः (बभ्रवः) नकुलवर्णवद्वर्णयुक्ताः (सौम्याः) सोमदेवताकाः (श्वेताः) (वायव्याः) वायुदेवताकाः (अविज्ञाताः) न विशेषेण ज्ञाता विदिताः (अदित्यै) अखण्डितायै जनित्वक्रियायै । अदितिर्जनित्वमिति मंत्र प्रामाण्यादत्रादिति शब्देन गृह्यते (सरूपाः) समानं रूपं यासां ता (धात्रे) धारकाय वायवे (वत्सतर्य्यः) अतिशयेन वत्साः (देवानाम्) सूर्यादीनाम् (पत्नीभ्यः) पालिकाभ्यः क्रियाभ्यः ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्ये कृष्णग्रीवास्त आग्नेयाः । ये बभ्रवस्ते सौम्याः । ये श्वेतास्ते वायव्याः । येऽविज्ञातास्तेऽदित्यै ये सरूपास्ते धात्रे । या वत्सतर्यस्ताश्च देवानां पत्नीभ्यो विज्ञेयाः ॥ ९ ॥

भावार्थः—ये पशवः कर्षका निगलका अग्निवद्वर्त्तमाना य ओषधीवद्धारकाः । य आवरकास्ते वायुवद्वर्त्तमानाः । येऽविज्ञातास्ते प्रजननाय ये धातृगुणास्ते धारणाय ये सूर्यकिरणवद्वर्त्तमानाः पदार्थाः सन्ति ते व्यवहारसाधने प्रयोज्याः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (कृष्णग्रीवाः) काले गले के हैं वे (आग्नेयाः) अग्निदेवता वाले जो (बभ्रवः) न्योले के रंग के समान रंग वाले हैं वे (सौम्याः) सोम देवता वाले जो (श्वेताः) सुपेद हैं वे (वायव्याः) वायु देवता वाले । जो (अविज्ञाताः) विशेष चिन्ह से कुछ न जाने गये वे (अदित्यै) जो कभी

नाश नहीं होती उस उत्पत्ति रूप क्रिया के लिये जो (सरूपाः) ऐसे हैं कि जिन का एकसारूप है वे (धात्रे) धारण करने हारे पवन के लिये। और जो (वत्सतर्यः) छोटी २ बछिया हैं वे (देवानाम्) सूर्य आदि लोकों की (पत्नीभ्यः) पालना करने वाली क्रियाओं के जानने चाहियें ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो पशु जोतने और निगलने वाले अग्नि के समान वर्त्तमान जो ओषधी के समान गुणों को धारण करने और ढांपने वाले हैं पवन के समान वर्त्तमान जो नहीं जानने योग्य उत्पत्ति के लिये जो धारण करते हुए के तुल्य गुणयुक्त हैं वे धारण करने के लिये। तथा जो सूर्य की किरणों के समान वर्त्तमान पदार्थ हैं वे व्यवहारों की सिद्धि करने में अच्छे प्रकार युक्त करने चाहियें ॥ ९ ॥

कृष्णा भौमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अन्तरिक्षादयो देवताः। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

कृष्णा भौमा धूम्रा आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥१०॥

कृष्णाः। भौमाः। धूम्राः। आन्तरिक्षाः। बृहन्तः। दिव्याः। शबलाः। वैद्युताः। सिध्माः। तारकाः ॥ १० ॥

पदार्थः—(कृष्णाः) कृष्णवर्णा विलेखननिमित्ता वा (भौमाः) भूमिदेवताकाः (धूम्राः) धूम्रवर्णाः (आन्तरिक्षाः) अन्तरिक्षदेवताकाः (बृहन्तः) वर्धकाः (दिव्याः) दिव्यगुणकर्मस्वभावाः

(शवलाः) किंचिच्छ्वेताः (वैद्युताः) विद्युद्देवताकाः (सिध्माः) मङ्गलकारिणः (तारकाः) दुःखस्य पारे कारिणः ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्ये कृष्णास्ते भौमाः । ये धूम्रास्त आन्तरिक्षाः । ये दिव्या बृहन्तः शबलास्ते वैद्युताः । ये सिध्मास्ते च तारका विज्ञेयाः ॥ १० ॥

भावार्थः—यदि मनुष्याः कर्षणादिकार्यसाधकान पश्वादि पदार्थान् भूम्यादिषु संयोजयेयुस्तर्हि ते मङ्गलमाप्नुयुः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (कृष्णाः) काले रंग के वा खेत आदि के जुताने वाले हैं वे (भौमाः) भूमि देवता वाले । जो (धूम्राः) धूमेले हैं वे (आन्तरिक्षाः) अन्तरिक्ष देवता वाले । जो (दिव्याः) दिव्य गुण कर्म स्वभावयुक्त (बृहन्तः) बढ़ते हुए और (शबलाः) थोड़े सुपेद हैं वे (वैद्युताः) बिजुली देवता वाले । और जो (सिध्माः) मङ्गल कराने हारे हैं वे (तारकाः) दुःख के पार उतारने वाले जानने चाहियें ॥ १० ॥

भावार्थः—यदि मनुष्य जोतने आदि कार्यों के साधक पशु आदि पदार्थों को भूमि आदि में संयुक्त करें तो वे आनन्द मङ्गल को प्राप्त होवें ॥ १० ॥

धूम्रानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वसन्तादयो देवताः ।
विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ।

फिर उसी वि० ॥

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥

धूम्रान् । वसन्ताय । आ । लभते । श्वेतान् । ग्रीष्माय । कृष्णान् । वर्षाभ्यः । अरुणान् । शरदे । पृषतः । हेमन्ताय । पिशङ्गान् । शिशिराय ॥ ११ ॥

पदार्थः—(धूम्रान्) धूम्रवर्णान् पदार्थान् (वसन्ताय) वसन्तर्त्तौ सुखाय (आ) समन्तात् (लभते) प्राप्नोति (श्वेतान्) श्वेतवर्णान् (ग्रीष्माय) ग्रीष्मर्त्तौ सुखाय (कृष्णान्) कृष्णवर्णान् कृषिसाधकान् वा (वर्षाभ्यः) व-र्षर्त्तौ कार्यसाधनाय (अरुणान्) आरक्तान् (शरदे) शरदृतौ सुखाय (पृषतः) स्थूलान् (हेमन्ताय) हेमन्तर्त्तौ कार्यसाधनाय (पिशङ्गान्) रक्तपीतवर्णान् (शिशिराय) शिशिरर्त्तौ व्यवहारसाधनाय ॥ ११ ॥

अन्वयः—यो मनुष्यो वसन्ताय धूम्रान् ग्रीष्माय श्वेतान् वर्षाभ्यः कृष्णान् शरदेऽरुणान् हेमन्ताय पृषतः शिशिराय पिशङ्गानालभते स सततं सुखी भ-वति ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्यस्मिन्नृतौ ये पदार्थाः संचनीयाः सेवनीयाश्च स्युस्ता-न्संचित्य संसेव्याऽरोगा भूत्वा धर्मार्थकाममोक्षसाधनान्यनुष्ठातव्यानि ॥ ११ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (वसन्ताय) वसन्त ऋतु में सुख के लिये (धूम्रान्) धु-मेले पदार्थों के (ग्रीष्माय) ग्रीष्म ऋतु में आनन्द के लिये (श्वेतान्) सुपेद रंग के (वर्षाभ्यः) वर्षा ऋतु में कार्य सिद्धि के लिये (कृष्णान्) काले रंग के वा खेती की संसिद्धि कराने वाले (शरदे) शरद् ऋतु में सुख के लिये (अरुणान्) लाल रंग के (हेमन्ताय) हेमन्त ऋतु में कार्य साधने के लिये (पृषतः)

मोटे और (शिशिराय) शिशिर ऋतु सम्बन्धी व्यवहार साधने के लिये (पिशङ्गान्) लाला‌मी लिये हुए पीले पदार्थों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वह निरन्तर सुखी होता है ॥ ११ ॥

भावार्थः— मनुष्यों को जिस ऋतु में जो पदार्थ इकट्ठे करने वा सेवने योग्य हों उन को इकट्ठे और उन का सेवन कर नीरोग हो के धर्म अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने के व्यवहारों का आचरण करें ॥ ११ ॥

त्र्यवय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।

विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे ॥ १२ ॥

त्र्यवय इति त्रिऽअवयः । गायत्र्यै । पञ्चावय इति पञ्चऽअवयः । त्रिष्टुभे । त्रिस्तुभ इति त्रिऽस्तुभे । दित्यवाहऽ इति दित्यऽवाहः । जगत्यै । त्रिवत्साऽ इति त्रिऽवत्साः । अनुष्टुभे । अनुस्तुभ इत्यनुऽस्तुभे । तुर्यवाह इति तुर्यऽवाहः । उष्णिहे ॥ १२ ॥

पदार्थः (त्र्यवयः) तिस्रोऽवयो येषां ते (गायत्र्यै) गायतो रक्षिकायै (पञ्चावयः) पञ्च अवयो येषान्ते (त्रिष्टुभे) त्रयाणां शारीरवाचिकमानसानां सुखानां स्तम्भनाय स्थिरीकरणाय (दित्यवाहः) दितौ खण्डने भवा दित्या न दित्या अदित्यास्तान् ये वहन्ति प्रापयन्ति ते दित्यवाहः

(जगत्यै) जगद्रक्षणायै क्रियायै (त्रिवत्साः) त्रयो वत्सास्त्रिषु वा निवासो येषान्ते (अनुष्टुभे) अनुस्तम्भाय (तुर्यवाहः) ये तुर्यं चतुर्थं वहन्ति ते (उष्णिहे) उत्कृष्टतया स्निह्यति यया तस्यै क्रियायै ॥ १२ ॥

अन्वयः—ये त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे च प्रयतेरँस्ते सुखिनः स्युः ॥ १२ ॥

भावार्थः—यथा विद्वांसोऽधीतैर्गायत्र्यादिछन्दोऽर्थैः सुखानि वर्धयन्ते तथा पशुपालका घृतादीनि वर्द्धयेयुः ॥ १२ ॥

पदार्थः—जो (त्र्यवयः) ऐसे हैं कि जिन की तीन भेड़ें वे (गायत्र्यै) गाते हुओं की रक्षा करने वाली के लिये (पञ्चावयः) जिन के पांच भेड़ें हैं वे (त्रिष्टुभे) तीन अर्थात् शरीर वाणी और मन संबन्धी सुखों के स्थिर करने के लिये। जो (दित्यवाहः) विनाश में न प्रसिद्ध हों उन की प्राप्ति कराने वाले (जगत्यै) संसार की रक्षा करने की जो क्रिया उस के लिये (त्रिवत्साः) जिन के तीन बछड़ा वा जिनके तीन स्थानों में निवास वे (अनुष्टुभे) पीछे से रोकने की क्रिया के लिये और (तुर्यवाहः) जो अपने पशुओं में चौथे को प्राप्त कराने वाले हैं वे (उष्णिहे) जिस क्रिया से उत्तमता के साथ प्रसन्न हों उस क्रिया के लिये अच्छा यत्न करें वे सुखी हों॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् जन पढ़े हुए गायत्री आदि छन्दों के अर्थों से सुखों को बढ़ाते हैं वैसे पशुओं के पालने वाले घी आदि पदार्थों को बढ़ावें ॥ १२ ॥

पष्ठवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विराजादयो देवताः।
निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पष्ठवाहो विराजऽउक्षाणो बृहत्याऽऋषभाः। ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिछन्दसे ॥ १३ ॥

पृष्ठवाहइतिपृष्ठऽवाहः । विराज इति विऽराजे । उक्षाणः । बृहत्यै । ऋषभाः । ककुभे । अनड्वाहः । पङ्क्त्यै । धेनवः । अतिछन्दसऽइत्यतिऽछन्दसे ॥ १३ ॥

पदार्थः—(पृष्ठवाहः) ये पृष्ठेन पृष्ठेन वहन्ति ते (विराजे) विराट् छन्दसे (उक्षाणः) वीर्यसेचनसमर्थाः (बृहत्यै) बृहतीछन्दोऽर्थाय (ऋषभाः) बलिष्ठाः (ककुभे) ककुबुष्णिक् छन्दोऽर्थाय (अनड्वाहः) शकटवहनसमर्थाः (पङ्क्त्यै) पङ्क्तिछन्दोऽर्थाय (धेनवः) दुग्धदात्र्यः (अतिछन्दसे) अतिजगत्यादि छन्दोऽर्थाय ॥ १३ ॥

अन्वयः—यैर्मनुष्यैर्विराजे पृष्ठवाहो बृहत्या उक्षाणः ककुभे ऋषभाः पङ्क्त्या अनड्वाहोऽतिछन्दसे धेनवः स्वीक्रियन्ते तेऽतिसुखं लभन्ते ॥ १३ ॥

भावार्थः—यथा विद्वांसो विराडादिछन्दोभ्यो बहूनि विद्याकार्याणि साध्नुवन्ति तथोष्ट्रादिभ्यः पशुभ्यो गृहस्था अखिलानि कार्याणि साध्नुयुः॥१३॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (विराजे) विराट् छन्द के लिये (पृष्ठवाहः) जो पीठ से पदार्थों को पहुँचाते (बृहत्यै) बृहती छन्द के अर्थ को (उक्षाणः) वीर्य सींचने में समर्थ (ककुभे) ककुप् उष्णिक् छन्द के अर्थ को (ऋषभाः) अतिबलवान् प्राणी (पङ्क्त्यै) पङ्क्ति छन्द के अर्थ को (अनड्वाहः) लढ़ा पहुंचाने में समर्थ बैलों को (अतिछन्दसे) अतिजगती आदि छन्द के अर्थ को (धेनवः) दूध देने वाली गौयें स्वीकार की वे अतीव सुख पाते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् विराट् आदि छन्दों के लिये बहुत विद्या विषयक कामों को सिद्ध करते हैं वैसे ऊंट आदि पशुओं से गृहस्थ लोग समस्त कामों को सिद्ध करें ॥ १३ ॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।
भुरिगति जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्या उपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

कृष्णग्रीवा इति कृष्णऽग्रीवाः । आग्नेयाः । बभ्रवः । सौम्याः । उपध्वस्ताऽइत्युपऽध्वस्ताः । सावित्राः । वत्सतर्यः । सारस्वत्यः । श्यामाः । पौष्णाः । पृश्नयः । मारुताः । बहुरूपाऽइति बहुऽरूपाः । वैश्वदेवा इति वैश्वऽदेवाः । वशाः । द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

पदार्थः—(कृष्णग्रीवाः) कृष्णकण्ठाः (आग्नेयाः) अग्निदेवताकाः (बभ्रवः) सर्वस्य धारकाः पोषका वा (सौम्याः) सोमदेवताकाः (उपध्वस्ताः) उपाधः पतिताः (सवित्राः) सवितृदेवताकाः (वत्सतर्य्यः) ह्रस्वा वत्स यासां ताः (सारस्वत्यः) वाग्देवताकाः (श्यामा) श्यामवर्णाः

(पौष्णाः) पुष्टिकरमेघदेवताकाः (पृश्नयः) प्रष्टव्याः (मारुताः) मनुष्यदेवताकाः (बहुरूपाः) बहूनि रूपाणि येषान्ते (वैश्वदेवाः) विश्वेदेवदेवताकाः (वशाः) देदीप्यमानाः (द्यावापृथिवीयाः द्यावापृथिवीदेवताकाः ॥ १४ ॥

अन्वयः— हे मनुष्या युष्माभिर्ये कृष्णग्रीवास्त आग्नेयाः । ये बभ्रवस्ते सौम्याः । य उपध्वस्तास्ते सावित्राः । या वत्सतर्यस्ताः सारस्वत्यः । ये श्यामास्ते पौष्णाः । ये पृश्नयस्ते मारुताः । ये बहुरूपास्ते वैश्वदेवाः । ये वशास्ते च द्यावापृथिवीया विज्ञेयाः ॥ १४ ॥

भावार्थः— यथा शिल्पिनोऽग्न्यादिभ्यः पदार्थेभ्योऽनेकानि कार्याणि साध्नुवन्ति तथा कृषीवलाः पशुभिर्बहूनि कार्याणि साध्नुयुः ॥ १४ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो तुम को जो (कृष्णग्रीवाः) काले गले वाले हैं वे (आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले । जो (बभ्रवः) सब का धारण पोषण करने वाले हैं वे (सौम्याः) सोम देवता वाले । जो (उपध्वस्ताः) नीचे के समीप गिरे हुए हैं वे (सावित्राः) सविता देवता वाले । जो (वत्सतर्य्यः) छोटी २ बछिया हैं वे (सारस्वत्यः) वाणी देवता वाली । जो (श्यामाः) काले वर्ण के हैं वे (पौष्णाः) पुष्टि करनेहारे मेघ देवता वाले । जो (पृश्नयः) पूंछने योग्य हैं वे (मारुताः) मनुष्य देवता वाले । जो (बहुरूपाः) बहुरूपी अर्थात् जिन के अनेक रूप हैं वे (वैश्वदेवाः) समस्त विद्वान् देवता वाले और जो (वशाः) निरन्तर चिलकते हुए हैं वे (द्यावापृथिवीयाः) आकाश पृथिवी देवता वाले जानने चाहियें ॥ १४ ॥

भावार्थः— जैसे शिल्प विद्या जानने वाले विद्वान् जन अग्नि आदि पदार्थों से अनेक कार्य सिद्धि करते हैं वैसे खेती करनेवाले पुरुष पशुओं से बहुत कार्य सिद्ध करें ॥ १४ ॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः ।
विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उक्ताः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥१५॥

उक्ताः । संचरा इति सम्ऽचराः । एताः । ऐन्द्राग्नाः । कृष्णाः । वारुणाः । पृश्नयः । मारुताः । कायाः । तूपराः ॥ १५ ॥

पदार्थः—(उक्ताः) कथिताः (सञ्चराः) ये सम्यक् चरन्ति ते (एताः) (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्राग्निदेवताकाः (कृष्णाः) कर्षकाः (वारुणाः) वरुणदेवताकाः (पृश्नयः) विचित्रचिन्हाः (मारुताः) (कायाः) प्रजापतिदेवताकाः (तूपराः) हिंसकाः ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिरेता उक्ताः संचरा ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुतास्तूपराः कायाश्च सन्तीति बोध्यम् ॥ १५ ॥

भावार्थः—ये नानादेशसंचारिणः प्राणिनस्सन्ति तैर्मनुष्या यथायोग्यानुपकारान् गृह्णीयुः ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (एताः) ये (उक्ताः) कहे हुए (संचराः) जो अच्छे प्रकार चलने हारे पशु आदि हैं वे (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि देवता वाले । जो (कृष्णाः) सींचने वा जोतने हारे हैं (वारुणाः) वे वरुण देवता वाले और जो (पृश्नयः) चित्र विचित्र चिन्ह युक्त (मारुताः) मनुष्य केसे स्वभाव वाले (तूपराः) हिंसक हैं वे (कायाः) प्रजापति देवता वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो नानाप्रकार के देशों में आने जाने वाले पशु आदि प्राणि हैं उन से मनुष्य यथायोग्य उपकार लेवें ॥ १५ ॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । शक्वरीछन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनः कस्मै के रक्षणीया इत्याह ॥

फिर किस के लिये कौन रक्षा करने योग्य हैं इस वि० ॥

अ॒ग्नये॑ऽनी॑कवते प्रथम॒जाना॒लभते म॒रुद्भ्यः॑ सान्तप॒नेभ्यः॑ सवा॒त्यान् म॒रुद्भ्यो॑ गृहमे॒धिभ्यो॒ बष्कि॑हान् म॒रुद्भ्यः॑ क्रीडिभ्यः॑ स॒ꣳसृ॒ष्टान् म॒रुद्भ्यः॑ स्वत॑वद्भ्योऽनुसृ॒ष्टान् ॥ १६ ॥

अ॒ग्नये॑ । अनी॑कवत॒ इत्यनी॑कऽवते । प्र॒थ॒म॒जानिति॑ प्रथम॒ऽजान् । आ । ल॒भ॒ते॒ । म॒रुद्भ्य॒ इति॑ म॒रुत्ऽभ्यः॑ । सा॒न्त॒प॒नेभ्य॒ इति॑ साम्ऽत॒प॒नेभ्यः॑ । स॒वा॒त्यानिति॑ सऽवा॒त्या॒न् । म॒रुद्भ्य॒ इति॑ म॒रुत्ऽभ्यः॑ । गृ॒ह॒मे॒धिभ्य॒ इति॑ गृ॒ह॒ऽमे॒धिभ्यः॑ । बष्कि॑हान् । म॒रुद्भ्य॒ इति॑ म॒रुत्ऽभ्यः॑ । क्री॒डिभ्य॒ इति॑ क्री॒डिऽभ्यः॑ । स॒ꣳसृ॒ष्टानिति॑ स॒म्ऽसृ॒ष्टान् । म॒रुद्भ्य॒ इति॑ म॒रुत्ऽभ्यः॑ । स्वत॑वद्भ्य॒ इति॒ स्वत॑वत्ऽभ्यः । अ॒नु॒सृ॒ष्टानित्य॑नु॒ऽसृ॒ष्टान् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(अग्नये) पावकइव वर्त्तमानाय सेनापतये (अनीकवते) प्रशंसितसेनाय (प्रथमजान्) प्रथमाद्विस्तीर्णात्कारणादुत्पन्नान् (आ) (लभते)

(मरुद्भ्यः) वायुवद्वर्त्तमानेभ्यो मनुष्येभ्यः (सान्तपनेभ्यः) सम्यक् तपनं ब्रह्मचर्य्याद्याचरणं येषान्तेभ्यः (सवात्यान) समानवाते भवान् (मरुद्भ्यः) प्राणइव प्रियेभ्यः (गृहमेधिभ्यः) गृहस्थेभ्यः (बष्किहान्) चिरप्रसूतान् (मरुद्भ्यः) (क्रीडिभ्यः) प्रशंसितक्रीडेभ्यः (संसृष्टान्) सम्यग्गुणयुक्तान् (मरुद्भ्यः) मनुष्येभ्यः (स्वतवद्भ्यः) स्वतो वासो येषान्तेभ्यः (अनुसृष्टान्) अनुषङ्गिणः ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा विद्वांसोऽनीकवतेऽग्नये प्रथमजान् सान्तपनेभ्यो मरुद्भ्यः सवात्यान् गृहमेधिभ्यो मरुद्भ्यो बष्किहान् क्रीडिभ्यो मरुद्भ्यः संसृष्टान् स्वतवद्भ्यो मरुद्भ्योऽनुसृष्टानालभन्ते तथैव यूयमेतानालभध्वम् ॥ १६ ॥

भावार्थः—यथा विद्वद्भिर्विद्वांसो [illegible] नः पशवः [illegible] पाल्यन्ते तथैवेतरैर्मनुष्यैः पालनीयाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे विद्वान् जन (अनीकवते) प्रशंसित सेना रखने वाले (अग्नये) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी सेनाधीश के अर्थ लिये (प्रथमजान्) विस्तारयुक्त कारण से उत्पन्न हुए (सान्तपनेभ्यः) जिन का अच्छे प्रकार ब्रह्मचर्य्य आदि आचरण है उन (मरुद्भ्यः) प्राण के समान प्रीति उत्पन्न करने वाले मनुष्यों के लिये (सवात्यान्) एकसे पवन में हुए पदार्थों (गृहमेधिभ्यः) घर में जिन की धीर बुद्धि है उन (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (बष्किहान) बहुत काल के उत्पन्न हुओं (क्रीडिभ्यः) प्रशंसायुक्त विहार आनन्द करने वाले (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (संसृष्टान्) अच्छे प्रकार गुणयुक्त और (स्वतवद्भ्यः) जिन का आप से निवास है उन (मरुद्भ्यः) स्वतंत्र मनुष्यों के लिये (अनुसृष्टान्) मिलने वालों को (आ, लभते)प्राप्त होता है वैसे ही तुम लोग इन को प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वानों से विद्यार्थी और पशु पाले जाते हैं वैसे अन्य मनुष्यों को भी पालने चाहिये ॥ १६ ॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्राग्न्यादयो देवताः । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह

फिर उसी वि० ॥

उक्ताः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥१७॥

उक्ताः । सञ्चरा इति सम्ऽचराः । एताः । ऐन्द्राग्नाः । प्राशृङ्गाः । प्रशृङ्गा इति प्रऽशृङ्गाः । माहेन्द्रा इति महाऽइन्द्राः । बहुरूपा इति बहुऽरूपाः । वैश्वकर्मणा इति वैश्वऽकर्मणाः ॥ १७ ॥

पदार्थः—(उक्ताः) निरूपिताः (सञ्चराः) संचरन्ति येषु ते मार्गाः (एताः) (ऐन्द्राग्नाः) वायुविद्युद्देवताकाः (प्राशृङ्गाः) प्रकृष्टानि शृङ्गाणि येषान्ते (माहेन्द्राः) महेन्द्रदेवताकाः (बहुरूपाः) बहुवर्णयुक्ताः (वैश्वकर्मणाः) विश्वकर्मदेवताकाः ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्य एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः सञ्चरा उक्तास्तेषु गन्तव्यम् ॥ १७ ॥

भावार्थः—यथा विद्वद्भिः पश्वादिपालनमार्गा उक्तास्तथैव वेदे प्रतिपादिताः सन्ति ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (एताः) ये (ऐन्द्राग्नाः) वायु और बिजुली देवता वाले वा (प्राशृङ्गाः) जिन के उत्तम शींग हैं वे (माहेन्द्राः) महेन्द्र देवता वाले वा (बहुरूपाः) बहुत रंगयुक्त (वैश्वकर्मणाः) विश्वकर्म देवता वाले (भंचराः) जिन में अच्छे प्रकार आते जाते हैं वे मार्ग (चक्राः) निरूपण किये उन में जाना आना चाहिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वानों ने पशुओं की पालना आदि के मार्ग कहे हैं वैसे ही वेद में प्रतिपादित हैं ॥ १७ ॥

धूम्रा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पितरो देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

धूम्रा ब॒भ्रुनी॑काशाः पि॒तॄणा॒ꣳ सोम॑वतां ब॒भ्रवो॑ धू॒म्रनी॑काशाः पि॒तॄणां ब॑र्हि॒षदां॑ कृ॒ष्णा ब॒भ्रुनी॑काशाः पि॒तॄणा॑मग्निष्वा॒त्तानां॑ कृ॒ष्णाः पृष॑न्तस्त्रैयम्ब॒काः ॥ १८ ॥

धूम्राः । ब॒भ्रुनी॑काशा॒ इति॑ ब॒भ्रुऽनी॑काशाः । पि॒तॄणाम् । सोम॑वता॒मिति॒ सोम॑ऽवताम् । ब॒भ्रवः॑ । धू॒म्रनी॑काशाः । धू॒म्रनी॑काशा॒ इति॑ धू॒म्रऽनी॑काशाः । पि॒तॄणाम् । ब॒र्हि॒षदा॑म् । ब॒र्हि॒सदा॒मिति॑ ब॒र्हि॒ऽसदा॑म् । कृ॒ष्णाः । ब॒भ्रुनी॑काशाः । ब॒भ्रुनी॑काशा॒ इति॑ ब॒भ्रुऽनी॑काशाः । पि॒तॄणाम् । अ॒ग्नि॒ष्वा॒त्तानाम् । अ॒ग्नि॒स्वा॒त्ताना॒मित्य॑ग्निऽस्वा॒त्ताना॑म् । कृ॒ष्णाः । पृष॑न्तः । त्रै॒य॒म्ब॒काः ॥ १८ ॥

पदार्थः-- (धूम्राः) धूम्रवर्णाः (बभ्रुनीकाशाः) नकुलसदृशाः (पितॄणाम्)जनकजननीनाम् (सोमवताम्) सोमगुणयुक्तानाम् (बभ्रवः) पुष्टिकर्त्तारः (धूम्रनीकाशाः) (पितॄणाम्)(बर्हिषदाम्) ये बर्हिषि सभायां सीदन्ति ते (कृष्णाः) कृष्णवर्णाः (बभ्रुनीकाशाः) पालकसदृशाः (पितॄणाम्) (अग्निष्वात्तानाम्) गृहीताग्निविद्यानाम् (कृष्णाः) कृष्णवर्णाः :(पृषन्तः) स्थूलाङ्गाः (त्रैयम्बकाः) त्रिष्वधिकारेष्वम्बकं लक्षणं येषान्ते ॥ १८ ॥

अन्वयः-- हे मनुष्या युष्माभिः सोमवतां पितॄणां बभ्रुनीकाशा धूम्रा बर्हिषदां पितॄणां कृष्णा धूम्रनीकाशा बभ्रवोऽग्निष्वात्तानां पितॄणां बभ्रुनीकाशा कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाश्च सन्तीति विज्ञेयाः ॥ १८ ॥

भावार्थः-- ये जनका विद्याजन्मदातारश्च सन्ति तेषां घृतादिभिर्गवादिदानैश्च यथायोग्यं सत्कारः कर्त्तव्यः॥ १८॥

पदार्थः-- हे मनुष्यो तुम को (सोमवताम्) सोमशान्ति आदि गुण युक्त उत्पन्न करने वाले (पितॄणाम्) माता पिताओं के (बभ्रुनीकाशाः) न्योले के समान (धूम्राः) धुमेले रंगवाले (बर्हिषदाम्) जो सभा के बीच बैठते हैं उन (पितॄणाम्) पालना करनेहारे विद्वानों के (कृष्णाः) काले रंग वाले (धूम्रनीकाशाः) धूम्रों के समान अर्थात् धुमेले और (बभ्रवः)पुष्टि करने वाले तथा (अग्निष्वात्तानाम्) जिन्हों ने अग्नि विद्या ग्रहण की है उन (पितॄणाम्) पालना करने हारे विद्वानों के (बभ्रुनीकाशाः)पालने हारे के समान (कृष्णाः) काले रंग वाले (पृषन्तः) मोटे अङ्गों से युक्त (त्रैयम्बकाः) जिनका तीन अधिकारों में चिन्ह है वे प्राणी वा पदार्थ हैं यह जानना चाहिये ॥ १८ ॥

भावार्थः— जो उत्पन्न करने और विद्या देने वाले विद्वान् हैं उनका घी आदि पदार्थ वा गौ आदि के दान से यथायोग्य सत्कार करना चाहिये ॥१८॥

उक्ताः संचरा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वायुर्देवता ।
त्रिपाद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

उक्ताः सञ्चरा एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः ॥१९॥

उक्ताः । सञ्चरा इति सम्ऽचराः । एताः । शुनासीरीयाः । श्वेताः । वायव्याः । श्वेताः । सौर्याः ॥ १९ ॥

पदार्थः-(उक्ताः) (संचराः) (एताः) (शुनासीरीयाः) शुनासीरदेवताकाः (कृषिसाधकाः) (श्वेताः) श्वेतवर्णाः (वायव्याः) वायुवद्दिव्यगुणाः (श्वेताः) (सौर्याः) सूर्यवत्प्रकाशमानाः ॥ १९ ॥

अन्वयः— हे मनुष्या यूयं य एताः शुनासीरीयाः संचरा वायव्याः श्वेताः सौर्याः श्वेताश्चोक्तास्तान् कार्येषु संप्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ १९ ॥

भावार्थः— यो यस्य पशोर्देवता उक्ताः स तद्गुणो ग्राह्यः ॥ १९ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो तुम जो (एताः) ये (शुनासीरीयाः) शुनासीर देवता वाले अर्थात् खेती की सिद्धि करने वाले (संचराः) आने जाने हारे (वायव्याः) पवन के समान दिव्य गुणयुक्त (श्वेताः) सुपेद रंग वाले वा (सौर्याः) सूर्य के समान प्रकाशमान (श्वेताः) सुपेद रंग के पशु (उक्ताः) कहे हैं उनको अपने कार्यों में अच्छे प्रकार निरन्तर नियुक्त करो॥ १९ ॥

भावार्थः—जो जिस पशु का देवता कहा है वह उस पशु का गुणग्रहण करना चाहिये ॥ १९ ॥

वसन्तायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वसन्तादयो देवताः । विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनः कस्मै के समाश्रयितव्या इत्याह ॥

फिर किस के लिये कौन अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य हैं इस वि० ॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककरांञ्छिशिराय विककरान् ॥ २० ॥

वसन्ताय । कपिञ्जलान् । आ । लभते । ग्रीष्माय । कलविङ्कान् । वर्षाभ्यः । तित्तिरीन् । शरदे । वर्त्तिकाः । हेमन्ताय । ककरान् । शिशिराय । विककरानिति विऽककरान् ॥ २० ॥

पदार्थः—(वसन्ताय) (कपिञ्जलान्) पक्षिविशेषान् (आ) (लभते) (ग्रीष्माय) (कलविङ्कान्) चटकान् (वर्षाभ्यः) (तित्तिरीन्) (शरदे) (वर्त्तिकाः) पक्षिविशेषाः (हेमन्ताय) (ककरान्) पक्षिविशेषान् (शिशिराय)(विककरान्) विकिरकान् पक्षिविशेषान् ॥२०॥

अन्वयः—हे मनुष्याः पक्षिविज्जनो वसन्ताय याकपिञ्जलान् ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककरांञ्छिशिराय विककरानालभते तान् यूयं विजानीत ॥ २० ॥

भावार्थः—यस्मिन्यस्मिन्नृतौ ये ये पक्षिणः प्रमुदिता भवन्ति ते ते तद्गुणा विज्ञेयाः ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो पक्षियों को जानने वाला जन (वसन्ताय) वसन्त ऋतु के लिये (कपिञ्जलान्) जिन कपिंजल नाम के विशेष पक्षियों (ग्रीष्माय) ग्रीष्म ऋतु के लिये (कलविङ्कान्) चिरौटा नाम के पक्षियों (वर्षाभ्यः) वर्षा ऋतु के लिये (तित्तिरीन्) तीतरों (शरदे) शरद् ऋतु के लिये (वर्त्तिकाः) वतकों (हेमन्ताय) हेमन्त ऋतु के लिये (ककरान्) ककरनाम के पक्षियों और (शिशिराय) शिशिर ऋतु के अर्थ (विककरान्) विककर नाम के पक्षियों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उन को तुम जानो ॥ २० ॥

भावार्थः—जिस २ ऋतु में जो २ पक्षी अच्छे आनन्द को पाते हैं वे २ उस गुण वाले जानने चाहिये ॥ २० ॥

समुद्रायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वरुणो देवता ।
विराट् छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
पुनः के किमर्थाः सेवनीया इत्याह ॥
फिर कौन किस के अर्थ सेवन करने चाहिये इस वि० ॥

स॒मु॒द्राय॑ शिशु॒मारा॒नाल॑भते प॒र्जन्या॑य म॒ण्डूका॑न॒द्भ्यो मत्स्या॑न् मि॒त्राय॑ कुली॒पया॑न् वरु॑णाय ना॒क्रान्॥२१॥

स॒मु॒द्राय॑ । शि॒शु॒मारा॒निति॑ शिशु॒ऽमारा॑न् । आ । ल॒भ॒ते॒ । प॒र्जन्या॑य । म॒ण्डूका॑न् । अ॒द्भ्य इत्य॒त्ऽभ्यः । मत्स्या॑न् । मि॒त्राय॑ । कु॒ली॒पया॑न् । वरु॑णाय । ना॒क्रान् ॥ २१ ॥

पदार्थः-(समुद्राय) महाजलाशयाय (शिशुमारान्) ये स्वशिशून् मारयन्ति तान् (आ) (लभते) (पर्जन्याय) मेघाय (मण्डूकान्) (अद्भ्यः) (मत्स्यान्) (मित्राय) (कुलीपयान्) (वरुणाय) (नाक्रान्) ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा जलजन्तुपालनवित् समुद्राय शिशुमारान् पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम् ॥ २१ ॥

भावार्थः—यथा जलचरजन्तुगुणविदस्तान्वर्धयितुं निगृहीतुं वा शक्नुवन्ति तथाऽन्येप्याचरन्तु ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे जल के जीवों की पालना करने को जानने वाला जन (समुद्राय) महाजलाशय समुद्र के लिये (शिशुमारान्) जो अपने बालकों को मार डालते हैं उन शिशुमारों (पर्जन्याय) मेघ के लिये (मण्डूकान्) मेंडुकों (अद्भ्यः) जलों के लिये (मत्स्यान्) मछलियों (मित्राय) मित्र के समान सुख देते हुए सूर्य के लिये (कुलीपयान्) कुलीपय नाम के जंगली पशुओं और (वरुणाय) वरुण के लिये (नाक्रान्) नाके मगर जलजन्तुओं को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—जैसे जलचर जन्तुओं के गुण जानने वाले पुरुष उन जल के जन्तुओं को बढ़ा वा पकड़ सकते हैं वैसा आचरण और लोग भी करें ॥ २१ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः । विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

सोमाय हꣳसानालभते वायवे ब-

लाकां इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान् ॥ २२ ॥

सोमाय । हंसान् । आ । लभते । वायवे । बलाकाः । इन्द्राग्निभ्यामितीन्द्राग्निऽभ्याम् । क्रुञ्चान् । मित्राय । मद्गून् । वरुणाय । चक्रवाकानिति चक्रऽवाकान् ॥ २२ ॥

पदार्थः—(सोमाय) चन्द्रायौषधिराजाय वा (हंसान्) पक्षिविशेषान् (आ, लभते) (वायवे) (बलाकाः) बलाकानां स्त्रियः (इन्द्राग्निभ्याम्) (क्रुञ्चान्) सारसान् (मित्राय) (मद्गून्) जलकाकान् (वरुणाय) (चक्रवाकान्) ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा पक्षिगुणविज्ञानी जनः सोमाय हंसान् वायवे बलाकाः इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम् ॥ २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैर्य उत्तमाः पक्षिणः सन्ति ते प्रयत्नेन संपाल्य वर्द्धनीयाः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों के गुण का विशेष ज्ञान रखने वाला पुरुष (सोमाय) चन्द्रमा वा ओषधियों में उत्तम सोम के लिये (हंसान्) हंसों (वायवे) पवन के लिये (बलाकाः) बगुलियों (इन्द्राग्निभ्याम्) इन्द्र और अग्नि के लिये (क्रुञ्चान्) सारसों (मित्राय) मित्र के लिये (मद्गून्) जल के कौवों वा जलमुर्गों और (वरुणाय) वरुण के लिये (चक्रवाकान्) चकई चकवों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को जो उत्तम पक्षी हैं वे अच्छे यत्न के साथ पालनकर बढ़ाने चाहियें ॥ २२ ॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः। पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥ २३ ॥

अग्नये । कुटरून् । आ । लभते । वनस्पतिभ्य इति वनस्पतिऽभ्यः । उलूकान् । अग्नीषोमाभ्याम् । चाषान् । अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम् । मयूरान् । मित्रावरुणाभ्याम् । कपोतान् ॥ २३॥

पदार्थः— (अग्नये) पावकाय (कुटरून्) कुक्कुटान् (आ)(लभते)(वनस्पतिभ्यः) (उलूकान्) (अग्नीषोमाभ्याम्) (चाषान्) (अश्विभ्याम्) (मयूरान्) (मित्रावरुणाभ्याम्) (कपोतान्) ॥ २३ ॥

अन्वयः— हे मनुष्या यथा पक्षिगुणविज्जनोऽग्नये कुटरून् वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम् ॥ २३ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०—ये कुक्कुटादीनां पक्षिणां गुणान् जानन्ति ते सर्वेतान्वर्धयन्ति ॥ २३ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो जैसे पक्षियों के गुण जानने वाला जन (अग्नये) अग्नि के लिये (कुटरून्) मुर्गों (वनस्पतिभ्यः) वनस्पति अर्थात् बिना·

दुष्ट फल देने वाले वृक्षों के लिये (उलूकान्) उल्लू पक्षियों (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के लिये (चाषान्) नीलकण्ठ पक्षियों (अश्विभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा के लिये (मयूरान्) मयूरों तथा (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और वरुण के लिये (कपोतान्) कबूतरों को (आलभते) जैसे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इन को तुम भी प्राप्त होओ ॥ २३ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मुर्गा आदि पक्षियों के गुणों को जानते हैं वे सदा इन को बढ़ाते हैं ॥ २३ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः ।
भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

सोमाय लबानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥ २४ ॥

सोमाय । लबान् । आ । लभते । त्वष्ट्रे । कौलीकान् । गोषादीः । गोसादीरिति गोऽसादीः । देवानाम् । पत्नीभ्यः । कुलीकाः । देवजामिभ्य इति देवऽजामिभ्यः । अग्नये । गृहपतय इति गृहऽपतये । पारुष्णान् ॥ २४ ॥

पदार्थः— (सोमाय) ऐश्वर्याय (लबान्) (आ) (लभते) (त्वष्ट्रे) प्रकाशकाय (कौलीकान्) पक्षिविशेषान् (गोषादीः) ये गाः सादयन्ति हिंसन्ति ताः पक्षिणीः (देवानाम्) विदुषाम् (पत्नीभ्यः) स्त्रीभ्यः (कुलीकाः) पक्षिणीविशेषाः (देवजामिभ्यः) विदुषां भगिनीभ्यः (अग्नये) अग्निरिव वर्त्तमानाय (गृहपतये) गृहपालकाय (पारुष्णान्) पक्षिविशेषान् ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा पक्षिकर्मविज्जनः सोमाय लबाँस्त्वष्टे कौलीकान् देवानां पत्नीभ्यो गोसादीर्देवजामिभ्यः कुलीका अग्नये गृहपतये पारुष्णानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम् ॥ २४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः पक्षिणां स्वभावजानि कर्माणि विदित्वा तदनुकरणं कुर्वन्ति ते बहुश्रुतवद्भवन्ति ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे पक्षियों का काम जाननेवाला जन (सोमाय) ऐश्वर्य के लिये (लबान्) बटेरों (त्वष्ट्रे) प्रकाश के लिये (कौलीकान्) कौलीकनाम के पक्षियों (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीभ्यः) स्त्रियों के लिये (गोसादीः) जो गौओं को मारती हैं उन पखेरियों (देवजामिभ्यः) विद्वानों की वहिनियों के लिये (कुलीकाः) कुलीकनामक पखेरियों और (अग्नये) जो अग्नि के समान वर्त्तमान (गृहपतये) गृहपालन करने वाला उसके लिये (पारुष्णान्) पारुष्ण पक्षियों को (आलभते) प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य पक्षियों के स्वभावज कामों को जानकर उनकी अनुहारि क्रिया करते हैं वे बहुश्रुत के समान होते हैं ॥२४॥

अहन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। कालावयवा देवताः।
विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥
पुनस्तमेव विषयमाह॥
फिर उसी वि० ॥

अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥ २५ ॥

अह्ने । पारावतान् । आ । लभते । रात्र्यै । सीचापूः । अहोरात्रयोः सन्धिभ्य इति सन्धिऽभ्यः । जतूः । मासेभ्यः । दात्यौहान् । संवत्सराय । महतः । सुपर्णानिति सुऽपर्णान् ॥ २५ ॥

पदार्थः—(अह्ने) दिवसाय (पारावतान्) कलरववान् (आ) (लभते) (रात्र्यै) (सीचापूः) पक्षिविशेषान् (अहोरात्रयोः)(सन्धिभ्यः) (जतूः) पक्षिविशेषान् (मासेभ्यः) (दात्यौहान्) कृष्णकाकान् (संवत्सराय) वर्षाय (महतः) (सुपर्णान्) शोभनपक्षान् पक्षिणः ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा कालविज्जनोऽह्ने पारावतान्रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णानालभते तथा यूयमप्येतानालभध्वम् ॥ २५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः स्वस्वसमयानुकूलक्रीडकानां पक्षिणां स्वभावं विदित्वा स्वस्वभावं कुर्युस्ते बहुविदः स्युः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे काल का जानने वाला (अह्ने) दिवस के लिये (पारावतान्) कोमल शब्द करने वाले कबूतरों (रात्र्यै) रात्रि के लिये (सीचापूः) सीचापूनामक पक्षियों (अहोरात्रयोः) दिन रात्रि के (सन्धिभ्यः) सन्धियों अर्थात् प्रातः सायंकाल के लिये (जतूः) जतूनामक पक्षियों (मासेभ्यः) महीनों के लिये (दात्यौहान्) काले कौओं और (संवत्सराय) वर्ष के लिये (महतः) बड़े२ (सुपर्णान्) सुन्दर२ पंखों वाले पक्षियों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी इनको प्राप्त होओ ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य अपने २ समय के अनुकूल क्रीडा करने वाले पक्षियों के स्वभाव को जान कर अपने स्वभाव को वैसा करें व बहुत जानने वाले हों ॥ २५ ॥

भूम्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूम्यादयो देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

भूम्या आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥ २६ ॥

भूम्यै । आखून् । आ । लभते । अन्तरिक्षाय । पाङ्क्तान् । दिवे । कशान् । दिग्भ्य इति दिक्ऽभ्यः । नकुलान् । बभ्रुकान् । अवान्तरदिशाभ्य इत्यवान्तरऽदिशाभ्यः ॥ २६ ॥

पदार्थः—(भूम्यै) (आखून्) मूषकान् (आ) (लभते) (अन्तरिक्षाय) (पाङ्क्तान्) पङ्क्तिरूपेण गन्तॄन् पक्षिविशेषान् (दिवे) प्रकाशाय (कशान्) पक्षिविशेषान् (दिग्भ्यः) पूर्वादिभ्यः (नकुलान्) (बभ्रुकान्) नकुलजातिविशेषान् (अवान्तरदिशाभ्यः) उपदिशाभ्यः ॥ २६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा भूमिजन्तुगुणविज्जनो भूम्या आखूनन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलानवान्तरदिशाभ्यो बभ्रुकानालभते तथा यूयमप्यालभध्वम् ॥ २६ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या भूम्यादिजन्तूपकारादिगुणान् विदित्वोपकुर्युस्ते बहुविज्ञाना जायेरन् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे भूमि के जन्तुओं के गुण जानने वाला पुरुष (भूम्यै) भूमि के लिये (आखून) मूषों (अन्तरिक्षाय) आकाश के लिये (पाङ्क्तान्) पङ्क्तिरूप के चलने वाले विशेष पक्षियों (दिवे) प्रकाश के लिये (कशान्) कशनाम के पक्षियों (दिग्भ्यः) पूर्व आदि दिशाओं के लिये (नकुलान्) नेउलों और (अवान्तर दिशाभ्यः) अवान्तर अर्थात् कोण दिशाओं के लिये (बभ्रुकान्) भूरे २ विशेष नेउलों को (आ,लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य भूमि आदि के समान मूषे आदि के गुणों को जान कर उपकार करें वे बहुत विज्ञान वाले हों ॥ २६ ॥

वसुभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वस्वादयो देवताः ।
निचृद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

वसु॑भ्य॒ ऋश्या॒नाल॑भते रु॒द्रेभ्यो॒ रुरू॑नादि॒त्येभ्यो॒ न्यङ्कू॑न् विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॑ पृष॒तान्त्सा॒ध्येभ्यः॑ कुलु॒ङ्गान् ॥ २७ ॥

वसुभ्य इति वसुऽभ्यः । ऋश्यान् । आ । लभते । रुद्रेभ्यः । रुरून् । आदित्येभ्यः । न्यङ्कून् । विश्वेभ्यः । देवेभ्यः । पृषतान् । साध्येभ्यः । कुलुङ्गान् ॥ २७ ॥

पदार्थः—(वसुभ्यः) अग्न्यादिभ्यः (ऋश्यान्) मृगजातिविशेषान् पशून् (आ)(लभते) (रुद्रेभ्यः) प्राणादिभ्यः (रुरून्) मृगविशेषान् (आदित्येभ्यः) मासेभ्यः (न्यङ्कून्) पशुविशेषान् (विश्वेभ्यः)(देवेभ्यः) दिव्येभ्यः पदार्थेभ्यो विद्वद्भ्यो वा (पृषतान्) मृगविशेषान् (साध्येभ्यः) साधितुं योग्येभ्यः (कुलुङ्गान्) पशुविशेषान् ॥२७॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा पशुगुणविज्जनो वसुभ्य ऋश्यान् रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गानालभते तथैतान्यूयमप्यालभध्वम् ॥ २७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या मृगादीनां वेगगुणान् विदित्वोपकुर्युस्तेऽत्यन्तं सुखं लभेरन् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे पशुओं के गुणों का जानने वाला जन (वसुभ्यः) अग्नि आदि वसुओं के लिये (ऋश्यान्) ऋश्य जाति के हरिणों (रुद्रेभ्यः) प्राण आदि रुद्रों के लिये (रुरून्) रोजगामी जन्तुओं (आदित्येभ्यः) बारह महीनों के लिये (न्यङ्कून्) न्यङ्कुनामक पशुओं (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के लिये (पृषतान्) पृषत् जाति के मृगविशेषों और (साध्येभ्यः) सिद्ध करने के जो योग्य हैं उन के लिये (कुलुङ्गान्) कुलुङ्ग नाम के पशुविशेषों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इन को तुम भी प्राप्त होओ ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० —जो मनुष्य हरिण आदि के वेगरूप गुणों को जानकर उपकार करें वे अत्यन्त सुख को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

ईशानायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईशानादयो देवताः ।

बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ईशानाय त्वा परस्वत आ लभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयाँस्त्वष्ट्र उष्ट्रान् ॥ २८ ॥

ईशानाय । त्वा । परस्वतः । आ । लभते । मित्राय । गौरान् । वरुणाय । महिषान् । बृहस्पतये । गवयान् । त्वष्ट्रे । उष्ट्रान् ॥ २८ ॥

पदार्थः-(ईशानाय) समर्थाय जनाय (त्वा) त्वाम् (परस्वतः) मृगविशेषान् (आ, लभते) (मित्राय) (गौरान्) (वरुणाय) (महिषान्) (बृहस्पतये) (गवयान्) (त्वष्ट्रे) (उष्ट्रान्) ॥ २८ ॥

अन्वयः-हे राजन् ! यो मनुष्य ईशानाय त्वा परस्वतो मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयान् त्वष्ट्र उष्ट्रानालभते स धनधान्ययुक्तो जायते ॥ २८ ॥

भावार्थः-ये पशुभ्यो यथावदुपकारान् गृह्णीयुस्ते समर्थाः स्युः ॥ २८ ॥

पदार्थ:—हे राजा जो मनुष्य (ईशानाय) समर्थ जन के लिये (त्वा) आप और (परस्वतः) परस्वत् नामी मृगविशेषों को (मित्राय) मित्र के लिये (गौरान्) गोरे मृगों को (वरुणाय) अति श्रेष्ठ के लिये (महिषान्) भैंसों को (बृहस्पतये) बृहस्पति अर्थात् महात्माओं के रक्षक के लिये

(गवयान्) नीलगाहों को और (त्वष्ट्रे) त्वष्टा अर्थात् पदार्थ विद्या से पदार्थों को सूक्ष्म करने वाले के लिये (उष्ट्रान्) ऊंटों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वह धनधान्य युक्त होता है ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो पशुओं से यथावत् उपकार लेवें वे समर्थ होवें ॥२८॥

प्रजापतयइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आ लभते वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥ २९ ॥

प्रजापतयऽइति प्रजाऽपतये । पुरुषान् । हस्तिनः । आ । लभते । वाचे । प्लुषीन् । चक्षुषे । मशकान् । श्रोत्राय । भृङ्गाः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(प्रजापतये) प्रजास्वामिने (पुरुषान्) (हस्तिनः) कुञ्जरान् (आ, लभते)(वाचे) (प्लुषीन्) जन्तुविशेषान् (चक्षुषे) (मशकान्) (श्रोत्राय) (भृङ्गाः) ॥२९॥

अन्वयः—यो मनुष्यः प्रजापतये पुरुषान्हस्तिनो वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गा आलभते स बलिष्ठो दृढेन्द्रियो जायते ॥ २९ ॥

भावार्थः—ये प्रजारक्षणाय चतुरङ्गिणीं सेनां जितेन्द्रियतां च समाचरन्ति ते श्रीमन्तो भवन्ति ॥ २९ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (प्रजापतये) प्रजा पालने हारे राजा के लिये (पुरुषान्) पुरुषों (हस्तिनः) और हाथियों (वाचे) वाणी के लिये (प्लुषीन्) प्लुषि नाम के जीवों (चक्षुषे) नेत्र के लिये (मशकान्) मशाओं

और (श्रोत्राय) कान के लिये (भृङ्गाः) भौंरों को (आ, लभते) प्राप्त होता है वह बली और पुष्ट इन्द्रियों वाला होता है ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो प्रजा की रक्षा के लिये चतुरङ्गिणी अर्थात् चारों दिशाओं को रोकने वाली सेना और जितेन्द्रियता का अच्छे प्रकार आचरण करते हैं वे धनवान और कान्तिमान होते हैं ॥ २९ ॥

प्रजापतयइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥३०॥

प्रजापतय इति प्रजाऽपतये । च । वायवे । च । गोमृग इति गोऽमृगः । वरुणाय । आरण्यः । मेषः । यमाय । कृष्णः । मनुष्यराजायेति मनुष्यऽराजाय । मर्कटः ॥ शार्दूलाय । रोहित् । ऋषभाय । गवयी । क्षिप्रश्येनायेति क्षिप्रऽश्येनाय । वर्त्तिका । नीलङ्गोः । कृमिः । समुद्राय । शिशुमार इति शिशुऽमारः । हिमवत इति हिमऽवते हस्ती ॥३०॥

पदार्थः—(प्रजापतये) प्रजापालकाय (च) तत्सम्बन्धिभ्यः (वायवे) (च) तत्सम्बन्धिभ्यः (गोमृगः) यो गां

मार्ष्टि शुन्धति सः (वरुणाय) (आरण्यः) वने भवः (मेषः) अविजातिविशेषः (यमाय) न्यायाधीशाय (कृष्णः) कृष्णगुणविशिष्टः (मनुष्यराजाय) नरेशाय (मर्कटः) वानरः (शार्दूलाय) महासिंहाय (रोहित्) रक्तगुणविशिष्टो मृगः (ऋषभाय) श्रेष्ठाय सभ्याय (गवयी) गवयस्य स्त्री (क्षिप्रश्येनाय) क्षिप्रगामिने श्येनायेव वर्त्तमानाय (वर्त्तिका) (नीलङ्गोः) यो नीलं गच्छति तस्य (कृमिः) क्षुद्रजन्तुविशेषः (समुद्राय) (शिशुमारः) बलहन्ता (हिमवते) बहूनि हिमानि विद्यन्ते यस्य तस्मै (हस्ती) ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः युष्माभिः प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती च सम्प्रयोक्तव्यः ॥ ३० ॥

भावार्थः—ये मनुष्या मनुष्यसम्बन्धियुक्तमान्प्राणिनो रक्षन्ति ते सार्ङ्गोपाङ्ग बला जायन्ते ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को (प्रजापतये) प्रजा पालने वाले (च) और उस के सम्बन्धियों तथा (वायवे) वायु (च) और वायु के सम्बन्धी पदार्थों के लिये (गोमृगः) जो पृथिवी को शुद्ध करता वह (वरुणाय) अतिउत्तम के लिये (आरण्यः) वन का (मेषः) मेढा (यमाय) न्यायाधीश के लिये (कृष्णः) काला हरिण (मनुष्यराजाय) मनुष्यों के राजा के लिये (मर्कटः) वानर (शार्दूलाय) बड़े सिंह अर्थात् केशरी के लिये (रोहित्) लालमृग (ऋषभाय) श्रेष्ठ सभ्य पुरुष के लिये (गवयी) नीलगाइनी (क्षिप्रश्येनाय) शीघ्र चलने हारे बाज पखेरू के समान जो वर्त्तमान उस के लिये (वर्त्तिका) वतक (नीलङ्गोः) जो नील को प्राप्त होता उस छोटे की

डे के हेतु (कृमिः) छोटा कीड़ा (समुद्राय) समुद्र के लिये (शिशुमारः) बालकों को मारने वाला शिशुमार और (हिमवते) जिस के अनेकों हिमखण्ड विद्यमान हैं उस पर्वत के लिये (हस्ती) हाथी अच्छे प्रकार युक्त करना चाहिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनुष्यसम्बन्धी उत्तम प्राणियों की रक्षा करते हैं वे साङ्गोपाङ्ग बलवान् होते हैं ॥ ३० ॥

मयुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्राजापत्यादयो देवताः। स्वराट्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि० ॥

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः॥३१॥

मयुः। प्राजापत्यऽइति प्राजाऽपत्यः। उलः। हलिक्ष्णः। वृषदꣳशऽइति वृषऽदꣳशः। ते। धात्रे। दिशाम्। कङ्कः। धुङ्क्षा। आग्नेयी। कलविङ्कः। लोहिताहिरिति लोहितऽअहिः। पुष्करसादऽइति पुष्करऽसादः। ते। त्वाष्ट्राः। वाचे। क्रुञ्चः॥ ३१ ॥

पदार्थः—(मयुः) किन्नरः (प्राजापत्यः) प्रजापतिदेवताकः (उलः) क्षुद्रकृमिः (हलिक्ष्णः) मृगेन्द्रविशेषः (वृषदंशः) मार्जारः (ते) (धात्रे) धारकाय (दिशाम्) (कङ्कः) लोहपृष्ठः (धुङ्क्षा) पक्षिविशेषः (आग्नेयी) (कलविङ्कः) चटकः (लोहिताहिः) लो-

(लोहिताहिः) लोहितश्चासावहिश्च (पुष्करसादः) यः पुष्करे सीदति (ते) (त्वाष्ट्राः) त्वष्टृदेवताकाः (वाचे) (क्रुञ्चः) ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! युष्माभिः प्राजापत्यो मयुर्कुलो हलिक्ष्णो वृषदंशश्च ते धात्रे कङ्को दिशां धुङ्क्षा आग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चश्च वेदितव्याः ॥ ३१ ॥

भावार्थः-ये शृगालसर्पादीन् वशं नयन्ति ते धुरन्धरास्सन्ति ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम को (प्राजापत्यः) प्रजापति देवता वाला (मयुः) किंनर निन्दित मनुष्य और जो (कुलः) छोटा कीड़ा (हलिक्ष्णः) विशेष सिंह और (वृषदंशः) बिलार हैं (ते) वे (धात्रे) धारण करने वाले के लिये (कङ्कः) उजली चील्ह (दिशाम्) दिशाओं के हेतु (धुङ्क्षा) धुङ्क्षा नाम की पक्षिणी (आग्नेयी) अग्नि देवता वाली जो (कलविङ्कः) चिरौटा (लोहिताहिः) लाल सांप और (पुष्करसादः) तालाव में रहने वाला है (ते) वे सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा देवता वाले तथा (वाचे) वाणी के लिये (क्रुञ्चः) सारस जानना चाहिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो सियार और सांप आदि को वश में लाते हैं वे मनुष्य धुरन्धर होते हैं ॥ ३१ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः ।
भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य

गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥ ३२ ॥

सोमाय । कुलुङ्गः । आरण्यः । अजः । नकुलः । शका । ते । पौष्णाः । क्रोष्टा । मायोः । इन्द्रस्य । गौरमृग इति गौरऽमृगः । पिद्वः । न्यङ्कुः । कक्कटः । ते । अनुमत्या इत्यनुऽमत्यै । प्रतिश्रुत्काया इति प्रतिऽश्रुत्कायै । चक्रवाक इति चक्रऽवाकः ॥ ३२ ॥

पदार्थः— (सोमाय) (कुलुङ्गः) पशुविशेषः (आरण्यः) अरण्ये भवः (अजः) छागजातिविशेषः (नकुलः) (शका) शकः शक्तिमान् । अत्र सुपांसुलुगित्याकारादेशः (ते) (पौष्णाः) पुष्टिकरसम्बन्धिनः (क्रोष्टा) शृगालः (मायोः) शृगालविशेषस्य (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्तस्य (गौरमृगः) (पिद्वः) मृगविशेषः (न्यङ्कुः) मृगविशेषः (कक्कटः) अयमपि मृगविशेषः (ते) (अनुमत्यै)(प्रतिश्राविकायै (चक्रवाकः) पक्षिविशेषः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यदि युष्माभिः सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका च ते पौष्णा मायोः क्रोष्टेन्द्रस्य गौरमृगो ये पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटश्च तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकश्च सम्प्रयुज्यते तर्हि बहुकृत्यं कर्त्तुं शक्येत ॥३२॥

भावार्थः—य आरण्येभ्यः पश्वादिभ्योऽप्युपकारं कर्त्तुं जानीयुस्ते सिद्धकार्या जायन्ते ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! यदि तुम ने (सोमाय) सोम के लिये जो (कुलुङ्गः) कुलुङ्ग नामक पशु वा (आरण्य) बनैला (अजः) बुकरा (नकुलः) न्याला

और (शका) सामर्थ्य वाला विशेष पशु हैं (ते) वे (पौष्णाः) पुष्टि करने वाले के सम्बन्धी वा (मायोः) विशेष सियार के हेतु (क्रोष्टा) सामान्य सियार वा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के अर्थ (गौरमृगः) गोरा हरिण वा जो (पिद्वः) विशेष मृग (न्यङ्कुः) किसी और जाति का हरिण और (कक्कटः) कक्कट नाम का मृग है (ते)वे (अनुमत्यै)अनुमति के लिये तथा (प्रतिश्रुत्कायै) सुने पीछे सुनाने वाली के लिये (चक्रवाकः) चकई चकवा पक्षी अच्छे प्रकार युक्त किये जावें तो बहुत काम करने को समर्थ हो सकें ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो अकेले पशुओं से भी उपकार करना जानें वे सिद्ध कार्यों वाले होते हैं ॥ ३२ ॥

सौरीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मित्रादयो देवताः ।
भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ।
फिर उसी वि० ॥

सौरी ब॒लाका॑ शा॒र्गः सृ॑ज॒यः श॑याण्ड॑क॒स्ते मै॑त्राः सर॑स्वत्यै॒ शारिः पुरुषवा॒क् श्वा॒विद्भौ॒मी शा॑र्दू॒लो वृकः॒ पृदा॑कु॒स्ते म॒न्यवे॒ सर॑स्वते॒ शुकः॒ पु॒रु॒ष॒वा॒क् ३३ ॥

सौरी । ब॒लाका॑ । शा॒र्गः । सृ॒ज॒यः । श॒या॒ण्डक॒ इति॑ शय॒ऽआ॒ण्डकः । ते । मै॒त्राः । सर॑स्वत्यै । शारिः । पुरु॒षवा॒गिति॑ पुरु॒षऽवा॒क् । श्वा॒वित् । श्वा॒विदिति॑ श्व॒ऽवित् । भौ॒मी । शा॒र्दू॒लः । वृकः॑ । पृदा॑कुः । ते । म॒न्यवे॑ । सर॑स्वते । शुकः॑ । पु॒रु॒ष॒वा॒गिति॑ पुरु॒षऽवा॒क् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(सौरी) सूर्यो देवता यस्याः सा(बलाका) विशेषपक्षिणी (शार्गः) शार्ङ्गश्चातकः । अत्र छान्दसो

वर्णलोपङ्तिङ् लोपः (सृजयः) पक्षिविशेषः (शयाण्डकः) पक्षिविशेषः (ते) (मैत्रा) प्राणदेवताकाः (सरस्वत्यै) नद्यै (शारिः) शुकी (पुरुषवाक्) शुकः (श्वावित्) सेधा (भौमी) पृथिवीदेवताका (शार्दूलः) व्याघ्रविशेषः (वृकः) चित्रकः (पृदाकुः) सर्पः (ते) (मन्यवे) क्रोधाय (सरस्वते) समुद्राय (शुकः) शुद्धिकृत् पक्षिविशेषः (पुरुषवाक्) पुरुषस्य वागिव वाग्यस्य सः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्या सौरी सा बलाका ये शार्गः सृजयः शयाण्डकश्च ते मैत्राः शारिः पुरुषवाक् सरस्वत्यै श्वावित् भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुश्च ते मन्यवे शुकः पुरुषवाक् च सरस्वते विज्ञेयाः ॥ ३३ ॥

भावार्थः—ये बलाकादयः पशुपक्षिणस्तेषां मध्यात् केचित्पालनीयाः केचित्ताडनीयाः सन्तीति वेद्यम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुमको (सौरी) जिसका सूर्य देवता है वह (बलाका) बगुलिया तथा जो (शार्गः) पपीहा पक्षी (सृजयः) सृजय नाम वाला और (शयाण्डकः) शयाण्डक पक्षी हैं (ते) वे (मैत्राः) प्राण देवता वाले (शारिः) शुग्गी (पुरुषवाक्) पुरुष के समान बोलने हारा शुग्गा (सरस्वत्यै) नदी के लिये (श्वावित्) सेही (भौमी) भूमि देवता वाली जो (शार्दूलः) केशरी सिंह (वृकः) भेड़िया और (पृदाकुः) सांप हैं (ते) वे (मन्यवे) क्रोध के लिये तथा (शुकः) शुद्धि करने हारा शुआ पक्षि और (पुरुषवाक्) जिस की मनुष्य की बोली के समान बोली है वह पक्षी (सरस्वते) समुद्र के लिये जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो बलाका आदि पशु पक्षी हैं उनमेंसे कोई पालने और कोई ताड़ना देने योग्य हैं यह जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

सुपर्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।
स्वराट् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३४ ॥

सुपर्ण इति सुऽपर्णः । पार्जन्यः । आतिः । वाहसः । दर्विदेति दर्विऽदा । ते । वायवे । बृहस्पतये । वाचः । पतये । पैङ्गराज इति पैङ्गऽराजः । अलजः । आन्तरिक्षः । प्लवः । मद्गुः । मत्स्यः । ते । नदीपतय इति नदीऽपतये । द्यावापृथिवीयः । कूर्मः ॥ ३४ ॥

पदार्थः- (सुपर्णः) शोभनपतनः (पार्जन्यः) पर्जन्यवद्गुणः (आतिः) पक्षिविशेषः (वाहसः) अजगरः सर्पविशेषः (दर्विदा) काष्ठच्छित् पक्षिविशेषः (ते) (वायवे) (बृहस्पतये) बृहतां पालकाय (वाचः) (पतये) पालकाय (पैङ्गराजः) पक्षिविशेषः (अलजः) पक्षिविशेषः (अन्तरिक्षः) अन्तरिक्षदेवताकः (प्लवः) वर्त्तिका (मद्गुः) जलकाकः (मत्स्यः) (ते) (नदीपतये) समुद्राय (द्यावापृथिवीयः) प्रकाशभूमिदेवताकः (कूर्मः) कच्छपः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्यः सुपर्णः स पार्जन्यो य आतिर्वाहसो दर्विदा च ते वायवे पैङ्गराजो बृहस्पतये

वाचस्पतयेऽलजआन्तरिक्षो ये प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये यः कूर्मः स द्यावापृथिवीयश्च विज्ञेयः ॥ ३४ ॥

भावार्थः- ये मेघादितुल्यगुणाः पशुपक्षिविशेषाः सन्ति ते कार्योपयोगाय नियोजनीयाः ॥ ३४ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो तुम को जो (सुपर्णः) सुन्दर गिरने वा जानेवाला पक्षी वह (पार्जन्यः) मेघ के समान गुण वाला जो (आतिः) आति नाम वाला पक्षी (वाहसः) अजगर सांप (दर्विदा) और काठ को छिन्न भिन्न करने वाला पक्षी है (ते) वे सब (वायवे) पवन के लिये (पैङ्गराजः) पैङ्गराज नाम का पक्षी (बृहस्पतये) बड़े पदार्थों और (वाचः,पतये) वाणी की पालना करने हारे के लिये (अलजः) अलज पक्षी (अन्तरिक्षः) अन्तरिक्ष देवता वाला जो (प्लवः) जल में तरने वाला बतक पक्षी (मद्गुः) जल का कउआ और (मत्स्यः) मछली हैं (ते) वे सब (नदीपतये) समुद्र के लिये और जो (कूर्मः) कछुआ है वह (द्यावापृथिवीयः) प्रकाश भूमि देवता वाला जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

भावार्थ— जो मेघ आदि के समान गुण वाले विशेषर पशु पक्षी हैं वे काम के उपयोग के लिये युक्त करने चाहियें ॥ ३४ ॥

पुरुषमृग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । चन्द्रादयो देवताः । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥३५॥

पुरुषमृगऽइति पुरुषऽमृगः। चन्द्रमसः। गोधा। कालका। दार्वाघाटः दार्वाघात इति दारुऽआघातः। ते। वनस्पतीनाम्। कृकवाकुरिति कृकऽवाकुः। सावित्रः। हंसः। वातस्य। नाक्रः। मकरः। कुलीपयः। ते। अकूपारस्य। ह्रियै। शल्यकः॥ ३५॥

पदार्थः—(पुरुषमृगः) यः पुरुषान्मार्ष्टि स पशुविशेषः (चन्द्रमसः) चन्द्रस्य (गोधा) (कालका) (दार्वाघाटः) शतपत्रकः (ते) (वनस्पतीनाम्) (कृकवाकुः) कुक्कुटः (सावित्रः) सवितृदेवताकः (हंसः) (वातस्य) (नाक्रः) नक्राज्जातः (मकरः) (कुलीपयः) जलजन्तुविशेषः (ते) (अकूपारस्य) समुद्रस्य (ह्रियै) लज्जायै (शल्यकः) कण्टकपक्षयुक्तः श्वावित्॥ ३५॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्यः पुरुषमृगः स चन्द्रमसो ये गोधा कालका दार्वाघाटश्च ते वनस्पतीनां यः कृकवाकुः स सावित्रो यो हंसः स वातस्य ये नाक्रो मकरः कुलीपयश्च तेऽकूपारस्य यः शल्यकः स ह्रियै च विज्ञेयाः॥ ३५॥

भावार्थः—ये चन्द्रादिगुणाः पशुपक्षिविशेषास्ते मनुष्यैर्विज्ञेयाः॥ ३५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (पुरुषमृगः) पुरुषों को शुद्ध करने हारा पशुविशेष वह (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के अर्थ जो (गोधा) गोह (कालका) कालका पक्षी और (दार्वाघाटः) कठफोरवा हैं (ते) वे (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों के सम्बन्धी जो (कृकवाकुः) मुर्गा वह

(सावित्रः) सविता देवता वाला जो (हंसः) हंस है वह (वातस्य) पवन के अर्थ जो (नाक्रः) नाके का बच्चा (मकरः) मगर मच्छ (कुलीपयः) और विशेष जल जन्तु हैं (ते) वे (अकूपारस्य) समुद्र के अर्थ और जो (शल्यकः) सेही है वह (ह्रियै) लज्जा के लिये जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः— जो चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त विशेष पशु पक्षी हैं वे मनुष्यों को जानने चाहियें ॥ ३५ ॥

एणीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्विन्यादयो देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

एण्यह्नो म॒ण्डूको॒ मूषि॑का ति॒त्ति॑रि॒स्ते स॒र्पाणां॑ लोपा॒श आ॑श्वि॒नः कृष्णो॒ रा-त्र्या॑ ऋक्षो॑ ज॒तूः सु॑षि॒लीका॒ त इ॑तर-ज॒नानां॒ जह॑का वैष्ण॒वी ॥ ३६ ॥

ए॒णी । अह्नः॑ । म॒ण्डूकः॑ । मूषि॑का । ति॒त्ति॑रिः॑ । ते । स॒र्पाणा॑म् । लो॒पा॒शः । आ॒श्वि॒नः । कृ॒ष्णः । रात्र्यै॑ । ऋक्षः॑ । ज॒तूः । सु॒षि॒लीकेति॑ सु॒षि॒ऽलीका॑ । ते । इ॒त॒र॒ज॒ना॒नामिती॑तरऽज॒नाना॑म् । जह॑का । वै॒ष्ण॒वी ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(एणी) मृगी (अह्नः) दिनस्य (मण्डूकः) (मूषिका) (तित्तिरिः) (ते) (सर्पाणाम्) (लोपाशः) वनचरपशुविशेषः (आश्विनः) अश्विदेवताकः (कृष्णः) कृष्णवर्णः (रात्र्यै) (ऋक्षः)भल्लूकः (जतूः) (सुषिलीका) एतौ च पक्षिविशेषौ (ते)(इतरजनानाम्) इतरे च ते जना इतरजनास्तेषाम् (जहका) गात्रसंकोचिनी (वैष्णवी) विष्णुदेवताका ॥ ३६ ॥

अन्वयः--हे मनुष्या युष्माभिर्यैणी साऽह्नो ये मण्डूको मूषिका तित्तिरिश्च ते सर्पाणां यो लोपाशः स आश्विनो यः कृष्णः स रात्र्यै य ऋक्षो जतूः सुषिलीका च त इतरजनानां या जहका सा वैष्णवी च विज्ञेयाः ॥ ३६ ॥

भावार्थः--ये दिनादिगुणाः पशुपक्षिविशेषास्ते तत्तद्गुणतो विज्ञेयाः ॥ ३६ ॥

पदार्थः--हे मनुष्यो ! तुम को जो (एणी) हरिणी है वह (अह्नः) दिन के अर्थ जो (मण्डूकः) मेंडुका (मूषिका) मूषटी और (तित्तिरिः) तीतरि पक्षिणी हैं (ते) वे (सर्पाणाम्) सर्पों के अर्थ जो (लोपाशः) कोई वनचर विशेष पशु वह (आश्विनः) अश्वि देवता वाला जो (कृष्णः) काले रंग का हरिण आदि है वह (रात्र्यै) रात्रि के लिये जो (ऋक्षः) रीछ (जतूः) जतू नाम वाला और (सुषिलीका) सुषिलीका पक्षी है (ते) वे (इतरजनानाम्) और मनुष्यों के अर्थ और (जहका) अङ्गों का संकोच करने हारी पक्षिणी (वैष्णवी) विष्णु देवता वाली जानना चाहिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः--जो दिन आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उस २ गुण से जानने चाहिये ॥ ३६ ॥

अन्यवाप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अर्द्धमासादयो देवताः । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अन्यवापोऽर्द्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णास्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासान् कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥ ३७ ॥

अन्यवाप इत्यन्यऽवापः । अर्द्धमासानामित्यर्द्धऽमासानाम् । ऋश्यः । मयूरः । सुपर्णा इति सुऽपर्णाः । ते । गन्धर्वाणाम् । अपाम् । उद्रः । मासान् । कश्यपः । रोहित् । कुण्डृणाची । गोलत्तिका । ते । अप्सरसाम् । मृत्यवे । असितः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(अन्यवापः) कोकिलाख्यः पक्षिविशेषः (अर्द्धमासानाम्) (ऋश्यः) मृगविशेषः (मयूरः) (सुपर्णः) पक्षिविशेषः (ते) (गन्धर्वाणाम्) गायकानाम् (अपाम्) जलानाम् (उद्रः) जलचरः कर्कटाख्यः (मासान्) मासानाम् । अत्र विभक्तिव्यत्ययः ।(कश्यपः) कच्छपः (रोहित्) मृगविशेषः (कुण्डृणाची) वनचरी (गोलत्तिका) वनचरविशेषा (ते) (अप्सरसाम्) किरणादीनाम् (मृत्यवे) (असितः) कृष्णगुणः पशुविशेषः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्योऽन्यवापः सोऽर्द्धमासानां य ऋश्यो मयूरः सुपर्णश्च ते गन्धर्वाणामपां च य उद्रः स मासान् ये कश्यपो रोहित् कुण्डृणाची गोलत्तिका च तेऽप्सरसां योऽसितः स मृत्यवे च विज्ञेयाः॥३७॥

भावार्थः—ये कालादिगुणाः पशुपक्षिणस्त उपकारिणः सन्तीति वेद्यम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम को जो (अन्यवापः) कोकिला पक्षी है वह (अर्द्धमासानाम्) पखवाड़ों के अर्थ जो (ऋश्यः) ऋश्य जाति का मृग (मयूरः) मयूर और (सुपर्णः) अच्छे पंखों वाला विशेष पक्षी है (ते) वे

(गन्धर्वाणाम्) गाने वालों के और (अपाम्) जलों के अर्थ जो (उद्रः) जल चर गिंगचा है वह (मासान्) महीनों के अर्थ जो (कश्यपः) कछुआ (रोहित्) विशेष मृग (कुण्डृणाची) कुण्डृणाची नाम की वन में रहने वाली और (गोलत्तिका) गोलत्तिका नाम वाली विशेष पशु जाति है (ते) वे (अप्सरसाम्) किरण आदि पदार्थों के अर्थ और जो (असितः) काले गुण वाला विशेष पशु है वह (मृत्यवे) मृत्यु के लिये जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

भावार्थ :— जो काल आदि गुण वाले पशु पक्षी हैं वे उपकार वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

वर्षाहूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वर्षादयो देवताः ।
स्वराड्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोतऽउलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥ ३८ ॥

वर्षाहूरिति वर्षऽआहूः । ऋतूनाम् । आखुः । कशः । मान्थालः । ते । पितृणाम् । बलाय । अजगरः । वसूनाम् । कपिञ्जलः । कपोतः । उलूकः । शशः । ते । निर्ऋत्या इति निःऽऋत्यै । वरुणाय । आरण्यः । मेषः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(वर्षाहूः) या वर्षा आह्वयति सा भेकी (ऋतूनाम्) वसन्तादीनाम् (आखुः) मूषकः (कशः) शासनीयः (मान्थालः) जन्तुविशेषः (ते) (पितृणाम्) पालकानाम् (बलाय) (अजगरः) महान्सर्पः (वसूनाम्) (कपिञ्जलः) (कपोतः) (उलूकः) (शशः) पशुविशेषः (ते) (निर्ऋत्यै) (वरुणाय) (आरण्यः)

अरण्ये भवः (मेषः) पशुविशेषः ॥ ३८ ॥

अन्वयः— हे मनुष्या युष्माभिर्या वर्षाहूः सा ऋतूनामाखुः कशो मान्थालश्च ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशश्च ते निर्ऋत्यै य आरण्यो मेषः स वरुणाय च विज्ञेयाः ॥ ३८ ॥

भावार्थः- ये ऋत्वादिगुणाः पशुपक्षिणस्ते तद्गुणा विज्ञेयाः ॥ ३८ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! तुम को जो (वर्षाहूः) वर्षा को बुलाती है वह मेंडुकी (ऋतूनाम्) वसन्तआदि ऋतुओं के अर्थ (आखुः) मूषा (कशः) सिखाने योग्य कश नाम वाला पशु और (मान्थालः) मान्थाल नामी विशेष जन्तु हैं (ते) वे (पितृणाम्) पालना करने वालों के अर्थ (बलाय) बल के लिये (अजगरः) बड़ा सांप (वसूनाम्) अग्नि आदि वसुओं के अर्थ (कपिञ्जलः) कपिञ्जल नामक (कपोतः) जो कबूतर (उलूकः) उल्लू और (शशः) खरहा हैं (ते) वे (निर्ऋत्यै) निर्ऋति के लिये (वरुणाय) और वरुण के लिये (आरण्यः) बनेला (मेषः) मेढ़ा जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः— जो ऋतु आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उन गुणों से युक्त जानने चाहियें ॥ ३८ ॥

श्वित्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। आदित्यादयो देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते मत्याऽअरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥ ३९ ॥

श्वित्रः । आदित्यानाम् । उष्ट्रः । घृणीवान् । घृणीवानिति घृणीऽवान् । वार्ध्रीनसः । ते । मत्यै । अरण्याय । सृमरः । रुरुः । रौद्रः । क्वयिः । कुटरुः । दात्यौहः । ते । वाजिनाम् । कामाय । पिकः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(श्वित्रः) विचित्रः पशुविशेषः (आदित्यानाम्) कालावयवानाम् (उष्ट्रः) (घृणीवान्) तेजस्विपशुविशेषः (वार्ध्रीनसः) कण्ठेस्तनवान्महाजः (ते) (मत्यै) प्रज्ञायै (अरण्याय) (सृमरः) गवयः (रुरुः) मृगविशेषः (रौद्रः) रुद्रदेवताकः (क्वयिः) पक्षिविशेषः (कुटरुः) कुक्कुटः (दात्यौहः) काकः (ते) (वाजिनाम्) (कामाय) (पिकः) कोकिलः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्यः श्वित्रः स आदित्यानाम् । य उष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसश्च ते मत्यै । यः सृमरः सोऽरण्याय । यो रुरुः स रौद्रः । ये क्वयिः कुटरुर्दात्यौहश्च ते वाजिनाम् । यः पिकः स कामाय च विज्ञेयाः ॥ ३९ ॥

भावार्थः—य आदित्यादिगुणाः पशुपक्षिणस्ते तत्तत्स्वभावाः सन्तीति वेद्यम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (श्वित्रः) चित्र विचित्र रंग वाला पशुविशेष वह (आदित्यानाम्) समय के अवयवों के अर्थ, जो (उष्ट्रः) ऊंट (घृणीवान्) तेजस्वि विशेष पशु और (वार्ध्रीनसः) कण्ठ में जिस के स्तन ऐसा बड़ा बुकरा है (ते) वे सब (मत्यै) बुद्धि के लिये, जो (सृमरः) नील गाय वह (अरण्याय) वन के लिये, जो (रुरुः) मृगविशेष

है वह (रौद्रः) रुद्र देवता वाला, जो (क्रयिः) क्रयिनाम का पक्षी (कुट-रुः) मुर्गा और (दात्यौहः) कौआ हैं (ते) वे (वाजिनाम्) घोड़ों के अर्थ और जो (पिकः) कोकिला है वह (कामाय) काम के लिये अच्छे प्रकार जानने चाहियें ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जो सूर्य आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उसर स्वभाव वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

खड्ग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवादयो देवताः । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥ ४० ॥

खड्गः । वैश्वदेव इति वैश्वऽदेवः । श्वा । कृष्णः । कर्णः । गर्दभः । तरक्षुः । ते । रक्षसाम् । इन्द्राय । सूकरः । सिंहः । मारुतः । कृकलासः । पिप्पका । शकुनिः । ते । शरव्यायै । विश्वेषाम् । देवानाम् । पृषतः ॥ ४० ॥

पदार्थः—(खड्गः) तुण्डश्रृङ्गः पशुविशेषः (वैश्वदेवः) विश्वेषां देवानामयम् (श्वा) कुक्कुरः (कृष्णः) कृष्णगुणविशेषः (कर्णः) दीर्घकर्णः (गर्दभः) पशुविशेषः (तरक्षुः) व्याघ्रः (ते) (रक्षसाम्) (इन्द्राय)

(इन्द्राय) विदारकाय (सूकरः) यः सुष्ठु शुद्धिं करोति स बलिष्ठो वराहः (सिंहः) हिंसको व्याघ्रः (मारुतः) मरुद्देवताकः (कृकलासः) सरटः (पिप्पका) पक्षिणी (शकुनिः) (ते) (शरव्यायै) शरवीषु कुशलायै (विश्वेषाम्) अखिलानाम् (देवानाम्) विदुषाम् (पृषतः) मृगविशेषाः ॥ ४० ॥

अन्वयः--हे मनुष्या युष्माभिर्यः खड्गः स वैश्वदेवो ये कृष्णः श्वा कर्णो गर्दभस्तरक्षुश्च ते रक्षसां यः सूकरः स इन्द्राय यः सिंहः स मारुतो ये कृकलासः पिप्पका शकुनिश्च ते शरव्यायै ये पृषतस्ते विश्वेषां देवानां विज्ञेयाः ॥४०॥

भावार्थः--ये सर्वे पशुपक्षिणः सर्वगुणाः सन्ति तान् विज्ञाय व्यवहारसिद्धये सर्वे मनुष्या नियोजयन्तामिति॥४०॥

अस्मिन्नध्याये पशुपक्षिमृगसरीसृपजलजन्तुकृम्यादीनां गुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोद्धव्यम् ॥

पदार्थः-- हे मनुष्यो तुम को जो (खड्गः) ऊंचे और पैने सींगों वाला गैंडा है वह (वैश्वदेवः) सब विद्वानों का, जो (कृष्णः) काले रंग वाला (श्वा) कुत्ता (कर्णः) बड़े कानों वाला (गर्दभः) गदहा और (तरक्षुः) व्याघ्र हैं (ते) वे सब (रक्षसाम्) राक्षस दुष्टहिंसक हवषियों के अर्थ, जो (सूकरः) सुअर है वह (इन्द्राय) शत्रुओं को विदारने वाले राजा के लिये, जो (सिंहः) सिंह है वह (मारुतः) मरुत देवता वाला, जो (कृकलासः) गिरगिटान (पिप्पका) पिप्पका नाम की पक्षिणी और (शकुनिः) पक्षिमात्र है (ते) वे) सब (शरव्यायै) जो शरवियों में कुशल उत्तम है उसके लिये और जो (पृषतः) पृषज्जाति के हरिण हैं वे (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के अर्थ जानना चाहिये ॥ ४० ॥

भावार्थः--जो सब पशु पक्षी सब गुण भरे हैं उनको जानकर व्यवहार सिद्धि के लिये सब मनुष्य निरन्तर युक्त करें ॥ ४० ॥

इस अध्याय में पशु पक्षी रिंगने वाले सांप आदि, वनके मृग जल में रहने वाले प्राणी और कीड़े मकोड़े आदि के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणांपरमविदुषांश्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये चतुर्विंशोऽध्यायः पूर्त्तिमगमत् ॥

ओ३म्

अथ पञ्चविंशोऽध्याय आरभ्यते

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥

शादमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सरस्वत्यादयो देवताः । पूर्वस्य भुरिक् छक्वरी । आदित्यानित्युत्तरस्य निचृदतिशक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ केन किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

अब पच्चीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में किस को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बस्वैस्ते गान्दंष्ट्राभ्या सरस्वत्या अग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन तालु वाजथं हनुभ्यामप आस्येन वृषणमाण्डाभ्यामादित्याँ श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याथं शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः ॥ १ ॥

शादम्। दुद्भिरिति दुत्ऽभिः। अवकाम्। दन्तमूलैरिति दन्तऽमूलैः। मृदम्। बस्वैः। ते। गाम्। दंष्ट्राभ्याम्। सरस्वत्यै। अग्रजिह्वमित्यग्रऽजिह्वम्। जिह्वायाः। उत्सादमित्युत्ऽसादम्। अवक्रन्देनेत्यवऽक्रन्देन। तालु। वाजम्। हनुभ्यामिति हनुऽभ्याम्। अपः। आस्येन। वृषणम्। आण्डाभ्याम्। आदित्यान्। श्मश्रुभिरिति श्मश्रुऽभिः। पन्थानम्। भ्रूभ्याम्। द्यावापृथिवी इति द्यावापृथिवी। वर्त्तोभ्यामिति वर्त्तःऽभ्याम्। विद्युतमिति विऽद्युतम्। कनीनकाभ्याम्। शुक्लाय। स्वाहा। कृष्णाय। स्वाहा। पार्याणि। पक्ष्माणि। अवार्याः। इक्षवः। अवार्याणि। पक्ष्माणि। पार्याः। इक्षवः॥ १॥

पदार्थः—(शादम्) शीयते छिनत्ति यस्मिँस्तं शादम् (दद्भिः) दन्तैः (अवकाम्) रक्षिकाम् (दन्तमूलैः) दन्तानां मूलैः (मृदम्) मृत्तिकाम् (बस्वैः) दन्तपृष्ठैः (ते) तव (गाम्) वाणीम् (दंष्ट्राभ्याम्) मुखदन्ताभ्याम् (सरस्वत्यै) प्रशस्तविज्ञानवत्यै वाचे (अग्रजिह्वम्) जिह्वाया अग्रम् (जिह्वायाः)(उत्सादम्) ऊर्ध्वं सीदन्ति यस्मिँस्तम् (अवक्रन्देन) विकलतारहितेन (तालु) आस्यावयवम् (वाजम्)अन्नम् (हनुभ्याम्)मुखैकदेशाभ्याम्(अपः)जलानि(आस्येन)आस्यन्दन्ति क्लेदीभवन्ति यस्मिँस्तेन(वृषणम्) वर्षयितारम् (आण्डाभ्याम्)

(आदित्यान्) मुख्यान् विदुषः (श्मश्रुभिः) मुखाऽभितः केशैः (पन्थानम्) मार्गम् (भ्रूभ्याम्) नेत्रगोलकोर्ध्वाऽवयवाभ्याम् (द्यावापृथिवी) सूर्यभूमी (वर्त्तोभ्याम्) गमनागमनाभ्याम् (विद्युतम्) तडितम् (कनीनकाभ्याम्) तेजोमयाभ्यां कृष्णगोलकतारकाभ्याम् (शुक्राय) वीर्याय (स्वाहा) ब्रह्मचर्यक्रियया (कृष्णाय) विद्याकर्षणाय (स्वाहा) सुशीलतायुक्तया क्रियया (पार्याणि) परितुं पूरयितुं योग्यानि (पक्ष्माणि) परिग्रहीतुं योग्यानि कर्माणि नेत्रोर्ध्वलोमानि वा (अवार्याः) अवारे भवाः (इक्षवः) इक्षुदण्डाः (अवार्याणि) अवारेषु भवानि (पक्ष्माणि) परिग्रहणानि लोमानि वा (पार्याः) परितुं पालयितुं योग्याः (इक्षवः) गुडादिनिमित्ताः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो विद्यार्थिन्! ते दद्भिः शादं दन्तमूलैर्वर्ण्यभावकां मृदं दंष्ट्राभ्यां सरस्वत्यै गां जिह्वाया अग्रजिह्वबन्धकन्देनोत्सादं तालुहनुभ्यां राजमास्येनाऽप आण्डाभ्यां वृषणं श्मश्रुभिरादित्यान् भ्रूभ्यां पन्थानं वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी कनीनकाभ्यां विद्युतमहं योजयामि। त्वया शुक्राय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवश्च संग्राह्याः॥१॥

भावार्थः—अध्यापका अध्येतृगणामङ्गानामुपदेशेन पुष्टानि कृत्वाऽऽहारविहारादिकं संबोध्य सर्वा विद्याः प्रापय्याखण्डितं ब्रह्मचर्यं सर्वाङ्गैश्वर्यं प्रापय्य सुखिनः सम्पादयेयुः ॥ १ ॥

पदार्थः— हे अच्छे ज्ञान की चाहना करते हुए विद्यार्थी जन ! (ते) तेरे (दाद्भिः) दांतों से (शादम्) जिस में छेदन करता है उस व्यवहार को (दन्तमूलैः) दांतों की जड़ों और (वर्स्वैः) दान्तों की पछाड़ियों से (अवकाम्) रक्षा करने वाली (मृदम्) मट्टी को (दंष्ट्राभ्याम्) डाढ़ों से (सरस्वत्यै) विशेष ज्ञान वाली वाणी के लिये (गाम्) वाणी को (जिह्वायाः) जीभ से (अग्रजिह्वम्) जीभ के अगले भाग को (अवक्रन्देन) विकलतारहित व्यवहार से (उत्सादम्) जिस में ऊपर को स्थिर होती है उस (तालु) तालु को (हनुभ्याम्) ठोढ़ी के पास के भागों से (वाजम्) अन्न को (आस्येन) जिस से भोजन आदि पदार्थ को गीला करते उस मुख से (अपः) जलों को (आण्डाभ्याम्) वीर्य को अच्छे प्रकार धारण करने हारे आंडों से (वृषणम्) वीर्य वर्षाने वाले अङ्ग को (श्मश्रुभिः) मुख के चारों ओर जो केश अर्थात् डाढ़ी उस से (आदित्यान्) मुख्य विद्वानों को (भ्रूभ्याम्) नेत्र गोलकों के ऊपर जो भौं हैं उन से (पन्थानम्) मार्ग को (वर्त्तोभ्याम्) जाने आने से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि तथा (कनीनकाभ्याम्) तेज से भरे हुए काले नेत्रों के तारों के सदृश गोलों से (विद्युतम्) बिजुली को मैं समझाता हूं। तुझ को (शुक्राय) वीर्य के लिये (स्वाहा) ब्रह्मचर्य क्रिया से और (कृष्णाय) विद्या खींचने के लिये (स्वाहा) सुन्दरशीलयुक्त क्रिया से (पार्याणि) पूरे करने योग्य (पक्ष्माणि) जो सब ओर से लेने चाहियें उन कार्यों वा पलकों के ऊपर के बिन्ने वा (अवार्याः) नदी आदि के प्रथम ओर होने वाले (इक्षवः) गन्नों के पौंडे वा (अवार्याणि) नदी आदि के पहिले किनारे पर होने वाले पदार्थ (पक्ष्माणि) सब ओर से जिन का ग्रहण करें वा लोम और (पार्याः) पालना करने योग्य (इक्षवः) ऊख जो गुड़ आदि के निमित्त हैं वे पदार्थ अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहियें ॥ १ ॥

भावार्थः—अध्यापक लोग अपने शिष्यों के अङ्गों को उपदेश से अच्छे प्रकार पुष्ट कर तथा आहार वा विहार का अच्छा बोध, समस्त विद्याओं की प्राप्ति, अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन और ऐश्वर्य की प्राप्ति करा के सुखयुक्त करें ॥ १ ॥

वातमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः ।
भुरिगतिशक्वर्यौ छन्दसी । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

वातं प्राणेनापानेन नासिके॑ऽउपया॒मम॑ध॑रे॒णौष्ठे॑न॒ सदुत्त॑रेण॒ प्रका॒शेना॒न्त॑रमनूका॒शेन॒ बाह्यं॑ निवे॒ष्यं मू॒र्ध्ना स्त॑नयि॒त्नुं निर्बा॒धेना॒शनिं॑ म॒स्तिष्के॑ण वि॒द्युतं॑ क॒नीन॑काभ्यां॒ कर्णा॑भ्या॒ꣳ श्रोत्र॒ꣳ श्रोत्रा॑भ्यां॒ कर्णौ॑ तेद॒नीम॑धरक॒ण्ठेना॒पः शु॒ष्कक॒ण्ठेन॑ चि॒त्तं मन्या॑भि॒रदि॑तिं शी॒र्ष्णा निर्ऋ॑तिं॒ निर्ज॑र्जल्पेन शी॒र्ष्णा सं॑क्रो॒शैः प्रा॒णान् रे॒ष्माण॑ꣳ स्तु॒पेन॑ ॥ २ ॥

वात॑म् । प्रा॒णेन॑ । अ॒पा॒नेनेत्य॑पऽआ॒नेन॑ । नासि॑के इति॒ नासि॑के । उ॒प॒या॒ममित्यु॑पऽया॒मम् । अध॑रेण । ओष्ठे॑न । सत् । उत्त॑रे॒णेत्युत्ऽत॑रेण । प्र॒का॒शेनेति॑ प्रऽका॒शेन॑ । अन्त॑रम् । अ॒नू॒का॒शेन॑ । अ॒नु॒का॒शेनेत्य॑नुऽका॒शेन॑ । बाह्य॑म् । नि॒वे॒ष्यमिति॑ निऽवे॒ष्य॑म् । मू॒र्ध्ना । स्त॒न॒यि॒त्नुम् । नि॒र्बा॒धेनेति॑ निःऽबा॒धेन॑ । अ॒शनि॑म् । म॒स्तिष्के॑ण । वि॒द्युत॒मिति॑ वि॒ऽद्युत॑म् । क॒नीन॑काभ्याम् । कर्णा॑भ्याम् । श्रोत्र॑म् । श्रोत्रा॑भ्याम् । कर्णौ॑ । ते॒द॒नीम् । अ॒ध॒र॒क॒ण्ठेनेत्य॑धरऽक॒ण्ठेन॑ । अ॒पः ।

शुष्ककण्ठेनेति शुष्कऽकण्ठेन । चित्तम् । मन्याभिः । अदितिम् । शीर्ष्णा । निर्ऋतिमिति निःऽऋतिम् । निर्जर्जल्पेनेति निःऽजर्जल्पेन । शीर्ष्णा । सङ्क्रोशैरिति सम्ऽक्रोशैः । प्राणान् । रेष्माणम् । स्तुपेन ॥ २ ॥

पदार्थः-(वातम्) वायुम् (प्राणेन) (अपानेन) (नासिके) नासिकाछिद्रे (उपयामम्) उपगतं नियमम् (अधरेण) मुखादधस्थेन (ओष्ठेन) (सत्)(उत्तरेण) उपरिस्थेन (प्रकाशेन) (अन्तरम्) मध्यस्थमाभ्यन्तरम् (अनूकाशेन) अनुप्रकाशेन (बाह्यम्) बहिर्भवम् (निवेष्यम्) निश्चयेन व्याप्तुं योग्यम् (मूर्ध्ना) मस्तकेन (स्तनयित्नुम्) शब्दनिमित्तां विद्युतम् (निर्बाधेन) नितरां बाधेन हेतुना (अशनिम्) व्यापिकां घोषयुक्ताम् (मस्तिष्केण) शिरस्स्थमज्जातन्तुसमूहेन (विद्युतम्) विशेषेण द्योतमानाम् (कनीनकाभ्याम्) प्रदीप्ताभ्यां कमनीयाभ्याम् (कर्णाभ्याम्) श्रवणसाधकाभ्याम् (श्रोत्रम्) शृणोति येन तत् (श्रोत्राभ्याम्) शृणोति याभ्यां गोलकाभ्यां ताभ्यां (कर्णौ) करोति श्रवणं याभ्यां तौ (तेदनीम्) श्रवणक्रियाम् (अधरकण्ठेन) अधस्थेन कण्ठेन (अपः) जलानि (शुष्ककण्ठेन) (चित्तम्) विज्ञानसाधिकामन्तःकरणवृत्तिम् (मन्याभिः) विज्ञानक्रियाभिः (अदितिम्) अविनाशिकां प्रज्ञाम् (शीर्ष्णा) शिरसा (निर्ऋतिम्) भूमिम् (निर्जर्जल्पेन) नितरां जर्जरीभूतेन (शीर्ष्णा) शिरसा (सङ्क्रोशैः) सम्यगाह्वानैः (प्राणान्) (रेष्माणम्) हिंसकम् (स्तुपेन) हिंसनेन ॥ २ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो मदुपदेशग्रहणेन त्वं प्राणेनापानेन वातं नासिके उपयाममधरेणौष्ठेनोत्तरेण प्रकाशेन सदन्तरमनूकाशेन बाह्यं मूर्ध्ना निवेष्यं निर्बाधेन सह स्तनयित्नुमशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्यां कर्णौ श्रोत्राभ्यां च श्रोत्रं तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान प्राप्नुहि । स्तुपेन हिंसकेन रोगाणामविद्यादिरोगं हिन्धि ॥ २ ॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः प्रथमवयसि सर्वैः शरीरादिभिः साधनैः शरीरात्मबले संसाधनीये अविद्याकुशिक्षाकुशीलादयो रोगाः सर्वथा हन्तव्याः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे जानने की इच्छा करने वाले ! मेरे उपदेश के ग्रहण से तू (प्राणेन) प्राण और (अपनेन) अपान से (वातम्) पवन और (नासिके) नासिकाछिद्रों और (उपयामम्) प्राप्त हुए नियम को (अधरेण) नीचे के (ओष्ठेन) ओष्ठ से (उत्तरेण) ऊपरके (प्रकाशेन) प्रकाशरूप ओठ से (सदन्तरम्) बीच में विद्यमान मुख आदि स्थान को (अनूकाशेन) पीछे से प्रकाश होने वाले अङ्ग से (बाह्यम्) वाहर हुए अङ्ग को (मूर्ध्ना) शिर से (निवेष्यम्) जो निश्चय से व्याप्त होने योग्य उस को (निर्बाधेन) निरन्तर ताड़ना के हेतु के साथ (स्तनयित्नुम्) शब्द करने हारी (अशनिम्) विजुली को (मस्तिष्केण) शिर की चरबी और नशों से (विद्युतम्) अति प्रकाशमान विजुली को (कनीनकाभ्याम्) दिपते हुए (कर्णाभ्याम्) शब्द को सुनवाने हारे पवनों से (कर्णौ) जिन से श्रवण करता उन कानों को और (श्रोत्राभ्याम्) जिन गोल २ छेदों से सुनता उन से (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय और (तेदनीम्) श्रवण करने की क्रिया को (अधरकण्ठेन) कण्ठ के नीचे के भाग से (अपः) जलों (शुष्ककण्ठेन) सूखते हुए कण्ठ से (चित्तम्)

विशेष ज्ञान सिद्ध कराने हारे अन्तःकरण के वर्त्ताव को (मन्याभिः) विशेष ज्ञान की क्रियाओं से (अदितिम्) न विनाश को प्राप्त होने वाली उत्तम बुद्धि को (शीर्ष्णा) शिर से (निर्ऋतिम्) भूमि को (निर्जर्जल्पेन) निरन्तर जीर्ण सब प्रकार परिपक्व हुए (शीर्ष्णा) शिर और (संक्रोशैः) अच्छे प्रकार बुलावाओं से (प्राणान्) प्राणों को प्राप्त हो तथा (स्तुपेन) हिंसा से (रेष्माणम्) हिंसक अविद्या आदि रोग का नाश कर ॥ १ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि पहिली अवस्था में समस्त शरीर आदि साधनों से शारीरिक और आत्मिक बल को अच्छे प्रकार सिद्ध करें और अविद्या दुष्ट शिक्षावट निन्दित स्वभाव आदि रोगों को सब प्रकार हनन करें ॥ २ ॥

मशकानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः ॥
भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

मशकान्केशैरिन्द्रꣳ स्वपंसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनिसादेनं कूर्माञ्छफैराक्रमंणꣳ स्थूराभ्यांमृक्षलांभिः कपिञ्जलान् जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारंण्यमग्निमंतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावꣳसांभ्याꣳ रुद्रꣳ रोराभ्याम् ॥ ३ ॥

मशकान् । केशैः । इन्द्रम् । स्वपसेति सुऽअपंसा । वहेन । बृहस्पतिम् । शकुनिसादेनेति शकुनिऽसादेन । कूर्मान् । शफैः । आक्रमणमित्याऽक्रमंणम् । स्थूराभ्याम् । ऋक्षलांभिः । कपिञ्जलान् । जवम् ।

जङ्घाभ्याम् । अध्वानम् । बाहुभ्यामिति बाहुऽभ्याम् । जाम्बीलेन । अरण्यम् । अग्निम् । अतिरुग्भ्यामित्यतिरुग्ऽभ्याम् । पूषणम् । दोर्भ्यामिति दोःऽभ्याम् । अश्विनौ । अꣳसाभ्याम् । रुद्रम् । रोराभ्याम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(मशकान्) (केशैः) शिरस्थैर्वालैः (इन्द्रम्) ऐश्वर्यम् (स्वपसा) सुष्ठु कर्मणा (वहेन) प्रापणेन (बृहस्पतिम्) बृहत्या वाच स्वामिनं विद्वांसम् (शकुनिसादेन) येन शकुनीन्सादयति तेन (कूर्मान्) कच्छपान् (शफैः) खुरैः (आक्रमणम्) (स्थूराभ्याम्) स्थूलाभ्याम्) (ऋक्षलाभिः) गत्यादानैः (कपिञ्जलान्) पक्षिविशेषान् (जवम्) वेगम् (जङ्घाभ्याम्) (अध्वानम्) मार्गम् (बाहुभ्याम्) भुजाभ्याम् (जाम्बीलेन) फलविशेषेण (अरण्यम्) वनम् (अग्निम्) पावकम् (अतिरुग्भ्याम्) रुचीच्छाभ्याम् (पूषणम्) पुष्टिम् (दोर्भ्याम्) भुजदण्डाभ्याम्) (अश्विनौ) प्रजाराजानौ (अंसाभ्याम्) भुजमूलाभ्याम् (रुद्रम्) रोदयितारम् (रोराभ्याम्) कथनश्रवणाभ्याम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं केशैरिन्द्रं शकुनिसादेन कूर्मान मशकान् स्वपसा वहेन बृहस्पतिं स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलाञ् जङ्घाभ्यामध्वानं जवमंसाभ्यां बाहुभ्यां शफैराक्रमणं जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनौ प्राप्नुत रोराभ्यां रुद्रं च ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्बहुभिरुपायैरुत्तमा गुणाः प्रापणीया विघ्नाश्च निवारणीयाः ॥ ३ ॥

पदार्थः--हे मनुष्यो (केशैः) शिर के वालों से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (शकुनिसादेन) जिस से पक्षियों को स्थिर कराता उस व्यवहार से (कूर्मान्) कछुओं और (मशकान्) मशों को (स्वपसा) उत्तम काम और (वहेन) प्राप्ति कराने से (बृहस्पतिम्) बड़ी वाणी के स्वामी विद्वान् को (स्थूराभ्याम्) स्थूल (ऋक्षलाभिः) चाल और ग्रहण करने आदि क्रियाओं से (कपिञ्जलान् कपिञ्जल नामक पक्षियों को (जङ्घाभ्याम्) जङ्घाओं से (अध्वानम्) मार्ग और (जवम्) वेग को (अंसाभ्याम्) भुजाओं के मूल अर्थात् बगलों (बाहुभ्याम्) भुजाओं और (शफैः) खुरों से (आक्रमणम्) चाल को (जाम्बीलेन) जमुनि आदि के फल से (अरण्यम्) वन और (अग्निम्) अग्नि को (अतिरुग्भ्याम्) अतीव रुचि प्रीति और इच्छा से (पूषणम्) पुष्टि को तथा (दोर्भ्याम्) भुजदण्डों से (अश्विनौ) प्रजा और राजा को प्राप्त होओ और (रोराभ्याम्) कहने सुनने से (रुद्रम्) रुलाने हारे को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थः--मनुष्यों को चाहिये कि बहुत उपायों से उत्तम गुणों की प्राप्ति और विघ्नों की निवृत्ति करें ॥ ३ ॥

अग्नेरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।स्वराड् धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुनः कस्य का क्रिया कर्त्तव्येत्याह ॥

फिर किस को क्या क्रिया करने योग्य है इस वि० ॥

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपंक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुतांꣳ सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥ ४ ॥

अग्नेः। पक्षतिः। वायोः। निपक्षतिरिति निऽपक्षतिः। इन्द्रस्य। तृतीया। सोमस्य। चतुर्थी। अदित्यै। पंचमी। इन्द्राण्यै। षष्ठी। मरुताम्। सप्तमी। बृहस्पतेः। अष्टमी। अर्यम्णः। नवमी। धातुः। दशमी। इन्द्रस्य। एकादशी। वरुणस्य। द्वादशी। यमस्य। त्रयोदशीति त्रयःऽदशी ॥ ४ ॥

पदार्थः—(अग्नेः) पावकस्य (पक्षतिः) पक्षस्य परिग्रहस्य मूलम् (वायोः) पवनस्य (निपक्षतिः) निश्चितस्य मूलम् (इन्द्रस्य) सूर्यस्य (तृतीया) त्रयाणां पूरणा क्रिया (सोमस्य) चन्द्रस्य (चतुर्थी) चतुर्णां पूरणा (अदित्यै) अन्तरिक्षस्य (पञ्चमी) पञ्चानां पूरणा (इन्द्राण्यै) इन्द्रस्य विद्युद्रूपस्य स्त्रीवद्वर्त्तमानायै दीप्त्यै (षष्ठी) षण्णां पूरणा (मरुतां) वायूनाम् (सप्तमी) सप्तानां पूरणा (बृहस्पतेः) बृहतां पालकस्य महत्तत्वस्य (अष्टमी) अष्टानां पूरणा (अर्यम्णः) अर्याणां स्वामिनां सत्कर्त्तुः (नवमी) नवानां पूरणा (धातुः) धारकस्य (दशमी) दशानां पूरणा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवतः (एकादशी) एकादशानां पूरणा (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (द्वादशी) द्वादशानां पूरणा (यमस्य) न्यायाधीशस्य (त्रयोदशी) त्रयोदशानां पूरणा ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिरग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुतां सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी च क्रियाः कर्त्तव्याः ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या युष्माभिः क्रियाविज्ञानसाधनैरग्न्यादीनां गुणान् विदित्वा सर्वाणि कार्य्याणि साधनीयानि ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (अग्नेः) अग्नि की (पक्षतिः) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल (वायोः) पवन की (निपक्षतिः) निश्चित विषय का मूल (इन्द्रस्य) सूर्य की (तृतीया) तीन को पूरा करने वाली क्रिया (सोमस्य) चन्द्रमा की (चतुर्थी) चार को पूरा करने वाली (अदित्यै) अन्तरिक्ष की (पञ्चमी) पांचमी (इन्द्राण्यै) स्त्री के समान वर्त्तमान ज्वालाकुलीरूप अग्नि की लपट उस की (षष्ठी) छठी (मरुताम्) पवनों की (सप्तमी) सातवीं (बृहस्पतेः) बड़ों की पालना करने वाले महत्तत्त्व की (अष्टमी) आठमी (अर्य्यम्णः) स्वामी जनों का सत्कार करने वाले की (नवमी) नवीं (धातुः) धारण करने हारे की (दशमी) दशमी (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् की (एकादशी) ग्यारहवीं (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (द्वादशी) बारहवीं और (यमस्य) न्यायाधीश राजा की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया करनी चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को क्रिया के विशेष ज्ञान और साधनों से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जान कर सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ ४ ॥

इन्द्राग्न्योरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः ।
स्वराड्विकृतिश्छन्दः । मध्यम स्वरः ॥
पुनः किमर्था का भवतीत्याह ॥
फिर किस के अर्थ कौन होती है इस वि० ॥

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाᳬसप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥ ५ ॥

इन्द्राग्न्योः । पक्षतिः । सरस्वत्यै । निपक्षतिरिति निऽपक्षतिः । मित्रस्य । तृतीया । अपाम् । चतुर्थी । निर्ऋत्याऽइति निःऽऋत्यै । पञ्चमी । अग्नीषोमयोः । षष्ठी । सर्पाणाम् । सप्तमी । विष्णोः । अष्टमी । पूष्णः । नवमी । त्वष्टुः । दशमी । इन्द्रस्य । एकादशी । वरुणस्य । द्वादशी । यम्यै । त्रयोदशीति त्रयःऽदशी । द्यावापृथिव्योः । दक्षिणम् । पार्श्वम् । विश्वेषाम् । देवानाम् । उत्तरम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(इन्द्राग्न्योः) वायुपावकयोः (पक्षतिः) (सरस्वत्यै) (निपक्षतिः) (मित्रस्य) सख्युः (तृतीया) (अपाम्) जलानाम् (चतुर्थी) (निर्ऋत्यै) भूम्यै (पञ्चमी) (अग्नीषोमयोः) शीतोष्णकारकयोर्जलाग्न्योः (षष्ठी) (सर्पाणाम्) (सप्तमी) (विष्णोः) व्यापकस्य) (अष्टमी) (पूष्णः) पोषकस्य (नवमी) (त्वष्टुः) प्रदीप्तस्य (दशमी) (इन्द्रस्य) जीवस्य (एकादशी) (वरुणस्य) श्रेष्ठजनस्य (द्वादशी) (यम्यै) यमस्य न्यायकर्त्तुः स्त्रियै (त्रयोदशी) (द्यावापृथिव्योः) प्रकाशभूम्योः (दक्षिणम्) (पार्श्वम्) (विश्वेषाम्) सर्वेषाम् (देवानाम्) विदुषाम् (उत्तरम्) ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयमिन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयाऽपां चतुर्थी निर्ऋत्यै पंचम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणां सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी च क्रिया द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरं च विजानीत ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरेतेषां विज्ञानाय विविधाः क्रियाः कृत्वा कार्याणि साधनीयानि ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (इन्द्राग्न्योः) पवन और अग्नि की (पक्षतिः) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल पहिली (सरस्वत्यै) वाणी के लिये (निपक्षतिः) निश्चित पक्ष का मूल दूसरी (मित्रस्य) मित्र की (तृतीया) तीसरी (अपाम्) जलों की (चतुर्थी) चौथी (निर्ऋत्यै) भूमि की (पञ्चमी) पांचवी (अग्निषोमयोः) गर्मी सरदी को उत्पन्न करने वाले अग्नि तथा जल की (षष्ठी) छठी (सर्पाणाम्) सर्पों की (सप्तमी) सातवीं (विष्णोः) व्यापक ईश्वर की (अष्टमी) आठमी (पूष्णः) पुष्टि करने वाले की (नवमी) नवमी (त्वष्टुः) उत्तम दिपते हुए की (दशमी) दशमी (इन्द्रस्य) जीव की (एकादशी) ग्यारहवीं (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन की (द्वादशी) बारहवीं और (यम्यै) न्याय करने वाले की स्त्री के लिये (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया है उन सब को तथा (द्यावापृथिव्योः) प्रकाश और भूमि के (दक्षिणम्) दक्षिण (पार्श्वम्) ओर को और (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (उत्तरम्) उत्तर ओर को जानो ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि इन उक्त पदार्थों के विशेष ज्ञान के लिये अनेक क्रियाओं को करके अपने २ कामों को सिद्ध करें ॥ ५ ॥

मरुतामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतादयो देवताः ।
निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

मरुता स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ कुञ्चौ श्रोणिभ्या-

मिद्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्या-माक्रमणं स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

मरुताम् । स्कन्धाः । विश्वेषाम् । देवानाम् । प्रथमा । कीकसा । रुद्राणाम् । द्वितीया । आदित्यानाम् । तृतीया । वायोः । पुच्छम् । अग्नीषोमयोः । भासदौ । क्रुञ्चौ । श्रोणिभ्यामिति श्रोणिऽभ्याम् । इन्द्राबृहस्पती इतीन्द्राबृहस्पती । ऊरुभ्यामित्यूरुऽभ्याम् । मित्रावरुणौ । अल्गाभ्याम् । आक्रमणमित्याऽक्रमणम् । स्थूराभ्याम् । बलम् । कुष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

पदार्थः— (मरुताम्) मनुष्याणाम् (स्कन्धाः) भुजदण्डमूलानि (विश्वेषाम्) (देवानाम्) विदुषाम् (प्रथमा) आदिमा (कीकसा) भृशं शासनानि (रुद्राणाम्) (द्वितीया) ताडनक्रिया (आदित्यानाम्) अखण्डितन्यायाधीशानाम्) (तृतीया) न्यायक्रिया (वायोः) (पुच्छम्) पशोरवयवम् (अग्नीषोमयोः) (भासदौ) यौ भासं प्रकाशं दद्यातां तौ (क्रुञ्चौ) पक्षिविशेषौ (श्रोणिभ्याम्) कटिप्रदेशाभ्याम् (इन्द्रा बृहस्पती) वायुसूर्यौ (ऊरुभ्याम्) जानुन ऊर्ध्वाभ्यां पादावयवाभ्याम् (मित्रावरुणौ) प्राणोदानौ (अल्गाभ्याम्) अलं गन्तृभ्याम् । अत्र छान्दसो वर्णलोप इति टिलोपः । आक्रमणम् (स्थूराभ्याम्) स्थूलाभ्याम् । अत्र कपिलकादित्वाल्लत्वविकल्पः (बलम्) (कुष्ठाभ्याम्) निष्कर्षाभ्याम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्मरुतां स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयाऽऽदित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणं कुष्ठाभ्यां स्थूराभ्यां बलं च निष्पादनीयम्॥ ६॥

भावार्थः—मनुष्यैर्भुजबलंस्वाङ्गपुष्टिर्दुष्टताडनं न्यायप्रकाशादीनि च कर्माणि सदा कर्त्तव्यानि ॥ ६ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! तुम को (मरुताम्) मनुष्यों के (स्कन्धाः) कंधा (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों की (प्रथमा) पहिली क्रिया और (कीकसा) निरन्तर शिखावटें (रुद्राणाम्) रुलाने हारे विद्वानों की (द्वितीया) दूसरी ताडन रूप क्रिया (आदित्यानाम्) अखण्डित न्याय करने वाले विद्वानों की (तृतीया) तीसरी न्याय क्रिया (वायोः) पवनसम्बन्धी (पुच्छम्) पशु की पूंछ अर्थात् जिससे पशु अपने शरीर को पवन देता (अग्नीषोमयोः) अग्नि और जल सम्बन्धी (भासदौ) जो प्रकाश को देवें वे (क्रुञ्चौ) कोई विशेष पक्षी वा सारस (श्रोणिभ्याम्) चूतड़ों से (इन्द्राबृहस्पती) पवन और सूर्य (ऊरुभ्याम्) जांघों से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान (अल्गाभ्याम्) परिपूर्ण चलने वाले प्राणियों से (आक्रमणम्) चाल तथा (कुष्ठाभ्याम्) निचोड़ और (स्थूराभ्याम्) स्थूल पदार्थों से (बलम्) बल को सिद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थः— मनुष्यों को भुजाओं का बल अपने अंग की पुष्टि, दुष्टों को ताड़ना और न्याय का प्रकाश आदि काम सदा करने चाहियें ॥ ६ ॥

पूषणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूषादयो देवताः ।
निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुतऽआन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां

वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः॥ ७॥

पूषणम् । वनिष्ठुना । अन्धाहीनित्यन्धऽअहीन् । स्थूलगुदयेति स्थूलऽगुदया । सर्पान् । गुदाभिः । विह्रुत इति विऽह्रुतः । आन्त्रैः । अपः । वस्तिना । वृषणम् । आण्डाभ्याम् । वाजिनम् । शेपेन । प्रजामिति प्रऽजाम् । रेतसा । चाषान् । पित्तेन । प्रदरानिति प्रऽदरान् । पायुना । कूश्मान् । शकपिण्डैरिति शकऽपिण्डैः ॥ ७ ॥

पदार्थः— (पूषणम्) पुष्टिकरम् (वनिष्ठुना) याचनेन (अन्धाहीन्) अन्धान् सर्पान् (स्थूलगुदया) स्थूलया गुदया सह (सर्पान्) (गुदाभिः) (विह्रुतः) विशेषेण कुटिलान् (आन्त्रैः) उदरस्थैर्नाडीविशेषैः (अपः) जलानि (वस्तिना) नाभेरधोभागेन (वृषणम्)वीर्याधारम् (आण्डाभ्याम्) अण्डाकाराभ्यां वृषणावयवाभ्याम् (वाजिनम्) अश्वम् (शेपेन) लिंगेन (प्रजाम्) सन्ततिम् (रेतसा) वीर्येण (चाषान्) भक्षणानि (पित्तेन) (प्रदरान्) उदरावयवान् (प्रायुना) एतदिन्द्रियेण (कूश्मान्) शासनानि । अत्र कशधातोर्मक्प्रत्ययोऽन्येषामपीति दीर्घश्च (शकपिण्डैः) शक्तैः संघातैः ॥ ७ ॥

अन्वयः— हे मनुष्या यूयं वनिष्ठुना पूषणं स्थूलगुदया सह वर्त्तमानान्धाहीन् गुदाभिः सहितान् विह्रुतः सर्पानान्त्रैरपो वस्तिना

वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनं शेपेन रेतसा प्रजां पित्तेन चापान् प्रदरान् पायुना शकपिण्डैः कूश्मान् निगृह्णीत ॥ ७ ॥

भावार्थः—येन येन यद्यत्कार्यं सिध्येत्तेन तेनाङ्गेन पदार्थेन वा तत्तत्साधनीयम् ॥ ७ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो! तुम (वनिष्ठुना) मांगने से (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को (स्थूलगुदया) स्थूल गुदेन्द्रिय के साथ वर्त्तमान (अन्धाहीन्) अन्धे सांपों को (गुदाभिः) गुदेन्द्रियों के साथ वर्त्तमान (विह्रुतः) विशेष कुटिल (सर्पान्) सर्पों को (आन्त्रैः) आंतों से (अपः) जलों को (वस्तिना) नाभि के नीचे के भाग से (वृषणम्) अण्डकोष को (आण्डाभ्याम्) आंडों से (वाजिनम्) घोड़ों को (शेपेन) लिङ्ग और (रेतसा) वीर्य से (प्रजाम्) सन्तान को (पित्तेन) पित्त से (चापान्) भोजनों को (प्रदरान्) पेट के अंगों को (पायुना) गुदेन्द्रिय से और (शकपिण्डैः) शक्तियों से (कूश्मान्) शिखावटों को निरन्तर लेओ ॥ ७ ॥

भावार्थः— जिस २ से जो २ काम सिद्ध हो उस २ अङ्ग वा पदार्थ से वह २ काम सिद्ध करना चाहिये ॥ ७ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवता ।
निचृदभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुनः कस्य कस्य गुणाः पशुषु सन्तीत्याह ॥
फिर किस २ के गुण पशुओं में है इस वि० ॥

इन्द्र॑स्य क्रो॒डोऽदि॑त्यै पाज॒स्यं॑ दि॒शां ज॒त्रवोऽदि॑त्यै भ॒सज्जी॒मूता॑न् हृदयौप॒शेना॒न्तरि॑क्षं पुरि॒तता॒ नभ॑ उद॒र्ये॑ण चक्रवा॒कौ मत॑स्नाभ्यां दि॒वं वृ॒क्का-

गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्याᳫं समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥८॥

इन्द्रस्य । क्रोडः । अदित्यै । पाजस्यम् । दिशाम् । जत्रवः । अदित्यै । भसत् । जीमूतान् । हृदयौपशेन । अन्तरिक्षम् । पुरीतता । पुरितेति पुरिऽतता । नभः । उदर्येण । चक्रवाकाविति चक्रऽवाकौ । मतस्नाभ्याम् । दिवम् । वृक्काभ्याम् । गिरीन् । प्लाशिभिरिति प्लाशिऽभिः । उपलान् । प्लीह्ना । वल्मीकान् । क्लोमभिरिति क्लोमऽभिः । ग्लौभिः । गुल्मान् । हिराभिः । स्रवन्तीः । ह्रदान् । कुक्षिभ्यामिति कुक्षिऽभ्याम् । समुद्रम् । उदरेण । वैश्वानरम् । भस्मना ॥ ८ ॥

पदार्थः— (इन्द्रस्य) विद्युतः (क्रोडः) निमज्जनम् (अदित्यै) पृथिव्यै (पाजस्यम्) पाजस्वन्नेषु साधु (दिशाम्) (जत्रवः) सन्धयः (अदित्यै) दिवे प्रकाशाय। अदितिर्द्यौरिति प्रमाणात् (भसत्) दीपनम् (जीमूतान्) मेघान् । अत्र जेमूं ट् चोदात्त इत्यनेनायं सिद्धः। (हृदयौपशेन) यो हृदये आसमन्तादुपशेते स हृदयौपशो जीवस्तेन (अन्तरिक्षम्) अवकाशम् (पुरीतता) हृदयस्थया नाड्या (नभः) उदकम् (उदर्येण) उदरे भवेन (चक्रवाकौ) पक्षिविशेषाविव (मतस्नाभ्याम्) ग्रीवोभयभागाभ्याम् (दिवम्) प्रकाशम् (वृक्काभ्याम्) याभ्यां

वर्जन्ति ताभ्याम् (गिरीन्) शैलान् (प्लाशिभिः) प्रकर्षेणाशनक्रियाभिः (उपलान्) मेघान् । उपल इति मेघना० निघं० १। १० (प्लीह्ना) हृदयस्थावयवेन (वल्मीकान्) मार्गान् (क्लोमभिः) क्लेदनैः (ग्लौभिः) हर्षक्षयैः (गुल्मान्) दक्षिणपार्श्वोदरस्थितान् (हिराभिः) नाडीभिः (स्रवन्तीः) नदीः (ह्रदान्) जलाशयान् (कुक्षिभ्याम्) (समुद्रम्) (उदरेण) (वैश्वानरम्) सर्वेषां प्रकाशकम् (भस्मना) दग्धशेषेण निस्सारेण ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिः प्रयत्नेन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्ज विज्ञेयाः । जीमूतान् हृदयौपशेन पुरीतताऽन्तरिक्षमुदर्येण नभश्चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिश्च गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्यां समुद्रमुदरेण भस्मना च वैश्वानरं यूयं विजानीत ॥ ८ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या अनेकान् विद्याबाधान् प्राप्य युक्ताहारविहारैः सर्वाण्यङ्गानि संपोष्य रोगान्निवारयेयुस्तर्हि ते धर्मार्थकाममोक्षानाप्नुयुः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को उत्तम यत्न के साथ (इन्द्रस्य) बिजुली का (क्रोडः) दूबना (अदित्यै) पृथिवी के लिये (पाजस्यम्) अन्नों में जो उत्तम वह (दिशाम्) दिशाओं की (जत्रवः) सन्धि अर्थात् उन का एक दूसरे से मिलना (अदित्यै) अखण्डित प्रकाश के लिये (भसत्) लपट ये सब पदार्थ जानने चाहियें तथा (जीमूतान्) मेघों को (हृदयौपशेन) जो हृदय में सोता है उस जीव से (पुरीतता) हृदयस्थ नाडी से (अन्तरिक्षम्) हृदय के अवकाश को (उदर्येण) उदर में होते हुए व्यवहार से (नभः) जल और (चक्रवाकौ) चकई चकवा पक्षियों के समान जो पदार्थ उन को (मतस्नाभ्याम्)

गले के दोनों ओर के भागों से (द्विवम्) प्रकाश को (हृक्काभ्याम्) जिन क्रियाओं से अपगुणों का त्याग होता है उन से (गिरीन्) पर्वतों को (प्लाशिभिः) उत्तम भोजन आदि क्रियाओं से (उपलान्) दूसरे प्रकार के मेघों को (प्लीह्ना) हृदयस्थ प्लीहा अंग से (वल्मीकान्) मागा को (क्लोमभिः) गीलपन और (ग्लौभिः) हर्ष तथा ग्लानियों से (गुल्मान्) दाहिनी ओर उदर में स्थित जो पदार्थ उन को (हिराभिः) वहतियों से (स्रवन्तीः) नदियों को (ह्रदान्) छोटे बड़े जलाशयों को (कुक्षिभ्याम्) कोखों से (समुद्रम्) अच्छे प्रकार जहां जल जाता उस समुद्र को (उदरेण) पेट और (भस्मना) जले हुए पदार्थ का जो शेष भाग उस राख से (वैश्वानरम्) सब के प्रकाश करने हारे अग्नि को तुम लोग जानो ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अनेक विद्याबोधों को प्राप्त हो कर ठीक २ यथोचित आहार और विहारों से सब अंगों को अच्छे प्रकार पुष्ट कर रोगों की निवृत्ति करें तो वे धर्म अर्थ काम और मोक्ष को अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

विधृतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूषादयो देवताः ।
भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनः कस्मात् किं भवतीत्याह ॥
फिर किस से क्या होता है इस वि० ॥

विधृ॑तिं॒ नाभ्या॑ घृ॒तꣳ रसे॑ना॒पो यू॒ष्णा मरी॑ची॒र्विप्रु॒ड्भिर्नी॑हा॒रमू॒ष्मणा॑ शी॒नं वस॑या॒ प्रुष्वा॒ अश्रु॑भिर्ह्रा॒दुनी॑र्दू॒षीका॑भिर॒स्ना रक्षा॑ꣳसि चि॒त्राण्यङ्गै॒र्नक्ष॑त्राणि रू॒पेण॑ पृथि॒वीं त्व॒चा जु॑म्ब॒काय॒ स्वाहा॑ ॥९॥

विधृतिमिति॑ विऽधृतिम् । नाभ्या॑ । घृतम् । रसे॑न । अपः॑ । यू॒ष्णा । मरी॑चीः । विप्रुड्भिरि॒ति॑ विप्रुट्ऽभिः॑ । नी॒हारम् ।

ऊष्मणा । शीनम् । वसया । प्रुष्वाः । अश्रुभिरित्यश्रुऽभिः । ह्रादुनीः । दूषीकाभिः । अस्ना । रक्षांसि । चित्राणि । अङ्गैः । नक्षत्राणि । रूपेण । पृथिवीम् । त्वचा । जुम्बकाय । स्वाहा ॥ ९ ॥

पदार्थः—(विधृतिम्) विशेषेण धारणाम् (नाभ्या) शरीरस्य मध्यावयवेन (घृतम्) आज्यम् (रसेन) (अपः) जलानि (यूष्णा) क्वथितेन रसेन (मरीचीः) किरणान् (विप्रुड्भिः) विशेषेण पूर्णैः (नीहारम्) प्रभातसमये सोमवद्वर्त्तमानम् (ऊष्मणा) उष्णतया (शीनम्) संकुचितं घृतम् (वसया) निवासहेतुना जीवनेन (प्रुष्वाः) पुष्णान्ति सिंचन्ति याभिस्ताः (अश्रुभिः) रोदनैः (ह्रादुनीः) शब्दानामव्यक्तोच्चारणक्रियाः (दूषीकाभिः) विक्रियाभिः (अस्ना) रुधिरेण (रक्षांसि) पालयितव्यानि (चित्राणि) अद्भुतानि (अङ्गैः) अवयवैः (नक्षत्राणि) (रूपेण) (पृथिवीम्) भूमिम् (त्वचा) मांसरुधिरादीनां संवरकेणेन्द्रियेण (जुम्बकाय) अतिवेगवते (स्वाहा) सत्यां वाचम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं नाभ्या विधृतिं घृतं रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना चित्राणि रक्षांस्यङ्गैरूपेण नक्षत्राणि त्वचा पृथिवीं विदित्वा जुम्बकाय स्वाहा प्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्धारणादिभिः कर्मभिर्दुर्व्यसनानि रोगांश्च निवार्य सत्यभाषणादिधर्मलक्षणानि विचार्य प्रवर्त्तनीयम् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (नाभ्या) नाभि से (विधृतिः) विशेष करके धारणा को (घृतम्) घी को (रसेन) रस से (अपः) जलों को (यूष्णा) काथ किये रस से (मरीचीः) किरणों को (विप्रुड्भिः) विशेषतर पूरण पदार्थों से (नीहारम्) कुहर को (ऊष्मणा) गरमी से (शीनम्) जमे हुए घी को (वसया) निवासहेतु जीवन से (प्रुष्वाः) जिनसे सींचते हैं उन क्रियाओं को (अश्रुभिः) आंसुओं से (ह्रादुनीः) शब्दों की अप्रकट उच्चारण क्रियाओं को (दूषीकाभिः) विकाररूप क्रियाओं से (चित्राणि) चित्र विचित्र (रक्षांसि) पालना करने योग्य (अस्ना) रुधिरादि पदार्थों को (अङ्गैः) अङ्गों और (रूपेण) रूप से (नक्षत्राणि) तारागणों को और (त्वचा) मांस रुधिर आदि को ढांपने वाली खाल आदि से (पृथिवीम्) पृथिवी को जान कर (जुम्बकाय) अतिवेगवान् के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी का प्रयोग अर्थात् उच्चारण करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को धारणा आदि क्रियाओं से खोटे आचरण और रोगों की निवृत्ति और सत्यभाषण आदि धर्म के लक्षणों का विचार कर प्रवृत्त करना चाहिये॥९॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । हिरण्यगर्भो देवता ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ परमात्मा कीदृशोऽस्तीत्याह ॥

अब परमात्मा कैसा है इस वि० ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १० ॥

हिरण्यगर्भ इति हिरण्यऽगर्भः । सम् । अवर्त्तत । अग्रे । भूतस्य । जातः । पतिः । एकः । आसीत् ।

सः । दाधार । पृथिवीम् । द्याम् । उत । इमाम् । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ १० ॥

पदार्थः— (हिरण्यगर्भः) हिरण्यानि सूर्यादितेजांसि गर्भे यस्य स परमात्मा (सम्) (अवर्त्तत) वर्त्तमान आसीत् (अग्रे) भूम्यादिसृष्टेः प्राक् (भूतस्य) उत्पन्नस्य (जातः) प्रादुर्भूतस्य। अत्र षष्ठ्यर्थे प्रथमा (पतिः) पालकः (एकः) असहायः (आसीत्) अस्ति (सः) (दाधार) धरति (पृथिवीम्) आकर्षणेन भूमिम् (द्याम्) प्रकाशम् (उत) अपि (इमाम्) सृष्टिम् (कस्मै) सुखकारकाय (देवाय) द्योतमानाय (हविषा) होतव्येन पदार्थेन (विधेम) परिचरेम ॥ १० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं यो हिरण्यगर्भो जातो जातस्य भूतस्यैकोऽग्रे पतिरासीत्सर्वप्रकाशकोऽवर्त्तत स पृथिवीमुत द्यां संदाधार । य इमां सृष्टिं कृतवाँस्तस्मै कस्मै देवाय परमेश्वराय हविषा विधेम तथा यूयमपि विधत्त ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या येन परमेश्वरेण सूर्यादि सर्वं जगन्निर्मितं स्वसामर्थ्येन धृतं च तस्यैवोपासनं कुरुत ॥ १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (हिरण्यगर्भः) सूर्यादि तेज वाले पदार्थ जिस के भीतर हैं वह परमात्मा (जातः) प्रादुर्भूत और (भूतस्य) उत्पन्न हुए जगत् का (एकः) असहाय एक (अग्रे) भूमि आदि सृष्टि से पहिले भी (पतिः) पालन करने हारा (आसीत्) है और सब का प्रकाश करने वाला (अवर्त्तत) वर्त्तमान हुआ (सः) वह (पृथिवीम्) अपनी आकर्षण शक्ति से पृथिवी (उत) और (द्याम्) प्रकाश को (सम्, दाधार)

अच्छे प्रकार करता है तथा जो (इमाम्) इस सृष्टि को बनाया हुआ अर्थात् जिस ने सृष्टि की उस (कस्मै) सुख करने हारे (देवाय) प्रकाशमान परमात्मा के लिये (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से (विधेम) सेवन का विधान करें वैसे तुम लोग भी सेवन का विधान करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जिस परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से सूर्य आदि समस्त जगत् को बनाया और धारण किया है उसी की उपासना किया करो ॥ १० ॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११ ॥

यः । प्राणतः । निमिषत इति निऽमिषतः । महित्वेति महिऽत्वा । एकः । इत् । राजा । जगतः । बभूव । यः । ईशे । अस्य । द्विपद इति द्विऽपदः । चतुष्पदः । चतुःपद इति चतुःऽपदः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ ११ ॥

पदार्थः—(यः) सूर्यः (प्राणतः) प्राणिनः (निमिषतः) चेष्टां कुर्वतः (महित्वा) महत्वेन (एकः) असहायः (इत्) एव (राजा) प्रकाशकः (जगतः) संसारस्य (बभूव) भवति

(यः) (ईशे) ऐश्वर्यं करोति (अस्य) (द्विपदः) द्वौ पादौ यस्य तस्य मनुष्यादेः (चतुष्पदः) चत्वारः पादा यस्य गवादेस्तस्य (कस्मै) सुखकारकाय (देवाय) दीपकाय (हविषा) आदानेन (विधेम) सेवेमहि ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं यः प्राणतो निमिषतो जगतो महित्वैक इद्राजा बभूव योऽस्य द्विपदश्चतुष्पद ईशे तस्मै कस्मै देवाय हविषा विधेम तथा यूयमप्यनुतिष्ठत ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०— यदि सूर्यो न स्यात्तर्हि स्थावरं जङ्गमं च जगत्स्वकार्यं कर्त्तुमसमर्थं स्यात् । यः सर्वेभ्यो महान् सर्वेषां प्रकाशक ऐश्वर्यप्राप्तिहेतुरस्ति स सर्वैर्युक्त्या सेवनीयः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (यः) जो सूर्य (प्राणतः) श्वास लेते हुए प्राणी और (निमिषतः) चेष्टा करते हुए (जगतः) संसार का (महित्वा) बड़ेपन से (एकः) असहाय एक (इत्) ही (राजा) प्रकाश करने वाला (बभूव) होता है (यः) तथा जो (अस्य) इस (द्विपदः) दो२ पग वाले मनुष्यादि और (चतुष्पदः) चार२ पग वाले गौ आदि पशुरूप जगत् का (ईशे) प्रकाश करता है उस (कस्मै) सुख करने हारे (देवाय) प्रकाशक जगदीश्वर के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य पदार्थ वा व्यवहार से (विधेम) सेवन करें वैसे तुम लोग भी अनुष्ठान किया करो ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सूर्य न हो तो स्थावर वृक्ष आदि और जङ्गम मनुष्यादि जगत् अपना२ काम देने को समर्थ न हो। जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करने वाला और ऐश्वर्य की प्राप्ति का हेतु है वह ईश्वर सब को युक्ति के साथ सेवने योग्य है ॥ ११ ॥

यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता स्वराट्
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनः सूर्यवर्णनविषयमाह ॥
फिर सूर्य के वर्णन वि० ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः । यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १२ ॥

यस्य । इमे । हिमवन्त इति हिमऽवन्तः । महित्वेति महिऽत्वा । यस्य । समुद्रम् । रसया । सह । आहुः । यस्य । इमाः । प्रदिश इति प्रऽदिशः । यस्य । बाहू इति बाहू । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ १२ ॥

पदार्थः—(यस्य) (इमे) (हिमवन्तः) हिमालयादयः पर्वताः (महित्वा) महत्त्वेन (यस्य) (समुद्रम्) अन्तरिक्षम् (रसया) स्नेहनेन (सह) (आहुः) कथयन्ति (यस्य) (इमाः) (प्रदिशः) दिशो विदिशश्च (यस्य) (बाहू) भुजवद्वर्त्तमानाः (कस्मै) सुखरूपाय (देवाय) कमनीयाय (हविषा) हवनयोग्येन पदार्थेन (विधेम) परिचरेम ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्य सूर्यस्य महित्वा महत्त्वेनेमे हिमवन्त आकर्षिताः प्रकाशिताः सन्ति यस्य रसया सह समुद्रमाहुर्यस्येमा दिशो यस्य प्रदिशश्च बाहू इवाहुस्तस्मै कस्मै देवाय हविषा वयं विधेम, एवं यूयमपि विधत्त ॥ १२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यः सर्वेभ्यो महान् सर्वप्रकाशकः सर्वेभ्यो रसस्य हर्त्ता यस्य प्रतापेन दिशामुपदिशां च विभागो भवति स सवितृलोको युक्त्या सेवितव्यः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (यस्य) जिस सूर्य के (महित्वा) बड़ेपन से (इमे) ये (हिमवन्तः) हिमालय आदि पर्वत आकर्षित और प्रकाशित हैं (यस्य) जिस के (सरया) स्नेह के (सह) साथ (समुद्रम्) अच्छे प्रकार जिस में जल ठहरते हैं उस अन्तरिक्ष को (आहुः) करते हैं तथा (यस्य) जिस की (इमाः) इन दिशा और (यस्य) जिस की (प्रदिशः) विदिशाओं को (बाहू) भुजाओं के समान वर्त्तमान कहते हैं उस (कस्मै) सुखरूप (देवाय) मनोहर सूर्यमण्डल के लिये (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से हम लोग (विधेम) सेवन का विधान करें ऐसे ही तुम भी विधान करो ॥ १२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करने और सब पदार्थों से रस का लेनेहारा जिस के प्रताप से दिशा और विदिशाओं का विभाग होता है, वह सूर्य्यलोक युक्ति के साथ सेवन करने योग्य है ॥ १२ ॥

य आत्मदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमात्मा देवता ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनरुपासित ईश्वरः किं ददातीत्याह ॥
फिर उपासना किया ईश्वर क्या देता है इस वि० ॥

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ऽउ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः । यस्य॑च्छा॒याऽमृतं॒ यस्य॑ मृ॒त्युः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १३ ॥

यः। आत्मदा इत्यात्मऽदाः। बलदा इति बलऽदाः। यस्य। विश्वे। उपासत इत्युपऽआसते। प्रशिषमिति प्रऽशिषम्। यस्य। देवाः। यस्य। छाया। अमृतम्। यस्य। मृत्युः। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम ॥१३॥

पदार्थः—(यः) (आत्मदाः) य आत्मानं ददाति सः (बलदाः) यो बलं ददाति सः (यस्य) (विश्वे)(उपासते) (प्रशिषम्) प्रशासनम् (यस्य) (देवाः) विद्वांसः (यस्य) (छाया)आश्रयः (अमृतम्) (यस्य) (मृत्युः) (कस्मै) (देवाय)(हविषा) (विधेम) ॥१३॥

अन्वयः—हे मनुष्या य आत्मदा बलदा यस्य प्रशिषं विश्वे देवा उपासते यस्य सकाशात्सर्वे व्यवहारा जायन्ते यस्यच्छायाऽमृतं यस्याज्ञाभङ्गो मृत्युस्तस्मै कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम ॥ १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यस्य जगदीश्वरस्य प्रशासने कृतायां मर्यादायां सूर्यादयो लोका नियमेन वर्त्तन्ते येन सूर्येण विना वर्षा आयुः क्षयश्च न जायेत स येन निर्मितस्तस्यैवोपासनां सर्वे मिलित्वा कुर्वन्तु ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (आत्मदाः) आत्मा को देने और (बलदाः) बल देने वाला (यस्य) जिस को (प्रशिषम्) उत्तम शिक्षा को (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) सेवते (यस्य) जिस के समीप से सब व्यवहार उत्पन्न होते (यस्य) जिस का (छाया) आश्रय (अमृतम्) अमृतस्वरूप और (यस्य) जिस की आज्ञा का भंग (मृत्युः) मरण के तुल्य है उस (कस्मै) सुखरूप (देवाय) स्तुति के योग्य परमात्मा के लिये हम लोग (हविषा) होमने के पदार्थ से (विधेम) सेवा का विधान करें ॥ १३ ॥

भावार्थः हे मनुष्यो! जिस जगदीश्वर की उत्तम शिक्षा में की हुई मर्यादा में सूर्य्य आदि लोक नियम के साथ वर्त्तमान हैं, जिस सूर्य के विना जल की वर्षा और अवस्था का नाश नहीं होता वह सवितृमण्डल जिस ने बनाया है उसी की उपासना सब मिल कर करें ॥ १३ ॥

आ न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता ।
निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैः किमेष्टव्यमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस वि० ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ १४ ॥

आ । नः । भद्राः । क्रतवः । यन्तु । विश्वतः । अदब्धासः । अपरीतास इत्यपरिऽइतासः । उद्भिद इत्युत्ऽभिदः । देवाः । नः । यथा । सदम् । इत् । वृधे । असन् । अप्रायुव इत्यप्रऽआयुवः । रक्षितारः । दिवेदिवऽइति दिवेदिवे ॥ १४ ॥

पदार्थः—(आ) (नः) अस्मान् (भद्राः) कल्याणकराः (क्रतवः) यज्ञाः प्रज्ञा वा (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (विश्वतः) सर्वतः (अदब्धासः) अहिंसिताः (अपरीतासः) अन्यैरव्याप्ताः (उद्भिदः) य उद्भिन्दन्ति (देवाः) पृथिव्यादय इव विद्वांसः (नः) अस्माकम् (यथा) (सदम्) सीदन्ति प्राप्नुवन्ति यस्यां ताम् (इत्) एव (वृधे) वृद्धये (असन्) भवन्तु (अप्रायुवः) अनष्टायुषः (रक्षितारः) रक्षकाः (दिवेदिवे) प्रतिदिनम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यथा नोऽस्मान् विश्वतो भद्रा अदब्धासोऽपरीतास उद्भिदः क्रतव आ यन्तु यथा नः सदं प्राप्ता अप्रायुवो देवा इद्दिवेदिवे वृधे रक्षितारोऽसन तथाऽनुतिष्ठन्तु ॥ १४ ॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरस्य विज्ञानाद्विदुषां सङ्गेन पुष्कलाः प्रज्ञाः प्राप्य सर्वतो धर्ममाचर्य नित्यं सर्वेषां रक्षकैर्भवितव्यम् ॥ १४ ॥

पदार्थः— हे विद्वानो जैसे (नः) हमलोगों को (विश्वतः) सब ओर से (भद्राः) कल्याण करने वाले (अदब्धासः) जो विनाश को न प्राप्त हुए (अपरीतासः) औरों ने जो न व्याप्त किये अर्थात् सब कामों के उत्तम (उद्भिदः) जो दुःखों को विनाश करते वे (क्रतवः) यज्ञ वा बुद्धि बल (आ, यन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (यथा) जैसे (नः) हमलोगों की (सदम्) उस सभा को कि जिस में स्थित होते हैं प्राप्त हुए (अप्रायुवः) जिन की अवस्था नष्ट नहीं होती वे (देवाः) पृथिवी आदि पदार्थों के समान विद्वान जन (इत्) ही (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वृधे) वृद्धि के लिये (रक्षितारः) पालना करने वाले (असन्) हों वैसा आचरण करो ॥ १४ ॥

भावार्थः— सब मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान और विद्वानों के संग से बहुत बुद्धियों को प्राप्त होकर सब ओर से धर्म का आचरण कर नित्य सब की रक्षा करने वाले होना चाहिये ॥ १४ ॥

देवानामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।

जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानांꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानांꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ १५ ॥

देवानाम् । भद्रा । सुमतिरिति सुऽमतिः । ऋजूयताम् । ऋजुयतामित्यृजुऽयताम् । देवानाम् । रातिः । अभि । नः । नि । वर्त्तताम् । देवानाम् । सख्यम् । उप । सेदिम । आ । वयम् । देवाः । नः । आयुः । प्र । तिरन्तु । जीवसे ॥ १५ ॥

पदार्थः–(देवानाम्) विदुषाम् (भद्रा) कल्याणकरी (सुमतिः) शोभना प्रज्ञा (ऋजूयताम्) सरलीकुर्वताम् (देवानाम्) दातॄणाम् (रातिः) विद्यादिदानम् (अभि) सर्वतः (नः) अस्मान् (नि) (वर्त्तताम्) (देवानाम्) विदुषाम् (सख्यम्) मित्रत्वम् (उप) (सेदिम) प्राप्नुयाम (आ) (वयम्) (देवाः) विद्वांसः (नः) अस्माकम् (आयुः) प्राणधारणम् (प्र) (तिरन्तु) पूर्णं भोजयन्तु (जीवसे) जीवितुम् ॥ १५ ॥

अन्वयः–हे मनुष्या यथा देवानां भद्रा सुमतिरस्मानृजूयतां देवानां रातिर्नोऽस्मानभिनिवर्त्ततां वयं देवानां सख्यमुपसेदिम देवा नो जीवस आयुः प्रतिरन्तु तथा युष्मान्प्रतिवर्त्तन्ताम् ॥ १५ ॥

भावार्थः–सर्वैर्मनुष्यैराप्तानां विदुषां सकाशात्प्रज्ञाः प्राप्य ब्रह्मचर्येणायुः संवर्ध्य सदैव धार्मिकैः सह मित्रता रक्षणीया ॥ १५ ॥

पदार्थः–हे मनुष्यो ! जैसे (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि हम लोगों को और (ऋजूयताम्) कठिन विषयों को सरल करते हुए (देवानाम्) देने वाले विद्वानों का (रातिः) विद्या आदि पदार्थों का देना (नः) हम लोगों को (अभि, नि, वर्त्तताम्) सब ओर से सिद्ध करे सब गुणों से पूर्ण करे (वयम्) हम लोग (देवानाम्)

विद्वानों की (सख्यम्) मित्रता को (उप, सेदिम) अच्छे प्रकार पावें (देवाः) विद्वान् (नः) हम को (जीवसे) जीने के लिये (आयुः) जिस से प्राण का धारण होता उस आयुर्दा को (प्र, तिरन्तु) पूरी भुगावें वैसे तुम्हारे प्रति वर्त्ताव रक्खें ॥ १५ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि पूर्ण शास्त्रवेत्ता विद्वानों के समीप से उत्तम बुद्धियों को पाकर ब्रह्मचर्य आश्रम से आयु को बढ़ा के सदैव धार्मिक जनों के साथ मित्रता रक्खें ॥ १५ ॥

तान्पूर्व्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् । अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ १६ ॥

तान् । पूर्वया । निविदेति निऽविदा । हूमहे । वयम् । भगम् । मित्रम् । अदितिम् । दक्षम् । अस्रिधम् । अर्यमणम् । वरुणम् । सोमम् । अश्विना । सरस्वती । नः । सुभगेति सुऽभगा । मयः । करत् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(तान्) पूर्वोक्तान् (पूर्वया) पूर्वैः स्वीकृतया (निविदा) वेदवाचा । निविदिति वाङ्ना० निघं० १ । ११ । (हूमहे) स्पर्द्धमहि (वयम्) (भगम्) ऐश्वर्यकारकम्

(मित्रम्) सर्वस्य सुहृदम् (अदितिम्) अखण्डितप्रज्ञम् (दक्षम्) चतुरम् (अस्रिधम्) अहिंसनीयम् (अर्यमणम्) प्रजायाः पालकम् (वरुणम्) श्रेष्ठम् (सोमम्) ऐश्वर्यवन्तम् (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (सरस्वती) सर्वविद्यायुक्ता (नः) अस्मभ्यम् (सुभगा) सुष्ठ्वैश्वर्या (मयः) सुखम् (करत्) कुर्यात् ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं पूर्वया निविदा दक्षमर्यमणमास्रिधं भगं मित्रमादितिं वरुणं सोममश्विना हूमहे यथा सुभगा सरस्वती नो युष्मभ्यं च मयस्करत्तथा तान् यूयमप्याहूयत कुरुत च ॥ १६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-मनुष्यैर्यद्यद्वेदोक्तं कर्म तत्तदेवानुष्ठेयं यथा सद्विद्यार्थिनः स्पर्द्धया विद्यां वर्द्धयन्ति तथैव सर्वैर्विद्या वर्द्धनीया । यथा पूर्णविद्या माता सन्तानान् सुशिक्षया विद्याः प्रापय्य वर्द्धयति तथैव सर्वैः सर्वस्मै सुखं दत्वा सर्वे वर्द्धनीयाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वयम्) हम लोग (पूर्वया) अगले सज्जनों ने स्वीकार की हुई (निविदा) वेदवाणी से (दक्षम्) चतुर (अर्यमणम्) प्रजापालक (अस्रिधम्) न विनाश करने योग्य (भगम्) ऐश्वर्य कराने वाले (मित्रम्) सब के मित्र (अदितिम्) जिस की बुद्धि कभी खण्डित नहीं होती उस (वरुणम्) श्रेष्ठ (सोमम्) ऐश्वर्यवान् तथा (अश्विना) पढ़ाने और पढ़ने वाले को (हूमहे) परस्पर ईरस करते हुए चाहते हैं । जैसे (सुभगा) सुन्दर ऐश्वर्य वाली (सरस्वती) समस्त विद्याओं से पूर्ण वेदवाणी (नः) हमारे और तुम्हारे लिये (मयः) सुख को (करत्) करे वैसे (तान्) उन उक्त सज्जनों को तुम भी चाहो और सुख करो ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमा० । मनुष्यों को चाहिये कि जो २ वेद में कहा हुआ काम है उस २ का ही अनुष्ठान करें । जैसे अच्छे विद्यार्थी दूसरे

की हिरस से अपनी विद्या को बढ़ाते हैं वैसे ही सब को विद्या बढ़ानी चाहिये । जैसे परिपूर्ण विद्यायुक्त माता अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा दे, विद्याओं की प्राप्ति करा, उन की विद्या बढ़ाती है वैसे ही सब को सब के लिये सुख दे कर सब की वृद्धि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

तन्न इत्यस्य गोतम ऋषिः । वायुर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनः कः किं कुर्यादित्याह ॥

फिर कौन क्या करे इस वि० ॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥१७॥

तत् । नः । वातः । मयोभ्विति मयःऽभु । वातु । भेषजम् । तत् । माता । पृथिवी । तत् । पिता । द्यौः । तत् । ग्रावाणः । सोमसुत इति सोमऽसुतः । मयोभुव इति मयःऽभुवः । तत् । अश्विना । शृणुतम् । धिष्ण्या । युवम ॥ १७ ॥

पदार्थः—(तत्) (नः) अस्मभ्यम् (वातः) वायुः (मयोभु) सुखकारि (वातु) प्रापयतु (भेषजम्) औषधम् (तत्) (माता) मान्यप्रदा (पृथिवी) विस्तीर्णा भूमिः (तत्) (पिता) पालनहेतुः (द्यौः) सूर्यः (तत्) (ग्रावाणः) मेघाः (सोमसुतः) ओषध्यैश्वर्योत्पादकाः (मयोभुवः) सुखं भावुकाः (तत्) (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (शृणुतम्) (धिष्ण्या) भूमिवद्धर्त्तारौ (युवम्) युवाम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे अश्विना धिष्ण्या युवमस्माभिरधीतं शृणुतं यथा नो वातस्तन्मयोभु भेषजं वातु तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौर्वातु तत्सोमसुतो मयोभुवो ग्रावाणो वान्तु तद्युष्मभ्यमप्यस्तु ॥१७॥

भावार्थः—यस्य पृथिवीव माता द्यौरिव पिता भवेत्स सर्वतः कुशलीभूत्वा सर्वानरोगाञ्चतुरान् कुर्यात् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) पढ़ाने और पढ़ने हारे सज्जनो ! (धिष्ण्या) भूमि के समान धारण करने वाले (युवम्) तुम दोनों हम लोगों ने जो पढ़ा है उस को (शृणुतम्) सुनो । जैसे (नः) हम लोगों के लिये (वातः)पवन (तत्) उस (मयोभु) सुख करने हारी (भेषजम्) ओषधि को (वातु) प्राप्ति करे (तत्) उस ओषधि को (माता) मान्य देने वाली (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि तथा (तत्) उस को (पिता) पालना का हेतु (द्यौः) सूर्यमण्डल प्राप्त करे तथा (तत्) उस को (सोमसुतः) ओषधि और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने और (मयोभुवः) सुख की भावना कराने हारे (ग्रावाणः) मेघ प्राप्त करें (तत्) यह सब व्यवहार तुम्हारे लिये भी होवे ॥ १७ ॥

भावार्थः–जिस की पृथिवी के समान माता और सूर्य के समान पिता हो वह सब ओर से कुशली सुखी हो कर सब को नीरोग और चतुर करे ॥ १७ ॥

तमीशानमित्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता ।
भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनरीश्वरः कीदृशः किमर्थ उपासनीय इत्याह ॥

फिर ईश्वर कैसा है और किस लिये उपासना के योग्य है इस वि० ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ १८ ॥

तम्। ईशानम्। जगतः। तस्थुषः। पतिम्। धियंजिन्वमिति धियम्ऽजिन्वम्। अवसे। हूमहे। वयम्। पूषा। नः। यथा। वेदसाम्। असत्। वृधे। रक्षिता। पायुः। अदब्धः। स्वस्तये ॥ १८ ॥

पदार्थः—(तम्) (ईशानम्) ईशनशीलम् (जगतः) जङ्गमस्य (तस्थुषः) स्थावरस्य (पतिम्) पालकम् (धियंजिन्वम्) यो धियं प्रज्ञां जिन्वति प्रीणाति तम् (अवसे) रक्षणाद्याय (हूमहे) स्तुमः (वयम्)(पूषा) पुष्टिकर्त्ता (नः) अस्माकम् (यथा)(वेदसाम्)धनानाम् (असत्) भवेत् (वृधे) वृद्धये (रक्षिता) रक्षणकर्त्ता (पायुः) सर्वस्य रक्षकः (अदब्धः) अहिंसकः (स्वस्तये) सुखाय ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या वयमवसे जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वं तमीशानं हूमहे स यथा नो वेदसां वृधे पूषा रक्षिता स्वस्तये पायुरदब्धोऽसत्तथा यूयं कुरुत स च युष्मभ्यमप्यस्तु ॥ १८ ॥

भावार्थः—सर्वे विद्वांसः सर्वान्प्रत्येवमुपदिशेयुर्यस्य सर्वशक्तिमतो निराकारस्य सर्वत्र व्यापकस्य परमेश्वरस्योपासनं वयं कुर्मस्तमेव सुखैश्वर्यवर्धकं जानीमस्तस्यैवोपासनं यूयमपि कुरुत तमेव सर्वोन्नतिकरं च विजानीत ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (वयम्) हम लोग (अवसे) रक्षा आदि के लिये (जगतः) चर और (तस्थुषः) अचर जगत् के (पतिम्) रक्षक (धियंजिन्वम्) बुद्धिको तृप्त प्रसन्न वा शुद्ध करने वाले (तम्) उस अखण्ड (ई-

शानम्) सब को वश में रखने वाले सब के स्वामी परमात्मा की (हूमहे) स्तुति करते हैं वह (यथा) जैसे (नः) हमारे (वेदसाम्) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिये (पूषा) पुष्टिकर्त्ता तथा (रक्षिता) रक्षा करने हारा (स्वस्तये) सुख के लिये (पायुः) सब का रक्षक (अदब्धः) नहीं मारने वाला (असत्) होवे वैसे तुम लोग भी उस की स्तुति करो और वह तुम्हारे लिये भी रक्षा आदि का करने वाला होवे ॥ १८ ॥

भावार्थः—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जिस सर्वशक्तिमान् निराकार सर्वत्र व्यापक परमेश्वर की उपासना हम लोग करें तथा उसी को सुख और ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला जानें, उसी की उपासना तुम लोग भी करो और उसी को सब की उन्नति करने वाला जानो ॥ १८ ॥

स्वस्ति न इत्यस्य गोतम ऋषिः। ईश्वरो देवता।
स्वराड् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः।
पुनर्मनुष्यैः किमेष्टव्यमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस वि० ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ १९ ॥

स्वस्ति। नः। इन्द्रः। वृद्धश्रवा इति वृद्धऽश्रवाः। स्वस्ति। नः। पूषा। विश्ववेदा इति विश्वऽवेदाः। स्वस्ति। नः। तार्क्ष्यः। अरिष्टनेमिरित्यरिष्टऽनेमिः। स्वस्ति। नः। बृहस्पतिः। दधातु ॥ १९ ॥

पदार्थः—(स्वस्ति) सुखम् (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्रः) परमैश्वर्यवानीश्वरः (वृद्धश्रवाः)वृद्धं श्रवः श्रवणं यस्य सः (स्वस्ति) (नः) (पूषा) सर्वतः पोषकः (विश्ववेदाः) विश्वं सर्वं जगद्वेदो धनं यस्य सः (स्वस्ति) (नः) (ताक्ष्र्यः) अश्वइव । ताक्ष्र्य इत्यश्वनाम निघं० १ । १४ (अरिष्टनेमिः) योऽरिष्टानि सुखानि प्रापयति सः । अत्रारिष्टोपपदाण्णीञ् प्रापणे धातोरौणादिको मिः प्रत्ययः । (स्वस्ति) (नः) (बृहस्पतिः) बृहतां महत्तत्वादीनां स्वामी पालकः (दधातु) ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो वृद्धश्रवा इन्द्रो नः स्वस्ति यो विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति यस्तार्क्ष्य इवारिष्टनेमिः सन्नः स्वस्ति यो बृहस्पतिर्नः स्वस्ति दधातु स युष्मभ्यमपि सुखं दधातु ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्यथा स्वार्थं सुखमेष्टव्यं तथाऽन्यार्थमप्येषितव्यं यथा कश्चिदपि स्वार्थं दुःखं नेच्छति तथा परार्थमपि नैषितव्यम्॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वृद्धश्रवाः) बहुत सुनने वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख जो (विश्ववेदाः) समस्त जगत् में वेद ही जिस का धन है वह (पूषा) सब का पुष्टि करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख जो (तार्क्ष्यः) घोड़े के समान (अरिष्टनेमिः) सुखों की प्राप्ति कराता हुआ (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख तथा जो (बृहस्पतिः) महत्तत्व आदि का स्वामी वा पालना करने वाला परमेश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख को (दधातु) धारण करे वह तुम्हारे लिये भी सुख को धारण करे ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अपने सुख को चाहें वैसे और के लिये भी चाहें। जैसे कोई भी अपने लिये दुःख नहीं चाहता वैसे और के लिये भी न चाहें॥१९॥

पृषदश्वा इत्यस्य गोतम ऋषिः। विद्वांसो देवताः।
जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥
पुनः के किं कुर्युरित्याह॥

फिर कौन क्या करें इस वि०॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह॥२०॥

पृषदश्वा इति पृषत्ऽअश्वाः। मरुतः। पृश्निमातर इति पृश्निऽमातरः। शुभंयावान इति शुभम्ऽयावानः। विदथेषु। जग्मयः। अग्निजिह्वा इत्यग्निऽजिह्वाः। मनवः। सूरचक्षस इति सूरऽचक्षसः। विश्वे। नः। देवाः। अवसा। आ। अगमन्। इह॥२०॥

पदार्थः—(पृषदश्वाः) पृषतः पुष्ट्यादिना संसिक्ताङ्गा अश्वा येषान्ते (मरुतः) मनुष्याः (पृश्निमातरः) पृश्निरन्तरिक्षं माता येषां वायूनां ते इव (शुभंयावानः) ये शुभं कल्याणं यान्ति प्राप्नुवन्ति ते। अत्र वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति द्वितीयाया अलुक् (विदथेषु) संग्रामेषु (जग्मयः)

संगन्तारः (अग्निजिह्वाः) अग्निरिव सुप्रकाशिता जिह्वा वाणी येषान्ते। जिह्वेति वाङ्ना० निघं० १।११ । (मनवः) मननशीलाः (सूरचक्षसः) सूरऐश्वर्ये प्रेरणे वा चक्षोदर्शनं येषान्ते (विश्वे) सर्वे (नः) अस्मान् (देवाः) विद्वांसः (अवसा) रक्षणाद्येन सह (आ) (अगमन्) प्राप्नवन्तु (इह) अस्मिन्संसारे वर्त्तमानसमये वा ॥२०॥

अन्वयः—ये पृश्निमातर इव पृषदश्वा मरुतो विदथेषु शुभंयावानो जग्मयोऽग्निजिह्वाः सूरचक्षसो विश्वे देवा मनवोऽवसा सहवर्त्तन्ते त इह नोऽस्मानागमन् ॥ २० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०। मनुष्यैर्विदुषां सङ्गः सदैव प्रार्थनीयो यथाऽस्मिञ्जगति सर्वे वायवः सर्वेषां जीवनहेतवः सन्ति तथात्र जङ्गमेषु विद्वांसः सन्ति ॥ २० ॥

पदार्थः— जो (पृश्निमातरः) जिनको मान्य देने वाला अन्तरिक्ष माता के तुल्य है उन वायुओं के समान (पृषदश्वाः) जिन के पुष्टि आदि से सींचे अङ्गों वाले घोड़े हैं वे (मरुतः) मनुष्य तथा (विदथेषु) संग्रामों में (शुभंयावानः) जो उत्तम सुख को प्राप्त होने और (जग्मयः) संग करने वाले (अग्निजिह्वाः) जिन की अग्नि के समान प्रकाशित वाणी और (सूरचक्षसः) जिन का ऐश्वर्य वा प्रेरणा में दर्शन होवे ऐसे (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् (मनवः) मन (अवसा) रक्षा आदि के साथ वर्त्तमान हैं वे लोग (इह) इस संसार वा इस समय में (नः) हम लोगों को (आ, अगमन्) प्राप्त होवें ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० । मनुष्यों को विद्वानों का संग सदैव प्रार्थना करने योग्य है। जैसे इस जगत् में सब वायु आदि पदार्थ सब मनुष्यों वा प्राणियों के जीवन के हेतु हैं वैसे इस जगत् में चेतनों में विद्वान् हैं ॥ २० ॥

भद्रमित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसंस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २१ ॥

भद्रम् । कर्णेभिः । शृणुयाम । देवाः । भद्रम् । पश्यम । अक्षभिरित्यक्षऽभिः । यजत्राः । स्थिरैः । अङ्गैः । तुष्टुवाᳬसः । तुस्तुवाᳬसइतितुस्तुऽवाᳬसः । तनूभिः । वि । अशेमहि । देवहितमितिदेवऽहितम् । यत् । आयुः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(भद्रम्) सत्यलक्षणाकरं वचः (कर्णेभिः) श्रोत्रैः (शृणुयाम) (देवाः) विद्वांसः (भद्रम्) कल्याणम् (पश्येम) (अक्षभिः) चक्षुर्भिः (यजत्राः) संगन्तारः (स्थिरैः) दृढैः (अङ्गैः) अवयवैः (तुष्टुवांसः) स्तुवन्तः (तनूभिः) शरीरैः (वि, अशेमहि) प्राप्नुयाम (देवहितम्) देवेभ्यो विद्वद्भ्यो हितम् (यत्) (आयुः) जीवनम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे यजत्रा देवा विद्वांसो भवत्सङ्गेन वयं कर्णेभिर्भद्रं शृणुयामाक्षभिर्भद्रं पश्येम स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसः सन्तस्तनूभिर्यद्देवहितमायुस्तद् व्यशेमहि ॥ २१ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या विद्वत्सङ्गेन विद्वांसो भूत्वा सत्यं शृणुयुः सत्यं पश्येयुर्जगदीश्वरं स्तुयुस्तर्हि ते दीर्घायुषो भवेयुः। मनुष्यैरसत्यश्रवणं कुदर्शनं मिथ्यास्तुतिर्व्यभिचारश्च कदापि नैव कर्त्तव्यः ॥२१॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) संग करने वाले (देवाः) विद्वानो! आप लोगों के साथ से हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) जिस से सत्यता जानी जावे उस वचन को (शृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) आंखों से (भद्रम्) कल्याण को (पश्येम) देखें (स्थिरैः) दृढ (अंगैः) अवयवों से (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुए (तनूभिः) शरीरों से (यत्) जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये सुख करने हारी (आयुः) अवस्था है उस को (वि, अशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ २१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् हो कर सत्य सुनें, सत्य देखें और जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे बहुत अवस्था वाले हों। मनुष्यों को चाहिये कि असत्य का सुनना, खोटा देखना, झूठी स्तुति प्रार्थना प्रशंसा और व्यभिचार कभी न करें॥२१॥

शतमित्यस्य गोतम ऋषिः। विद्वांसो देवताः।
त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

पुनरस्मदर्थं के किं कुर्युरित्याह ॥

फिर हमारे लिये कौन क्या करें इस वि० ॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ २२ ॥

शतम् । इत् । नु । शरदः । अन्ति । देवाः । यत्र । नः । चक्र । जरसम् । तनूनाम् । पुत्रासः । यत्र । पितरः । भवन्ति । मा । नः । मध्या । रीरिषत । रिरिषतेति रिरिषत । आयुः । गन्तोः ॥ २२ ॥

पदार्थः—(शतम्) शतवार्षिकम् (इत्) एव (नु) सद्यः (शरदः) शरदृतवन्तानि (अन्ति) अन्तिके (देवाः) विद्वांसः (यत्र) यस्मिन् । अत्रनिपातस्य चेति दीर्घः । (नः) अस्माकम् (चक्र) कुर्वन्तु। अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (जरसम्) जराः (तनूनाम्) शरीराणाम् (पुत्रासः) वृद्धावस्थाजन्यदुःखात्त्रातारः (यत्र) (पितरः) पितर इव वर्त्तमानाः (भवन्ति) (मा) (नः) अस्माकम् (मध्या) पूर्णायुषो भोगस्य मध्ये (रीरिषत) घ्नत (आयुः) जीवनम् (गन्तोः) गमनम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे देवा भवद्भिर्न्तिस्थितानां नोऽस्माकं यत्र तनूनां जरसं शतं शरदः स्युस्तन्नु चक्र । यत्र पुत्रास इत्पितरो भवन्ति तन्नो गन्तोरायुर्मध्या मा रीरिषत ॥ २२ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्दीर्घमष्टचत्वारिंशद्वर्षपरिमितं ब्रह्मचर्यं सदा सेवनीयम् । येन पितृषु विद्यमानेषु पुत्रा अपि पितरो भवेयुः । यदा शतवार्षिकमायुर्व्यतीयात्तदैव शरीराणां जराऽवस्था भवेत् । यदि ब्रह्मचर्येण सह न्यूनान्न्यूनानि पञ्चविंशतिवर्षाणि व्यतीतानि स्युस्ततः पश्चादप्यतिमैथुनेन ये वीर्यक्षयं कुर्वन्ति तर्हि ते सरोगा निर्बुद्धयो भूत्वा दीर्घायुषः कदापि न भवन्ति

पदार्थः— हे (देवाः) विद्वानों! आप के (अन्ति) समीप स्थित (नः) हम लोगों के (यत्र) जिस व्यवहार में (तनूनाम्) शरीरों की (जरसम्) वृद्धावस्था और (शतम्) सौ (शरदः) वर्ष पूरे हों उस व्यवहार को (नु) शीघ्र (चक्र) करो (यत्र) जहां (पुत्रासः) बुढ़ापे के दुःखों से रक्षा करने वाले लड़के (इव) ही (पितरः) पिता के समान वर्त्तमान (भवन्ति) होते हैं उस (नः) हम लोगों की (गन्तोः) चाल और (आयुः) अवस्था को (मध्या) पूरी अवस्था भोगने के बीच (मा, रीरिषत) मत नष्ट करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदा दीर्घकाल अर्थात् अड़तालीस वर्ष प्रमाण ब्रह्मचर्य सेवना चाहिये। जिस से पिता आदि के विद्यमान होते ही लड़के भी पिता हो जावें अर्थात् उन के भी लड़के हो जावें। और जब सौ वर्ष आयु बीते तभी शरीरों की वृद्धावस्था होवे। जो ब्रह्मचर्य के साथ कम से कम पच्चीस वर्ष व्यतीत होवें उस से पीछे भी अतिमैथुन करके जो लोग वीर्य का नाश करते हैं तो वे रोगसहित निर्बुद्धि होके अधिक अवस्था वाले कभी नहीं होते ॥ २२ ॥

अदितिरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। द्यौरित्यादयो देवताः।

त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अथादितिशब्दस्यानेकेऽर्थाः सन्तीत्याह ॥

अब अदिति शब्द के अनेक अर्थ हैं इस वि० ॥

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः। विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑ति॒र्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥ २३ ॥

अदि॑तिः। द्यौः। अदि॑तिः। अ॒न्तरि॑क्षम्। अदि॑तिः। मा॒ता। सः। पि॒ता। सः। पु॒त्रः। विश्वे॑। दे॒वाः। अदि॑तिः।

पञ्च । जनाः । अदितिः । जातम् । अदितिः । जनित्वमिति जनिऽत्वम् ॥ २३ ॥

पदार्थः— (अदितिः) अखण्डिता (द्यौः) कारणरूपेण प्रकाशः (अदितिः) अविनाशि (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (अदितिः) विनाशरहिता (माता) सर्वस्य जगतो जननी प्रकृतिः (सः) परमेश्वरः (पिता) नित्यपालकः (सः) (पुत्रः) ईश्वरस्य पुत्रइवाविनाशी (विश्वे) सर्वे (देवाः) दिव्यगुणादियुक्ताः पृथिव्यादयः (अदितिः) कारणरूपेण नाशरहिता (पञ्च) एतत्संख्याकाः (जनाः) मनुष्याः प्राणा वा (अदितिः) स्वात्मरूपेण नित्यम् (जातम्) यत्किंचिदुत्पन्नं कार्यम् (अदितिः) कारणरूपेणनित्यम् (जनित्वम्) उत्पत्स्यमानम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या युष्माभिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमादितिर्माता स पिता स पुत्रश्चादितिर्विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातञ्जनित्वञ्चादितिरस्तीति वेद्यम् ॥ २३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या भवन्तो यत् किंचित् कार्यं जगत् पश्यन्ति तदद्दृष्टकारणं विजानन्तु जगन्निर्मातारं परमात्मानं जीवं पृथिव्यादीनि तत्त्वानि यज्जातं यच्च जनिष्यते या च प्रकृतिस्तत्सर्वं स्वरूपेण नित्यमस्ति न कदाप्यस्याभावो भवति न चाऽभावाद्भावोत्पत्तिर्भवतीति विज्ञेयम् ॥ २३ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो तुम को (द्यौः) कारणरूप से जो प्रकाश वह (अदितिः) अखण्डित (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अदितिः) अविनाशी

(माता) सब जगत् की उत्पन्न करने वाली प्रकृति (सः) वह परमेश्वर (पिता) नित्य पालन करने हारा और (सः) वह (पुत्रः) ईश्वर के पुत्र के समान वर्त्तमान (अदितिः) कारणरूप से अविनाशी संसार (विश्वे) समस्त (देवाः) दिव्य गुण वाले पृथिवी आदि पदार्थ (अदितः) कारण रूप से विनाशरहित (पंच) पांच (जनाः) मनुष्य वा प्राण (अदितिः) कारणरूप से अविनाशी तथा (जातम्) जो कुछ उत्पन्न हुआ कार्यरूप जगत् और (जनित्वम्) जो उत्पन्न होने वाला वह सब (अदितिः) कारण रूप से नित्य है यह जानना चाहिये ॥ २३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जितने कुछ कार्यरूप जगत् को देखते हो वह अदृष्ट कारण रूप जानो। जगत् का बनाने वाला परमात्मा, जीव, पृथिवी आदि तत्त्व जो उत्पन्न हुआ वा जो होगा और जो प्रकृति वह सब स्वरूप से नित्य है कभी इस का अभाव नहीं होता और यह भी जानना चाहिये कि अभाव से भाव की उत्पत्ति कभी नहीं होती ॥ २३ ॥

मा न इत्यस्य गोतम ऋषिः । मित्रादयो देवताः ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनः केऽस्माकं किं न कुर्युरित्याह ॥
फिर कौन हम लोगों के किस काम को न करें इस वि० ॥

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् । यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ २४ ॥

मा । नः । मित्रः । वरुणः । अर्यमा । आयुः । इन्द्रः । ऋभुक्षाः । मरुतः । परि । ख्यन् । यत् । वाजिनः । देवजातस्येति देवऽजातस्य । सप्तेः । प्रवक्ष्यामः इति प्रऽवक्ष्यामः । विदथे । वीर्याणि ॥ २४ ॥

पदार्थः—(मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (मित्रः) प्राण इव सखा (वरुणः) उदानइव श्रेष्ठः (अर्यमा) न्यायाधीश इव नियन्ता (आयुः) जीवनम् (इन्द्रः) राजा (ऋभुक्षाः) महान्तः (मरुतः) मनुष्याः (परिख्यन्) वर्जयेयुः (यत्) यानि (वाजिनः)वे गवतः (देवजातस्य) देवैर्दिव्यैर्गुणैः प्रसिद्धस्य (सप्तेः) अश्वस्य (प्रवक्ष्यामः) प्रवदिष्यामः (विदथे) युद्धे (वीर्याणि) बलानि ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यथा मित्रो वरुणोऽर्यमेन्द्रश्च ऋभुक्षा मरुतो न आयुर्मा परिख्यन् । येन वयं देवजातस्य वाजिनः सप्तेरिव विदथे यद्वीर्याणि प्रवक्ष्यामस्तानि मा परिख्यन् । तथा यूयमुपदिशत ॥ २४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सर्वे मनुष्याः स्वेषां बलानि वर्द्धयितुमिच्छेयुस्तथैवान्येषामपि वर्द्धयितुमिच्छन्तु ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे (मित्रः) प्राण के समान मित्र (वरुणः) उदान के समान श्रेष्ठ (अर्यमा) और न्यायाधीश के समान नियम करने वाला (इन्द्रः)राजा तथा (ऋभुक्षाः) महात्मा (मरुतः) जन (नः) हम लोगों की (आयुः) आयुर्दा को (मा) मत (परिख्यन्) विनाश करावें जिस से हम लोग (देवजातस्य) दिव्यगुणों से प्रसिद्ध (वाजिनः) वेगवान् (सप्तेः) घोड़ा के समान उत्तम वीर पुरुष के (विदथे) युद्ध में (यत्) जिन (वीर्याणि) बलों को (प्रवक्ष्यामः) कहें उन का मत विनाश करावें, वैसा आप लोग उपदेश करें ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० । जैसे सब मनुष्य अपने बलों को बढ़ाना चाहें वैसे औरों के भी बल को बढ़ाने की इच्छा करें ॥ २४ ॥

यन्निर्णिजेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥
फिर मनुष्य क्या करें. इस वि० ॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति । सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २५ ॥

यत् । निर्णिजा । निर्निजेति निःऽनिजा । रेक्णसा । प्रावृतस्य । रातिम् । गृभीताम् । मुखतः । नयन्ति । सुप्राङिति सुऽप्राङ् । अजः । मेम्यत् । विश्वरूप इति विश्वऽरूपः । इन्द्रापूष्णोः । प्रियम् । अपि । एति । पाथः ॥ २५ ॥

पदार्थः—(यत्) ये (निर्णिजा) सुरूपेण (रेक्णसा) धनेन । रेक्ण इति धनना० निघं० २ । १० (प्रावृतस्य) युक्तस्य (रातिम्) दानम् (गृभीताम्) गृहीताम् (मुखतः) अग्रतः (नयन्ति) प्रापयन्ति (सुप्राङ्) यः सुष्ठु पृच्छति सः (अजः) जन्मादिरहितः (मेम्यत्) प्राप्नुवन् (विश्वरूपः) विश्वं रूपं यस्य सः (इन्द्रापूष्णोः) विद्युद्वाय्वोः (प्रियम्) कमनीयम् (अपि) (एति) प्राप्नोति (पाथः) अन्नम् ॥ २५ ॥

अन्वयः–यन्मनुष्या निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां सतीं मुखतो नयन्ति यो मेम्यत्सुप्राङ् विश्वरूपोऽज इन्द्रापूष्णोः प्रियं पाथोऽप्येति ते स च सुखमाप्नुवन्ति ॥ २५ ॥

भावार्थः–ये धनं प्राप्य सत्कर्मसु व्ययं कुर्वन्ति ते सर्वान् कामानाप्नुवन्ति ॥ २५ ॥

पदार्थः–(यत्) जो मनुष्य (निर्णिजा) सुन्दररूप और (रेक्णसा) धन से (प्रावृतस्य) युक्त जन की (रातिम्) देनी वा (गृभीताम्) ली हुई वस्तु को (मुखतः) आगे से (नयन्ति) प्राप्त कराते तथा जो (मेम्यत्) प्राप्त होता हुआ (सुप्राङ्) अच्छे प्रकार पूछने वाला (विश्वरूपः संसार जिस का रूप वह (अजः) जन्म और मरण आदि दोषों से रहित अविनाशी जीव (इन्द्रापूष्णोः) बिजुली और पवन संबन्धी (प्रियम्) मनोहर (पाथः) अन्न को (अप्येति) सब ओर से पाता है वे मनुष्य और वह जीव सब आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य धन को पाकर अच्छे कामों में खर्च करते हैं वे सब कामनाओं को पाते हैं ॥ २५ ॥

एषइत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता ।
निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनः केन सह के पालनीया इत्याह ॥
फिर किस के साथ कौन पालना करने योग्य है इस वि० ॥

एष छागः पुरोअश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति ॥ २६ ॥

एषः । छागः । पुरः । अश्वेन । वाजिना । पूष्णः । भागः । नीयते । विश्वदेव्य इति विश्वऽदेव्यः । अभिप्रियमित्यभिऽप्रियम् । यत् । पुरोडाशम् । अर्वता । त्वष्टा । इत् । एनम् । सौश्रवसाय । जिन्वति ॥२६॥

पदार्थः—(एषः) (छागः) छेदकः (पुरः) पुरस्तात् (अश्वेन) (वाजिना) (पूष्णः) पोषकस्य (भागः) सेवनीयः (नीयते) प्राप्यते (विश्वदेव्यः) विश्वेषु सर्वेषु देवेषु साधुः (अभिप्रियम्) सर्वतः कमनीयम् (यत्) यम् (पुरोडाशम्) (अर्वता) गंत्रा (त्वष्टा) तनूकर्त्ता (इत्) (एनम्) पूर्वोक्तम् (सौश्रवसाय) शोभनं श्रवः कीर्त्तिर्यस्य स सुश्रवास्तस्य भावाय (जिन्वति) प्रीणाति ॥ २६ ॥

अन्वय—विद्वद्भिर्य एष पुरो विश्वदेव्यः पूष्णो भागश्छागो वाजिनाऽश्वेन सह नीयते यदभिप्रियं पुरोडाशमर्वता सह त्वष्टैनं सौश्रवसायेजिन्वति स सदा पालनीयः ॥ २६ ॥

भावार्थः—यद्यश्वादिभिः सहाऽन्यानजादीन्पशून् वर्धयेयुस्तर्हि ते मनुष्याः सुखमुन्नयेयुः ॥ २६ ॥

पदार्थः—विद्वानों को चाहिये कि जो (एषः) यह (पुरः) प्रथम (विश्वदेव्यः) सब विद्वानों में उत्तम (पूष्णः) पुष्टि करने वाले का (भागः) सेवने योग्य (छागः) पदार्थों को छिन्न भिन्न करता हुआ प्राणी (वाजिना) वेगवान् (अश्वेन) घोड़े के साथ (नीयते) प्राप्त किया जाता और (यत्) जिस (अभिप्रियम्) सब ओर से मनोहर (पुरोडाशम्) पुरोडाश नामक यज्ञभाग को (अर्वता) पहुंचाते हुए घोड़े के साथ (त्वष्टा) पदार्थों को सूक्ष्म करनेवाला (एनम्) उक्त भाग को (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्तिमान होने के लिये (इत्) ही (जिन्वति) पाकर प्रसन्न होता है वह सदैव पालने योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थः—यदि अश्वादिकों के साथ अन्य बकरी आदि पशुओं को बढ़ावें तो वे मनुष्य सुख की उन्नति करें ॥ २६ ॥

यद्धविष्यमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनः केन के किं कुर्वन्तीत्याह ॥
फिर किस से कौन क्या करते हैं इस वि० ॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ २७ ॥

यत् । हविष्यम् । ऋतुश इत्यृतुऽशः । देवयानमिति देवऽयानम् । त्रिः । मानुषाः । परि । अश्वम् । नयन्ति । अत्र । पूष्णः । प्रथमः । भागः । एति । यज्ञम् । देवेभ्यः । प्रतिवेदयन्निति प्रतिऽवेदयन् । अजः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(यत्) ये (हविष्यम्) हविर्भ्यो हितम् (ऋतुशः) ऋत्वर्हम् (देवयानम्) देवानां प्रापणसाधनम् (त्रिः) त्रिवारम् (मानुषाः) (परि) सर्वतः (अश्वम्) आशुगामिनम् (नयन्ति) प्राप्नुवन्ति (अत्र) अस्मिन् । अत्र ऋचितुनुघ० इति दीर्घत्वम् । (पूष्णः) पुष्टेः (प्रथमः) आदिमः (भागः) सेवनीयः (एति) प्राप्नोति (यज्ञम्) (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (प्रतिवेदयन्) विज्ञापयन् (अजः) पशुविशेषः ॥ २७ ॥

अन्वयः—यद्ये मानुषा ऋतुशो हविष्यं देवयानमश्वं त्रिः परिनयन्ति योऽत्र पूष्णः प्रथमो भागो देवेभ्यो यज्ञं प्रतिवेदयन्नजं एति स सदा रक्षणीयः ॥ २७ ॥

भावार्थः— ये प्रत्यृत्वाहारविहारन्कुर्वन्त्यश्वाजादिपशुभ्यः संगतानि कार्याणि कुर्वन्ति तेऽत्यन्तं सुखं लभन्ते ॥ २७ ॥

पदार्थः— (यत्) जो (मानुषाः) मनुष्य (ऋतुशः) ऋतु२ के योग्य (हविष्यम्) होम में चढ़ाने के पदार्थों के लिये हितकारी (देवयानम्) दिव्य गुण वाले विद्वानों की प्राप्ति कराने हारे (अश्वम्) शीघ्रगामी प्राणी को (त्रिः) तीनवार (परि, नयन्ति) सब ओर पहुंचाते हैं वा जो (अत्र) इस संसार में (पूष्णः) पुष्टिसंबन्धी (प्रथमः) प्रथम (भागः) सेवने योग्य (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (यज्ञम्) सत्कार को (प्रतिवेदयन्) जनाता हुआ (अजः) विशेष पशु बकरा (एति) प्राप्त होता है वह सदा रक्षा करने योग्य है ॥२७॥

भावार्थः— जो मनुष्य ऋतु२ के प्रति उन के गुणों के अनुकूल आहार विहारों को करते तथा घोड़ा और बकरा आदि पशुओं से संगत हुए कामों को करते हैं वे अत्यन्त सुख को पाते हैं ॥ २७ ॥

होतेत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवत स्वरः ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शꣳस्ता सुविप्रः । तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणाऽआ पृणध्वम् ॥ २८ ॥

होता । अध्वर्युः । आवया इत्याऽवयाः । अग्निमिन्ध इत्यग्निम्ऽइन्धः । ग्रावग्राभ इति ग्रावऽग्राभः । उत । शꣳस्ता । सुविप्र इति सुऽविप्रः । तेन । यज्ञेन । स्वरङ्कृतेनेति सुऽअरङ्कृतेन । स्विष्टेनेति सुऽइष्टेन । वक्षणाः । आ । पृणध्वम् ॥ २८ ॥

पदार्थः— (होता) आदाता (अध्वर्युः) अहिंसायज्ञमिच्छुः (आवयाः) येनावयजन्ति सः (अग्निमिन्धः) अग्निप्रदीपकः (ग्रावग्राभः) यो ग्रावाणं मेघं गृह्णाति सः (उत) (शंस्ता) प्रशंसकः (सुविप्रः) शोभना विप्रा मेधाविनो यस्मिन् सः (तेन) (यज्ञेन) संगतेन (स्वरङ्कृतेन) सुष्ठलंकृतेन। अत्र कपिलकादित्वाद्रेफः। (स्विष्टेन) शोभनेनेष्टेन (वक्षणाः) नदीः। वक्षणा इति नदीना० निघं० १। १३। (आ) (पृणध्वम्) समन्तात्सुखयत॥ २८॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा होताऽऽवया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभः शंस्तोत सुविप्रोऽध्वर्युर्येन स्वरंकृतेन स्विष्टेन यज्ञेन वक्षणा अलङ्करोति तथा तेन यूयमप्यापृणध्वम्॥ २८॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०। ये मनुष्याः सुगन्ध्यादिसुसंस्कृतानां हविषां वह्नौ प्रक्षेपेण वायुवर्षाजलादीनि शोधयित्वा नद्यादिजलानि शोधयन्ति ते सदा सुखयन्ति॥ २८॥

पदार्थः— हे मनुष्यो! जैसे (होता) ग्रहण करने हारा वा (आवयाः) जिस से अच्छे प्रकार यज्ञ संग और दान करते वह वा (अग्निमिन्धः) अग्नि को प्रदीप्त करने हारा वा (ग्रावग्राभः) मेघ को ग्रहणकरने हारा वा (शंस्ता) प्रशंसा करने हारा (उत) और (सुविप्रः) जिस के समीप अच्छे २ बुद्धिमान् हैं वह (अध्वर्युः) अहिंसा यज्ञ का चाहने वाला उत्तम जन जिस (स्वरंकृतेन) सुन्दर सुशोभित किये (स्विष्टेन) सुन्दर भाव से चाहे और (यज्ञेन) मिले हुए यज्ञ आदि उत्तम काम से (वक्षणाः) नदियों को पूर्ण करता अर्थात् यज्ञ करने से पानी वर्षा उस वर्षे हुए जल से नदियों को भरता वैसे (तेन) उस काम से तुम लोग भी (आ, पृणध्वम्) अच्छे प्रकार सुख भोगो॥ २८॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सुगन्धि आदि से उत्तम बनाये हुए होम करने योग्य पदार्थों के अग्नि में छोड़ने से पवन और वर्षाजल आदि पदार्थों को शोध कर नदी नद आदि के जलों की शुद्धि करते है वे सदैव सुख भोगते हैं॥२८॥

यूपव्रस्काइत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता ।
भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्ते किं कुर्युरित्याह ॥
फिर वे क्या करें इस वि० ॥

यूपव्रस्काऽ उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति । ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्नऽइन्वतु ॥ २९ ॥

यूपव्रस्का इति यूपऽव्रस्काः । उत । ये । यूपवाहा इति यूपऽवाहाः । चषालम् । ये । अश्वयूपायेति अश्वऽयूपाय । तक्षति । ये । च । अर्वते । पचनम् । सम्भरन्तीति सम्ऽभरन्ति । उतोऽ इत्युतो । तेषाम् । अभिगूर्त्तिरित्यभिऽगूर्त्तिः । नः । इन्वतु ॥ २१ ॥

पदार्थः—(यूपव्रस्काः) यूपस्य स्तम्भस्य छेदकाः (उत) अपि (ये) (यूपवाहाः) ये यूपं वहन्ति ते (चषालम्) यूपावयवम् (ये) (अश्वयूपाय) अश्वस्य बन्धनार्थाय स्तम्भाय (तक्षति) तक्षन्ति तनूकुर्वन्ति । अत्र वचनव्य-

त्वयेनैकवचनम् (ये) (च) (अर्वते) अश्वाय (पचनम्) पाकसाधनम् (सम्भरन्ति) सम्यग्धरन्ति पुष्णन्ति वा(उतो) अपि (तेषाम्) (अभिगूर्त्तिः) अभ्युद्यमः (नः) अस्मान् (इन्वतु) व्याप्नोतु प्राप्नोतु ॥ २९ ॥

अन्वयः—ये यूपव्रस्का उतापि ये यूपवाहा अश्वयूपाय चषालं तक्षति ये चार्वते पचनं सम्भरन्ति उतो ये प्रयतन्ते तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ २९ ॥

भावार्थः—ये शिल्पिनोऽश्वबन्धनादीनि काष्ठविशेषजानि वस्तूनि निर्मिमते ये च वैद्या अश्वादीनामौषधानि सम्भारांश्च संगृह्णन्ति ते सदोद्यमिनः सन्तोऽस्मान् प्राप्नुवन्तु ॥ २९ ॥

पदार्थः—(ये) जो (यूपव्रस्काः) यज्ञ खंभा के छेदने बनाने (उत) और (ये) जो (यूपवाहाः) यज्ञस्तम्भ को पहुंचाने वाले (अश्वयूपाय) घोड़ा के बांधने के लिये (चषालम्) खम्भा के खण्ड को (तक्षति) काटते छांटते (ये, च) और जो (अर्वते) घोड़ा के लिये (पचनम्) जिस में पाक किया जाय उस काम को (सम्भरन्ति) अच्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते (उतो) और जो उत्तम यत्न करते हैं (तेषाम्) उन का (अभिगूर्त्तिः) सब प्रकार से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) व्याप्त और प्राप्त होवे ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो कारुक शिल्पी जन घोड़ा के बांधने आदि काम के काठों से विशेष काम बनाते और जो वैद्य घोड़े आदि पशुओं की ओषधि और उन की सजावट की सामग्रियों को इकट्ठा करते हैं वे सदा उद्यम करते हुए हम लोगों को प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

उप प्रागादित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनः के केषां सकाशात् किं गृह्णीयुरित्याह ॥

फिर कौन किन से क्या लेवें इस वि० ॥

उप प्रागात्सुमन्मेंऽधायि मन्म देवानामाशाऽउप वीतपृष्ठः । अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ३० ॥

उप । प्र । अगात् । सुमदिति सुऽमत् । मे । अधायि । मन्म । देवानाम् । आशाः । उप । वीतपृष्ठ इति वीतऽपृष्ठः । अनु । एनम् । विप्राः । ऋषयः । मदन्ति । देवानाम् । पुष्टे । चकृम । सुबन्धुमिति सुऽबन्धुम् ॥ ३० ॥

पदार्थः—(उप) सामीप्ये (प्र) (अगात्) प्राप्नुयात् (सुमत्) स्वयम् (मे) मम (अधायि) ध्रियते (मन्म) विज्ञानम् (देवानाम्) विदुषाम् (आशाः) दिशः (उप) (वीतपृष्ठः) वीतं व्याप्तं पृष्ठं यस्य सः (अनु) (एनम्) (विप्राः) मेधाविनः (ऋषयः (मंत्रार्थविदः (मदन्ति) कामयन्ते (देवानाम्) विदुषाम् (पुष्टे) पुष्टे जने (चकृम) कुर्याम् । अत्र संहितायामिति दीर्घः । (सुबन्धुम्) शोभना बन्धवो भ्रातरो यस्य तम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—येन सुमत्स्वयं देवानां वीतपृष्ठो यज्ञोऽधायि येनैतेषां मे च मन्माशाश्चोपप्रागाद्यमेनमनुदेवानां पुष्टे ऋषयो विप्रा उपमदन्ति तं सुबन्धुं वयं चकृम ॥ ३० ॥

भावार्थः—हे विदुषां सकाशाद्विज्ञानं प्राप्यर्षयो भवन्ति ते सर्वान् विज्ञानदानेन पोषयन्ति येऽन्योन्यस्योन्नतिं विधाय सिद्धकामा भवन्ति ते जगद्धितैषिणो जायन्ते ॥ ३० ॥

पदार्थः—जिस ने (सुमत्) आप ही (देवानाम्) विद्वानों का (वीतपृष्ठः) जिस का पिछला भाग व्याप्त वह उत्तम व्यवहार (अश्वि) धारण किया वा जिस से इन के और (मे) मेरे (मन्म) विज्ञान को तथा (आशाः) दिशा दिशान्तरों को (उप, प्र, अगात्) प्राप्त हो वा जिस (एनम्) इस प्रत्यक्ष व्यवहार के (अनु) अनुकूल (देवानाम्) विद्वानों के बीच (पुष्टे) पुष्ट बलवान् जन के निमित्त (ऋषयः) मंत्रों का अर्थ जानने वाले (विप्राः) धीरबुद्धि पुरुष (उप, मदन्ति) समीप हो कर आनन्द को प्राप्त होते हैं उस (सुबन्धुम्) सुन्दर २ भाइयों वाले जन को हम लोग (चकृम) उत्पन्न करें ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो विद्वानों के समीप मे उत्तम ज्ञान को पाके ऋषि होते हैं वे सब के विज्ञान देने से पुष्ट करते हैं जो परस्पर एक दूसरे की उन्नति कर परिपूर्ण काम वाले होते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥ ३० ॥

यद्वाजिन इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता ।

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनः के कैः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर कौन किन से क्या करें इस वि० ॥

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य । यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३१ ॥

यत्। वाजिनः। दाम। सन्दानमिति सम्ऽदानम्। अर्वतः। या। शीर्षण्या। रशना। रज्जुः। अस्य। यत्। वा। घ। अस्य। प्रभृतमिति प्रऽभृतम्। आस्ये। तृणम्। सर्वा। ता। ते। अपि। देवेषु। अस्तु॥३१॥

पदार्थः—(यत्) (वाजिनः) प्रशस्तवेगवतः (दाम) उदरबन्धनम् (सन्दानम्) पादादिबन्धनादीनि (अर्वतः) बलिष्ठस्याऽश्वस्य (या) (शीर्षण्या) शिरसि भवा (रशना) व्यापुवती (रज्जुः) (अस्य) (यत्) (वा) (घ) एव (अस्य) (प्रभृतम्) प्रकर्षेण धृतम् (आस्ये) मुखे (तृणम्) घासविशेषम् (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तव अपि (देवेषु) विद्वत्सु (अस्तु) ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् वाजिनोऽस्यार्वतो यद्दाम सन्दानं या शीर्षण्या रशना रज्जुर्यद्वाऽस्यास्ये तृणं प्रभृतं ता सर्वा ते सन्तु। एतत्सर्वं घ देवेष्वप्यस्तु ॥ ३१ ॥

भावार्थः—येऽश्वान् सुशिक्ष्य सर्वावयवबन्धनानि सुन्दराणि भक्ष्यं भोज्यं पेयं च अत्युत्तमं च कुर्वन्ति ते विजयादीनि कार्याणि साद्धुं शक्नुवन्ति ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (वाजिनः) प्रशस्त वेग वाले (अस्य) इस (अर्वतः) बलवान् घोड़े का (यत्) जो (दाम) उदरबन्धन अर्थात् तंगी और (संदानम्) अगाड़ी पछाड़ी पैर आदि में बांधने की रस्सी वा (या) जो (शीर्ष्ण-

श्या)शिर में होने वाली (रशना) मुह में व्याप्त (रज्जुः) रस्सी मुहेरा आदि (यत्, वा) अथवा जो (अस्य) इस घोड़े के (आस्ये) मुख में(तृणम्)घास दूब आदि विशेष तृण (प्रभृतम्) उत्तमता से धरी हो (ता) वे (सर्वा) सब पदार्थ (ते) तेरे हों और यह उक्त समस्त वस्तु (च) ही (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो पुरुष घोड़ों को अच्छी शिक्षा कर उन के सब अंगों के बन्धन सुन्दर २ तथा खाने पीने के श्रेष्ठ पदार्थ और उत्तम २ औषध करते हैं वे शत्रुओं को जीतना आदि काम सिद्ध कर सकते हैं ॥ ३१ ॥

यदश्वस्येत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता ।

निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनः कथं के रक्षया इत्याह ॥

फिर कैसे कौन रक्षा करने योग्य हैं इस वि० ॥

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति । यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३२ ॥

यत् । अश्वस्य । क्रविषः । मक्षिका । आश । यत् । वा । स्वरौ । स्वधिताविति स्वऽधितौ । रिप्तम् । अस्ति । यत् । हस्तयोः । शमितुः । यत् । नखेषु । सर्वा । ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (अश्वस्य) आशुगामिनः (क्रविषः) गन्तुः (मक्षिका)(आश) अश्नाति (यत्)यौ(वा) (स्वरौ)

(स्वधितौ) वज्रवद्वर्त्तमानौ (रिप्तम्) प्राप्तम् (अस्ति) (यत्) (हस्तयोः) (शमितुः) यज्ञस्य कर्त्तुः (यत्) (नखेषु) (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तव (अपि) (देवेषु) विद्वत्सु (अस्तु) ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यद्या मक्षिका क्रविषोऽश्वस्याऽऽश वा यत्स्वरौ स्वधितौ स्तः शमितुर्हस्तयोर्यद्रिप्तं यच्च नखेषु रिप्तमस्ति ता सर्वा ते सन्तु । एतत्सर्वं देवेष्वप्यस्तु ॥ ३२ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरीदृशायां शालायामश्वा बन्धनीया यत्रैषां रुधिरादिकं मक्षिकादयो न पिबेयुः । यथा यज्ञकर्त्तुर्हस्तयोर्लिप्तं हविः प्रक्षालनादिना निवारयन्ति तथैवाश्वादीनां शरीरे लिप्तानि धूल्यादीनि नित्यं निवारयन्तु ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (मक्षिका) मक्खी (क्रविषः) चलते हुए (अश्वस्य). शीघ्र जाने वाले घोड़े का (आश) भोजन करती अर्थात् कुछ मल रुधिर आदि खाती (वा) अथवा (यत्) जो (स्वरौ) स्वर (स्वधितौ) वज्र के समान वर्त्तमान हैं वा (शमितुः) यज्ञ करने हारे के (हस्तयोः) हाथों में (यत्) जो वस्तु (रिप्तम्) प्राप्त और (यत्) जो (नखेषु) नखों में प्राप्त (अस्ति) है (ता) वे (सर्वा) सब पदार्थ (ते) तुम्हारे हों तथा यह समस्त व्यवहार (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) होवे ॥ ३२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसी घुड़शाल में घोड़े बांधने चाहियें जहां इन का रुधिर आदि मांछि आदि न पीवें । जैसे यज्ञ करने हारे के हाथ में लिपटे हुए हवि को धोने आदि से छुड़ाते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओं के शरीर में लिपटी धूलि आदि को नित्य छुड़ावें ॥ ३२ ॥

यदूवध्यमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

पुनः के किमर्थं किं न कुर्युरित्याह ॥
फिर कौन किस लिये क्या न करें इस वि० ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धोऽअस्ति । सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधꣳ शृतपाकं पचन्तु ॥ ३३ ॥

यत् । ऊवध्यम् । उदरस्य । अपवातीत्यपऽवाति । यः । आमस्य । क्रविषः । गन्धः । अस्ति । सुकृतेति सुऽकृता । तत् । शमितारः । कृण्वन्तु । उत । मेधम् । शृतपाकमिति शृतऽपाकम् । पचन्तु ॥३३॥

पदार्थः-(यत्) (ऊवध्यम्) मलीनम् (उदरस्य) उदरस्य सकाशात् (अपवाति) अपगच्छति (यः) (आमस्य) अपरिपक्वस्य (क्रविषः) भक्षितस्य (गन्धः) (अस्ति) (सुकृता) सुकृतं सुष्ठुसंस्कृतम् । अत्राकारादेशः (तत्) (शमितारः) शान्तिकराः (कृण्वन्तु) कुर्वन्तु (उत) अपि (मेधम्)पवित्रम् (शृतपाकम्) शृतः पक्वः पाको यस्य तत् (पचन्तु) ॥ ३३ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या उदरस्य यदूवध्यमपवाति य आमस्य क्रविषो गन्धोऽस्ति तच्छमितारः सुकृता कृण्वन्तूतापि मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ ३३ ॥

भावार्थः—ये जना यज्ञं कर्त्तुमिच्छेयुस्ते दुर्गन्धयुक्तं द्रव्यं विहाय सुगन्धादियुक्तं सुसंस्कृतं पाकं कृत्वाऽग्नौ जुहुयुस्ते जगद्धितैषिणो भवन्ति ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (उदरस्य) पेट के कोष्ठ से (यत्) जो (ऊवध्यम्) मलिन मल (अपवाति) निकलता और (यः) जो (आमस्य) न पचे कच्चे (क्रविषः) खाये हुए पदार्थ का (गन्धः) गन्ध (अस्ति) है (तत्) उस को (शमितारः) शान्ति करने अर्थात् आराम देने वाले (सुकृता) अच्छा सिद्ध (कृण्वन्तु) करें (उत) और (मेधम्) पवित्र (शृतपाकम्) जिस का सुन्दर पाक बने उस को (पचन्तु) पकावें ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो लोग यज्ञ करना चाहें वे दुर्गन्धयुक्त पदार्थ को छोड़ सुगन्धि आदि युक्त सुन्दरता से बनाया पाक कर अग्नि में होम करें वे जगत् का हित चाहने वाले होते हैं ॥ ३३ ॥

यत्ते गात्रादित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता ।
भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैः केन किं निस्सारणीयमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को किस से क्या निकालना चाहिये इस वि० ॥

यत्ते गात्रा॑द॒ग्निना॑ प॒च्यमा॑नाद॒भि शूलं॒ निह॑तस्याव॒धाव॑ति । मा तद्भूम्या॒मा श्रि॑ष॒न्मा तृणे॑षु दे॒वेभ्य॒स्तदु॒शद्भ्यो॑ रा॒तम॑स्तु ॥ ३४ ॥

यत् । ते॒ । गात्रा॑त् । अ॒ग्निना॑ । प॒च्यमा॑नात् । अ॒भि । शूल॑म् । निह॑त॒स्येति॒ निऽह॑तस्य । अ॒व॒धाव॒तीत्य॑व॒ऽधाव॑ति । मा । तत् । भूम्या॑म् । आ । श्रि॒ष॒त् । मा । तृणे॑षु । दे॒वेभ्यः॑ । तत् । उ॒शद्भ्य॒ इत्यु॒शत्ऽभ्यः॑ । रा॒तम् । अ॒स्तु॒ ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(यत्) यदा (ते) तव (गात्रात्) अङ्गात् (अग्निना) अन्तःकरणरूपेण तेजसा (पच्यमानात्) (अभि) (शूलम्) शु शीघ्रं लाति बोधं गृह्णाति येन तद्वचः । पृषोदरादित्वात्सिद्धम् (निहतस्य) निश्चयेन कृतश्रमस्य (अवधावति) गच्छति (मा) (तत्) (भूम्याम्) (आ, श्रिषत्) आश्रयति (मा) (तृणेषु) (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (तत्) (उशद्भ्यः) सत्पुरुषेभ्यः (रातम्) दत्तम् (अस्तु) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्य निहतस्य तेतवाग्निना पच्यमानाद्गात्राद्यच्छूलमभ्यवधावति तद्भूम्यां मा श्रिषत् । तत्तृणेषु माश्रिषत् किन्तु तच्चोशद्भ्यो देवेभ्यो रातमस्तु ॥ ३४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यानि ज्वरादिपीडितान्यङ्गानि भवेयुस्तानि वैद्येभ्यो नीरोगाणि कार्याणि तैर्यदौषधं दीयेत तद्रोगिभ्यो हितकरं भवति ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (निहतस्य) निश्चय से श्रम किये हुए (ते) तेरे (अग्नि) अन्तःकरणरूप तेज से (पच्यमानात्) पकाये जाते (गात्रात्) अंग से (यत्) जो (शूलम्) शीघ्र बोध का हेतु वचन (अभि, अवधावति) चारों ओर से निकलता है (तत्) वह (भूम्याम्) भूमि पर (मा, आ, श्रिषत्) नहीं आता है तथा (तत्) वह (तृणेषु) तृणों पर (मा) नहीं आता किन्तु वह तो (उशद्भ्यः) सत्पुरुष (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (रातम्) दिया (अस्तु) होवे ॥ ३४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो ज्वर आदि से पीडित अंग हों उन को वैद्य जनों से नीरोग कराना चाहिये क्योंकि उन वैद्य जनों से जो औषध दिया जाता है वह रोगी जन के लिये हितकारी होता है ॥ ३४ ॥

ये वाजिनमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वे देवा देवताः ।
स्वराड् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनः के निरोद्धव्या इत्याह ॥
फिर कौन रोकने योग्य हैं इस वि० ॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति । ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ ३५ ॥

ये । वाजिनम् । परिपश्यन्तीति परिऽपश्यन्ति । पक्वम् । ये । ईम् । आहुः । सुरभिः । निः । हर । इति । ये । च । अर्वतः । मांसभिक्षामिति मांसऽभिक्षाम् । उपासतइत्युपऽआसते । उतो इत्युतो । तेषाम् । अभिगूर्त्तिरित्यभिऽगूर्त्तिः । नः । इन्वतु ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(ये) (वाजिनम्) वेगवन्तमश्वम् (परिपश्यन्ति) सर्वतोऽन्वीक्षन्ते (पक्वम्) परिपक्वस्वभावम् (ये) (ईम्) प्राप्तम् (आहुः) (सुरभिः) सुगन्धः (निः) नितराम् (हर) निस्सारय (इति) (ये) (च) (अर्वतः) अश्वस्य (मांसभिक्षाम्) मांसयाचनाम् (उपासते) (उतो) अपि (तेषाम्) (अभिगूर्त्तिः) अभ्युद्यमः (नः) अस्मान् (इन्वतु) प्राप्नोतु ॥ ३५ ॥

अन्वयः—येऽर्वतो मांसभिक्षामुपासते च येऽश्वमीं हन्तव्यमाहुस्तान्निर्हर दूरे प्रक्षिप । ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति उतो अपि तेषां सुरभिरभिगूर्त्तिर्न इन्वत्विति ॥ ३५ ॥

भावार्थः—येऽश्वादिश्रेष्ठानां पशूनां मांसमत्तुमिच्छेयुस्ते राजादिभिः श्रेष्ठैर्निरोद्धव्या यतो मनुष्याणामुद्यमसिद्धिः स्यात् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(ये) जो (अर्वतः) घोड़े के (मांसभिक्षाम्) मांस के मांगने की (उपासते) उपासना करते (च) और (ये) जो घोड़ा को (इम्) पाया हुआ मारने योग्य (आहुः) कहते हैं उनको (नि, हर) निरन्तर हरो दूर पहुंचाओ (ये) जो (वाजिनम्) वेगवान् घोड़ों को (पक्वम्) पक्का सिखा के (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (उतो) और (तेषाम्) उन का (सुराभिः) अच्छा सुगन्ध और (अभिगूर्त्तिः) सब ओर से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) प्राप्त हो उनके अच्छे काम हमको प्राप्त हों (इति) इस प्रकार दूर पहुंचाओ ॥ ३५ ॥

भावार्थः— जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें वे राजा आदि श्रेष्ठ पुरुषों को रोकने चाहियें जिस से मनुष्यों का उद्यम सिद्ध हो ॥ ३५ ॥

यन्नीक्षणमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता ।
भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनः केन किं निरीक्षणीयमित्याह ॥
फिर किस को क्या देखना चाहिये इस वि० ॥

यन्नीक्षणं माᳩस्पचंन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि । ऊष्मण्याऽपिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ ३६ ॥

यत् । नीक्षणमिति निऽईक्षणम् । माᳩस्पचन्या इति माᳩस्पचन्याः । उखायाः । या । पात्राणि । यूष्णः । आसेचनानीत्याऽसेचनानि । ऊष्मण्या । अपिधानेत्यपिऽधाना । चरूणाम् । अङ्काः । सूनाः । परि । भूषन्ति । अश्वम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(यत्) (नीक्षणम्) निकृष्टं तदीक्षणं दर्शनं च तत् (मांस्पचन्याः) मांसं पचन्ति यस्यां तस्याः (उखायाः) स्थाल्याः (या) यानि (पात्राणि) (यूष्णः) वद्धकस्य (आसेचनानि) समन्तात् सिञ्चन्ति यैस्तानि (ऊष्मण्या) ऊष्मसु साधूनि (अपिधाना) आच्छादनानि (चरूणाम्) पात्राणाम् (अङ्काः) लक्षिताः (सूनाः) प्रसूताः (परि) सर्वतः (भूषन्ति) अलङ्कुर्वन्ति (अश्वम्) ॥ ३६ ॥

अन्वयः—या ऊष्मण्याऽपिधानाऽऽसेचनानि पात्राणि यन्मांस्पचन्या उखाया नीक्षणं चरूणामङ्काः सूना यूष्णोऽश्वं परिभूषन्ति तानि स्वीकर्त्तव्यानि ॥ ३६ ॥

भावार्थः—यदि केचिदश्वादीनामुपकारिणां पशूनां शुभानां पक्षिणां मांसाहारं कुर्युस्तर्हि तेभ्यो दण्डो यथाऽपराधं दातव्य एव॥३६॥

पदार्थः—(या) जो (ऊष्मण्या) गरमियों में उत्तम (अपिधाना) ढांपने (आसेचनानि) और सिंचाने हारे (पात्राणि) पात्र वा (यत्) जो (मांस्पचन्याः) मांस जिस में पकाया जाय उस (उखायाः) बटलोई का (नीक्षणम्) निकृष्ट देखना वा (चरूणाम्) पात्रों के (अङ्काः) लक्षण किये हुए (सूनाः) प्रसिद्ध पदार्थ तथा (यूष्णः) बढ़ाने वाले के (अश्वम्) घोड़े को (परि, भूषन्ति) सब ओर से सुशोभित करते हैं वे सब स्वीकार करने योग्य हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—यदि कोई घोड़े आदि उपकारी पशुओं और उत्तम पक्षियों का मांस खावें तो उन को यथापराध अवश्य दण्ड देना चाहिये ॥ ३६ ॥

मा त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्वराट्
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैर्मांसभक्षणं न कर्त्तव्यमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को मांस न खाना चाहिये इस वि० ॥

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः । इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ ३७ ॥

मा । त्वा । अग्निः । ध्वनयीत् । धूमगन्धिरिति धूमऽगन्धिः । मा । उखा । भ्राजन्ती । अभि । विक्त । जघ्रिः । इष्टम् । वीतम् । अभिगूर्त्तमित्यभिऽगूर्त्तम् । वषट्कृतमिति वषट्ऽकृतम् । तम् । देवासः । प्रति । गृभ्णन्ति । अश्वम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(मा) (त्वा) तम् (अग्निः) पावकः (ध्वनयीत्) शब्दयेत् (धूमगन्धिः) धूमे गन्धो यस्य सः (मा) (उखा) स्थाली (भ्राजन्ती) प्रकाशमाना (अभि) सर्वतः (विक्त) विजानीत (जघ्रिः) जिघ्रति यस्याः सा (इष्टम्) अभीप्सितम् (वीतम्) प्राप्तम् (अभिगूर्त्तम्) अभितः कृतोद्यमम् (वषट्कृतम्) क्रियासिद्धम् (तम्) (देवासः) विद्वांसः (प्रति) (गृभ्णन्ति) गृह्णन्ति (अश्वम्) वेगवन्तम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा देवासो यमिष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतमश्वं प्रतिगृभ्णन्ति तं यूयमभि विक्त त्वा तं धूमगन्धिरग्निर्मा ध्वनयीत् जघ्रिर्भ्राजन्त्युखा मा ध्वनयीत् ॥ ३७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा विद्वांसो मांसाहारिणो निवार्याऽश्वादीनां वृद्धिं रक्षां च कुर्वन्ति तथा यूयमपि कुरुत । अग्न्यादिविघ्नेभ्यः पृथग्रक्षत ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (देवासः) विद्वान् जन जिस (इष्टम्) चाहे हुए (वीतम्) प्राप्त (अभिगूर्त्तम्) चारों ओर से जिस में उद्यम किया गया (वषट्कृतम्) ऐसे क्रिया से सिद्ध हुए (अश्वम्) वेगवान घोड़े को प्रति (गृभ्णन्ति) प्रतीति से ग्रहण करते उस को तुम(अभि) सब ओर से (वित्त) जानो (त्वा)उस को (धूमगन्धिः) धुंआ में गन्ध जिस का वह (अग्निः) अग्नि (मा) मत (ध्वनयीत्) शब्द करे वा (तम्) उस को (जघ्रिः) जिस से किसी वस्तु को सूंघते हैं वह (भ्राजन्ती) चमकती हुई (उखा) बटलोई(मा) मत हिंसवावे ॥३७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् मांसाहारियों को निवृत्त कर घोड़ा आदि पशुओं की वृद्धि और रक्षा करते हैं वैसे तुमभी करो और अग्नि आदि के विघ्नोंसे अलगरक्खो॥३७॥

निक्रमणमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता ।
विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमःस्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः । यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३८ ॥

निक्रमणमिति निऽक्रमणम् । निषदनम् । निसदनमिति निऽसदनम् । विवर्त्तनमिति विऽवर्त्तनम् । यत् ।

च । पड्वीशम् । अर्वतः । यत् । च । पपौ । यत् । च । घासिम् । जघास । सर्वा । ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ ३८ ॥

पदार्थः-(निक्रमणम्) निरन्तरंक्रमते यस्मिँस्तत् (निषदनम्) नितरां सीदन्ति यस्मिँस्तत् (विवर्त्तनम्) विशेषेण वर्त्तन्ते यस्मिँस्तत् (यत्) (च) (पड्वीशम्) यत्पादेषु विशति तत् (अर्वतः) अश्वस्य (यत्) (च) पपौ पिबति (यत्) (च) (घासिम्) अदनम् (जघास) अत्ति (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तव अपि (देवेषु) दिव्येषु गुणेषु (अस्तु)॥ ३८ ॥

अन्वयः-हे विद्वन् यत्तेऽर्वतो निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशं यच्चायं पपौ यच्च घासिं जघास ता सर्वा युक्तया सन्तु तद्देवेष्वप्यस्तु ॥ ३८ ॥

भावार्थः-हे मनुष्या भवन्तोऽश्वादीनां सुशिक्षणेन भक्ष्यपेयदानेन सर्वाणि कार्याणि साध्नुवन्तु ॥ ३८ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् जो (ते) तेरे (अर्वतः) घोड़े का (निक्रमणम्) निकलना (निषदनम्) बैठना (विवर्त्तनम्) विशेष कर वर्त्ताव वर्त्तना (च) और (यत्) जो (पड्वीशम्) पछाड़ी (यत्, च) और जो यह (पपौ) पीता (यत्) (च) और जो (घासिम्) घास (जघास) खाता (ता) वे (सर्वा) सब काम युक्ति के साथ हों और यह सब (देवेषु) दिव्य उत्तम गुण वालों में (अपि) भी (अस्तु) होवे ॥ ३८ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो! आप घोड़े आदि पशुओं को अच्छी शिक्षा तथा खान पान के देने से अपने सब कार्यों को सिद्ध किया करो ॥ ३८ ॥

यदश्वायेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

यदश्वा॑य॒ वास॑ उप॒स्तृ॒णन्त्य॑धीवा॒सं या हिर॑ण्यान्यस्मै । सं॒दान॒मर्व॑न्तं॒ पड्वी॑शं प्रि॒या दे॒वेष्वा या॑मयन्ति ॥ ३९ ॥

यत् । अश्वा॑य । वासः॑ । उ॒प॒स्तृ॒णन्तीत्यु॑पऽस्तृ॒णन्ति॑ । अ॒धी॒वा॒सम् । अ॒धि॒वा॒समित्य॑धिऽवा॒सम् । या । हिर॑ण्यानि । अ॒स्मै॒ । स॒न्दा॒न॒मिति॑ सम्ऽदा॒नम् । अर्व॑न्तम् । पड्वी॑शम् । प्रि॒या । दे॒वेषु॑ । आ । या॒म॒य॒न्ति॒ । य॒म॒य॒न्तीति॑ यमयन्ति ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(यत्) (अश्वाय) (वासः) वस्त्रम् (उपस्तृणन्ति) आच्छादयन्ति (अधीवासम्) उपरिस्थापनीयम्(या) यानि (हिरण्यानि) हिरण्येर्निर्मितानि आभूषणादीनि(अस्मै) (सन्दानम्) शिरोबन्धनादि (अर्वन्तम्) गच्छन्तम् (पड्वीशम्) पद्भिर्विशन्तम् (प्रिया) प्रियाणि (देवेषु) विद्वत्सु (आ) समन्तात् (यामयन्ति) नियमयन्ति ॥३९॥

अन्वयः—हे मनुष्या भवन्तोऽस्मा अश्वाय यद्वासोऽधीवासं सन्दानं या हिरण्यान्युपस्तृणन्ति यं पड्वीशमर्वन्तमायामयन्ति तानि सर्वाणि देवेषु प्रियाः सन्तु ॥ ३९ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या अश्वादीन् पशून् यथावद्रक्षयित्वोपकारं गृह्णीयुस्तर्हि बहुकार्यसिद्ध्युपकृताः स्युः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! आप (अस्मै) इस (अश्वाय) घोड़े के लिये (यत्) जो (वासः) वस्त्र (अधीवासम्) चारजामा (सन्दानम्) मुहेरा आदि और (या) जिन (हिरण्यानि) सुवर्ण के बनाये हुए आभूषणों को (उपस्तृणन्ति) ढ़पाते वा जिस (पड्वीशम्) पैरों से प्रवेश करते और (अर्वन्तम्) जाते हुए घोड़े को (आ, यामयन्ति) अच्छे प्रकार नियममें रखते हैं वे सब पदार्थ और काम (देवेषु) विद्वानों में (प्रिया) प्रीति देने वाले हों ॥ ३६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं की यथावत् रक्षा करके उपकार लेवें तो बहुत कार्यों की सिद्धि से उपकारयुक्त हों ॥ ३९ ॥

यत्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता ।
भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

यत्ते॑ सा॒दे मह॑सा॒ शूकृ॑तस्य॒ पार्ष्ण्या॑ वा॒ कश॑या वा तु॒तोद॑ । स्रु॒चेव॒ ता ह॒विषो॑ऽअध्व॒रेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ ब्रह्म॑णा सूदयामि ॥ ४० ॥

यत् । ते॒ । सा॒दे । मह॑सा । शूकृ॑तस्य । पार्ष्ण्या॑ । वा॒ । कश॑या । वा॒ । तु॒तोद॑ । स्रु॒चेवेति॑ स्रु॒चाऽइ॑व । ता । ह॒विषः॑ । अ॒ध्व॒रेषु॑ । सर्वा॑ । ता । ते॒ । ब्रह्म॑णा । सू॒द॒या॒मि॒ ॥ ४० ॥

पदार्थः—(यत्) यतः (ते) तव (सादे) स्थित्यधिकरणे (महसा) महत्वेन (शूकृतस्य) शीघ्रं शिक्षितस्य । शिवति क्षिप्रना० निघं०२।१५ (पार्ष्ण्या) पार्ष्णिषु कक्षासु साधूनि (वा) (कशया) ताडनसाधनेन (वा) (तुतोद) तुद्यात् (स्रुचेव) यथा स्रुचा प्रेरयन्ति तथा (ता) तानि (हविषः) होतुमर्हस्य (अध्वरेषु) अहिंसनीयेषु यज्ञेषु (सर्वा) सर्वाणि (ता) तानि (ते) तुभ्यम् (ब्रह्मणा) धनेन(सूदयामि प्रापयामि ॥ ४० ॥

अन्वयः— हे विद्वाँस्ते सादे महसा शूकृतस्य कशया वा यत्पाष्ण्या वा तुतोद ता तान्यध्वरेषु हविषः स्रुचेव करोषि ता सर्वा ते ब्रह्मणाऽहं सूदयामि ॥ ४० ॥

भावार्थः— अत्रोपमालं०-यथा यज्ञसाधनैर्हवींष्यग्नौ प्रेरयन्ति तथैवाश्वादीनि सुशिक्षारीत्या प्रेरयेयुः ॥ ४० ॥

पदार्थः— हे विद्वन् ! (ते) आप के (सादे) बैठने के स्थान में (महसा) बड़प्पन से (वा) अथवा (शूकृतस्य) जल्दी सिखाये हुए घोड़े के (कशया) कोड़े से (यत्) जिस कारण (पाष्ण्या) पशुली आदि स्थान (वा) वा कक्षाओं में जो उत्तम ताड़ना आदि काम वा (तुतोद) साधारण ताड़ना देना (ता) उन सब को (अध्वरेषु) यज्ञों में (हविषः) होमने योग्य पदार्थ संबन्धी (स्रुचेव) जैसे स्रुचा प्रेरणा देती वैसे करते हो (ता) वे (सर्वा) सब काम (ते) तेरे लिये (ब्रह्मणा) धन से (सूदयामि) प्राप्त करता हूं ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे यज्ञ के साधनों से होमने योग्य पदार्थों को प्रेरणा देते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओं को अच्छी सिखावट की रीति से प्रेरणा देवें ॥ ४० ॥

चतुस्त्रिंशदित्यस्य गोतमऋषिः । यज्ञो देवता ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह

फिर उसी वि० ॥

चतु॑स्त्रिꣳशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ समे॑ति । अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोत॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त ॥ ४१ ॥

चतुस्त्रिᳪंशदिति चतुःऽत्रिᳪंशत् । वाजिनः । देवबन्धोरिति देवऽबन्धोः । वङ्क्रीः । अश्वस्य । स्वधितिरिति स्वऽधितिः । सम् । एति । अच्छिद्रा । गात्रा । वयुना । कृणोतु । परुष्परुः । परुःपरुरिति परुःऽपरुः । अनुघुष्येत्यनुऽघुष्य । वि । शस्त ॥४१॥

पदार्थः— (चतुस्त्रिंशत्) शिक्षणानि (वाजिनः) वेगवतः (देवबन्धोः) देवा विद्वांसो बन्धुवद्यस्य तस्य (वङ्क्रीः) कुटिला गतीः (अश्वस्य) (स्वधितिः) वज्रइव वर्त्तमानः (सम्) सम्यक् (एति) गच्छति (अच्छिद्रा) छिद्ररहितानि (गात्रा) गात्राणि (वयुना) वयुनानि प्रज्ञानानि (कृणोतु) (परुष्परुः) मर्म्ममर्म (अनुघुष्य) आनुकूल्येन घोषयित्वा। अत्रसंहितायामिति दीर्घः (वि) विशेषेण (शस्त) छिन्त॥४१॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽश्वशिक्षको देवबन्धोर्वाजिनोऽश्वस्य चतुस्त्रिंशद्वङ्क्रीः समेत्यच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोतु तस्य परुष्परुरनुघुष्य स्वधितिरिव रोगान् यूयं विशस्त ॥ ४१ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा चतुरोऽश्वशिक्षकश्चतुस्त्रिंशद्विचित्रागतीरश्वं नयति वैद्यश्चारोगिणं करोति तथैवान्येषां पशूनां रक्षणेनोन्नतिः कार्या ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे घुड़चढ़ा चाबुकी जन (देवबन्धोः) जिस के विद्वान् बन्धु के समान उस (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (चतुस्त्रिंशत्) चौंतीश (वङ्क्रीः) टेढ़ी बेंढी चालों को (सम्, एति) अच्छे

प्रकार प्राप्त होता और (अच्छिद्रा) छेद भेदरहित (गात्रा) अङ्ग और (वयुना) उत्तम ज्ञानों को (कृणोतु) करे वैसे उसके (परुष्परुः) प्रत्येक मर्मस्थान को (अनुघुष्य) अनुकूलता से बजाकर (स्वधितिः) वज्र के समान वर्त्तमान तुम लोग रोगों को (वि, शस्त) विशेषता से छिन्न भिन्न करो ॥ ४१ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जैसे घोड़ों को सिखाने वाला चतुर जन चौंतीस चिह्न विशेष गतियों को घोड़े को पहुंचाता और वैद्य जन प्राणियों को नीरोग करता है वैसे ही और पशुओं की रक्षा से उन्नति करना चाहिये ॥ ४१ ॥

एकस्त्वष्टुरित्यस्य गोतम ऋषिः । यजमानो देवता ।
स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनः कथं पशवः शिक्षणीया इत्याह ॥
फिर किस प्रकार पशु सिखाने चाहियें इस वि० ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथऽऋतुः । या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ ४२ ॥

एकः । त्वष्टुः । अश्वस्य । विशस्तेति विऽशस्ता । द्वा । यन्तारा । भवतः । तथा । ऋतुः । या । ते । गात्राणाम् । ऋतुथेत्यृतुऽथा । कृणोमि । तातेति ताता । पिण्डानाम् । प्र । जुहोमि । अग्नौ ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(एकः) असहायः (त्वष्टुः) प्रदीप्तस्य (अश्वस्य) तुरङ्गस्य । अत्र संहितायामिति दीर्घः (विशस्ता) विच्छेदकः (द्वा) द्वौ (यन्तारा) नियामकौ (भवतः)

(तथा) तेन प्रकारेण (ऋतुः) वसन्तादिः (या) यानि (ते) तव (गात्राणाम्) अङ्गानाम् (ऋतुथा) ऋतोः (कृणोमि) (ताता) तानि तानि (पिण्डानाम्) (प्र) (जुहोमि) (अग्नौ) पावके ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथैक ऋतुस्त्वष्टुरश्वस्य विशस्ता भवति यौ द्वा यन्तारा भवतस्तथा या ते गात्राणां पिण्डानामृतुथा वस्तून्यहं कृणोमि ताताऽग्नौ प्रजुहोमि ॥ ४२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽश्वशिक्षकाः प्रत्यृत्वश्वान् सुशिक्षयन्ति तथा गुरवो विद्यार्थिनां चेष्टाकरणानि शिक्षयन्ति। यथाऽग्नौ पिण्डान् हुत्वा वायुं शोधयन्ति तथा विद्याऽग्नावविद्याभ्रमान् हुत्वाऽऽत्मनः शोधयन्ति ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (एकः) अकेला (ऋतुः) वसन्त आदि ऋतु (त्वष्टुः) शोभायमान (अश्वस्य) घोड़े का (विशस्ता) विशेष करके रूपादि का भेद करने वाला होता है वा जो (द्वा) दो (यन्तारा) नियम करने वाले (भवतः) होते हैं (तथा) वैसे (या) जिन (ते) तुम्हारे (गात्राणाम्) अंगों वा (पिण्डानाम्) पिण्डों के (ऋतुथा) ऋतु सम्बन्धी पदार्थों को मैं (कृणोमि) करता हूं (ताता) उन २ को (अग्नौ) आग में (प्र, जुहोमि) होमता हूं ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु० । जैसे घोड़ों के सिखाने वाले ऋतु २ के प्रति घोड़ों को अच्छा सिखलाते हैं वैसे गुरु जन विद्यार्थियों को क्रिया करना सिखलाते हैं वा जैसे अग्नि में पिण्डों का होम कर पवन की शुद्धि करते हैं वैसे विद्यारूपी अग्नि में अविद्यारूप भ्रमों को होम के आत्माओं की शुद्धि करते हैं ॥ ४२ ॥

मात्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । आत्मा देवता ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैरात्मादयः कथं शोधनीया इत्याह ।
फिर मनुष्यों को आत्मादि पदार्थ कैसे शुद्ध करने चाहियें इस वि० ॥

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते । मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ ४३ ॥

मा । त्वा । तपत् । प्रियः । आत्मा । अपियन्तमित्यपिऽयन्तम् । मा । स्वधितिरिति स्वऽधितिः । तन्वः । आ । तिष्ठिपत् । तिस्थिपदिति तिस्थिपत् । ते । मा । ते । गृध्नुः । अविशस्तेत्यविऽशस्ता । अतिहायेत्यतिऽहाय । छिद्रा । गात्राणि । असिना । मिथू । कः । इति कः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(मा) निषेधे (त्वा) त्वाम् (तपत्) तपेत् (प्रियः) यः प्रीणाति कामयते आनन्दयति वा (आत्मा) स्वस्वरूपम् (अपियन्तम्) योऽप्येति तम् (मा) (स्वधितिः) वज्रः (तन्वः) शरीरस्य मध्ये (आ) (तिष्ठिपत्) समन्तात्स्थापयेत् (ते) तव (मा) (ते) तव (गृध्नुः) अभिकाङ्क्षकः (अविशस्ता) अविच्छेदकः (अतिहाय) अत्यन्तं त्यक्त्वा (छिद्रा) छिद्राणि (गात्राणि) अङ्गानि (असिना) खड्गेन (मिथू) मिथः (कः) कुर्यात् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्ते प्रिय आत्माऽपियन्तं त्वा त्वामतिहाय मा तपत्स्वधितिस्ते तन्वो मा तिष्ठिपत्ते छिद्रा गात्राण्यविशस्ता गृध्नुर्मा तिष्ठिपदसिना मिथू मा कः ॥ ४३ ॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः स्व स्व आत्मा शोके न निपातनीयः, कस्याप्युपरि वज्रो न निपातनीयः, कस्याप्युपकारो न विच्छेदनीयश्च ॥ ४३ ॥

पदार्थः–हे विद्वान (ते) आप का जो (प्रियः) प्रीति वा आनन्द देने वाला यह (आत्मा) अपना निज रूप आत्मतत्त्व भी (अपियन्तम्) निश्चय से प्राप्त होते हुए (त्वा) आप को (अतिहाय) अतीव छोड़ के (मा, तपत्) मत संताप को प्राप्त हो (स्वधितिः) वज्र (ते) आप के (तन्वः) शरीर के बीच (मा, तिष्ठिपत्) मत स्थित करावे आप के (छिद्रा) छिन्न भिन्न (गात्राणि) अङ्गों को (अविशस्ता) विशेष न कटने और (गृध्नुः) चाहने वाला जन (मा) मत स्थित करावे तथा (असिना) तलवार से (मिथू) परस्पर मत (कः) चेष्टा करे ॥ ४३ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि अपने २ आत्मा को शोक में न डाले किसी के भी ऊपर वज्र न छोड़ और किसी का उपकार किया हुआ न नष्ट किया करे ॥ ४३ ॥

न वा इत्यस्य गोतम ऋषिः । आत्मा देवता ।
स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैः कीदृशानि यानानि कर्त्तव्यानीत्याह ॥
फिर मनुष्यों को कैसे रथ निर्माण करने चाहियें इस वि० ॥

न वाऽउऽएतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२॥ऽ इदेषि पथिभिः सुगेभिः । हरी ते युञ्जा पृषतीऽअभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ ४४ ॥

न । वै । ऊँ इत्यूँ । एतत् । म्रियसे । न । रिष्यसि । देवान् । इत् । एषि । पथिऽभिः । सुगेभिः । हरी इति हरी ।

ते । युञ्जा । पृषती इति पृषती । अभूताम् । उप । अस्थात् । वाजी । धुरि । रासभस्य ॥ ४४ ॥

पदार्थः– (न) निषेधे (वै) निश्चयेन (उ) इति वितर्के (एतत्) विज्ञानं प्राप्य (म्रियसे) (न) (रिष्यसि) हन्सि (देवान्) विदुषः (इत्) एव (एषि) (पथिभिः) मार्गैः (सुगेभिः) सुष्ठुगच्छन्ति येषु तैः (हरी) हरणशीलौ (ते) तव (युञ्जा) योजकौ (पृषती) स्थूलौ (अभूताम्) भवेताम् (उप) (अस्थात्) उपतिष्ठेत् (वाजी) वेगवान् (धुरि) धारणे (रासभस्य) अश्वसम्बन्धस्य ॥ ४४ ॥

अन्वयः– हे विद्वन् यद्येतद्विज्ञानं प्राप्नोषि तर्हि न त्वं म्रियसे न वै रिष्यसि सुगेभिः पथिभिर्देवानिदेषि यदि ते पृषती युञ्जा हरी अभूतामु तर्हि वाजी रासभस्य धुर्युपास्थात् ॥ ४४ ॥

भावार्थः– यथा विद्यया संयुक्तैर्वायुजलाग्निभिर्युक्ते रथे स्थित्वा मार्गान्सुखेन गच्छन्ति तथैवात्मज्ञानेन स्वस्वरूपं नित्यं बुद्ध्वा मरणहिंसात्रासं विहाय दिव्यानि सुखानि प्राप्नुयुः ॥ ४४ ॥

पदार्थः– हे विद्वन्! यदि (एतत्) इस पूर्वोक्त विज्ञान को पाते हो तो (न) न तुम (म्रियसे) मरते (न) न (वै) ही (रिष्यसि) मारते हो किंतु (सुगेभिः) सुगम (पथिभिः) मार्गों से (देवान्) विद्वानों (इत्) ही को (एषि) प्राप्त होते हो यदि (ते) आप के (पृषती) स्थूल शरीरयुक्त (युञ्जा) योग करने हारे घोड़े (हरी) पहुंचानेवाले (अभूताम्) हों (उ) तो (वाजी) वेगवान् एक घोड़ा (रासभस्य) अश्वजाति से संबन्ध रखने वाले खच्चर की (धुरि) धारणा के निमित्त (उप, अस्थात्) उपस्थित हो ॥४४॥

भावार्थः— जैसे विद्या से अच्छे प्रकार जिन का प्रयोग किया उन पवन जल और अग्नि से युक्त रथ में स्थित होके मार्गों को सुख से जाते हैं वैसे ही आत्मज्ञान से अपने स्वरूप को नित्य जान के मरण और हिंसा के डर को छोड़ दिव्य सुखों को प्राप्त हों ॥ ४४ ॥

सुगव्यमित्यस्य गोतम ऋषिः । प्रजा देवता ।
स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
केराज्योन्नतिः स्यादित्याह ॥
किन से राज्य की उन्नति होवे इस वि० ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ२ऽ उत विश्वापुषं रयिम् । अनागास्त्वं नोऽअदितिः कृणोतु क्षत्रं नोऽअश्वो वनताᳬं हविष्मान् ॥४५॥

सुगव्यमिति सुऽगव्यम् । नः । वाजी । स्वश्व्यमिति सुऽअश्व्यम् । पुंसः । पुत्रान् । उत । विश्वापुषम् । विश्वपुषमिति विश्वऽपुषम् । रयिम् । अनागास्त्वमित्यनागःऽत्वम् । नः । अदितिः । कृणोतु । क्षत्रम् । नः । अश्वः । वनताम् । हविष्मान् ॥ ४५ ॥

पदार्थः— (सुगव्यम्) सुष्ठु गोभ्यो हितम् (नः) अस्माकम् (वाजी) अश्वः (स्वश्व्यम्) शोभनेष्वश्वेषु भवम् (पुंसः) पुंस्त्वयुक्तान् पुरुषार्थिनः (पुत्रान्) (उत) अपि (विश्वापुषम्) समग्रपुष्टिकरम् (रयिम्) धनम् (अनागास्त्वम्) अनापराधत्वम् (नः) अस्मान् (अदितिः) कारणरूपेणाविनाशिनी भूमिः (कृणोतु) (क्षत्रम्) राज्यम् (नः) अस्माकम् (अश्वः) व्याप्तिशीलः (वनताम्) संभजताम् (हविष्मान्) प्रशस्तानि हवींषि सुखदानानि यस्मिन् सः ४५

अन्वयः—यो नो वाजी सुगव्यं स्वश्व्यङ्करोति यो विद्वान् पुंसः पुत्रानुत विश्वापुषं रयिञ्च प्राप्नोति यथाऽदितिर्नोऽनागास्त्वङ्करोति तथा भवान् कृणोतु । यथा हविष्मानश्वो नः क्षत्रं वनतान्तथा त्वं सेवस्व ॥ ४५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये जितेन्द्रिया ब्रह्मचर्येण वीर्यवन्तोऽश्ववदाऽमोघवीर्याः पुरुषार्थेन धनं प्राप्नुवन्तो न्यायेन राज्यमुन्नयेयुस्ते सुखिनः स्युः ॥ ४५ ॥

पदार्थः—जो (नः) हमारा (वाजी) घोड़ा (सुगव्यम्) सुन्दर गौओं के लिये सुखस्वरूप (स्वश्व्यम्) अच्छे घोड़ों में प्रसिद्ध हुए काम को करता है वा जो विद्वान् (पुंसः) पुरुषपन से युक्त पुरुषार्थी (पुत्रान्) पुत्रों (उत) और (विश्वापुषम्) समग्र पुष्टि करने वाले (रयिम्) धन को प्राप्त होता वा जैसे (अदितिः) कारणरूप से अविनाशी भूमि (नः) हमारे लिये (अनागास्त्वम्) अपराधरहित होने को करती है वैसे आप (कृणोतु) करें वा जैसे (हविष्मान्) प्रशंसित सुख देने जिस में हैं वह (अश्वः) व्याप्तिशील प्राणी (नः) हम लोगों के (क्षत्रम्) राज्य को (वनताम्) सेवे वैसे आप सेवा किया करो ॥ ४५ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में वाचकलु०—जो जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् घोड़े के समान अमोघ वीर्य पुरुषार्थ से धन पाये हुए न्याय से राज्य को उन्नति देवें वे सुखी होवें ॥ ४५ ॥

इमानुकमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वे देवा देवताः ।
भुरिक्पङ्क्ति छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनः के श्रीमन्तो भवन्तीत्याह ॥
फिर कौन धनवान् होते हैं इस वि० ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः । आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भे-

प्रजा करत् । यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥ ४६ ॥

इमा । नु । कम् । भुवना । सीषधाम । सीषधामेति सीसधाम । इन्द्रः । च । विश्वे । च । देवाः । आदित्यैः । इन्द्रः । सगण इति सऽगणः । मरुद्भिरिति मरुत्ऽभिः । अस्मभ्यम् । भेषजा । करत् । यज्ञम् । च । नः । तन्वम् । च । प्रजामिति प्रऽजाम् । च । आदित्यैः । इन्द्रः । सह । सीषधाति । सिसधातीति सिसधाति ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(इमा) इमानि (नु) सद्यः (कम्) सुखम् (भुवना) भुवनानि (सीषधाम) साधयेम (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा (च) (विश्वे) सर्वे (च) (देवाः) विद्वांसः सभासदः (आदित्यैः) मासैः (इन्द्रः) सूर्यः (सगणः) गणैः सह वर्त्तमानः (मरुद्भिः) मनुष्यैः सह (अस्मभ्यम्) (भेषजा) भेषजानि (करत्) कुर्यात् (यज्ञम्) विद्वत्सत्कारादिकम् (च) (नः) (अस्माकम्) (तन्वम्) शरीरम् (च) (प्रजाम्) सन्तानादिकम् (च) (आदित्यैः) उत्तमैर्विद्वद्भिः सह (इन्द्रः) ऐश्वर्यकारी सभेशः (सह) (सीषधाति) साधयेत् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथेन्द्रश्च विश्वे देवाश्चेमा विश्वा भुवना धरन्ति तथा वयं कं नु सीषधाम । यथा सगण इन्द्र आदित्यैः सह सर्वाँल्लोकान् प्रकाशयति तथा मरुद्भिः सह वैद्योऽस्मभ्यं भेषजा करत् । यथाऽऽदित्यैः सहेन्द्रो नो यज्ञं च तन्वं च प्रजां च सीषधाति तथा वयं साध्नुयाम ॥ ४६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु० —ये मनुष्याः सूर्यवन्नियमेन वर्त्तित्वा शरीरमरोगमात्मानं विद्वांसं संसाध्य पूर्णं ब्रह्मचर्यं कृत्वा स्वयं वृतां हृद्यां स्त्रियं स्वीकृत्य तत्र प्रजा उत्पाद्य सुशिक्ष्य विदुषीः कुर्वन्ति ते श्रियः पतयो जायन्ते ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा (च) और (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (च) भी (इमा) इन समस्त (भुवना) लोकों को धारण करते वैसे हम लोग (कम्) सुख को (नु) शीघ्र (सीषधाम) सिद्ध करें वा जैसे (सगणः) अपने सहचारी आदि गणों के साथ वर्त्तमान (इन्द्रः) सूर्य (आदित्यैः) महीनों के साथ वर्त्तमान समस्त लोकों को प्रकाशित करता वैसे (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ वैद्य जन (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (भेषजा) ओषधियां (करत्) करे जैसे (आदित्यैः) उत्तम विद्वानों के (सह) साथ (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सभापति (नः) हम लोगों के (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार आदि उत्तम काम (च) और (तन्वम्) शरीर (च) और (प्रजाम्) सन्तान आदि को (च) भी (सीषधाति) सिद्ध करे वैसे हम लोग सिद्ध करें ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस में वाचकलु०—जो मनुष्य सूर्य के तुल्य नियम से वर्त्ताव रखके शरीर को नीरोग और आत्मा को विद्वान् बना तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य कर स्वयंवरविधि से हृदय को प्यारी स्त्री को स्वीकार करें उस में सन्तानों को उत्पन्न कर और अच्छी शिक्षा देके विद्वान् करते हैं वे धनपति होते हैं ॥ ४६ ॥

अग्ने त्वमित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता ।
शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनः के सत्कर्त्तव्याः सन्तीत्याह ॥

फिर कौन सत्कार करने योग्य हैं इस वि० ॥

अग्ने॒ त्वन्नो॒ अन्त॑म उ॒त त्रा॒ता शि॒वो भ॑वा वरू॒थ्यः॑।
वसु॑र॒ग्निर्वसु॑श्रवा॒ अच्छा॑ नक्षि द्यु॒मत्त॑मꣳ र॒यिन्दाः॥४७॥

अग्ने । त्वम् । नः । अन्तमः । उत । त्राता । शिवः । भव । वरूथ्यः । वसुः । अग्निः । वसुश्रवा इति वसुऽश्रवाः । अच्छ । नक्षि । द्युमत्तमिति द्युमत्ऽतमम् । रयिम् । दाः ॥४७॥

पदार्थः—(अग्ने) वेदविदध्यापकोपदेशक (त्वम्) (नः) अस्माकम् (अन्तमः) निकटस्थः (उत) अपि (त्राता) पालकः (शिवः) कल्याणकारी (भव) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (वरूथ्यः) वरूथेषु गृहेषु साधुः (वसुः) विद्वासु वासयिता (अग्निः) पावकइव (वसुश्रवाः) वसूनि धनानि श्रवणे यस्य सः (अच्छ) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (नक्षि) प्राप्नोषि णक्षधातोरयं प्रयोगः (द्युमत्तम्) अतिशयेन प्रकाशवन्तम् (रयिम्) धनम् (दाः) दद्याः ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वमग्निरिव नोऽन्तमस्त्राता शिव उत वरूथ्यो वसुश्रवा वसुर्भव । यो द्युमत्तमं रयिमस्मभ्यमच्छ दाः। अस्मान्नक्षि स त्वमस्माभिः सत्कर्त्तव्योऽसि ॥४७॥

भावार्थः—मनुष्यैः सर्वोपकारिणो वेदादिशास्त्रवेत्तारोऽध्यापकोपदेशका विद्वांसः सदैव सत्कर्त्तव्याः। ते च सत्कृताः सन्तः सर्वेभ्यः सदुपदेशाद्विद्योत्तमगुणान् धनादिकं च सदा प्रयच्छेयुः । येन परस्परस्य प्रीत्युपकारेण महान् सुखलाभःस्यादिति ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) वेदवेत्ता पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् आप (अग्निः) अग्नि के समान (नः) हम लोगों के (अन्तमः) समीपस्थ

(त्राता) रक्षा करने वाले (शिवः) कल्याणकारी (उत) और (वरूथ्यः) घरों में उत्तम (वसुश्रवाः) जिन के श्रवण में बहुत धन और (वसुः) विद्याओं में बसाने हारे हो ऐसे (भव) हूजिये जो (द्युमत्तमम्) अतीव प्रकाशवान् (रयिम्) धन हम लोगों के लिये (अच्छ, दाः) भलीभांति देओ तथा हम को (नक्षि) प्राप्त होते हो सो (त्वम्) आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हो॥४७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब के उपकारी वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता अध्यापक उपदेशक विद्वानों का सदैव सत्कार करें और वे सत्कार को प्राप्त हुए विद्वान् लोग भी सब के लिये उत्तम उपदेशादि अच्छे गुणों और धनादि पदार्थों को सदा देवें जिस से परस्पर प्रीति और उपकार से बड़े २ सुखों का लाभ होवे ॥ ४७ ॥

तन्त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वान् देवता ।

भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैरिह कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को इस जगत् में कैसे वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सु॒म्नाय॑ नू॒नमी॑महे॒ सखि॑भ्यः । स नो॑ बोधि श्रु॒धी हव॑मुरु॒ष्या णो॑ अघाय॒तः स॑मस्मात् ॥ ४८ ॥

तम् । त्वा । शोचिष्ठ । दीदिव इति॑ दीदिऽवः । सु॒म्नाय॑ । नू॒नम् । ई॒म॒हे॒ । सखि॑भ्य॒ इति॒ सखि॑ऽभ्यः । सः । नः॒ । बो॒धि॒ । श्रु॒धी । हव॑म् । उ॒रु॒ष्य । नः॒ । अ॒घा॒य॒तः । अ॒घ॒य॒त इत्य॑घऽय॒तः । स॒मस्मा॑त् ॥ ४८ ॥

पदार्थः--(तम्) (त्वा) त्वाम् (शोचिष्ठ) सद्गुणैः प्रकाशमान (दीदिवः) विद्यादिगुणैः शोभावन् (सुम्नाय) सुखाय (नूनम्) निश्चितम् (ईमहे) याचामहे (सखिभ्यः) मित्रेभ्यः (सः) (नः) अस्मान् (बोधि) बोधय (श्रुधी) शृणु (हवम्) आह्वानम् (उरुष्य) रक्ष (नः) अस्माकम् (अघायतः) आत्मनोऽघमाचरतः (समस्मात्) अधर्मेण तुल्यगुणकर्मस्वभावात् ॥ ४८ ॥

अन्वयः--हे शोचिष्ठ दीदिवो विद्वन् यस्त्वं नो बोधि तन्त्वा सुम्नाय सखिभ्यो नूनं वयमीमहे । स त्वं नो हवं श्रुधी समस्मादघायत उरुष्य च ॥ ४८ ॥

अन्वयः--विद्यार्थिनोऽध्यापकान् प्रत्येवं वदेयुर्भवन्तो यदस्माभिरधीतं तत्परीक्षन्ताम् । अस्मान् दुष्टाचारात् पृथग्रक्षन्तु यतो वयं सर्वैः सह मित्रवद्वर्त्तेमहि ॥ ४८ ॥

अस्मिन्नध्याये सृष्टिस्थपदार्थगुणवर्णनं पश्वादिप्राणिनां शिक्षारक्षणं स्वाङ्गरक्षणं परमेश्वरप्रार्थनं यज्ञप्रशंसा प्रज्ञाप्रापणं धर्मेच्छाऽग्निगुणकथनं तच्छिक्षणमात्मज्ञानधनप्रापणयोर्विधानं चोक्तमत एतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

पदार्थः--हे (शोचिष्ठ (उत्तम गुणों से प्रकाशमान (दीदिवः) विद्यादि गुणों से शोभायुक्त विद्वन् जो आप (नः) हम लोगों को (बोधि) बोध कराते (तम्) उन (त्वा) आप को (सुम्नाय) सुख और (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (नूनम्) निश्चय से हम लोग (ईमहे) याचते हैं (सः)सो

आप (नः) हम लोगों के (हवम्) पुकारने को (श्रुधी) सुनिये और (सम-स्मात्) अधर्म के तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले (अघायतः) आत्मा के अपराध का आचरण करते हुए दुष्ट डाकू चोर लम्पट से हमारी (उरुष्य) रक्षा कीजिये॥ ४८॥

भावार्थः—विद्यार्थी लोग पढ़ाने वालों के प्रति ऐसे कहें कि आप जो हम लोगों ने पढ़ा है उस की परीक्षा लीजिये और हम को दुष्ट आचरण से पृथक् रखिये जिस से हम लोग सब के साथ मित्र के समान वर्त्ताव रक्खें॥ ४८॥

इस अध्याय में संसार के पदार्थों के गुणों का वर्णन, पशु आदि प्राणियों को सिखलाना पालना, अपने अङ्गों की रक्षा, परमेश्वर की प्रार्थना, यज्ञ की प्रशंसा, बुद्धि का देना, धर्म में इच्छा, घोड़े के गुण कहना, उस की चाल आदि सिखलाना, आत्मा का ज्ञान और धन की प्राप्ति होने का विधान कहा है इस से इस अध्याय में कहे अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतपरम-
विदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण
परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दस-
रस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभा-
षाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते
यजुर्वेदभाष्ये पञ्चविंशो-
ऽध्यायः समाप्तः॥

—०—

ओ३म्

अथ षड्विंशोऽध्याय आरभ्यते ॥

—:*:—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

अग्निरित्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।
अभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ मनुष्यैस्तत्त्वेभ्य उपकारा यथावद्ग्राह्या इत्याह ॥

अब छब्बीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को तत्त्वों से यथावत् उपकार लेने चाहियें इस विषय का वर्णन किया है ॥

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सन्नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते ते मे सन्नमतामदऽआदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदऽआपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदः। सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी। सकामाँ२॥ऽ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

अग्निः। च। पृथिवी। च। सन्नतेऽ इति सम्ऽनते। तेइतिते। मे। सम्। नमताम्। अदः। वायुः। च। अन्तरिक्षम्। च। सन्नतेइति सम्ऽनते। तेइति ते। मे। सम्।

नमताम् । अदः । आदित्यः । च । द्यौः । च । सन्नते इति सम्ऽनते । तेइति ते । मे । सम् । नमताम् । अदः । आपः । च । वरुणः । च । सन्नते इति सम्ऽनते । ते इति ते । मे । सम् । नमताम् । अदः । सप्त । संसद इति सम्ऽसदः । अष्टमी । भूतसाधनीति भूतऽसाधनी । सकामानिति सऽकामान् । अध्वनः । कुरु । संज्ञानमिति सम्ऽज्ञानम् । अस्तु (मे) अमुना ॥ १ ॥

पदार्थः— (अग्निः) पावकः (च) (पृथिवी) (च) (सन्नते) (ते) (मे) मह्यम् (सम्) सम्यक् (नमताम्) अनुकूलं कुर्वाताम् (अदः) (वायुः) (च) (अन्तरिक्षम्) (च) (सन्नते) अनुकूले (ते) (मे) मह्यम् (सम्) (नमताम्) (अदः) (आदित्यः) सूर्यः (च) (द्यौः) तत्प्रकाशः (च) (सन्नते) (ते) (मे) मह्यम् (सम्) (नमताम्) (अदः) (आपः) जलानि (च) (वरुणः) तदवयवी (च) (सन्नते) (ते) (मे) मह्यम् (सम्) (नमताम्) (अदः) (सप्त) (संसदः) सम्यक् सीदन्ति यासु ताः (अष्टमी) अष्टानां पूरणी (भूतसाधनी) भूतानां साधिका (सकामान्) समानस्तुल्यः कामो येषां तान् (अध्वनः) मार्गान् (कुरु) (संज्ञानम्) सम्यग्ज्ञानम् (अस्तु) (मे) मह्यम् (अमुना) एवं प्रकारेण ॥ १ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा ये मेऽग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते अदः संनमतां ये मे वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते स्तस्ते अदः संनमताम् । ये मे आदित्यश्च द्यौश्च संनते ते अदः संनमतां ये म

आपश्च वरुणश्च सन्नते स्तस्ते अदः सन्नमताम् । या अष्टमी भूतसाधनी सप्त संसदः सकामानध्वनः कुर्वीत तथा कुरु । अमुना मे संज्ञानमस्तु सचैतत्सर्वं युष्माकमप्यस्तु ॥ १ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-यद्यग्न्यादिपञ्चभूतानि यथावद्विज्ञाय कश्चित्प्रयुञ्जीत तर्हि तानि वर्त्तमानमदः सुखं प्रापयन्ति ॥ १ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! जो जैसे (मे) मेरे लिये (अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) भूमि (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) (वे) (अदः) इस को (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे)मेरे लिये (वायुः) पवन (च) और (अन्तरिक्षम्) आकाश (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इस को (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे) मेरे लिये (आदित्यः) सूर्य (च) और (द्यौः) उस का प्रकाश (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इस को सन्नमताम् अनुकूल करें जो (मे) मेरे अर्थ (आपः) जल (च) और (वरुणः) जल जिस का अवयव है वह (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे दोनों (अदः) इस को(सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (अष्टमी) आठमी (भूतसाधनी) प्राणियों के कार्यों को सिद्ध करने हारी वा (सप्त) सात (संसदः) वे सभा जिन में अच्छे प्रकार स्थिर होते (सकामान्) समान कामना वाले (अध्वनः) मार्गों को करे वैसे तुम (कुरु) करो (अमुना) इस प्रकार से (मे) मेरे लिये (संज्ञानम्) उत्तम ज्ञान (अस्तु) प्राप्त होवे वैसेही यह सब तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यदि अग्नि आदि पंचतत्वों को यथावत् जान के कोई उन का प्रयोग करे तो वे वर्त्तमान उस अत्युत्तम सुख की प्राप्ति कराते हैं ॥१॥

यथेमामित्यस्य लौगाक्षिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता ।
स्वराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथेश्वरः सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो वेदपठनश्रवणाधिकारं ददातीत्याह ॥

अब ईश्वर सब मनुष्यों के लिये वेद के पढ़ने और सुनने का अधिकार देता है इस वि० ॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ २ ॥

यथा । इमाम् । वाचम् । कल्याणीम् । आवदानीत्याऽवदानि । जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याम् । शूद्राय । च । अर्याय । च । स्वाय । च । अरणाय । प्रियः । देवानाम् । दक्षिणायै । दातुः । इह । भूयासम् । अयम् । मे । कामः । सम् । ऋध्यताम् । उप । मा । अदः । नमतु ॥ २ ॥

पदार्थः--(यथा) येन प्रकारेण (इमाम्) प्रत्यक्षीकृताम् (वाचम्) वेदचतुष्टयीं वाणीम् (कल्याणीम्) कल्याणनिमित्ताम् (आवदानि) समन्तादुपदिशेयम् (जनेभ्यः) मनुष्येभ्यः (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्रह्म ब्राह्मणश्च राजन्यः क्षत्रियश्च ताभ्याम् (शूद्राय) चतुर्थवर्णाय (च) (अर्याय) वैश्याय । अर्यः स्वामिवैश्ययोरिति पाणिनिसूत्रम् (च) (स्वाय) स्वकीयाय (च) (अरणाय)

सल्लक्षणाय प्राप्तायान्त्यजाय (प्रियः) कमनीयः (देवानाम्) विदुषाम् (दक्षिणायै) दानाय (दातुः) दानकर्त्तुः (इह) अस्मिन् संसारे (भूयासम्) (अयम्) (मे) मम (कामः) (सम्) (ऋध्यताम्) वर्द्धताम् (उप) (मा) माम् (अदः) परोक्षसुखम् (नमतु) प्राप्नोतु ॥२॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽहमीश्वरो ब्रह्मराजन्याभ्यामर्याय शूद्राय च स्वाय चारणाय च जनेभ्य इहेमां कल्याणीं वाचमावदानि तथा भवन्तो ऽप्यावदन्तु । यथाऽहं दातुर्देवानां दक्षिणायै प्रियो भूयासं मेऽयं कामः समृध्यतां माऽदः उपनमतु तथा भवन्तोऽपि भवन्तु तद्वताप्यस्तु ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालंकारः-परमात्मा सर्वान्मनुष्यान्प्रतीदमुपदिशतीयं वेदचतुष्टयी वाक् सर्वमनुष्याणां हिताय मयोपदिष्टा नाऽत्रकस्याप्य नधिकारोऽस्तीति । यथाऽहं पक्षपातं विहाय सर्वेषु मनुष्येषु वर्त्तमानः सन् प्रियोऽस्मि तथा भवन्तोपि भवन्तु । एवङ्कृते युष्माकं सर्वे कामाः सिद्धा भविष्यन्तीति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने स्त्री सेवक आदि (च) और (अरणाय) और उत्तम लक्षणयुक्त प्राप्त हुए अन्त्यज के लिये (च) भी (जनेभ्यः) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमाम्) इस प्रगट की हुई (कल्याणीम्) सुख देने वाली (वाचम्) चारों वेदरूप वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूं वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें । जैसे मैं (दातु) दान देने वाले के संसर्गी (देवानाम्) विद्वानों की (दक्षिणायै) दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिये (प्रियः) मनोहर पियारा (भूयासम्) होऊं और (मे) मेरी (अयम्) यह (कामः) कामना (समृध्यताम्) उत्तमता से बढ़े तथा (मा)

मुझे (अदः) वह परोक्षसुख (उप नमतु) प्राप्त हो वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आप को भी प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में उपमालङ्कार है - परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति इस उपदेश को करता है कि यह चारों वेदरूप कल्याण कारिणी वाणी सब मनुष्यों के हित के लिये मैं ने उपदेश की है इस में किसी को अनधिकार नहीं है जैसे मैं पक्षपात को छोड़ के सब मनुष्यों में वर्त्तमान हुआ पियारा हूं वैसे आप भी होओ। ऐसे करने से तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे ॥ २ ॥

बृहस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। ईश्वरो देवता।
भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥
पुनः स ईश्वरः किं करोतीत्याह ॥
फिर वह ईश्वरः क्या करता है इस वि० ॥

बृह॑स्पते॒ अति॒ यद॒र्यो अर्हा॑द् द्यु॒मद्वि॒भाति॒ क्रतु॑म॒ज्जने॑षु। यद्दी॒दय॒च्छव॑सऽऋतप्रजात॒ तद॒स्मासु॒ द्रवि॑णं धेहि चि॒त्रम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ बृह॒स्पत॑ये त्वै॒ष ते॒ योनि॒र्बृह॒स्पत॑ये त्वा ॥ ३ ॥

बृह॑स्पते। अति॑। यत्। अ॒र्यः। अर्हा॑त्। द्यु॒मदि॒ति॑ द्युऽमत्। वि॒भा॒तीति॑ वि॒ऽभाति॑। क्रतु॑म॒दिति॒ क्रतु॑ऽमत्। जने॑षु। यत्। दी॒दय॑त्। शव॑सा। ऋ॒त॒प्र॒जा॒तेत्यृ॑तऽप्रजात। तत्। अ॒स्मासु॑। द्रवि॑णम्। धे॒हि॒। चि॒त्रम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीत॒ इत्यु॑पया॒मऽगृ॑हीतः। अ॒सि॒। बृह॒स्पत॑ये। त्वा॒। ए॒षः। ते॒। योनिः॑। बृह॒स्पत॑ये। त्वा॒ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(बृहस्पते) बृहतां प्रकृत्यादीनां जीवानां च पालकेश्वरः (अति) (यत्) (अर्यः) स्वामीश्वरः। अर्यः स्वामिवैश्ययोः । अर्य इतीश्वरना०—निघं० २ । २२ (अर्हात्) योग्यात् (द्युमत्) प्रशस्तप्रकाशयुक्तं मनः (विभाति) विशेषतया प्रकाशते (क्रतुमत्) प्रशस्तप्रज्ञाकर्मयुक्तम् (जनेषु) मनुष्येषु (यत्) (दीदयत्) प्रकाशयत्सत् (शवसा) बलेन (ऋतप्रजात) ऋतं सत्यं प्रजातं यस्मात्तत्सं बुद्धौ (तत्) (अस्मासु) (द्रविणम्) धनं यशश्च (धेहि) (चित्रम्) आश्चर्यम् (उपयामगृहीतः) उपगतयमैर्विदितः (असि) (बृहस्पतये) बृहत्या वाचः पालनाय (त्वा) त्वाम् (एषः) (ते) तव (योनिः) प्रमाणम् (बृहस्पतये) बृहतामाप्तानां पालकाय (त्वा) त्वाम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे बृहस्पते यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तं त्वा बृहस्पतये यस्यैष ते योनिरस्ति तस्मै बृहस्पतये त्वा वयं स्वीकुर्मः । हे ऋतप्रजातार्यस्त्वं जनेष्वर्हाद्यद्द्युमत् क्रतुमदतिविभाति यच्छवसा दीदयदस्ति तच्चित्रं विज्ञानं द्रविणं चास्मासु धेहि ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यदस्मान्महान्दयालुर्न्यायकारी णीयान्कश्चिदपि पदार्थो नास्ति येन वेदाविर्भावद्वारा सर्वे मनुष्या भूषिता येनाद्भुतं विज्ञानं धनं च विस्तारितं यो योगाभ्यासगम्योऽस्ति स एवेश्वरोऽस्माभिः सर्वैरुपासनीयतमोऽस्तीति विजानीत ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े २ प्रकृति आदि पदार्थों और जीवों के पालने हारे ईश्वर जो आप (उपयामगृहीतः) प्राप्त हुए यम नियमादि

योग साधनों से जाने गये (असि) हैं उन आप को (बृहस्पतये) बड़ी वेद वाणी की पालना के लिये तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) प्रमाण है उन (बृहस्पतये) बड़े २ आप्त विद्वानों की पालना करने वाले के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं। हे भगवन् (ऋतप्रजात) जिन से सत्य उत्तमता से उत्पन्न हुआ है (अर्य्यः) परमात्मा आप (जनेषु) मनुष्यों में (अर्हात्) योग्य काम से (यत्) जो (द्युमत्) प्रशंसित प्रकाश युक्त मन (क्रतुमत्) वा प्रशंसित बुद्धि और कर्मयुक्त मन (अति विभाति) विशेष कर प्रकाशमान है वा (यत्) जो (शवसा) बल से दीप्यवत् प्रकाशित होता हुआ वर्त्तमान है (तत्) उस (चित्रम्) आश्चर्यरूप ज्ञान (द्रविणम्) धन और यश को (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) धारण स्थापन कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस से बड़ा दयावान् न्यायकारी और अत्यन्त सूक्ष्म कोई भी पदार्थ नहीं वा जिस ने वेद प्रकट करने द्वारा सब मनुष्य सुशोभित किये वा जिस ने अद्भुत ज्ञान और धन जगत् में विस्तृत किया और जो योगाभ्यास से प्राप्त होने योग्य है वही ईश्वर हम सब लोगों को अति उपासना करने योग्य है यह तुम जानो ॥ ३ ॥

इन्द्रेत्यस्य स्वयम्भू ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥
फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमं शतक्रतो विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४ ॥

इन्द्र । गोमन्निति गोऽमन् । इह । आ । याहि । पिब । सोमम् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । विद्यद्भिरिति विद्यत्ऽभिः । ग्रावभिरिति ग्रावऽभिः । सुतम् । उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः । असि । इन्द्राय । त्वा । गोमत इति गोऽमते । एषः । ते । योनिः । इन्द्राय । त्वा । गोमत इति गोऽमते ॥ ४ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) विद्वन् मनुष्य (गोमन्) प्रशस्ता गौर्वाणी विद्यते यस्य तत्संबुद्धौ (इह) अस्मिन् संसारे (आ) (याहि) प्राप्नुहि (पिब) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (सोमम्) रसम् (शतक्रतो) शतमसंख्यः क्रतुः प्रज्ञा यस्य तत्सम्बुद्धौ (विद्यद्भिः) विद्यमानैः । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (ग्रावभिः) मेघैः (सुतम्) निष्पन्नम् (उपयामगृहीतः) उपयामैर्गृहीतानि जितानि इन्द्रियाणि येन सः (असि) (इन्द्राय) ऐश्वर्याय (त्वा) त्वाम् (गोमते) प्रशस्तपृथिवीराज्ययुक्ताय (एष) (ते) (योनिः) निमित्तम् (इन्द्राय) प्रशस्तैश्वर्यवते (त्वा) त्वाम् (गोमते) प्रशस्तवाग्वते ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे शतक्रतो गोमन्निन्द्र त्वमिहा याहि विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतं सोमं पिब यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्माद्गोमत इन्द्राय त्वा यस्यैष ते योनिरस्ति तस्मै गोमत इन्द्राय त्वा च वयं सत्कुर्मः ॥ ४ ॥

भावार्थः—ये वैद्यकशास्त्रविद्यासिद्धानि मेघेनोत्पन्नान्यौषधानि सेवन्ते योगं चाभ्यस्यन्ति ते सुखैश्वर्ययुक्ता जायन्ते ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) जिस की सैकड़ों प्रकार की बुद्धि और (गोमन्) प्रशंसित वाणी हैं सो ऐसे हे (इन्द्र) विद्वन् पुरुष आप (आ, याहि) आइये (इह) इस संसार में (विद्भिः) विद्यमान (ग्रावभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमयल्ली आदि ओषधियों के रस को (पिब) पियो जिस से आप (उपयामगृहीतः) यमनियमों से इन्द्रियों को ग्रहण किये अर्थात् इन्द्रियों को जीते हुए (असि) हो इस लिये (गोमते) प्रशस्त पृथिवी के राज्य से युक्त पुरुष के लिये और (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (त्वा) आप को और जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) निमित्त है उस (गोमते) प्रशंसित वाणी और (इन्द्राय) प्रशंसित ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिये (त्वा) आप का हम लोग सत्कार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो वैद्यकशास्त्र विद्या से और सिद्ध मेघों से उत्पन्न हुई ओषधियों का सेवन और योगाभ्यास करते हैं वे सुख तथा ऐश्वर्ययुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः । सूर्यो देवता ।

भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं क्रियेत इत्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

इन्द्रायाहि वृत्रहन् पिबा सोमं शतक्रतो । गोमद्भिः ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५ ॥

इन्द्र । आ । याहि । वृत्रहन्निति वृत्रऽहन् । पिब । सोमम् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । गोमद्भिरिति गोमत्ऽभिः । ग्रावभिरिति ग्रावऽभिः । सुतम् । उपयामगृहीत

ग्रामऽगृहीतः । असि । इन्द्राय । त्वा । गोमंत इति गोऽमंते । एषः । ते । योनिः । इन्द्राय । त्वा । गोमंत इति गोऽमंते ॥ ५ ॥

पदार्थः—(इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (आ) समन्तात् (याहि) गच्छ (वृत्रहन्) यो वृत्रं मेघं हन्ति स सूर्यस्तद्वत् (पिब) अत्र द्व्यचोऽस्तिङ इति दीर्घः (सोमम्) ऐश्वर्यकारकं रसम् (शतक्रतो) बहुप्रज्ञाकर्मयुक्त (गोमद्भिः) बहवो गावः किरणा विद्यन्ते येषु तैः (ग्रावभिः) गर्जनायुक्तैर्मेघैः (सुतम्) निष्पादितम् (उपयामगृहीतः) सुनियमैर्निगृहीतात्मा (असि) (इन्द्राय) ऐश्वर्याय (त्वा) त्वाम् (गोमते) बहुधेन्वादियुक्ताय (एषः) (ते) तव (योनिः) गृहम् (इन्द्राय) ऐश्वर्यमिच्छुकाय (त्वा) त्वाम् (गोमते) प्रशस्तभूमिराज्ययुक्ताय ॥ ५ ॥

अन्वयः- हे शतक्रतो वृत्रहन्निन्द्र त्वं गोमद्भिर्ग्रावभिः सहायाहि सुतं सोमं पिब । यतस्त्वं गोमत इन्द्राय उपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैव ते गोमत इन्द्राय योनिरस्ति तं त्वा च वयं सत्कुर्याम ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्य! यथा मेघहन्ता सूर्यः सर्वस्य जगतो रसं पीत्वा वर्षयित्वा सर्वं जगत्प्रीणाति तथैव त्वं सदौषधिरसान् पिब ऐश्वर्योन्नतये प्रयतस्व च ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धि और कर्मयुक्त (वृत्रहन्) मेघ हन्ता सूर्य के समान शत्रुओं के हनने वाले (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् आप (गोमद्भिः) जिन में बहुत चमकती हुई किरणें विद्यमान उन पदार्थों

और (ग्रावभिः) गर्जनाओं से गर्जते हुए मेघों के साथ (आ, याहि) आइये और (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ऐश्वर्य करने हारे रस को (पिब) पीओ जिस कारण आप (गोमते) बहुत दूध देती हुई गौओं से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से आत्मा को ग्रहण किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (गोमते) प्रशंसित भूमि के राज्य से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य चाहने वाले के लिये (योनिः) घर है उन (त्वा) आप का हम लोग सत्कार करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्य! जैसे मेघ हन्ता सूर्य सब जगत् से रस पी के और वर्षा के सब जगत् को प्रसन्न करता है वैसे ही तू बड़ी २ ओषधियों के रस को पी तथा ऐश्वर्य की उन्नति के लिये अच्छे प्रकार यत्न किया कर ॥ ५ ॥

ऋतावानमित्यस्य प्रादुराक्षिर्ऋषिः । वैश्वानरो देवता ।
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ।
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ६ ॥

ऋतावानम् । ऋतवानमित्यृतऽवानम् । वैश्वानरम् । ऋतस्य । ज्योतिषः । पतिम् । अजस्रम् । घर्मम् । ईमहे । उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः । असि । वैश्वानराय । त्वा । एषः । ते । योनिः । वैश्वानराय । त्वा ॥ ६ ॥

पदार्थः—(ऋतवानाम्)य ऋतं जलं वनति संभजति तम् (वैश्वानरम्) विश्वेषां नराणां मध्ये राजमानम् (ऋतस्य) जलस्य (ज्योतिषः) प्रकाशस्य (पतिम्) पालकम् (अजस्रम्) निरन्तरम् (घर्मम्) प्रतापम् (ईमहे) याचामहे (उपयामगृहीतः) सुनियमैर्निगृहीतान्तःकरणः (असि) (वैश्वानराय) विश्वस्य नायकाय (त्वा) (एषः) (ते) (योनिः) गृहम् (वैश्वानराय) (त्वा) त्वाम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयमृतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिं घर्ममजस्रमीमहे तथा यूयमप्येनं याचत । यस्त्वं वैश्वानरायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते योनिरस्ति तं त्वा च वैश्वानराय सत्कुर्मस्तथा यूयमपि कुरुत ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्र वा०लु०—योऽग्निर्जलादीनि मूर्त्तानि द्रव्याणि स्वतेजसा भिनत्ति निरन्तरं जलमाकर्षति च तं विदित्वा मनुष्याः सर्वत्र सुखकारकं गृहमलंकुर्युः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (ऋतावानम्) जो जल का सेवन करता उस (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान (ऋतस्य) जल और (ज्योतिषः) प्रकाश की (पतिम्) पालना करने हारे (घर्मम्) प्रताप को (अजस्रम्) निरन्तर (ईमहे) मांगते हैं वैसे तुम इस को मांगो जो आप (वैश्वानराय) संसार के नायक के लिये (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से मन को जीते हुये (असि) हैं उन (त्वा) आपको तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) घर है उन (त्वा) आप को (वैश्वानराय) समस्त संसार के हित के लिये सत्कार युक्त करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अग्नि जल आदि मूर्त्तिमान् पदार्थों को अपने तेज से छिन्न भिन्न करता और निरन्तर जल खींचता है उसको जान के मनुष्य सब ऋतुओं में सुख करने हारे घर को पूर्ण करें बनावें ॥ ६ ॥

वैश्वानरस्येत्यस्य कुत्सऋषिः । वैश्वानरोऽग्निर्देवता ।
जगती छन्दः । निषाद स्वरः ॥
पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥
फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

वैश्वानरस्यं सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥७॥

वैश्वानरस्यं । सुमताविति सुऽमतौ । स्याम । राजा । हि । कम् । भुवनानाम् । अभिश्रीरित्यभिऽश्रीः । इतः । जातः । विश्वम् । इदम् । वि । चष्टे । वैश्वानरः । यतते । सूर्येण । उपयामगृहीतइत्युपयामऽगृहीतः । असि । वैश्वानराय । त्वा । एषः । ते । योनिः । वैश्वानराय । त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थः—(वैश्वानरस्य) विश्वस्य नायकस्य (सुमतौ) शोभनायां बुद्धौ (स्याम) भवेम (राजा) प्रकाशमानः (हि) खलु (कम्) सुखम् (भुवनानाम्) (अभिश्रीः) अभितः सर्वतः श्रियो यस्य सः (इतः) अस्मात् कारणात् (जातः) प्रकटः सन् (विश्वम्) सर्वं जगत् (इदम्) (वि, चष्टे) प्रकाशयति

(वैश्वानरः) विद्युदग्निः (यतते) (सूर्येण) सूर्यमण्डलेन (उपयामगृहीतः) सुनियमैः स्वीकृतः (असि) (वैश्वानराय) अग्नये (त्वा) त्वाम् (एषः) (ते) तव (योनिः) गृहम् (वैश्वानराय) अग्निकार्यसाधनाय (त्वा) त्वाम् ॥ ७ ॥

अन्वयः–वयं यथा राजा भुवनानामभिश्रीः कं हि सप्नोति इतो जातः सन् विश्वमिदं विचष्टे यथा सूर्येण सह वैश्वानरो यतते तथा वयं वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम । हे विद्वन् ! यतस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि तस्माद्वैश्वानराय त्वा यस्यैष ते योनिरस्ति तं त्वा च वैश्वनराय सत्करोमि ॥ ७ ॥

भावार्थः–यथा सूर्येण सह चन्द्रमा रात्रिं सुभूषयति तथा सुराज्ञा प्रजा प्रकाशिता भवति विद्वान् शिल्पिजनश्च वह्निना सर्वोपयोगीनि कार्याणि साध्नोति ॥ ७ ॥

पदार्थः–हम लोग जैसे (राजा) प्रकाशमान् (भुवनानाम्) लोकों के बीच (अभिश्रीः) सब ओर से ऐश्वर्य की शोभा से युक्त सूर्य (कम्) सुख को (हि) ही सिद्ध करता है और (इतः) इस कारण (जातः) प्रसिद्ध हुआ (इदम्) इस (विश्वम्) विश्व को (वि, चष्टे) प्रकाशित करता है वा जैसे (सूर्येण) सूर्य के साथ (वैश्वानरः) विजुली रूप अग्नि (यतते) यत्नवान् है वैसे हम लोग (वैश्वनरस्य) संसार के नायक परमेश्वर वा उत्तम सभापति की (सुमतौ) अति उत्तम देश काल को जानने हारी कपट छलादि दोष रहित बुद्धि में (स्याम) होवें हे विद्वान् जिससे आप (उपयामगृहीतः) सुन्दर नियमों से स्वीकृत (असि) हैं इस से (वैश्वानराय) अग्नि के लिये (त्वा) आप को तथा जिस (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) घर है उन (त्वा) आप को भी (वैश्वानराय) अग्नि साध्य कार्य साधने के लिये सत्कार करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य के साथ चन्द्रमा रात्रि को सुशोभित करता है वैसे उत्तम राजा से प्रजा प्रकाशित होती है और विद्वान् शिल्पी जन सर्वोपयोगी कार्यों को सिद्ध करता है ॥ ७ ॥

वैश्वानरइत्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता ।
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्याः किंवत् किं कुर्युरित्याह ॥
फिर मनुष्य किस के समान क्या करें इस वि० ॥

वैश्वानरो न ऊतयऽआ प्रयातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ८ ॥

वैश्वानरः । नः । ऊतये । आ । प्र । यातु । पराऽवतः । अग्निः । उक्थेन । वाहसा । उपयामगृहीतइत्युपयामऽगृहीतः । असि । वैश्वानराय । त्वा । एषः । ते । योनिः । वैश्वानराय । त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः—(वैश्वानरः) विश्वेषु नायकेषु विद्वत्सु राजमानः (नः) अस्माकम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (आ) (प्र, यातु) गच्छतु (परावतः) दूरदेशात् (अग्निः) पावकवद्वर्त्तमानः (उक्थेन) प्रशंसनीयेन (वाहसा) प्रापणेन (उपयामगृहीतः) विद्याविचारसंयुक्तः (असि) (वैश्वानराय) प्रकाशमानाय (त्वा) त्वाम् (एषः) (ते) तव (योनिः) गृहम् (वैश्वानराय) (त्वा) त्वाम् ॥८॥

अन्वयः—यथा वैश्वानरः परावतो न ऊतय आ प्रयातु तथाऽग्निरुक्थेनवाहसा सहाप्नोतु यस्त्वं वैश्वानरायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते वैश्वानराय योनिरस्ति तं त्वा च स्वीकुर्मः ॥ ८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यो दूरदेशात्स्वप्रकाशेन दूरस्थान् पदार्थान् प्रकाशयति तथा विद्वांसः स्वसूपदेशेन दूरस्थान् जिज्ञासून् प्रकाशयन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः-जैसे (वैश्वानरः) समस्त नायक जनों में प्रकाशमान विद्वान् (परावतः) दूर से (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (आ,प्र,यातु) अच्छे प्रकार आवे वैसे (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी मनुष्य (उक्थे न) प्रशंसा करने योग्य (वाहसा) व्यवहार के साथ प्राप्त हो जो आप (वैश्वानराय) प्रकाशमान के लिये (उपयामगृहीतः) विद्या के विचार से युक्त (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आपका (एषः) यह घर (वैश्वानराय) समस्तनायकों में उत्तम के लिये (योनिः) है उन (त्वा) आप को भी हम लोग स्वीकार करें ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य दूर देश से अपने प्रकाश से दूरस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वान् जन अपने सुन्दर उपदेश से दूरस्थ जिज्ञासुओं को प्रकाशित करते हैं ॥८ ॥

अग्निरित्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता ।
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनः कैः कस्मात् किं याचनीयमित्याह ।
फिर किन को किस से क्या मांगना चाहिये इस वि० ॥

अ॒ग्निर्ऋषि॑ः पव॑मान॒ः पाञ्च॑जन्यः पु॒रोहि॑तः । तमी॑महे महाग॒यम् ॥ उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्य॒ग्नये॑ त्वा॒ वर्च॑स ए॒ष ते॒ योनि॑र॒ग्नये॑ त्वा॒ वर्च॑से ॥ ९ ॥

अग्निः । ऋषिः । पवमानः । पाञ्चजन्य इति पाञ्च-ऽजन्यः । पुरोहित इति पुरःऽहितः । तम् । ईमहे । महा-गयमिति महाऽगयम् । उपयामगृहीतइत्युपयामऽगृहीतः । असि अग्नये । त्वा । वर्चसे । एषः । ते । योनिः । अग्नये । त्वा । वर्चसे ॥ ९ ॥

पदार्थः—(अग्निः) पावकवद्विद्यया प्रकाशितः (ऋषिः) मन्त्रार्थवेत्ता (पवमानः) पवित्रः (पाञ्चजन्यः) पञ्चानां प-ञ्चसु वा जनेषु साधुः (पुरोहितः) पुरस्ताद्धितकारि(तम्) (ईमहे) याचामहे (महागयम्) महान्तो गया गृहाणि प्रजा धन वा यस्य तम् । गयमिति गृहना० निघं० ३ । ४। अपत्यना० निघं० । २ । २ धनना० च निघं० २ । १० (उपयामगृहीतः) (असि) (अग्नये) विदुषे (त्वा) त्वाम् (वर्चसे) अध्यापनाय (एषः) ते (योनिः) निमि-त्तम् (अग्नये (त्वा) त्वाम् (वर्चसे) विद्याप्रकाशाय ॥९॥

अन्वयः—हे मनुष्या यः पाञ्चजन्यः पुरोहितः पवमान ऋषिरग्निरस्ति तं महागयं यथा वयमीमहे तथा त्वं वर्चसेऽग्नय उपयामगृहीतोऽसि तस्मात्त्वा यस्यैष ते योनिर्वर्चसेऽग्नयेऽस्ति तं त्वा च वयमीमहे तथैतं यूयमपीहध्वम् ॥९॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैर्वेदशास्त्रविद्भ्यो विद्वद्भ्यः सदाविद्याप्राप्तिर्याच-नीया येन महत्त्वं प्राप्नुयुः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हेमनुष्यो ! जो (पाञ्चजन्यः) पांच जनों वा प्राणों की क्रिया में उत्तम (पुरोहितः) पहिले हित करने हारा (पवमानः) पवित्र (ऋषिः)

मंत्रार्थवेत्ता और (अग्निः) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित है (तम्) उस (महागयम्) बड़े २ घर सन्तान वा धन वाले को जैसे हम लोग (ईमहे) याचना करें वैसे आप (वर्चसे) पढ़ाने हारे और (अग्नये) विद्वान् के लिये (उपयामगृहीतः) समीप के नियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस से (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) निमित्त (वर्चसे) विद्याप्रकाश और (अग्नये) विद्वान् के लिये है उन (त्वा) आप की हम लोग प्रार्थना करते हैं वैसे तुम भी चेष्टा करो॥९॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि वेदवेत्ता विद्वानों से सदा विद्याप्राप्ति की प्रार्थना किया करें जिस से वे सब मनुष्य महत्त्व को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

महानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ राजसत्कारमाह ॥
अब राजा के सत्कार वि० ॥

महाँ२॥ऽइन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा॥१०॥

महान् । इन्द्रः । वज्रहस्त इति वज्रऽहस्तः । षोडशी । शर्म । यच्छतु । हन्तु । पाप्मानम् । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः । असि । महेन्द्रायेति महाऽइन्द्राय । त्वा । एषः । ते । योनिः । महेन्द्रायेति महाऽइन्द्राय । त्वा ॥ १० ॥

पदार्थः—(महान्) वृहत्तमः (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्तो राजा (वज्रहस्तः) वज्रो हस्तयोर्यस्य सः (षोड-

शी) षोडशकलायुक्तः (शर्म) शृण्वन्ति दुःखानि यस्मि-न् तद्गृहम् । शर्मेति गृहना० निघं ३ । १४ (यच्छतु) ददातु (हन्तु) (पाप्मानम्) दुष्टकर्मकारिणम् (यः) (अस्मान्) (द्वेष्टि) अप्रीतयति (उपयामगृहीतः) (असि) (महेन्द्राय) महद्गुणविशिष्टाय (त्वा) त्वाम् (एषः) (ते) (योनिः) निमित्तम् (महेन्द्राय) (त्वा) त्वाम् ॥ १० ॥

अन्वयः–हे मनुष्या ! वज्रहस्तः षोडशी महानिन्द्रः शर्म यच्छतु योऽस्मान् द्वेष्टि तं पाप्मानं हन्तु यस्त्वं महेन्द्रायोपयामगृहीतोऽसि तं त्वा यस्यैष ते महेन्द्राय योनिरस्ति तं त्वा च वयं सत्कुर्याम ॥ १० ॥

भावार्थः–हे प्रजाजना यो युष्मभ्यं सुखं दद्यात् दुष्टान् हन्यान्महैश्वर्यं वर्द्धयेत्स युस्माभिः सदा सत्कर्त्तव्यः ॥ १० ॥

पदार्थः–हे मनुष्यो ! (वज्रहस्तः) जिस के हाथों में वज्र (षोडशी) सो-लह कलायुक्त (महान्) बड़ा (इन्द्रः) और परम ऐश्वर्यवान् राजा (श-र्म) जिस में दुःख विनाश को प्राप्त होते हैं उस घर को (यच्छतु) देवे (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों को (द्वेष्टि) वैरभाव व चाहता उस (पाप्मानम्) पापात्मा खोटे कर्म करने वाले को (हन्तु) मारे । जो आ-प (महेन्द्राय) बड़े २ गुणों से युक्त के लिये (उपयामगृहीतः) प्राप्त हुए नियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जि-न (ते) आप का (एषः) यह (महेन्द्राय) उत्तम गुण वाले के लिये (यो-निः) निमित्त है उस (त्वा) आप का भी हम लोग सत्कार करें ॥ १० ॥

भावार्थः–हे प्रजाजनो ! जो तुम्हारे लिये सुख देवे, दुष्टों को मारे और महान् ऐ-श्वर्य को बढ़ावे वह तुम लोगों को सदा सत्कार करने योग्य है ॥ १० ॥

तं व इत्यस्य नोधा गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता ।
विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
पुना राजा किं कुर्यादित्याह ॥
फिर. राजा क्या करे इस वि० ॥

तं वो॑ द॒स्ममृ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः । अ॒भि व॒त्सन्न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ऽइन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे ॥ ११ ॥

तम् । वः । द॒स्मम् । ऋ॒ती॒षह॑म् । ऋ॒ति॒सह॒मित्यृ॑ति॒ऽसह॑म् । वसोः॑ । म॒न्दा॒नम् । अन्ध॑सः । अ॒भि । व॒त्सम् । न । स्वस॑रेषु । धे॒नवः॑ । इन्द्र॑म् । गी॒र्भिरिति॑ गीः॒ऽभिः । न॒वा॒म॒हे॒ ॥ ११ ॥

पदार्थः— (तम्) (वः) युष्माभ्यम् (दस्मम्) दुःखोपक्षयितारम् (ऋतीषहम्) गतिसहम् । अत्र संहितायामिति दीर्घः (वसोः) धनस्य (मन्दानम्) आनन्दन्तम् (अन्धसः) अन्नस्य (अभि) सर्वतः (वत्सम्) (न) इव (स्वसरेषु) दिनेषु (धेनवः) गावः (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तम् (गीर्भिः) वाग्भिः (नवामहे) स्तुवीमहे ॥ ११ ॥

अन्वयः— हे मनुष्या वयं स्वसरेषु धेनवो वत्सं न यं दस्ममृतीषहं वसोऽन्धसो मन्दानमिन्द्रं वो गीर्भिरभि नवामहे तथा तं भवन्तोऽपि सदा प्रीतिभावेन स्तुवन्तु ॥ ११ ॥

भावार्थः— अत्रोपमालङ्कारः—यथा गावः प्रतिदिनं स्वं स्वं वत्सं पालयन्ति तथैव प्रजारक्षकः पुरुषः प्रजा नित्यं रक्षेत् प्रभावै धनधान्यैः सुखानि वर्धयेत् ॥ ११ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! हम लोग (स्वसरेषु) दिनों में (धेनवः) गौएं (वत्सम्) जैसे बछड़े को (न) वैसे जिस (दस्मम्) दुःखविनाशक (ऋ-

तीवहम्) चाल को सहने वाले (वसोः) धन और (अन्धसः) अन्न के (सन्दानम्) आनन्द को पाए हुए (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् सभापति को (वः) तुम्हारे लिये (गीर्भिः) वाणियों से (अभि, नवामहे) सब ओर से स्तुति करते हैं वैसे ही (तम्) उस सभापति की आप लोग भी सदा प्रीतिभाव से स्तुति कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः— इस मंत्र में उपमालं०--जैसे गौयें प्रति दिन अपने २ बछड़ों को पालती हैं वैसे ही प्रजा जनों की रक्षा करने वाला पुरुष प्रजा की निरन्तर रक्षा करे और प्रजा के लिये धन और अन्न आदि पदार्थों से सुखों को निरन्तर बढ़ाया करे ॥ ११ ॥

यद्वाहिष्ठमित्यस्य नोधा गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता ।
विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
पुनः सा राज्ञी किं कुर्यादित्याह ॥
फिर वह रानी क्या करे इस वि० ॥

यद्वाहिष्ठन्तदग्नये बृहदर्च विभावसो । महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजाऽउदीरते ॥ १२ ॥

यत् । वाहिष्ठम् । तत् । अग्नये । बृहत् । अर्च । विभावसो इति विभाऽवसो । महिषीवेति महिषीऽइव । त्वत् । रयिः । त्वत् । वाजाः । उत् । ईरते ॥ १२ ॥

पदार्थः--(यत्) (वाहिष्ठम्) अतिशयेन वाहयितारम् (तत्) (अग्नये) पावकाय (बृहत्) महत् (अर्च) सत्कुरु (विभावसो) प्रकाशितधन (महिषीव) यथा राज्ञी तथा (त्वत्) तव सकाशात् (रयिः) धनम् (त्वत्) (वाजाः) अन्नादीनि (उत्) अपि (ईरते) प्राप्नुवन्ति ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे विभावसो अग्नये यद्बृहद्वाहिष्ठमस्ति तदर्च तद्वयमप्यर्चेम महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजाश्चोदीरते तं वयं सत्कुर्याम ॥ १२ ॥

भावार्थः—यथा राज्ञी सुखप्रापिका महाधनप्रदा भवति तथैव राज्ञः सकाशात्सर्वे धनमन्यान्युत्तमानि वस्तूनि च प्राप्नुयुः ॥ १२ ॥

पदार्थः-हे (विभावसो) प्रकाशित धन वाले विद्वन्! (अग्नये) अग्नि के लिये (यत्) जो (बृहत्) बड़ा और (वाहिष्ठम्) अत्यन्त पहुंचाने हारा है उस का (अर्च) सत्कार करो (तत्) उसका हम भी सत्कार करें (महिषीव) और रानी के समान (त्वत्) तुम से (रयिः) धन और (त्वत्,) तुम से (वाजाः) अन्न आदि पदार्थ (उत्, ईरते) भी प्राप्त होते हैं उन आपका हम लोग सत्कार करें ॥ १२ ॥

भावार्थः-जैसे रानी सुख पहुंचाती और बहुत धन देने वाली होती है वैसे ही राजा के समीप से सब लोग धन और अन्य उत्तम २ वस्तुओं को पावें ॥ १२ ॥

एहीत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता।
विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

विद्वद्भिः किं कार्यमित्याह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्द्धास इन्दुभिः ॥ १३ ॥

आ। इहि। ऊँ इत्यूँ। सु। ब्रवाणि। ते। अग्ने। इत्था। इतराः। गिरः। एभिः। वर्द्धासे। इन्दुभिरितीन्दुऽभिः ॥ १३ ॥

पदार्थः-(आ) समन्तात् (इहि) प्राप्नुहि (उ) वितर्के (सु) शोभने (ब्रवाणि) उपदिशेयम् (ते) तुभ्यम् (अग्ने)

प्रकाशितप्रज्ञ (इत्था) अस्माद्धेतोः (इतरा) त्वयाऽज्ञाताः (गिर) वाचः (एभिः) (वर्द्धासे) वृद्धो भव (इन्दुभिः) जलादिभिः ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे अग्नेऽहमित्था त इतरा गिरः सु ब्रवाणि यतस्त्वमेता गृहि-
उ एभिरिन्दुभिर्वर्द्धासे ॥ १३ ॥

भावार्थः—यया शिक्षया विद्यार्थिनो विज्ञानेनवर्द्धेरँस्तामेव विद्वांस उपदिशेयुः ॥ १३ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) प्रकाशित बुद्धि वाले विद्वन्! मैं (इत्था) इस हेतु से (ते) आप के लिये (इतराः) जिन को तुम ने नहीं जाना है उन (गिरः) वाणियों का (सु, ब्रवाणि) सुंदर प्रकार से उपदेश करूं कि जिस से आप इन वाणियों को (आ, इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (उ) और (एभिः) इन (इन्दुभिः) जलादि पदार्थों से (वर्द्धासे) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—जिस शिक्षा से विद्यार्थी लोग विज्ञान से बढ़ें उसी शिक्षा का विद्वान् लोग उपदेश किया करें ॥ १३ ॥

ऋतव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । संवत्सरो देवता ।
भुरिग्बृहती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ऋतवस्ते यज्ञं वितन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः ।
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः ॥ १४ ॥

ऋतवः । ते । यज्ञम् । वि । तन्वन्तु । मासाः । रक्षन्तु । ते । हविः । संवत्सरः । ते । यज्ञम् । दधातु । नः । प्रजाम् । इति प्रऽजाम् । च । परि । पातु । नः ॥ १४ ॥

पदार्थः—(ऋतवः) वसन्ताद्याः (ते) तव (यज्ञम्) सत्कारादिव्यवहारम् (वि) (तन्वन्तु) विस्तृणन्तु (मासाः) कार्त्तिकादयः (रक्षन्तु) (ते) तव (हविः) होतव्यं वस्तु (संवत्सरः) (ते) तव (यज्ञम्) (दधातु) (नः) अस्माकम् (प्रजाम्) (च) (परि) (पातु) रक्षतु (नः) अस्माकम् ॥ १४ ॥

अन्वयः-हे विद्वँस्ते यज्ञमृतवो वितन्वन्तु ते हविर्मासा रक्षन्तु ते यज्ञं नः संवत्सरो दधातु नः प्रजां च परिपातु ॥ १४ ॥

भावार्थः-विद्वद्भिर्मनुष्यैः सर्वाभिः सामग्रीभिर्विद्यावर्द्धको व्यवहारः सदा वर्द्धनीयो न्यायेन प्रजाश्च पालनीयाः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (ते) आप के (यज्ञम्) सत्कार आदि व्यवहार को (ऋतवः) वसन्तादि ऋतु (वि,तन्वन्तु) विस्तृत करें (ते) आप के (हविः) होमने योग्य वस्तु की (मासाः) कार्त्तिक आदि महीने (रक्षन्तु) रक्षा करें (ते) आप के (यज्ञम्) यज्ञ को (नः) हमारा (संवत्सरः)वर्ष (दधातु) पुष्ट करे (च) और (नः) हमारी (प्रजां)प्रजा की (परि,पातु) सब ओर से आप रक्षा करो ॥ १४ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि सब सामग्री से विद्यावर्द्धक व्यवहार को सदा बढ़ावें और न्याय से प्रजा की रक्षा किया करें ॥ १४

उपह्वर इत्यस्य वत्स ऋषिः । विद्वान् देवता ।
विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

उ॒प॒ह्व॒रे गि॑री॒णाᳪं᳖ स॑ङ्ग॒मे च॑ न॒दीना॑म् । धि॒या विप्रो॑ अजायत ॥ १५ ॥

उपह्वर इत्युपऽह्वरे । गिरीणाम् । सङ्गमइति सम्ऽगमे।च । नदीनाम् ।धिया। विप्रः । अजायत॥१५॥

पदार्थः-(उपह्वरे) निकटे (गिरीणाम्) शैलानाम् (सङ्गमे) मेलने (च) (नदीनाम्) (धिया) प्रज्ञया कर्मणा वा (विप्रः) मेधावी । विप्र इति मेधाविनाम निघं०३ । १५ (अजायत) जायते ॥ १५ ॥

अन्वयः—यो मनुष्यो गिरीणामुपह्वरे नदीनां च सङ्गमे योगेनेश्वरं विचारेण विद्यां चोपासीत स धिया विप्रो अजायत ॥ १५ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसः पठित्वैकान्ते विचारयन्ति ते योगिन इव प्राज्ञा भवन्ति ॥ १५ ॥

पदार्थः— जो मनुष्य (गिरीणाम्) पर्वतों के (उपह्वरे) निकट (च) और (नदीनाम्) नदियों के (सङ्गमे) मेल में योगाभ्यास से ईश्वर की और विचार से विद्या की उपासना करे वह (धिया) उत्तम बुद्धि वा कर्म से युक्त (विप्रः) विचारशील बुद्धिमान् (अजायत) होता है ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग पढ़ के एकान्त में विचार करते हैं वे योगियों के तुल्य उत्तम बुद्धिमान् होते हैं ॥ १५ ॥

उच्चेत्यस्य महीयव ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्याददे ।
उग्रꣳ शर्म महि श्रवः ॥ १६ ॥

उच्चा । ते । जातम् । अन्धसः । दिवि । सत् । भूमि । आ । ददे । उग्रम् । शर्म । महि । श्रवः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(उच्चा) उच्चम् (ते) तव (जातम्) निष्पन्नम् (अन्धसः) अन्नात् (दिवि) प्रकाशे (सत्) वर्त्तमानम् (भूमि) अत्र सुपां सुलुगिति विभक्तेर्लुक् (आ, ददे) गृह्णामि (उग्रम्) उत्कृष्टम् (शर्म) गृहम् (महि) महत् (श्रवः) प्रशंसनीयम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नहं ते यदुच्चाऽन्धसो जातं दिवि सदुग्रं महि श्रवः शर्मादद्दे तद्भूमीव भवतु ॥ १६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—विद्वद्भिर्मनुष्यैः सूर्यकिरणवायुमन्त्यन्नादियुक्तानि महान्त्युच्चानि गृहाणि रचयित्वा तत्र निवसनेन सुखं भोक्तव्यम् ॥ १६ ॥

पदार्थः— हे विद्वन् ! मैं (ते) आप के जिस (उच्चा) ऊंचे (अन्धसः) अन्न से (जातम्) प्रसिद्ध हुए (दिवि) प्रकाश में (सत्) वर्त्तमान (उग्रम्) उत्तम (महि) बड़े (श्रवः) प्रशंसा के योग्य (शर्म) घर को (आ, ददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूं वह (भूमि) पृथिवी के तुल्य दृढ़ हो ॥१६॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य का प्रकाश और वायु जिस में पहुंचा करे ऐसे अन्नादि से युक्त बड़े ऊंचे घरों को बना के उन में वसने से सुख भोगें ॥ १६ ॥

स न इत्यस्य महीयव ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥ १७ ॥

सः । नः । इन्द्राय । यज्यवे । वरुणाय । मरुद्भ्य इति मरुत्ऽभ्यः । वरिवोविदिति वरिवःऽवित् । परि । स्रव ॥१७॥

पदार्थः—(सः) (नः) अस्माकम् (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (यज्यवे) संगताय (वरुणाय) श्रेष्ठाय (मरुद्भ्यः) मनुष्येभ्यः (वरिवोवित्) परिचरणवेत्ता (परि) (स्रव) प्राप्नुहि ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं मरुद्भ्यो न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय वरिवोवित् संस्त्वं परिस्रव ॥ १७ ॥

भावार्थः—येन विदुषा यावत्सामर्थ्यं प्राप्येत तेन तावता सर्वेषां सुखं वर्द्धनीयम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (सः) सो (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (नः) हमारे (इन्द्राय) परमैश्वर्य की (यज्यवे) संगति और (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के लिये (वरिवोवित्) सेवा कर्म को जानते हुए आप (परिस्रव) सब ओर से प्राप्त हुआ करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—जिस विद्वान् ने जितना सामर्थ्य प्राप्त किया है उस को चाहिये कि उस सामर्थ्य से सब का सुख बढ़ाया करे ॥ १७ ॥

एतस्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता ।
स्वराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
ईश्वरः कथमुपास्य इत्याह ॥

ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिये इस वि० ॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥ १८ ॥

एना । विश्वानि । अर्यः । आ । द्युम्नानि । मानुषाणाम् । सिषासन्तः । सिसासन्त इति सिसाऽसन्तः । वनामहे ॥ १८ ॥

पदार्थः—(एना) एनानि (विश्वानि) सर्वाणि (अर्यः) ईश्वरः (आ) (द्युम्नानि) प्रदीप्तानि यशांसि (मानुषाणाम्) मनुष्याणाम् (सिषासन्तः) सेवितुमिच्छन्तः (वनामहे) याचामहे ॥ १८ ॥

अन्वयः—योऽर्यो मानुषाणामेना विश्वानि द्युम्नानि अस्ति तं सिषासन्तो वयं सुखान्यावनामहे ॥ १८ ॥

भावार्थः—येनेश्वरेण मनुष्याणां सुखाय धनानि वेदा भोज्यादीनि वस्तूनि चोत्पादितानि तस्यैवोपासना सर्वैर्मनुष्यैः सदा कर्त्तव्या ॥ १८ ॥

पदार्थः—जो (अर्यः) ईश्वर (मानुषाणाम्) मनुष्यों की (एना) इन (विश्वानि) सब (द्युम्नानि) शोभायमान कीर्त्तियों की शिक्षा करता है उस की (सिषासन्तः) सेवा करने की इच्छा करते हुए हम लोग (आ, वनामहे) सुखों को मांगते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थः—जिस ईश्वर ने मनुष्यों के सुख के लिये धनों, वेदों और खाने पीने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न किया है उसी की उपासना सब मनुष्यों को सदा करनी चाहिये ॥ १८ ॥

अनुवीरैरित्यस्य मुद्गल ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः । अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयन्देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥ १९ ॥

अनु । वीरैः । अनु । पुष्यास्म । गोभिः । अनु । अश्वैः । अनु । सर्वेण । पुष्टैः । अनु । द्विपदेति द्वि-ऽपदा । अनु । चतुष्पदा । चतुःपदेति चतुःऽपदा । वयम् । देवाः । नः । यज्ञम् । ऋतुथेत्यृतुऽथा । नयन्तु ॥१९॥

पदार्थः—(अनु) (वीरैः) प्रशस्तवलैः (अनु) (पुष्यास्म) पुष्टा भवेम (गोभिः) धेनुभिः (अनु) (अश्वैः) (अनु) (सर्वेण) (पुष्टैः) (अनु) (द्विपदा) मनुष्यादिना (अनु) (चतुष्पदा) गवादिना (वयम्) (देवाः) विद्वांसः (नः) अस्माकम् (यज्ञम्) धर्म्यव्यवहारम् (ऋतुथा) ऋतुभिः (नयन्तु) प्रापयन्तु ॥१९॥

अन्वयः—हे विद्वांसो यथा वयं पुष्टैर्वीरैरनु पुष्यास्म पुष्टैर्गोभिरनुपुष्याम पुष्टैरश्वैरनुपुष्याम सर्वेणानु पुष्याम द्विपदाऽनुपुष्याम चतुष्पदानु पुष्याम तथा देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्वीरपुरुषान् पशूंश्च सम्पोष्यानुपोषणीयम् । सदा ऋत्वनुकूलो व्यवहारः कर्त्तव्यः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे (वयम्) हम लोग (पुष्टैः) पुष्ट (वीरैः) प्रशस्त बल वाले वीरपुरुषों की (अनु, पुष्यास्म) पुष्टि से पुष्ट हों । बलवती (गोभिः) गौओं की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों । बलवान् (अश्वैः) घोड़े आदि की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों (सर्वेण) सब की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों (द्विपदा) दो पग वाले मनुष्य आदि प्राणियों की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों और (चतुष्पदा) चार पग वाले गौ आदि की (अनु) पुष्टि से पुष्ट हों वैसे (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमारे (यज्ञम्) धर्मयुक्त व्यवहार को (ऋतुथा) ऋतुओं से (नयन्तु) प्राप्त करें ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वीरपुरुषों और पशुओं को अच्छे प्रकार पुष्ट करके पश्चात् आप पुष्ट हों । और सदा वसन्तादि ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार किया करें ॥ १९ ॥

अग्न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता ।
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
कथमपत्यानि प्रशस्तानि स्युरित्याह ॥

सन्तान कैसे उत्तम हों इस वि० ॥

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप त्वष्टारᳬ सोमपीतये ॥ २० ॥

अग्ने । पत्नीः । इह । आ । वह । देवानाम् । उशतीः । उप । त्वष्टारम् । सोमपीतय इति सोमऽपीतये ॥ २० ॥

पदार्थः—(अग्ने) अध्यापकाऽध्यापिके वा (पत्नीः) (इह) (आ) (वह) प्रापय (देवानाम्) विदुषाम् (उशतीः) कामयमानाः (उप) (त्वष्टारम्) देदीप्यमानम् (सोमपीतये) सोमस्य पानाय ॥ २० ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वमिह स्वसदृशान् पतीरुशतीर्देवानां पत्नीः सोमपीतये त्वष्टारमुपा वह ॥ २० ॥

भावार्थः—यदि मनुष्याः कन्याः सुशिक्ष्य विदुषीः कृत्वा स्वयंवृतान् हृद्यान् पतीन् प्रापय्य प्रेम्णा सन्तानानुत्पादयेयुस्तर्हि तान्यपत्यान्यतीव प्रशंसितानि भवन्ति ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अध्यापक वा अध्यापिके ! तू (इह) इस गृहाश्रम में अपने तुल्य गुण वाले पतियों वा (उशतीः) कामनायुक्त (देवानाम्)

विद्वान् की (पत्नीः) स्त्रियों को और (सोमपीतये) उत्तम ओषधियों के रस को पीने के लिये (त्वष्टारम्) तेजस्वी पुरुष को (उप, आ, वह) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त कर वा करें ॥ २० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य कन्याओं को अच्छी शिक्षा दे विदुषी बना और स्वयंवर से प्रिय पतियों को प्राप्त करा के प्रेम से सन्तानों को उत्पन्न करावें तो वे सन्तान अत्यन्तप्रशंसित होते हैं ॥ २० ॥

अभीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता ।
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
के विद्वांसो भवेयुरित्याह ॥
कौन विद्वान् हों इस वि० ॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब॑ ऋतुना॑ । त्वꣳहि रत्न॒धा असि॑ ॥ २१ ॥

अभि । यज्ञम् । गृणीहि । नः । ग्नावः । नेष्टरिति नेष्टः । पिब॑ । ऋतुना॑ । त्वम् । हि । रत्नधा इति॑ रत्न॒ऽधाः । असि॑ ॥ २१ ॥

पदार्थः—(अभि) आभिमुख्ये (यज्ञम्) प्रशस्तव्यवहारम् (गृणीहि) स्तुहि (नः) अस्माकम् (ग्नावः) प्रशस्तवाग्मिन् । ग्नेति वाङ्ना० निघं० १ । ११ । (नेष्टः) नेतः (पिब) (ऋतुना) वसन्तादिना सह (त्वम्) (हि) (रत्नधाः) रमणीयवस्तुधर्त्ता (असि) ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे ग्नावो नेष्टस्त्वमृतुना सह नो यज्ञमभि गृणीहि यतस्त्वं हि रत्नधा असि तस्मात्सदोषधिरसान् पिब ॥२०॥

भावार्थः— ये सुशिक्षिताया वाचः सङ्गतं व्यवहारं ज्ञातुमिच्छेयुस्ते विद्वांसो भवेयुः ॥ २१ ॥

पदार्थः— हे (ग्रावः) प्रशस्त वाणी वाले (नेष्टः) नायक जन आप (ऋतुना) वसन्त आदि ऋतु के साथ (नः) हमारे (यज्ञम्)उत्तम व्यवहार की (अभि, गृणीहि) सन्मुख स्तुति कीजिये जिस कारण (त्वं, हि) तुम ही (रत्नधाः) प्रसन्नता के हेतु वस्तु के धारण कर्त्ता (असि) हो इससे उत्तम ओषधियों के रसों को (पिब) पी ॥ २१ ॥

भावार्थः— जो अच्छी शिक्षा को प्राप्त वाणी के संगत व्यवहार को जानने की इच्छा करें वे विद्वान् होवें ॥ २१ ॥

द्रविणोदा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता ।

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनर्विद्वद्भिर्मनुष्यैः किं कार्य्यमित्याह ॥

फिर विद्वान् मनुष्यों को क्या चाहिये इस वि० ॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ २२ ॥

द्रविणोदा इति द्रविणःऽदाः । पिपीषति । जुहोत । प्र । च । तिष्ठत । नेष्ट्रात् । ऋतुभिरित्यृतुऽभिः । इष्यत ॥ २२ ॥

पदार्थः—(द्रविणोदाः) यो द्रविणो धनं यशो वा ददाति सः (पिपीषति) पातुमिच्छति (जुहोत) (प्र, च) (तिष्ठत) प्रतिष्ठां लभध्वम् (नेष्ट्रात्) विनयात् (ऋतुभिः) वसन्तादिभिः सह (इष्यत) प्राप्नुत ॥ २२ ॥

अन्वयः— हे मनुष्या यथा द्रविणोदा ऋतुभिः सह नेष्ट्रात् रसं पिपीषति तथा यूयं रसमिष्यत जुहोत प्रतिष्ठत ॥ २२ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०—हे विद्वांसो मनुष्या यथा सद्वैद्याः पथ्येनोत्तमविद्यया स्वयमरोगाः सन्तोऽन्यान् रोगात्पृथक्कृत्य प्रशंसां लभन्ते तथैव युस्माभिरप्याचरणीयम् ॥ २२ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! जैसे (द्रविणोदाः) धन वा यश का देने वाला जन (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के साथ (नेष्ट्रात्) विनय से रसको (पिपीषति) पिया चाहता है वैसे तुम लोग रस को (इष्यत) प्राप्त होओ (जुहोत) ग्रहण वा हवन करो (च) और (प्र, तिष्ठत) प्रतिष्ठा को प्राप्त होओ ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० -हे विद्वान् जैसे उत्तम वैद्य सुन्दर पथ्य भोजन और उत्तम विद्या से आप रोगरहित हुए दूसरों को रोगों से पृथक् करके प्रशंसा को प्राप्त होते हैं वैसे ही तुम लोगों को भी आचरण करना अवश्य चाहिये ॥ २२ ॥

तवायमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता ।
भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमꣳ सुमना अस्य पाहि । अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्यानिषद्या दधिष्वेमं जठरऽइन्दुमिन्द्र ॥ २३ ॥

तव । अयम् । सोमः । त्वम् । आ । इहि । अर्वाङ् । शश्वत्तममिति शश्वत्ऽतमम् । सुमनाइति सुऽमनाः ।

अस्य । पाहि । अस्मिन् । यज्ञे । बर्हिषि । आ । निषद्य । निसद्येति निऽसद्य । दधिष्व । इमम् । जठरे । इन्दुम् । इन्द्र ॥ २३ ॥

पदार्थः– (तव) (अयम्) (सोमः) ऐश्वर्ययोगः (त्वम्) (आ, इहि)समन्तात्प्राप्नुहि (अर्वाङ्) आभिमुख्यं प्राप्तः (शश्वत्तमम्)अतिशयेन शश्वदनादिभूतम् (सुमनाः)धर्मकार्ये प्रसन्नमनाः (अस्य) (पाहि) (अस्मिन्) (यज्ञे) संगन्तव्ये (बर्हिषि) उत्तमे साधुनि (आ) (निषद्य)नितरां स्थित्वा । अत्र संहितायामिति दीर्घः । (दधिष्व) धर (इमम्) (जठरे) उदराग्नौ (इन्दुम्) रोगहरौषधिरसम् (इन्द्र)परमैश्वर्यमिच्छो ॥ २३ ॥

अन्वयः– हे इन्द्र विद्वन्यस्तवायं सोमोऽस्ति तं त्वमेहि सुमना अर्वाङ् सन्नस्य शश्वत्तमं पाहि । अस्मिन्बर्हिषि यज्ञे निषद्य जठर इममिन्दुं चा दधिष्व ॥ २३ ॥

भावार्थः– विद्वांसः सर्वैः सहाभिमुख्यं प्राप्य प्रसन्नमनसः सन्तः सनातनं धर्मं विज्ञानं चोपदिशेयुः पथ्यमन्नादि सेवेरन् सदैव पुरुषार्थे प्रयतेरंश्च ॥ २३ ॥

पदार्थः– हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य की इच्छा वाले विद्वन् ! जो (तव) आप का (अयम्) यह (सोमः) ऐश्वर्य का योग है उस को (त्वम्) आप (आ, इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (सुमनाः) धर्म कार्यों में प्रसन्न चित्त (अर्वाङ्) सन्मुख प्राप्त हुए (अस्य) इस अपने आत्मा के (शश्वत्तमम्) अधिकतर अनादि धर्म की (रक्षा) पाहि कीजिये (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम (यज्ञे) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (निषद्य) निरन्तर स्थित हो के

(जठरे) जाठराग्नि में (इमम्) इस प्रत्यक्ष (इन्दुम्) रोगनाशक ओषधियों के रस को (आ, दधिध्व) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थः– विद्वान् लोग सब के साथ सदा सन्मुखता को प्राप्त होके प्रसन्न चित्त हुए सनातन धर्म तथा विज्ञान का उपदेश किया करें, पथ्य अन्न आदि का भोजन करें और सदा पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहें ॥ २३ ॥

अमेवेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । विद्वान् देवता ।
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन । अथा मदस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ २४ ॥

अमेवेत्यमाऽइव । नः । सुहवाऽइति सुऽहवाः । आ । हि । गन्तन । नि । बर्हिषि । सदतन । रणिष्टन । अथ । मदस्व । जुजुषाणः । अन्धसः । त्वष्टः । देवेभिः । जनिभिरिति जनिऽभिः । सुमद्गणऽइति सुमत्ऽगणः ॥ २४ ॥

पदार्थः– (अमेव) उत्तमं गृहमिव (नः) अस्मान् (सुहवाः) शोभनाह्वानाः (आ) (हि) किल (गन्तन) गच्छत (नि) नितराम् (बर्हिषि) उत्तमे व्यवहारे (सदतन) सीदत (रणिष्टन) वदत (अथ) अनन्तरम् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (मदस्व) आनन्द (जुजुषाणः) प्रसन्नः सेवमानः (अन्धसः) अन्नादेर्मध्ये (त्वष्टः) देदीप्यमानः (देवेभिः) दिव्यगुणैः (जनिभिः) जन्मभिः (सुमद्गणः) सुहर्षगणः ॥ २४ ॥

अन्वयः— हे त्वष्टो जुजुवाणः सुमद्गण संस्तां देवेभिर्जनिभिः सहाऽन्धसो मदस्वाथाऽमेवान्यानानन्दय । हे विद्वांसः सुहवा यूयमस्मेव बर्हिषि न आ गन्तन । अत्र हि निषदतन रणिष्टन च ॥ २४ ॥

भावार्थः— अत्रोपमालं०-ये स्वयमुत्तमे व्यवहारे स्थित्वाऽन्यान् स्थापयेयुस्ते सदाऽऽनन्देयुः । स्त्रीपुरुषाः प्रीत्या संयुज्य यान्यपत्यानि जनयेयुस्तानि दिव्यगुणानि जायन्ते ॥ २४ ॥

पदार्थः— हे (त्वष्टः) तेजस्वि विद्वन् ! (जुजुषाणः) प्रीतपूर्वक गुरु आदि की सेवा करते हुए (सुमद्गणः) सुन्दर प्रेसन मण्डली वाले आप (देवेभिः) उत्तम गुण (जनिभिः) जन्मों के साथ (अन्धसः) अन्नादि उत्तम पदार्थों की प्राप्ति में (मदस्व) आनन्दित हूजिये (अथ) इस के अनन्तर (अमेव) उत्तम घर के तुल्य औरों को आनन्दित कीजिये । हे विद्वान् लोगो ! (सुहवाः) सुन्दर प्रकार बुलाने हारे तुम लोग उत्तम घर के समान (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार में (नः) हमको (आ, गन्तन) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये । इस स्थान में (हि) निश्चित होकर (निषदतन) निरन्तर बैठिये और (रणिष्टन) अच्छा उपदेश कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमालं०-जो आप उत्तम व्यवहार में स्थित हो के औरों को स्थित करें वे सदा आनन्दित हों । स्त्री पुरुष उत्कण्ठापूर्वक संयोग करके जिन सन्तानों को उत्पन्न करें वे उत्तम गुण वाले होते हैं ॥ २४ ॥

स्वादिष्ठयेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सोमो देवता ।
निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

स्वादि॑ष्ठया॒ मदि॑ष्ठया॒ पव॑स्व सोम॒ धार॑या ।
इन्द्रा॑य॒ पात॑वे सु॒तः ॥ २५ ॥

स्वादिष्ठया । मदिष्ठया । पवस्व । सोम । धारया । इन्द्राय । पातवे । सुतः ॥ २५ ॥

पदार्थः-(स्वादिष्ठया) अतिशयेन स्वादुयुक्तया (मदिष्ठया) अतिशयेनानन्दप्रदया (पवस्व) पवित्रो भव (सोम) ऐश्वर्ययुक्त (धारया) धारणकर्या (इन्द्राय) ऐश्वर्याय (पातवे) पातुं रक्षितुम् (सुतः) निष्पादितः॥२५॥

अन्वयः—हे सोम विद्वँस्त्वं य इन्द्राय पातवे सुतोऽस्ति तस्य स्वादिष्ठया मदिष्ठया धारया पवस्व ॥ २५ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो मनुष्याः सर्वरोगप्रणाशकमानन्दप्रदमोषधिरसं पीत्वा शरीरात्मानौ पवित्रयन्ति ते धनाढ्या जायन्ते ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! आप जो (इन्द्राय) संपत्ति की (पातवे) रक्षा करने के लिये (सुतः) निकाला हुआ उत्तम रस है उस को (स्वादिष्ठया) अतिस्वादयुक्त (मदिष्ठया) अतिआनन्द देने वाली (धारया) धारण करने हारी क्रिया से (पवस्व) पवित्र हूजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य सब रोगों के नाशक आनन्द देने वाले ओषधियों के रस को पी के अपने शरीर और आत्मा को पवित्र करते हैं वे धनाढ्य होते हैं ॥२५॥

रक्षोहेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता ।
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २६ ॥

रक्षोहेति रक्षःऽहा । विश्वचर्षणिरिति विश्वऽचर्षणिः अभि । योनिम् । अपःऽहते । द्रोणे । सधस्थमिति सधऽस्थम् । आ । असदत् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(रक्षोहा) यो रक्षांसि दुष्टान् प्राणिनो हन्ति सः (विश्वचर्षणिः) विश्वस्याऽखिलस्य प्रकाशकः (अभि) अभितः (योनिम्) गृहम् (अपोहते) अपसा सुवर्णेन प्राप्ते। आप इति हिरण्यना० निघं० १।२। (द्रोणे) पात्रविशेषे (सधस्थम्) समानस्थानम् (आ) (असदत्) तिष्ठेत् ॥ २६॥

अन्वयः—यो रक्षोहा विश्वचर्षणिर्विद्वानपोहते द्रोणे सधस्थं योनिमभ्यासदत्स सर्वं सुखमाप्नुयात् ॥ २६ ॥

भावार्थः—येऽविद्याहन्तारो विद्याप्रकाशकाः सर्वर्तुसुखकरेषु सुवर्णादियुक्तेषु गृहेषु स्थित्वा विचारं कुर्युस्ते सुखिनो जायन्त इति ॥ २६ ॥

अस्मिन्नध्याये पुरुषार्थफलवर्णनं सर्वेषां मनुष्याणां वेदपठनश्रवणाधिकाराः परमेश्वरविद्वत्सत्यनिरूपणमन्न्यादिपदार्थकथनं यज्ञवर्णनं सुन्दरगृहनिर्माणमुत्तमस्थाने स्थितिश्चोक्ताऽत एतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

पदार्थः—जो (रक्षोहा) दुष्टप्राणियों को मारने हारा (विश्वचर्षणिः) सब संसार का प्रकाशक विद्वान् (अपोहते) सुवर्ण से प्राप्त हुए (द्रोणे) बीस सेर अन्न रखने के पात्र में (सधस्थम्) समान स्थिति वाले (योनिम्) घर में (अभि, आ, असदत्) अच्छे प्रकार स्थित होवे वह संपूर्ण सुख को प्राप्त होवे ॥ २६ ॥

भावार्थः–जो अविद्या अज्ञान के नाशक विज्ञान के प्रकाशक सब ऋतुओं में सुखकारी सुवर्ण आदि से युक्त घरों में बैठ के विचार करें वे सुखी होते हैं ॥ २६ ॥

इस अध्याय में पुरुषार्थ के फल, सब मनुष्यों को वेद पढ़ने सुनने का अधिकार, परमेश्वर, विद्वान् और सत्य का निरूपण, अग्न्यादि पदार्थ, यज्ञ, सुन्दर घरों का बसाना और उत्तम स्थान में स्थिति आदि कही है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीपरमविदुषां विरजा-
नन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजका-
चार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृ-
तार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये
षाड्विंशोऽध्यायः पूर्त्तिमगात् ॥ २६ ॥

ओ३म्

अथ सप्तविंशोऽध्याय आरम्यते ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

समा इत्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥
अथाप्तैः कथमाचरणीयमित्याह॥

अब सत्ताईसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में
आप्तों को कैसा आचरण करना चाहिये इस वि० ॥

समास्त्वाऽग्न ऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सराऽऋषयो यानि सत्या। सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः॥ १ ॥

समाः। त्वा। अग्ने। ऋतवः। वर्द्धयन्तु। संवत्सराः। ऋषयः। यानि। सत्या। सम्। दिव्येन। दीदिहि। रोचनेन। विश्वाः। आ। भाहि। प्रदिश इति प्रऽदिशः। चतस्रः॥ १॥

पदार्थः—(समाः) वर्षाणि (त्वा) त्वाम् (अग्ने) विद्वन् (ऋतवः) शरदादयः (वर्द्धयन्तु) (संवत्सराः) (ऋषयः) मंत्रार्थविदः (यानि) (सत्या) सत्सु साधू-

नि त्रैकाल्याबाध्यानि कर्माणि (सम्) (दिव्येन) अतिशुद्धेन (दीदिहि) कामय (रोचनेन) प्रदीपनेन (विश्वाः) अखिलाः (आ) समन्तात् (भाहि) प्रकाशय (प्रदिशः) प्रकृष्टगुणयुक्ता दिशः (चतस्रः) एतत्संख्याप्रमिताः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! समा ऋतवः संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या सन्ति ते त्वा वर्द्धयन्तु । यथाऽग्निर्दिव्येन रोचनेन विश्वाश्चतस्रः प्रदिशः प्रकाशयति तथा विद्यां संदीदिहि । न्याय्यं धर्ममा भाहि ॥ १ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०—आप्तैः सर्वदा सत्या विद्याः कर्माणि चोपदिश्य सर्वेषां शरीरिणामारोग्यपुष्टीर्विद्या सुशीले च वर्द्धनीये। यथा सूर्यः स्वसंनिहितान्प्रकाशयति तथा सर्वे मनुष्याः सुशिक्षया सदैवानन्दयितव्याः ॥१॥

पदार्थः–हे (अग्ने) विद्वन् ! (समाः) वर्ष (ऋतवः) शरद् आदि ऋतु (संवत्सराः) प्रभवादि संवत्सर (ऋषयः) मंत्रों के अर्थ जानने वाले विद्वान् और (यानि) जो (सत्या) सत्य कर्म हैं वे (त्वा) आप को (वर्द्धयन्तु) बढ़ावें । जैसे अग्नि (दिव्येन) शुद्ध (रोचनेन) प्रकाश से (विश्वा) सब (प्रदिशः) उत्तम गुणयुक्त (चतस्रः) चार दिशाओं को प्रकाशित करता है वैसे विद्या की (सं, दीदिहि) सुन्दर प्रकार कामना कीजिये और न्याययुक्त धर्म का (आ, भाहि) अच्छे प्रकार प्रकाश कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः–इस मन्त्र में वाचकलु०–आप्तपुरुषों को चाहिये कि सब काल में सत्य विद्या और उत्तम कामों का उपदेश करके सब शरीरधारियों के आरोग्य, पुष्टि, विद्या और सुशीलता को बढ़ावें जैसे सूर्य अपने सन्मुख के पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे सब मनुष्यों को शिक्षा से सदैव आनन्दित किया करें ॥ १ ॥

संवेत्यस्याग्निर्ऋषिः । सामिधेन्यो देवताः ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
विद्वांसएवोत्तमाधिकारे योजनीया इत्याह ॥
विद्वानों को ही उत्तम अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये इस वि० ॥

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय । मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥ २ ॥

सम् । च । इध्यस्व । अग्ने । प्र । च । बोधय । एनम् । उत् । च । तिष्ठ । महते । सौभगाय । मा । च । रिषत् । उपसत्तेत्युपऽसत्ता । ते । अग्ने । ब्रह्माणः । ते । यशसः । सन्तु । मा । अन्ये ॥ २ ॥

पदार्थः—(सम्) सम्यक् (च) (इध्यस्व) प्रदीप्तो भव (अग्ने) अग्निवद्वर्त्तमान (प्र) (च) (बोधय) (एनम्) जिज्ञासुम् (उत्) (च) (तिष्ठ) (महते) (सौभगाय) शोभनस्य भगस्यैश्वर्यस्य भावाय (मा) (च) (रिषत्) हिंस्यात् (उपसत्ता) य उपसीदति सः (ते) तव (अग्ने) (ब्रह्माणः) चतुर्वेदविदः (ते) (यशसः) कीर्त्तेः (सन्तु) (मा) निषेधे (अन्ये) ॥ २ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वं समिध्यस्वैनं प्रबोधय च महते सौभगाय चोत्तिष्ठ । उपसत्ता भवान् सौभगं मा रिषत् । हे अग्ने ते ब्रह्माणोऽन्ये च मा सन्तु ते यशस उन्नतिं च मा रिषत् ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये विद्वद्भ्यो भिन्नाञ्जनानुत्तमाऽधिकारे न योजयन्ति सदोन्नतये प्रयतन्तेऽन्यायेन कंचिन्न हिंसन्ति च ते कीर्त्यैश्वर्य्य-युक्ता भवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् आप (सम्, इध्यस्व) अच्छे प्रकार प्रकाशित हूजिये (च) और (एनम्) इस जिज्ञासु जनको (प्रबोधय) अच्छा बोध कराइये (च) और (महते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य होने के लिये (उत्, तिष्ठ) उद्यत हूजिये तथा (उपसत्ता) समीप बैठने वाले आप सौभाग्य को (मा रिषत) मत विगाड़िये। हे (अग्ने) तेजस्वि जन! (ते) आप के (ब्रह्माणः) चारों वेद के जानने वाले (अन्ये) भिन्न बुद्धि वाले (च) भी (मा, सन्तु) न हो जावें (च) और (ते) आप अपने (यशसः) यश कीर्त्ति की उन्नति को न विगाड़िये ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वानों से भिन्न इतर जनों को उत्तम अधिकार में नहीं युक्त करते सदा उन्नति के लिये प्रयत्न करते और अन्याय से किसी को नहीं मारते हैं वे कीर्त्ति और ऐश्वर्य से युक्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

त्वामित्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता।
विराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

जिज्ञासुभिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

जिज्ञासु लोगों को क्या करना चाहिये इस वि०॥

त्वाम॑ग्ने वृणते ब्राह्म॒णा इ॒मे शि॒वो अ॑ग्ने सं॒वर॑णे भवा नः। स॒प॒त्न॒हा नो॑ अभिमाति॒जिच्च॒ स्वे गये॑ जागृ॒ह्यप्र॑युच्छन् ॥ ३ ॥

त्वाम्। अ॒ग्ने॒। वृ॒ण॒ते॒। ब्रा॒ह्म॒णाः। इ॒मे। शि॒वः। अ॒ग्ने॒। सं॒वर॑ण॒ इति॑ स॒म्ऽवर॑णे। भ॒व॒। नः॒। स॒प॒त्न॒हेति॑। स॒प॒त्न॒ऽहा। नः॒। अ॒भि॒मा॒ति॒जि॒दित्य॑भिमा॒ति॒ऽजित्। च॒। स्वे। गये॑। जा॒गृ॒हि॒। अप्र॑युच्छ॒न्नित्यप्र॑ऽयुच्छन्॥ ३॥

पदार्थः—(त्वाम्) (अग्ने) विद्वन् (वृणते) स्वीकुर्वन्ति (ब्राह्मणाः) ब्रह्मविदः (इमे) (शिवः) मङ्गलकारी (अग्ने) पावकवत् प्रकाशमान (संवरणे) सम्यक् स्वीकरणे (भव) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (नः) अस्माकम् (सपत्नहा) शत्रुदोषहन्ता (नः) अस्मान् (अभिमातिजित्) अभिमानजित् (च) (स्वे) स्वकीये (गये) गृहे (जागृहि) (अप्रयुच्छन्) प्रमादमकुर्वन् ॥ ३ ॥

अन्वयः- हे अग्ने पावकवद्वर्त्तमान य इमे ब्राह्मणास्त्वां वृणते तान् प्रति त्वं संवरणे शिवो भव नोऽस्माकं सपत्नहा भव। हे अग्नेऽप्रयुच्छन्नभिमातिजिच्च त्वं स्वे गये जागृहि नोऽस्माँश्च जागृतान्कुरु ॥ ३ ॥

भावार्थः- यथा विद्वांसो ब्रह्म स्वीकृत्य मङ्गलमाप्नुवन्ति दोषान् घ्नन्ति तथा जिज्ञासवो ब्रह्मविदः प्राप्य मङ्गलाचरणाः सन्तः कुशीलतां घ्नन्त्वालस्यं विहाय विद्यामुन्नयन्तु च ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वि विद्वन्! अग्नि के समान वर्त्तमान जो (इमे) ये (ब्राह्मणाः) ब्रह्मवेत्ता जन (त्वाम्) आप को (वृणते) स्वीकार करते हैं

उन के प्रति आप (संवरणे) सम्यक् स्वीकार करने में (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये (नः) हमारे (सपत्नहा) शत्रुओं के दोषों के हनन कर्त्ता हूजिये । हे (अग्ने) अग्निवत् प्रकाशमान ! (अप्रयुच्छन्) प्रमाद नहीं करते हुए (च) और (अभिमातिजित्) अभिमान को जीतने वाले आप (स्वे) अपने (गये) घर में (जागृहि) जागो अर्थात् गृह कार्य करने में निद्रा आलस्यादि को छोड़ो (नः) हम को भी चेतन करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग ब्रह्म को स्वीकार करके आनन्द मङ्गल को प्राप्त होते और दोषों को निर्मूल नष्ट कर देते हैं वैसे जिज्ञासु लोग वेदवित् विद्वानों को प्राप्त हो के आनन्द मङ्गल का आचरण करते हुए बुरे स्वभावों के मूल को नष्ट करें और आलस्य को छोड़ के विद्या की उन्नति किया करें ॥ ३ ॥

इहैवेत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट्
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजधर्मविषयमाह ॥

अब राज धर्म विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इहैवाग्ने॒ऽ अधि॑ धारया र॒यिं मा त्वा॒ निक्र॑न्पूर्व॒चितो॑ निका॒रिणः॑ । क्ष॒त्रम॑ग्ने सु॒यम॑मस्तु॒ तुभ्य॑मुपस॒त्ता व॑र्द्धतां ते॒ऽ अनि॑ष्टृतः ॥ ४ ॥

इह । एव । अ॒ग्ने॒ । अधि॑ । धा॒र॒य॒ । र॒यिम् । मा । त्वा॒ । नि । क्र॒न् । पू॒र्व॒चित॒ इति॑ पूर्व॒ऽचितः॑ । नि॒का॒रिण॒ इति॑ निऽका॒रिणः॑ । क्ष॒त्रम् । अ॒ग्ने॒ । सु॒यम॒मिति॑ सु॒ऽयम॑म् । अ॒स्तु॒ । तुभ्य॑म् । उ॒प॒स॒त्तेत्यु॑पऽस॒त्ता । व॒र्द्ध॒ताम् । ते॒ । अनि॑ष्टृतः । अनि॑स्तृत॒ इत्यनि॑ऽस्तृतः ॥४॥

पदार्थः—(इह) अस्मिन्संसारे (एव) (अग्ने)विद्यु-द्वद्वर्त्तमान (अधि) उपरिभावे (धारय) अत्र संहिता-यामिति दीर्घः (रयिम्) श्रियम् (मा) (त्वा) त्वाम् (नि) नीचैः (क्रन्) कुर्युः (पूर्वचितः) पूर्वैः प्राप्त-विज्ञानादिभिर्वृद्धाः (निकारिणः) नितरांकर्त्तुं स्वभावाः (क्षत्रम्) धनं राज्यं वा(अग्ने)विनयप्रकाशित(सुयमम्) सुष्ठु यमा यस्मात्तत् (अस्तु) (तुभ्यम्)(उपसत्ता)उपसीदन् (वर्द्धताम्) (ते) तव (अनिष्टृतः) अनुपहिंसितः ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वमिह रयिं धारय पूर्वचितो निकारिणस्त्वा मा नि क्रन् । हे अग्ने ते सुयमं क्षत्रमस्तु येनोपसत्ता सन्ननिष्टृतो भूत्वैव भवान्नधिवर्धताम् । तुभ्यं क्षत्रं सुखदातृ भवतु ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे राजन्नेवं विनयं धर्त्येन पूर्ववृद्धा जनास्त्वां बहुमन्ये-रन् । राज्ये सुनियमान् प्रवर्त्तय येन स्वयं स्वराज्यं च विघ्नविरहं भूत्वा सर्वतो वर्द्धेत भवन्तं सर्वोपरि प्रजा मन्येत च ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन् ! आप (इह) इस संसार में (रयिम्) लक्ष्मी को (धारय) धारण कीजिये (पूर्वचितः) प्रथम प्राप्त किये विज्ञानादि से श्रेष्ठ (निकारिणः) निरन्तर कर्म करने के स्वभाव वाले जन (त्वा) आप को (मा, नि, क्रन् नीच गति को प्राप्त न करें । हे (अग्ने) विनय से शोभायमान सभापते (ते) आप का (सुयमम्) सुन्दर नियम जिस से चले वह (क्षत्रम्) धन वा राज्य(अस्तु) होवे जिस से (उपसत्ता) समीप बैठते हुए (अनिष्टृतः) हिंसा वा विघ्न को नहीं प्राप्त हो के (एव) ही आप (अधि, वर्द्धताम्) अधिकता से वृद्धि को प्राप्त हूजिये (तुभ्यम्) आप के लिये राज्य वा धन सुख दायी होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः-हे राजन्! आप ऐसे उत्तम विनय को धारण कीजिये जिस से प्राचीन वृद्ध जन आप को बड़ा माना करें। राज्य में अच्छे नियमों को प्रवृत्त कीजिये जिस से आप और आप का राज्य विघ्न से रहित हो कर सब ओर से बढ़े और प्रजा जन आप को सर्वोपरि माना करें॥ ४॥

क्षत्रेणेत्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सᳬरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व। सजातानां मध्यमस्थाऽएधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह॥ ५॥

क्षत्रेण। अग्ने। स्वायुरिति सुऽआयुः। सम्। रभस्व। मित्रेण। अग्ने। मित्रधेय इति मित्रऽधेये। यतस्व। सजातानामिति सऽजातानाम्। मध्यमस्था इति मध्यमऽस्थाः। एधि। राज्ञाम्। अग्ने। विहव्यइति विऽहव्यः। दीदिहि। इह॥ ५॥

पदार्थः-(क्षत्रेण) राज्येन धनेनवा (अग्ने) पावक वत्तेजस्विन् (स्वायुः) शोभनं चतदायुश्च (सम्) सम्यक् (रभस्व) आरम्भं कुरु (मित्रेण) धार्मिकैर्विद्वद्भिर्मित्रैः सह (अग्ने) विद्याविनयप्रकाशक (मित्रधेये) मित्रैर्धर्त्तव्ये व्यवहारे (यतस्व) (सजातानाम्) समानजन्मनाम् (मध्यमस्थाः) मध्ये भवा

मध्यस्था पक्षपातरहितास्तेषु तिष्ठतीति (एधि) भव (रा- ज्ञाम्) धार्मिकाणां राजाधिराजानां मध्ये (अग्ने) न्यायप्रकाशक (विहव्यः) विशेषेण स्तोतुं योग्यः (दीदिहि) प्रकाशितो भव (इह) अस्मिन् संसारे राज्याधिकारे वा ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वमिह क्षत्रेण सह स्वायुः संरभस्व । हे अग्ने ! मित्रेण सह मित्रधेये यतस्व । हे अग्ने ! सजातानां राज्ञां मध्ये मध्यमस्था एधि विहव्यः सन् दीदिहि च ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजा सदा ब्रह्मचर्येण दीर्घायुः सत्यधर्मप्रियैरमात्यैः सह मंत्रयिताऽन्यैराजभिः सह सुसन्धिः पक्षपातं विहाय न्यायाधीशः सर्वैः सुलक्षणैर्युक्तः सन् दुष्टव्यसनविरहो भूत्वा धर्मार्थकाममोक्षान् धैर्येण शान्त्याऽप्रमादेन च शनैश्शनैः साधयेत् ॥ ५ ॥

पदार्थः— हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! आप (इह) इस जगत् में वा राज्याधिकार में (क्षत्रेण) राज्य वा धन के साथ (स्वायुः) सुन्दर युवाऽवस्था का (सम्, रभस्व) अच्छे प्रकार आरम्भ कीजिये । हे (अग्ने) विद्या और विनय से शोभायमान राजन् ! (मित्रेण) धर्मात्मा विद्वान् मित्रों के साथ (मित्रधेये) मित्रों से धारण करने योग्य व्यवहार में (यतस्व) प्रयत्न कीजिये । हे (अग्ने) न्याय का प्रकाश करने हारे सभापति ! (सजातानाम्) एक साथ उत्पन्न हुए बराबर की अवस्था वाले (राज्ञाम्) धर्मात्मा राजाधिराजों के बीच (मध्यमस्थाः) मध्यस्थ —वादिप्रतिवादि के साक्षि (एधि) हूजिये और (विहव्यः) विशेष कर स्तुति के योग्य हुए (दीदिहि) प्रकाशित हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—सभापति राजा सदा ब्रह्मचर्य से दीर्घायु, सत्य धर्म में प्रीति रखने वाले मंत्रियों के साथ विचारकर्त्ता अन्य राजाओं के साथ अच्छी सन्धि रखने वाला,

पक्षपात को छोड़ न्यायाधीश सब शुभ लक्षणों से युक्त हुआ दुष्ट व्यसनों से पृथक् हो के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को धीरज शान्ति अप्रमाद से धीरे २ सिद्ध करे ॥ ५ ॥

अति निह इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।
भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

अति॒ निहो॒ अति॒ स्रिधोऽत्यचित्ति॒मत्यरा॑तिमग्ने । विश्वा॒ ह्यग्ने दु॒रि॒ता सह॒स्वाथा॒ऽस्मभ्य॑ᳬ सहवीरा॒ᳬ र॒यिन्दाः॑ ॥ ६ ॥

अति॑ । निह॑ः । अति॑ । स्रिध॑ः । अति॑ । अचि॑त्तिम् । अति॑ । अरा॑तिम् । अग्ने॒ । विश्वा॑ । हि । अग्ने॒ । दु॒रि॒तेति॑ दुःऽइ॒ता । सह॑स्व । अथ॑ । अ॒स्मभ्य॑म् । स॒हवी॒रा॒मिति॑ स॒हऽवी॑राम् । र॒यिम् । दाः॑ ॥ ६ ॥

पदार्थः-(अति) अतिशयेन (निहः) योऽसत्यं नितरां जहाति सः (अति) (स्रिधः) दुष्टाचारान् (अति) अतिक्रम्य (अचित्तिम्) अज्ञानम् (अति) (अरातिम्) अदानम् (अग्ने) तेजस्विन्सभापते (विश्वा) सर्वाणि (हि) खलु (अग्ने) दृढविद्य (दुरिता) दुष्टाचरणानि (सहस्व) (अथ) (अस्मभ्यम्) (सहवीराम्) वीरैः सह वर्त्तमानां सेनाम् (रयिम्)धनम् (दाः) दद्याः ॥६॥

अन्वयः—हे अग्ने! त्वमति निहः सन् स्रिधोऽति सहस्वाचित्तिमत्यरातिं सहस्व । हे अग्ने त्वं हि विश्वा दुरिताऽतिसहस्वाऽथाऽस्मभ्यं सहवीरं रयिं च दाः ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये दुष्टाचारत्यागिनः कुत्सितानां निरोधका अज्ञानमदानं च पृथक् कुर्वाणा दुर्व्यसनेभ्यः पृथग्भूताः सुखदुःखयोः सोढारो वीरसेनाप्रिया यथागुणानां जनानां योग्यं सत्कारं कुर्वन्तः सन्तो न्यायेन राज्यं पालयेयुस्ते सदा सुखिनो भवेयुरिति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वि सभापते! आप (अति, निहः) निश्चय करके असत्य को छोड़ने वाले होते हुए (स्रिधः) दुष्टाचारियों को (अति, सहस्व) अधिक सहन कीजिये (अचित्तिम्) अज्ञान का (अति) अतिक्रमण कर (अरातिम्) दान के निषेध को सहन कीजिये (हे अग्ने) दृढ़ विद्या वाले तेजस्वि विद्वन्! आप (हि) ही (विश्वा) सब (दुरिता) दुष्ट आचरणों का (अति) अधिक सहन कीजिये (अथ) इस के पश्चात् (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सहवीराम्) वीरपुरुषों से युक्त सेना और (रयिम्) धन को (दाः) दीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो दुष्ट आचारों के त्यागी कुत्सित जनों के रोकने वाले अज्ञान तथा अदान को पृथक् करते और दुर्व्यसनों से पृथक् हुए, सुख दुःख के सहने और वीरपुरुषों की सेना से प्रीति करने वाले गुणों के अनुकूल जनों का ठीक सत्कार करते हुए न्याय से राज्य पालें सदा सुखी होवें ॥ ६ ॥

अनाधृष्य इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह । विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥ ७ ॥

अनाधृष्यः । जातवेदा ऽ इति जातऽवेदाः । अनिष्टृतः । अनिस्तृत इत्यनिःऽस्तृतः । विराडिति विऽराट् । अग्ने । क्षत्रभृदिति क्षत्रऽभृत् । दीदिहि । इह । विश्वाः । आशाः । प्रमुञ्चन्निति प्रऽमुञ्चन् । मानुषीः । भियः । शिवेभिः । अद्य । परि । पाहि । नः । वृधे ॥ ७ ॥

पदार्थः–(अनाधृष्यः) अन्यैर्धर्षितुमयोग्यः (जातवेदाः) जातविद्यः (अनिष्टृतः) दुःखात्पृथग्भूतः (विराट्) विशेषेण राजमानः (अग्ने) सुसंगृहीतराजनीते (क्षत्रभृत्) यः क्षत्रं राज्यं बिभर्त्ति सः (दीदिहि) कामय (इह) अस्मिन् राज्यव्यवहारे (विश्वाः) सकलाः (आशाः) दिशः (प्रमुञ्चन्) प्रकर्षेण मुक्ता कुर्वन् (मानुषीः) मनुष्यसम्बन्धिनीः (भियः) रोगदोषादिकाः (शिवेभिः) कल्याणकारिभिः सभ्यैः (अद्य) इदानीम् (परि) सर्वतः (पाहि) रक्ष (नः) अस्मान् (वृधे) वर्धनाय ॥ ७ ॥

अन्वयः–हे अग्ने योऽद्येह मानुषीर्भियो नाशय शिवेभिश्च सहानिष्टृतोऽनाधृष्यो जातवेदा विराट् क्षत्रभृदस्ति स त्वं नो दीदिहि विश्वा आशाः प्रमुञ्चँस्त्वं नो वृधे परि पाहि ॥ ७ ॥

भावार्थः–ये राजराजपुरुषाः प्रजाः सन्तोष्य मङ्गलाचरणाः सर्वविद्यान्यायप्रियाः सन्तः प्रजाः पालयेयुस्ते सर्वदिक्प्रवृत्तकीर्त्तयः स्युः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अच्छे प्रकार राजनीति का संग्रह करने वाले राजन्! जो आप (अद्य) इस समय (इह) इस राजा के व्यवहार में (मानुषीः) मनुष्य सम्बन्धी (भियः) रोगशोकादि भयों को नष्ट कीजिये (शिवेभिः) कल्याणकारी सभ्य सज्जनों के साथ (अनिष्टृतः) दुःख से पृथक् हुए (अनाधृष्यः) अन्यों से नहीं धमकाने योग्य (जातवेदाः) विद्या को प्राप्त (विराट्) विशेषकर प्रकाशमान (क्षत्रभृत्) राज्य के पोषक हैं सो आप (नः) हमारी (दीदिहि) कामना कीजिये (विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को (प्रमुञ्चन्) अच्छे प्रकार मुक्त करते हुए हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो राजा वा राजपुरुष प्रजाओं को सन्तुष्ट कर मंगलरूप आचरण करने और सब विद्याओं से युक्त न्याय में प्रसन्न रहते हुए प्रजाओं की रक्षा करें वे सब दिशाओं में प्रवृत्त कीर्त्ति वाले होवें ॥ ७ ॥

बृहस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳसꣳशितं चित्सन्तराꣳसꣳशिशाधि । वर्धयैनं महते सौभगाय विश्वऽएनमनु मदन्तु देवाः ॥ ८ ॥

बृहस्पते । सवितः । बोधय । एनम् । सꣳशितमिति सम्ऽशितम् । चित् । सन्तरामिति सम्ऽतराम् । सम् । शिशाधि । वर्धय । एनम् । महते । सौभगाय । विश्वे । एनम् । अनु । मदन्तु । देवाः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(बृहस्पते) बृहतां पालक (सवितः) विद्यैश्वर्ययुक्त (बोधय) सचेतनं कुरु (एनम्) राजानम् (संशितम्) तीक्ष्णबुद्धिस्वभावम् (चित्)(सन्तराम्) अतितराम् (सं, शिशाधि) सम्यक् शिक्षस्व (वर्धय) (एनम्) (महते) (सौभगाय) उत्तमैश्वर्यभावाय (विश्वे) सर्वे (एनम्) (अनु) पश्चात् (मदन्तु) आनन्दन्तु (देवाः) सुसभ्या विद्वांसः ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे बृहस्पते ! सवितः पूर्णविद्योपदेशक त्वमेनं संशितं कुर्वन् बोधय संशिशाधि चिदपि प्रजाः सन्तरां शिशाध्येनं महते सौभगाय वर्धय विश्वे देवा एनमनु मदन्तु ॥ ८ ॥

भावार्थः—यो राजसभोपदेशकः स एतान् दुर्व्यसनेभ्यो निवर्त्य सुशीलान् संपाद्य महैश्वर्यवृद्धये प्रवर्त्तयेत् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े सज्जनों के रक्षक (सवितः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त संपूर्ण विद्या के उपदेशक आप (एनम्) इस राजा को (संशितम्) तीक्ष्ण बुद्धि के स्वभाव वाला करते हुए (बोधय) चेतनतायुक्त कीजिये और (सम्, शिशाधि) सम्यक् शिक्षा कीजिये (चित्) और (सन्तराम्) अतिशय करके प्रजा को शिक्षा कीजिये (एनम्) इस राजा को (महते) बड़े (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य होने के लिये (वर्धय) बढ़ाइये और (विश्वे) सब (देवाः) सुन्दर सभ्य विद्वान् (एनम्) इस राजा के (अनु, मदन्तु) अनुकूल प्रसन्न हों ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो राजसभा का उपदेशक है वह इन राजादि को दुर्व्यसनों से पृथक् कर और सुशीलता को प्राप्त कराके बड़े ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये प्रवृत्त करे ॥ ८ ॥

अमुत्रेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथाध्यापकोपदेशकैः किं कार्य्यमित्याह ॥

अब अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पतेऽअभिशस्तेरमुञ्चः । प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ ९ ॥

अमुत्रभूयादित्यमुत्रऽभूयात् । अध । यत् । यमस्य । बृहस्पते । अभिशस्तेरित्यभिऽशस्तेः । अमुञ्चः । प्रति । औहताम् । अश्विना । मृत्युम् । अस्मात् । देवानाम् । अग्ने । भिषजा । शचीभिः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(अमुत्रभूयात्) परजन्मनि भाविनः । अत्रामुत्रोपपदाद् भूधातोः क्यप् (अध) अथ (यत्) (यमस्य) नियन्तुः (बृहस्पते) महतां पालक (अभिशस्तेः) सर्वतोऽपराधात् (अमुञ्चः) मुच्याः (प्रति) (औहताम्) वितर्केण साध्नुताम् (अश्विना) अध्यापकोपदेशकौ (मृत्युम्) (अस्मात्) (देवानाम्) (अग्ने) सद्वैद्य (भिषजा) औषधानि (शचीभिः) कर्मभिः प्रज्ञाभिर्वा ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे बृहस्पते त्वममुत्रभूयादभिशस्तेर्जनममुञ्चः । अध यद्यो यमस्य शासने तिष्ठेत्तस्य मृत्युममुञ्चः । हे अग्ने त्वं यथाऽश्विना शचीभिर्भिषजा प्रत्यौहतां तथाऽस्माद्देवानामारोग्यं सम्पादय ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—त एव श्रेष्ठा अध्यापकोपदेशका येऽत्र परत्र च सुखाय सर्वान् सुशिक्षयेयुर्येन ब्रह्मचर्यादीनि कर्माणि सेवयित्वा मनुष्या अल्पमृत्युमानन्दहानिं च नाप्नुयुः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़ों के रक्षक विद्वन्! आप (अमुत्रभूयात्) परजन्म में होने वाले (अभिशस्तेः) सब प्रकार के अपराध से (अमुञ्चः) छूटिये (अध) इस के अनन्तर (यत्) जो (यमस्य) धर्मात्मा नियमकर्त्ता जन की शिक्षा में रहे उस के (मृत्युम्) मृत्यु को छुड़ाइये। हे (अग्ने) उत्तम वैद्य आप जैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (शचीभिः) कर्म वा बुद्धियों से (भिषजा) रोगनिवारक पदार्थों को (प्रति, औहताम्) विशेष तर्क से सिद्ध करें वैसे (अस्मात्) इस से (देवानाम्) विद्वानों के आरोग्य को सिद्ध कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० —वेही श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक हैं जो इस लोक और परलोक में सुख होने के लिये सब को अच्छी शिक्षा करें जिस से ब्रह्मचर्यादि कर्मों का सेवन कर मनुष्य अल्पावस्था में मृत्यु और आनन्द की हानि को न प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

उद्वयमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । सूर्यो देवता ।
विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
अथेश्वरोपासनविषयमाह ॥
अब ईश्वर की उपासना का वि० ॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

उत् । वयम् । तमसः । परि । स्वरिति स्वः । पश्यन्तः । उत्तरमित्युत्ऽतरम् । देवम् । देवत्रेति देवऽत्रा । सूर्यम् । अगन्म । ज्योतिः । उत्तममित्युत्ऽतमम् ॥ १० ॥

पदार्थः-(उत्) उत्कर्षे (वयम्) (तमसः) अन्धकारात्पृथग्वर्त्तमानम् (परि) सर्वतः (स्वः) सुखसाधकम् (पश्यन्तः) प्रेक्षमाणाः (उत्तरम्) सर्वेषां लोकानामुत्तारकम् (देवम्) द्योतमानम् (देवत्रा) देवेषु वर्त्तमानम् (सूर्यम्) चराऽचरात्मानम् (अगन्म) प्राप्नुयाम (ज्योतिः) प्रकाशमानम् (उत्तमम्) अतिश्रेष्ठम् ॥ १० ॥

अन्वयः--हे मनुष्या यथा वयं तमसः पृथग्भूतं ज्योतिः सवितृमण्डलं पश्यन्तः स्वरुत्तरं देवत्रोत्तमं सूर्यं जगदीश्वरं देवं पर्युदगन्म तथा तं यूयमपि प्राप्नुत ॥ १० ॥

भावार्थः--अत्र वाचकलु०-- ये मनुष्याः सूर्यमिवाऽविद्यान्धकारात्पृथग्भूतं स्वप्रकाशं महादेवं सर्वोत्कृष्टं सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानमेवोपासते ते मुक्तिसुखमपि लभन्ते ॥ १० ॥

पदार्थः--हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान (ज्योतिः) प्रकाशमान सूर्यमण्डल को (पश्यन्तः) देखते हुए (स्वः) सुख के साधक (उत्तरम्) सब लोगों को दुःख से पार उतारने वाले (देवत्रा) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों में वर्त्तमान (उत्तमम्) अतिश्रेष्ठ (सूर्यम्) चराचर के आत्मा (देवम्) प्रकाशमान जगदीश्वर को (परि, उत्, अगन्म) सब ओर से उत्कर्षपूर्वक प्राप्त हों वैसे उस ईश्वर को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भावार्थः--इस मंत्र में वाचकलु०--जो मनुष्य सूर्य के समान अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् हुए स्वयं प्रकाशित बड़े देवता सब से उत्तम सब के अन्तर्यामी परमात्मा की ही उपासना करते हैं वे मुक्ति के सुख को भी अवश्य निर्विघ्न प्रीतिपूर्वक प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

ऊर्ध्वा इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।
उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
अथाऽग्निः कीदृश इत्याह ॥
अब अग्नि कैसा है इस वि० ॥

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीᳬष्यग्नेः । द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥११॥

ऊर्ध्वाः । अस्य । समिध इति सम्ऽइधः । भवन्ति । ऊर्ध्वा । शुक्रा । शोचीᳬषि । अग्नेः । द्युमत्तमेति द्युमत्ऽतमा । सुप्रतीकस्येति सुऽप्रतीकस्य । सूनोः ॥११॥

पदार्थः-(ऊर्ध्वाः) उत्तमाः (अस्य) (समिधः) सम्यक् प्रदीपिकाः (भवन्ति) (ऊर्ध्वा) ऊर्ध्वानि (शुक्रा) शुद्धानि (शोचींषि) तेजांसि (अग्नेः) पावकस्य (द्युमत्तमा) अतिशयेन प्रशस्तप्रकाशयुक्तानि (सुप्रतीकस्य) शोभनानि प्रतीकानि प्रतीतिकराणि कर्माणि यस्य तस्य (सूनोः) प्राणिगर्भविमोचकस्य ॥ ११ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या यस्याऽस्य सुप्रतीकस्य सूनोरग्नेरूर्ध्वाः समिध ऊर्ध्वा द्युमत्तमा शुक्रा शोचींषि भवन्ति तं विजानीत ॥ ११ ॥

भावार्थः- हे मनुष्या योऽयमूर्ध्वगन्ता सर्वदर्शनहेतुः सर्वेषां पालननिमित्तोऽग्निरस्ति तं विज्ञाय कार्याणि सततं साध्नुत ॥ ११ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! जिस (अस्य) इस (सुप्रतीकस्य) सुन्दर प्रतीतिकारक कर्मों से युक्त (सूनोः) प्राणियों के गर्भों को छुड़ाने हारे (अग्नेः)

अग्नि की (उर्ध्वाः) उत्तम (समिधः) सम्यक् प्रकाश करने वाली समिधा तथा (ऊर्ध्वा) ऊपर को जाने वाले (द्युमत्तमा) अतिउत्तम प्रकाशयुक्त (शुक्रा) शुद्ध (शोचींषि) तेज (भवन्ति) होते हैं उस को तुम जानो ॥ ११ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो यह ऊपर को उठने वाला सब के देखने का हेतु सब की रक्षा का निमित्त अग्नि है उस को जान के कार्यों को निरन्तर सिद्ध किया करो ॥ ११ ॥

तनूनपादित्यस्याऽग्निर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः ।
उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
अथ वायुः किंवत् कार्यसाधकोऽस्तीत्याह ॥
अब वायु किस के समान कार्यसाधक है इस वि० ॥

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥ १२ ॥

तनूनपादिति तनूऽनपात् । असुरः । विश्ववेदा इति विश्वऽवेदाः । देवः । देवेषु । देवः । पथः । अनक्तु । मध्वा । घृतेन ॥ १२ ॥

पदार्थः—(तनूनपात्) यस्तनूषु शरीरेषु न पतति सः (असुरः) प्रकाशरहितो वायुः (विश्ववेदाः) यो विश्वं विन्दति सः (देवः) दिव्यगुणः (देवेषु) दिव्यगुणेषु वस्तुषु (देवः) कमनीयः (पथः) मार्गान् (अनक्तु) (मध्वा) मधुरेण (घृतेन) उदकेन सह ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो देवेषु देवोऽसुरो विश्ववेदास्तनूनपाद्देवो मध्वा घृतेन सह पथोऽनक्तु तं यूयं विजानीत ॥ १२ ॥

भावार्थः–यथा परमेश्वरो महादेवो विश्वव्यापी सर्वेषां सुखकरोऽस्ति तथा वायुरप्यस्ति नह्यनेन विना कश्चिदपि कुत्रचिद् गन्तुं शक्नोति ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (देवेषु) उत्तम गुण वाले पदार्थों में (देवः) उत्तम गुण वाला (असुरः) प्रकाशरहित वायु (विश्ववेदाः) सब को प्राप्त होने वाला (तनूनपात्) जो शरीर में नहीं गिरता (देवः) कामना करने योग्य (मध्वा) मधुर (घृतेन) जल के साथ (पथः) श्रोत्रादि के मार्गों को (अनक्तु) प्रकट करे उस को तुम जानो ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर बड़ा देव सब में व्यापक और सब को सुख करने हारा है वैसा वायु भी है क्योंकि इस वायु के विना कोई कहीं भी नहीं जासकता ॥ १२ ॥

मध्वेत्यस्याग्निर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुनः कीदृशा जनाः सुखिनः स्युरित्याह ॥

फिर कैसे मनुष्य सुखी होवें इस वि० ॥

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसोऽअग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥ १३ ॥

मध्वा । यज्ञम् । नक्षसे । प्रीणानः । नराशꣳसः । अग्ने । सुकृदिति सुऽकृत् । देवः । सविता । विश्ववार इति विश्वऽवारः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(मध्वा) मधुरेण वचनेन (यज्ञम्) संगतं व्यवहारम् (नक्षसे) प्राप्नोषि (प्रीणानः) कामयमानः (नराशंसः)

यो नरान् शंसति सः (अग्ने) विद्वन् (सुकृत्) यः सुष्ठु करोति सः (देवः) व्यवहर्त्ता (सविता) ऐश्वर्यमिच्छुकः (विश्ववारः) यो विश्वं वृणोति सः ॥ १३ ॥

अन्वयः— हे अग्ने यो नराशंसः सुकृद्विश्ववारः प्रीणानः सविता देवस्त्वं मध्वा यज्ञं नक्षसे तं वयं प्रसादयेम ॥ १३ ॥

भावार्थः- ये मनुष्या यज्ञे सुगन्धादिहोमेन वायुजले शोधयित्वा सर्वान् सुखयन्ति ते सर्वाणि सुखानि प्राप्नुवन्ति ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जो (नराशंसः) मनुष्यों की प्रशंसा करने (सुकृत्) उत्तम काम करने और (विश्ववारः) प्रशंसा को स्वीकार करने वाले (प्रीणानः) चाहना करते हुए (सविता) ऐश्वर्य को चाहने वाले (देवः) व्यवहार में चतुर आप (मध्वा) मधुर वचन से (यज्ञम्) संगत व्यवहार को (नक्षसे) प्राप्त होते हो उन आप को हम लोग प्रसन्न करें ॥१३॥

भावार्थः— जो मनुष्य यज्ञ में सुगन्धादि पदार्थों के होम से वायु जल को शुद्ध कर सब को सुखी करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

अच्छेत्यस्याग्निर्ऋषिः । वह्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथाऽग्निनोपकारो ग्राह्य इत्याह ॥

अब अग्नि से उपकार लेना चाहिये इस वि० ॥

अच्छा॒यमे॑ति॒ शव॑सा घृ॒तेने॑डा॒नो वह्नि॒र्नम॑सा। अ॒ग्निꣳ स्रुचो॑ अध्व॒रेषु॑ प्र॒यत्सु॑ ॥ १४ ॥

अच्छ॑। अ॒यम्। ए॒ति॒। शव॑सा। घृ॒तेन॑। ई॒डा॒नः। वह्निः॑। नम॑सा। अ॒ग्निम्। स्रुचः॑। अ॒ध्व॒रेषु॑। प्र॒यत्स्विति॑ प्र॒यत्ऽसु॑ ॥ १४ ॥

पदार्थः– (अच्छ) (अयम्) (एति) गच्छति (शवसा) बलेन (घृतेन) जलेन सह (ईडानः) स्तुवन् (वह्निः) विद्याया वोढा (नमसा) पृथिव्याद्यन्नेन (अग्निम्) पावकम् (स्रुचः) होमसाधनानि (अध्वरेषु) अहिंसनीयेषु (प्रयत्सु) प्रयत्नसाध्येषु वर्त्तमानेषु ॥ १४ ॥

अन्वयः— हे मनुष्या योऽयमीडानो वह्निः प्रयत्स्वध्वरेषु शवसा घृतेन नमसा सह वर्त्तमानमग्निं स्रुचश्चाच्छैति तं यूयं सत्कुरुत ॥ १४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०–हे मनुष्या येऽग्निरिन्धनैर्जलेन युक्तो यानेषु प्रयुक्तः सन् बलेन सद्यो गमयति तं विज्ञायोपकुरुत ॥ १४ ॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! जो (अयम्) यह (ईडानः) स्तुति करता हुआ (वह्निः) विद्या का पहुंचाने वाला विद्वान् जन (प्रयत्सु) प्रयत्न से सिद्ध करने योग्य (अध्वरेषु) हिंसा से पृथक् वर्त्तमान यज्ञों में (शवसा) बल (घृतेन) जल और (नमसा) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान (अग्निम्) अग्नि तथा (स्रुचः) होम के साधन स्रुवा आदि को (अच्छ, एति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उसका तुम लोग सत्कार करो ॥ १४ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो अग्नि इन्धनों और जल से युक्त यानों में प्रयुक्त किया हुआ बल से शीघ्र चलाता है उसको जानके उपकार में लाओ ॥ १४ ॥

सयत्वादित्यस्याग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः । वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥ १५ ॥

सः । यक्षत् । अस्य । महिमानम् । अग्नेः । सः । ईम् । मन्द्रा सुप्रयसइति ।सुऽप्रयसः । वसुः । चेतिष्ठः। वसुधातम इति वसुऽधातमः । च ॥ १५ ॥

पदार्थः—(सः)(यक्षत) यजेत्सङ्गच्छेत (अस्य) (महिमानम्) महत्त्वम् (अग्नेः) पावकस्य (सः) (ईम्) जलम् (मन्द्रा) आनन्दप्रदानि हवींषि (सुप्रयसः) शोभनानि प्रयांसि प्रीतान्यन्नादीनि यस्मात्तस्य (वसुः) वासयिता (चेतिष्ठः) अतिशयेन चेता संज्ञाता (वसुधातमः) योऽतिशयेन वसूनि दधाति सः (च) समुच्चये ॥ १५ ॥

अन्वयः—स मनुष्यः सुप्रयसोऽस्याग्नेर्महिमानं यक्षत्स वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च सन्नीं मन्द्रा यक्षत् ॥ १५ ॥

भावार्थः—य इत्थमग्नेर्महत्त्वं विजानीयात्सोऽतिधनी स्यात् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(सः) वह पूर्वोक्त विद्वान् मनुष्य (सुप्रयसः) प्रीतिकारक सुन्दर अन्नादि के हेतु (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (महिमानम्) बड़प्पन को (यक्षत्) सम्यक् प्राप्त हो तथा (सः) वह (वसुः) निवास का हेतु (चेतिष्ठः) अतिशय कर जानने वाला (च) और (वसुधातमः) अत्यन्त धनों को धारण करने वाला हुआ (ईम्) जल तथा (मन्द्रा) आनन्द दायक होमने योग्य पदार्थों को प्राप्त होवे ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो पुरुष इस प्रकार अग्नि के बड़प्पन को जाने सो अतिधनी होवे ॥ १५ ॥

द्वारो देवीरित्यस्याऽग्निर्ऋषिः । देव्यो देवताः ।
निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्तेऽअग्नेः।
उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥ १६ ॥

द्वारः । देवीः । अनु । अस्य । विश्वे । व्रता । ददन्ते । अग्नेः । उरुव्यचस इत्युरुऽव्यचसः । धाम्ना । पत्यमानाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(द्वारः) द्वाराणि (देवीः) देदीप्यमानानि (अनु) (अस्य) (विश्वे) सर्वे (व्रता) सत्यभाषणादीनि (ददन्ते) (अग्नेः) पावकस्य (उरुव्यचसः) बहुव्यापकस्य (धाम्ना) स्थानेन (पत्यमानाः) स्वामित्वं कुर्वाणाः ॥ १६ ॥

अन्वयः—ये विश्वे पत्यमाना उरुव्यचसोऽस्याग्नेर्धाम्ना देवीर्द्वारो व्रताऽनु ददन्ते ते स्वैश्वर्या जायन्ते ॥ १६ ॥

भावार्थः—येऽग्निविद्याया द्वाराणि जानन्ति ते सत्याचाराः सन्तोऽनुमोदन्ते ॥ १६ ॥

पदार्थः—जो (विश्वे) सब (पत्यमानाः) मालिकपन करते हुए विद्वान् (उरुव्यचसः) बहुतों में व्यापक (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (धाम्ना) स्थान से (देवीः) प्रकाशित (द्वारः) द्वारों तथा (व्रता) सत्यभाषणादि व्रतों का (अनु, ददन्ते) अनुकूल उपदेश देते हैं वे सुन्दर ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—जो लोग अग्नि की विद्या के द्वारों को जानते हैं वे सत्य आचरण करते हुए अति आनन्दित होते हैं ॥ १६ ॥

ते अस्येत्यस्याग्निर्ऋषिः । यज्ञोदेवता ।
विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनस्तमेवविषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता । इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ १७ ॥

ते इति ते । अस्य । योषणे इति योषणे । दिव्ये इति दिव्ये । न । योनौ । उषासानक्ता । उषसानक्तेत्युषसानक्ता । इमम् । यज्ञम् । अवताम् । अध्वरम् । नः ॥१७॥

पदार्थः—(ते) (अस्य) (योषणे) भार्य्ये वर्त्तमाने (दिव्ये) दिव्यस्वरूपे (न) इव (योनौ) गृहे (उषासानक्ता) रात्रिन्दिवौ (इमम्) (यज्ञम्) (अवताम्) रक्षेताम् (अध्वरम्) अहिंसनीयम् (नः) अस्माकम् ॥१७॥

अन्वयः—हे मनुष्यास्ते उषासानक्ताऽस्य योनौ दिव्ये योषणे न नो यमिममध्वरं यज्ञमवतां तं यूयं विजानीत ॥ १७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यथा विदुषी पत्नी गृहकृत्यानि साध्नोति तथा वन्हिना जाते रात्र्यहनी सर्वं व्यवहारं साध्नुतः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ते) वे (उषासानक्ता) रात्रि और दिन (अस्य) इस पुरुष के (योनौ) घर में (दिव्ये) उत्तम रूप वाली (योषणे) दो स्त्रियों के (न) समान वर्त्तमान (नः) हमारे जिस (इमम्) इस (अध्वरम्) विनाश न करने योग्य (यज्ञम्) यज्ञ की (अवताम्) रक्षा करें उस को तुम लोग जानो ॥ १७ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे विदुषी स्त्री घरके कार्यों को सिद्ध करती है वैसे अग्नि से उत्पन्न हुए रात्रि दिन सब व्यवहार को सिद्ध करते हैं ॥१७॥

दैव्येत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।

भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् । कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥ १८ ॥

दैव्या । होतारा । ऊर्ध्वम् । अध्वरम् । नः । अग्नेः । जिह्वाम् । अभि । गृणीतम् । कृणुतम् । नः । स्विष्टिमिति सुऽइष्टिम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(दैव्या) देवेषु विद्वत्सु भवौ विद्वांसौ (होतारा) सुखस्य दातारौ (ऊर्ध्वम्) प्राप्तोन्नतिम् (अध्वरम्) अहिंसनीयं व्यवहारम् (नः) अस्माकम् (अग्नेः) पावकस्य (जिह्वाम्) ज्वालाम् (अभि) गृणीतम् प्रशंसेताम् (कृणुतम्) कुरुतम् (नः) (स्विष्टिम्) शोभना इष्टिर्यस्यान्ताम् ॥१८॥

अन्वयः— यौ दैव्या होतारा न ऊर्ध्वमध्वरमभिगृणीतं तौ नः स्विष्टिमग्ने र्जिह्वां कृणुतम् ॥१८॥

भावार्थः— यदि जिज्ञास्वध्यापकावग्निविद्यां जानीयातां तर्हि विश्वस्योन्नतिं कुर्याताम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—जो (दैव्या) विद्वानों में प्रसिद्ध हुए दो विद्वान् (होतारा) सुख के देने वाले (नः) हमारे (ऊर्ध्वम्) उन्नति को प्राप्त (अध्वरम्) नहीं बिगाड़ने योग्य व्यवहार को (अग्नेः, गृणीतम्) सत्य और से प्रशंसा करें वे दोनों (नः) हमारी (स्विष्टिम्) सुन्दर यज्ञ के निमित्त (अग्ने) अग्नि की (जिह्वाम्) ज्वाला को (कृणुतम्) सिद्ध करें ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो जिज्ञासु और अध्यापक लोग अग्नि की विद्या को जानें तो विश्व की उन्नति करें ॥ १८ ॥

तिस्रो देवीरित्यस्याग्निर्ऋषिः । इडादयो लिङ्गोक्ता देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैः कीदृशी वाणी सेवनीया इत्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का सेवन करना चाहिये इस वि० ॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳसदन्त्विडा सरस्वती भारती । मही गृणाना ॥ १९ ॥

तिस्रः । देवीः । बर्हिः । आ । इदम् । सदन्तु । इडा । सरस्वती । भारती । मही । गृणाना ॥ १९ ॥

पदार्थः—(तिस्रः) त्रित्वसंख्याकाः (देवीः) कमनीयाः (बर्हिः) अन्तरिक्षम् (आ) समन्तात् (इदम्) (सदन्तु) प्राप्नुवन्तु (इडा) स्तोतुमर्हा (सरस्वती) प्रशस्तविज्ञानवती (भारती) सर्वशास्त्रधारिणी (मही) महती (गृणाना) स्तुवन्ती ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं या मही गृणानेडा सरस्वती भारती च तिस्रो देवीरिदं बर्हिरासदन्तु ताः सम्यग्विजानीत ॥ १९ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या व्यवहारकुशलां सर्वशास्त्रविद्यान्वितां सत्यादिव्यवहारधर्त्रीं वाणीं प्राप्नुयुस्ते स्तुत्याः सन्तो महान्तो भवेयुः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जो (मही) बड़ी (गृणाना) स्तुति करती हुई (इडा) स्तुति करने योग्य (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान वाली और (भारती) सब शास्त्रों को धारण करने हारी जो (तिस्रः) तीन (देवीः) चाहने योग्य वाणी (इदम्) इस (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (आ,सदन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों उन तीनों प्रकार की वाणियों को सम्यक् जानो ॥१९॥

भावार्थः—जो मनुष्य व्यवहार में चतुर सब शास्त्र की विद्याओं से युक्त सत्यादि व्यवहारों को धारण करने हारी वाणी को प्राप्त हों वे स्तुति के योग्य हुए महान् होवें ॥ १९ ॥

तन्न इत्यस्याग्निर्ऋषिः । त्वष्टा देवता ।
निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
ईश्वरात् किं प्रार्थनीयमित्याह ॥
ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये इस वि० ॥

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । रायस्पोषं विष्यतु नाभिमस्मे ॥ २० ॥

तम् । नः । तुरीपम् । अद्भुतम् । पुरुक्षु । त्वष्टा । सुवीर्य्यमिति सुऽवीर्य्यम् । रायः । पोषम् । वि । स्यतु । नाभिम् । अस्मेऽइत्यस्मे ॥ २० ॥

पदार्थः—(तम्) प्रसिद्धम् (नः) अस्मान् (तुरीपम्) यत्तुरः सद्य आप्नोति तम् (अद्भुतम्) आश्चर्यगुणकर्मस्वभावम् (पुरुक्षु) यत् पुरुषु बहुषु क्षियति वसति तत् (त्वष्टा) विद्यया प्रकाशित ईश्वरः (सुवीर्यम्) सुष्ठुबलम् (रायः) धनस्य (पोषम्) पुष्टिम् (वि,स्यतु) विमुञ्चतु (नाभिम्) मध्यप्रदेशम् (अस्मे) अस्माकम् ॥ २० ॥

अन्वयः–त्वष्टाऽस्मे नाभिं प्रति तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु सुवीर्यं तं रायस्पोषं ददातु नो दुःखाद्विष्यतु च ॥ २० ॥

भावार्थः—हे मनुष्या यच्छीघ्रकार्याश्चर्यभूतं बहुव्यापकं धनं बलं चास्ति तद्यूयमीश्वरप्रार्थनया प्राप्यानन्दिता भवत ॥ २० ॥

पदार्थः–(त्वष्टा) विद्या से प्रकाशित ईश्वर (अस्मे) हमारे (नाभिम्) मध्यप्रदेश के प्रति (तुरीपम्) शीघ्रता को प्राप्त होने वाले (अद्भुतम्) आश्चर्यरूप गुण कर्म और स्वभावों से युक्त (पुरुक्षु) बहुत पदार्थों में बसने वाले (सुवीर्यम्) सुन्दर बलयुक्त (तम्) उस प्रसिद्ध (रायः) धन को (पोषम्) पुष्टि को देवे और (नः) हम लोगों को दुःख से (वि, स्यतु) छुड़ावे ॥ २० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो शीघ्रकारी आश्चर्यरूप बहुतों में व्यापक धन वा बल है उस को तुम लोग ईश्वर की प्रार्थना से प्राप्त हो के आनन्दित होओ ॥ २० ॥

वनस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
जिज्ञासुः कीदृशो भवेदित्याह ॥
जिज्ञासु कैसा हो इस वि० ॥

वन॑स्पतेऽव॑ सृजा॒ ररा॑ण॒स्त्मना॑ दे॒वेषु॑ । अ॒ग्निर्ह॒व्यꣳ श॑मि॒ता सू॑दयाति ॥ २१ ॥

वन॑स्पते । अव॑ । सृ॒ज॒ । ररा॑णः । त्मना॑ । दे॒वेषु॑ । अ॒ग्निः । ह॒व्यम् । श॒मि॒ता । सू॒द॒या॒ति॒ ॥ २१ ॥

पदार्थः—(वनस्पते) वनस्य सम्भजनीयस्य शास्त्रस्य पालक (अव) (सृज) । अत्र द्व्यचोऽतिस्तिङ इतिदीर्घः । (रराणः)रममाणः (त्मना) आत्मना (देवेषु) दिव्यगुणेष्विव

विद्वत्सु (अग्निः) पावकः (हव्यम्) आदातुमर्हम्(शमिता) यज्ञसम्बन्धी (सूदयाति) सूक्ष्मीकृत्य वायौ प्रसारयति ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे वनस्पते यथा शमिताऽग्निर्हव्यं सूदयाति तथा त्मना देवेषु रराणः सन्हव्यमवसृज ॥ २१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा दिव्येष्वन्तरिक्षादिषु वह्नी राजते तथा विद्वत्सु स्थितो जिज्ञासुः सुप्रकाशितात्मा भवति ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) सेवने योग्य शास्त्र के रक्षक जिज्ञासु पुरुष ! जैसे (शमिता) यज्ञसम्बन्धी (अग्निः) अग्नि (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य होम के द्रव्यों को (सूदयाति) सूक्ष्म कर वायु में पसारता है वैसे (त्मना) अपने आत्मा से (देवेषु) दिव्य गुणों के समान विद्वानों में (रराणः) रमण करते हुए ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (अव, सृज) उत्तम प्रकार से बनाओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे शुद्ध आकाश आदि में अग्नि शोभायमान होता है वैसे विद्वानों में स्थित जिज्ञासु पुरुष सुन्दर प्रकाशित स्वरूप वाला होता है ॥ २१ ॥

अग्ने स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैः किं कार्यमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ।

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥ २२ ॥

अग्ने । स्वाहा । कृणुहि । जातवेद इति जातऽवेदः । इन्द्राय । हव्यम् । विश्वे । देवाः । हविः । इदम् । जुषन्ताम् ॥ २२ ॥

पदार्थः-(अग्ने) विद्वन् (स्वाहा) सत्यां वाचम् (कृणुहि) कुरु (जातवेदः) प्रकटविद्य (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (हव्यम्) आदातुमर्हम् (विश्वे) सर्वे (देवाः) विद्वांसः (हविः) ग्राह्यं वस्तु (इदम्) (जुषन्ताम्) सेवन्ताम् ॥ २२ ॥

अन्वयः-हे जातवेदोऽग्ने! त्वमिन्द्राय स्वाहा हव्यं कृणुहि विश्वे देवा इदं हविर्जुषन्ताम् ॥ २२ ॥

भावार्थः-यदि मनुष्या ऐश्वर्यवर्द्धनाय प्रयतेरंस्तर्हि सत्यं परमात्मानं विदुषश्च सेवेरन् ॥ २२ ॥

पदार्थः-हे (जातवेदः) विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (कृणुहि) प्रसिद्ध कीजिये और (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (इदम्) इस (हविः) ग्रहण करने योग्य उत्तम वस्तु को (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥ २२ ॥

भावार्थः-जो मनुष्य ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये प्रयत्न करें तो सत्य परमात्मा और विद्वानों का सेवन किया करें ॥ २२ ॥

पीवो अन्नेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता।
निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥
कीदृशं सन्तानं सुखयतीत्याह ॥

कैसा सन्तान सुखी करता है इस वि० ॥

पीवोअन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः। ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ २३ ॥

पीवोंअन्नेति पीर्वःऽअन्ना । रयिवृध इति रयिऽवृधः । सुमेधा इति सुऽमेधाः । श्वेतः । सिषक्ति । सिसक्तीति सिसक्ति । नियुतामिति निऽयुताम् । अभिश्रीरित्यभिऽश्रीः । ते । वायवे । समनस इति सऽमनसः । वि । तस्थुः । विश्वा । इत् । नरः । स्वपत्यानीति सुऽअपत्यानि । चक्रुः ॥ २३ ॥

पदार्थः–(पीवोअन्ना) पीवांसि पुष्टिकराण्यन्नानि येषु (रयिवृधः) ये रयिं वर्धयन्ति ते (सुमेधाः) शोभना मेधा प्रज्ञा येषान्ते (श्वेतः) गन्ता वर्द्धको वा (सिषक्ति) सिञ्चति (नियुताम्) निश्चितमतीनाम् (अभिश्रीः) अभितः शोभा यस्य सः (ते) (वायवे) वायुविद्यायै (समनसः) समानविज्ञानाः (वि, तस्थुः) तिष्ठेयुः (विश्वा) अखिलानि (इत्) एव (नरः) नायकाः (स्वपत्यानि) शोभनानि च तान्यपत्यानि (चक्रुः) कुर्युः ॥ २३ ॥

अन्वयः—ये समनसो रयिवृधः सुमेधा नरः पीवोअन्ना विश्वा स्वपत्यानि चक्रुः । त इद्वायवे वितस्थुर्यदा नियुतामभिश्रीः श्वेतो वायुः सर्वान् सिषक्ति तदा स श्रीमान् जायते ॥ २३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-यथा वायुः सर्वेषां जीवनमूलमस्ति तथोत्तमान्यपत्यानि सर्वेषां सुखनिमित्तानि जायन्ते ॥ २३ ॥

पदार्थः—जो (समनसः) तुल्य ज्ञान वाले (रयिवृधः) धन को बढ़ानेवाले (सुमेधाः) सुन्दर बुद्धिमान् (नरः) नायक पुरुष (पीवोअन्ना) पुष्टिकारक अन्न वाले (विश्वा) सब (स्वपत्यानि) सुन्दर सन्तानों को (चक्रुः) करें

(ते) वे (इत्) ही (वायवे) वायु की विद्या के लिये (वि, तस्थुः) विशेष कर स्थित हों जब (नियुताम्) निश्चित चलने हारे जनों का (अभिश्रीः) सब ओर से शोभायुक्त (श्वेतः) गमनशील वा उन्नति करने हारा वायु सब को (सिषक्ति) सींचता है तब वह शोभायुक्त होता है ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वायु सब के जीवन का मूल है वैसे उत्तम सन्तान सब के सुख के निमित्त होते हैं ॥ २३ ॥

राय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्येण किं कार्यमित्याह ॥
फिर मनुष्य को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् । अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥ २४ ॥

राये । नु । यम् । जज्ञतुः । रोदसी इति रोदसी । इमेऽइतीमे । राये । देवी । धिषणा । धाति । देवम् । अध । वायुम् । नियुत इति निऽयुतः । सश्चत । स्वाः । उत । श्वेतम् । वसुधितिमिति वसुऽधितिम् । निरेके ॥ २४ ॥

पदार्थः—(राये) धनाय (नु) सद्यः (यम्) (जज्ञतुः) जनयतः (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ (इमे) प्रत्यक्षे । अत्र वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति प्रकृतिभावाऽभावः (राये) धनाय (देवी) दिव्यगुणा (धि-

षणा) प्रज्ञेव वर्त्तमाना (धाति) दधाति (देवम्) दिव्यं पतिम् (अध) अथ (वायुम्) (नियुतः) निश्चयेन मिश्रणाऽमिश्रणकर्त्तारः (सश्चत) प्राप्नुवन्ति । अत्र व्यत्ययः (स्वाः) सम्बन्धिनः (उत) (श्वेतम्) वृद्धम् (वसुधितिम्) पृथिव्यादि वसूनां धितिर्यस्मात्तम् (निरेके) निर्गतशङ्के स्थाने ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या इमे रोदसी राये यं जज्ञतुर्देवी धिषणा यं देवं राये नु धाति । अध निरेके स्वा नियुतः श्वेतमुत वसुधितिं वायुं सश्चत तं यूयं विजानीत ॥ २४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या भवन्तो बलादिगुणयुक्तं सर्वस्य धर्त्तारं वायुं विज्ञाय धनप्रज्ञे वर्धयन्तु यद्येकान्ते स्थित्वाऽस्य प्राणस्य द्वारा स्वात्मानं परमात्मानं च ज्ञातुमिच्छेयुस्तर्ह्यनयोः साक्षात्कारो भवति ॥ २४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (इमे) ये (रोदसी) आकाश भूमी (राये)धन के अर्थ (यम्) जिस को (जज्ञतुः) उत्पन्न करें (देवी) उत्तम गुण वाली (धिषणा) बुद्धि के समान वर्त्तमान स्त्री जिस (देवम्) उत्तम पति को (राये) धन के लिये (नु) शीघ्र (धाति) धारण करती है (अध) इस के अनन्तर (निरेके) निःशङ्क स्थान में (स्वाः) अपने सम्बन्धी (नियुतः) निश्चय कर मिलाने वा पृथक् करने वाले जन (श्वेतम्)बृद्ध (उत) और (वसुधितिम्) पृथिव्यादि वसुओं के धारण के हेतु (वायुम्) वायु को (सश्चत) प्राप्त होते हैं उस को तुम लोग जानो ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०–हे मनुष्यो ! आप लोग बल आदि गुणों से युक्त सब के धारण करने वाले वायु को जान के धन और बुद्धि को बढ़ावें । जो एकान्त में स्थित हो के इस प्राण के द्वारा अपने स्वरूप और परमात्मा को जाना चाहें तो इन दोनों आत्माओं का साक्षात्कार होता है ॥ २४ ॥

आपइत्यस्य हिरण्यगर्भऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।
स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् । ततो देवाना समवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २५ ॥

आपः । ह । यत् । बृहतीः । विश्वम् । आयन् । गर्भम् । दधानाः । जनयन्तीः । अग्निम् । ततः । देवानाम् । सम् । अवर्त्तत । असुः । एकः । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥ २५ ॥

पदार्थः—(आपः) व्यापिकास्तन्मात्राः (ह) खलु (यत्) यम् (बृहतीः) बृहत्यः (विश्वम्) कृतप्रवेशम् (आयन्) गच्छन्ति (गर्भम्) मूलं प्रधानम् (दधानाः) धरन्त्यः सत्यः (जनयन्ति) प्रकटयन्त्यः (अग्निम्) सूर्याद्याख्यम् (ततः) तस्मात् (देवानाम्) दिव्यानां पृथिव्यादीनाम् (सम्) सम्यक् (अवर्त्तत) वर्त्तये (असुः) प्राणः (एकः) असहायः कस्मै सुखनिमित्ताय (देवाय) दिव्यगुणाय (हविषा) धारणेन (विधेम) परिचरेम ॥ २५ ॥

अन्वयः—बृहतीर्जनयन्तीर्यद्विश्वं गर्भं दधानाः सत्य आप आयँस्ततोऽग्निं देवानामेकोऽसुः समवर्त्तत तस्मै ह कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम ॥२५॥

भावार्थः-हे मनुष्या यानि स्थूलानि पञ्चतत्त्वानि दृश्यन्ते तानि सूक्ष्मात्प्रकृतिकार्यात्पञ्चतन्मात्राख्यादुत्पन्नानि विजानीत येषां मध्ये य एकः सूत्रात्मा वायुरस्ति स सर्वेषां धर्त्तेति बुध्यध्वम् । यदि तद्द्वारा योगाभ्यासेन परमात्मानं ज्ञातुमिच्छेत तर्हि तं साक्षाद्विजानीत ॥ २५ ॥

पदार्थः—(बृहतीः) महत् परिमाण वाली (जनयन्तीः) पृथिव्यादि को प्रकट करने हारी (यत्) जिस (विश्वम्)सब में प्रवेश किये हुए(गर्भम्) सब के मूल प्रधान को (दधानाः) धारण करती हुई (आपः) व्यापक जलों की सूक्ष्ममात्रा (आयन्) प्राप्त हों (ततः) उस से (अग्निम्) सूर्यादि रूप अग्नि को (देवानाम्) उत्तम पृथिव्यादि पदार्थों का मध्यवर्ती (एकः) एक असहाय (असुः) प्राण (सम्, अवर्त्तत) सम्यक् प्रवृत्त करे उस (ह) ही (कस्मै) सुख के निमित्त (देवाय) उत्तम गुण युक्त ईश्वर के लिये हमलोग (हविषा) धारण करने से (विधेम) सेवा करने वाले हों ॥ २५॥

भावार्थः–हे मनुष्यो ! जो स्थूल पञ्चतत्त्व दीख पड़ते हैं उनका सूक्ष्म प्रकृति के कार्य पञ्चतन्मात्र नामक से उत्पन्न हुए जानो जिनके बीच जो एक सूत्रात्मा वायु है वह सब को धारण कर्त्ता है यह जानो जो उस वायु के द्वारा योगाभ्यास से परमात्मा को जानना चाहो तो उसको साक्षात् जान सको ॥ २५ ॥

यश्चिद्दित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता ।

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

के जना मोदन्त इत्याह ॥

कौन मनुष्य आनन्दित होते हैं इस वि० ॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् । यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २६ ॥

यः । चित् । आपः । मुहिना । पर्यपुश्यदिति परिऽ-अपश्यत् । दक्षम् । दधानाः । जुनयन्तीः । युज्ञम् । यः । देवेषु । अधि । देवः । एकः । आसीत् । कस्मै । देवाय । हुविषा । विधेम ॥ २६ ॥

पदार्थः—(यः) परमेश्वरः (चित्) (आपः) व्याप्तिशीलाः सूक्ष्मास्तन्मात्राः (महिना) स्वस्य महिम्ना व्यापकत्वेन (पर्यपश्यत्) सर्वतः पश्यति (दक्षम्) बलम् (दधानाः) धरन्त्यः (जनयन्तीः) उत्पादयन्त्यः (यज्ञम्)सङ्गतं संसारम् (यः) (देवेषु) प्रकृत्यादिजीवेषु (अधि) उपरिभावे (देवः) दिव्यगुणकर्मस्वभावः (एकः) अद्वितीयः (आसीत्) अस्ति (कस्मै) सुखस्वरूपाय (देवाय) सर्वसुखप्रदाय (हविषा) तदाज्ञायोगाभ्यासधारणेन (विधेम) सेवेमहि ॥ २६ ॥

अन्वयः-यो महिना दक्षं दधाना यज्ञं जनयन्तीरापः सन्ति ताः पर्यपश्यद्यो देवेष्वेकोऽधि आसीत्तस्मै चित् कस्मै देवाय वयं हविषा विधेम ॥ २६ ॥

भावार्थः-हे मनुष्या यो भवन्तः सर्वस्य द्रष्टारं धर्तारमद्वितीयमधिष्ठातारं परमात्मानं ज्ञातुं योगं नित्यमभ्यस्यन्ति त आनन्दिता भवन्ति॥ २६ ॥

पदार्थः—(यः) जो परमेश्वर (महिना) अपने व्यापकपन के महिमा से (दक्षम्) बल को (दधानाः धारण करती (यज्ञम्) सङ्गत संसार को (जनयन्तीः) उत्पन्न करती हुई (आपः) व्याप्ति शील सूक्ष्म जल की मात्रा हैं उन को (पर्यपश्यत्) सब ओर से देखता है (यः) जो ईश्वर (देवेषु) उत्तम गुण वाले प्रकृति आदि और जीवों में (एकः) एक (अधि, देवः)

उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला (आसीत्) है उस (यत्) ही (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सब सुखों के दाता ईश्वर की हम लोग (हविषा) आज्ञा पालन और योगाभ्यास के धारण से (विधेम) सेवा करें ॥ २६ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो ! जो आप लोग सब के द्रष्टा धर्त्ता कर्त्ता अद्वितीय अधिष्ठाता परमात्मा के जानने को नित्य योगाभ्यास करते हैं वे आनन्दित होते हैं। २६॥

प्रयाभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता ।
स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
विदुषा कथं भवितव्यमित्याह ॥
विद्वान् को कैसा होना चाहिये इस वि० ॥

प्र याभिर्यासि दाश्वाᳬसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे । नि नो रयिᳬ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ २७ ॥

प्र । याभिः । यासि । दाश्वाᳬसम् । अच्छ । नियुद्भिरिति नियुत्ऽभिः । वायो इति वायो । इष्टये । दुरोणे । नि । नः । रयिम् । सुभोजसमिति सुऽभोजसम् । युवस्व । नि । वीरम् । गव्यम् । अश्व्यम् । च । राधः ॥ २७ ॥

पदार्थः-(प्र) (याभिः) कमनीयाभिः (यासि) प्राप्नोषि (दाश्वांसम्) सुखस्य दातारम् (अच्छ) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (नियुद्भिः) नियतैर्गुणैः (वायो) वायुरिव वर्त्तमान (इष्टये) अभीष्टसुखाय (दुरोणे) गृहे (नि) नितराम् (नः) अस्माकम् (रयिम्) धनम् (सुभोजसम्) सुष्ठु भोजांसि भोजनानि यस्मात्तम्

(युवस्व) मिश्रयस्व (नि) (वीरम्) प्राप्तविज्ञानादिगुणम् (गव्यम्) गोभ्यो हितम् (अश्व्यम्) अश्वेभ्यो हितम् (च) (राधः) धनम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् वायो वायुरिव त्वं प्रयाभिर्नियुद्भिरिष्टयेऽच्छ यासि दुरोणे नः सुभोजसं दाश्वांसं रयिं नियुवस्व वीरं गव्यमश्व्यं च राधो नि युवस्व ॥ २७ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०—यथा वायुः सर्वाणि जीवनादीनीष्टानि कर्माणि साध्नोति तथा विद्वानस्मिन् संसारे वर्त्तेत ॥ २७ ॥

पदार्थः— हे (वायो) विद्वन् वायु के समान वर्त्तमान आप (प्र, याभिः) अच्छे प्रकार चाहने योग्य (नियुद्भिः) नियत गुणों से (इष्टये) अभीष्ट सुख के अर्थ (अच्छ, यासि) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हो (दुरोणे) घर में (नः) हमारे (सुभोजसम्) सुन्दर भोगने के हेतु (दाश्वांसम्) सुख के दाता (रयिम्) धन को (नि, युवस्व) निरन्तर मिश्रित कीजिये (वीरम्) विज्ञानादि गुणों को प्राप्त (गव्यम्) गौ के हितकारी (च) तथा (अश्व्यम्) घोड़े के लिये हितैषी (राधः) धन को (नि) निरन्तर प्राप्त कीजिये ॥ २७ ॥

भावार्थः— इस में वाचकलु०-जैसे वायु सब जीवन आदि इष्ट कर्मों को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् पुरुष इस संसार में वर्त्ते ॥ २७ ॥

आ न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् । वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २८ ॥

आ । नः । नियुद्भिरिति नियुत्ऽभिः । शतिनीभिः । अध्वरम् । सहस्रिणीभिः । उप । याहि । यज्ञम् । वायो इति वायो । अस्मिन् । सवने । मादयस्व । यूयम् । पात । स्वस्तिभिरिति स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥ २८ ॥

पदार्थः—(आ) (नः) अस्माकम् (नियुद्भिः) निश्चितैर्मिश्रणामिश्रणैर्गमनागमनैः (शतिनीभिः) शतं बहूनि कर्माणि विद्यन्ते यासु ताभिः (अध्वरम्) अहिंसनीयम् (सहस्रिणीभिः) सहस्राण्यसंख्या वेगा विद्यन्ते यासु गतिषु ताभिः (उप) (याहि) प्राप्नुहि (यज्ञम्) सङ्गन्तव्यं व्यवहारम् (वायो) वायुरिव बलवन् विद्वन्! (अस्मिन्) (सवने) उत्पत्त्यधिकरणे जगति (मादयस्व) आनन्दयस्व (यूयम्) (पात) रक्षत (स्वस्तिभिः) सुखैः सह (सदा) सर्वस्मिन् काले (नः) अस्मान्॥ २८ ॥

अन्वयः—हे वायो यथाऽयं वायुर्वेगवद्भिश्शतिनीभिःसहस्रिणीभिर्गतिभिरस्मिन्सवने नोऽध्वरं यज्ञमुपगच्छति तथा त्वमेतमायाहि मादयस्व । हे विद्वांसो यूयमेतद्विद्यया स्वस्तिभिर्नः सदा पात ॥ २८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—विद्वांसो यथा वायवो विविधाभिर्गतिभिः सर्वान् पुष्णन्ति तथैव सुशिक्षया सर्वान् पोषयन्तु ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (वायो) वायु के तुल्य बलवान् विद्वन् ! जैसे वायु (नियुद्भिः) निश्चित मिली वा पृथक् जाने आने रूप (शतिनीभिः) बहुत कर्मों वाली(सहस्रिणीभिः)बहुत वेगों वाली गतियों से (अस्मिन्) इस(सवने)उत्पत्ति

के आधार जगत् में (नः) हमारे (अध्वरम्) न बिगाड़ने योग्य (यज्ञम्) सङ्गति के योग्य व्यवहार को (उप) निकट प्राप्त होता है वैसे आप (आ-याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (मादयस्व) और आनन्दित कीजिये। हे विद्वानो !(यूयम्) आप लोग इस विद्या से (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (नः) हम लोगों की (सदा) सब काल में (पात) रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—विद्वान् लोग, जैसे वायु विविध प्रकार की चालों से सब पदार्थों को पुष्ट करते हैं वैसे ही अच्छी शिक्षा से सब को पुष्ट करें॥२८॥

नियुत्वानित्यस्य गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता।

निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

अथेश्वरः कीदृश इत्याह ॥

अब ईश्वर कैसा है इस वि० ॥

नियुत्वान् वायवा गंह्यय्ँ शुक्रो अंयामि ते।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २९ ॥

नियुत्वान्। वायोऽइति वायो। आ। गहि। अयम्। शुक्रः ।अयामि।ते। गन्ता। असि। सुन्वतः।गृहम्॥२९॥

पदार्थः—(नियुत्वान्) नियन्ता (वायो) पवन इव (आ) (गहि) समन्तात् प्राप्नुहि (अयम्) (शुक्रः) पवित्रकर्त्ता (अयामि) प्राप्नोमि (ते) तव (गन्ता) (असि) (सुन्वतः) अभिषवं कुर्वतः (गृहम्) ॥ २९॥

अन्वयः—हे वायो नियुत्वामीश्वरस्त्वं यथाऽयं शुक्रो गन्ता वायुः सुन्वतो गृहं गच्छति तथा मामा गहि । यतस्त्वमीश्वरोऽसि तस्मात्ते स्वरूपमहमयामि ॥ २९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा वायुः सर्वशोधकः सर्वत्र गन्ता सर्वप्रियोऽस्ति तथेश्वरोऽपि वर्त्तते ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (वायो) वायु के तुल्य शीघ्रगन्ता (नियुत्वान्) नियमकर्त्ता ईश्वर आप जैसे (अयम्) यह (शुक्रः) पवित्रकर्त्ता (गन्ता) गमनशील वायु (सुन्वतः) रस खींचने वाले के (गृहम्) घर को प्राप्त होता है वैसे मुझ को (आ, गहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये जिस से आप ईश्वर (असि) हैं इस से (ते) आप के स्वरूप को मैं (अयामि) प्राप्त होता हूं ॥२९॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वायु सब को शोधने और सर्वत्र पहुंचने वाला तथा सब को प्राण से भी प्यारा है वैसे ईश्वर भी है ॥२९॥

वायो शुक्रइत्यस्य पुरुमीढ ऋषिः। वायुर्देवता।
अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥
पुनर्मनुष्येण किं कार्य्यमित्याह॥
फिर मनुष्य को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

वायो शुक्रोऽअयामि ते मध्वोऽअग्रं दिविष्टिषु। आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ३० ॥

वायोऽइति वायो। शुक्रः। अयामि। ते। मध्वः। अग्रम्। दिविष्टिषु। आ। याहि। सोमपीतय इति सोमऽपीतये। स्पार्हः। देव। नियुत्वता ॥ ३० ॥

पदार्थः—(वायो) वायुरिव वर्त्तमान (शुक्रः) शुद्धिकरः (अयामि) प्राप्नोमि (ते) तव (मध्वः) मधुरस्य (अग्रम्) उत्तमं भागम् (दिविष्टिषु) दिव्यासु सङ्गतिषु (आ, याहि) (सोमपीतये) सदोषधिरसपानाय (स्पार्हः) यः स्पृहयति तस्याऽयम् (देव) दिव्यगुणसम्पन्न (नियुत्वता) वायुना सह ॥ ३० ॥

अन्वयः -हे वायो यो वायुरिव शुक्रस्त्वमसि ते मध्वोऽग्रं दिविष्टिष्वहमयामि । हे देव स्पार्हस्त्वं नियुत्वता सह सोमपीतय आयाहि ॥ ३० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-हे मनुष्या यथा वायुः सर्वान् रसगन्धादीन् पीत्वा सर्वान् पोषयति तथा त्वं सर्वान् पुषाण ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (वायो) जो वायु के समान वर्त्तमान विद्वन् (शुक्रः) शुद्धिकारक आप हैं (ते) आप के (मध्वः) मधुर वचन के (अग्रम्) उत्तम भागको (दिविष्टिषु) उत्तम संगतियों में मैं (अयामि) प्राप्त होता हूं हे (देव) उत्तम गुणयुक्त विद्वान् पुरुष (स्पार्हः) उत्तम गुणों की अभिलाषा से युक्त के पुत्र आप (नियुत्वता) वायु के साथ (सोमपीतये) उत्तम ओषधियों का रस पीने के लिये (आ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो ! जैसे वायु सब रस और गन्ध आदि को पीके सब को पुष्ट करता है वैसे तू भी सब को पुष्ट किया कर ॥ ३० ॥

वायुरित्यस्याजमीढ ऋषिः । वायुर्देवता ।

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ विद्वद्भिः किं कार्यमित्याह ॥

अब विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

वायुर॑ग्रेगा य॑ज्ञप्रीः सा॒कं ग॒न्मन॑सा य॒ज्ञम् । शि॒वो नि॒युद्भिः॑ शि॒वाभिः॑ ॥ ३१ ॥

वा॒युः । अ॒ग्रे॒गा इत्य॑ग्रेऽगाः । य॒ज्ञप्री॒रिति॑ यज्ञऽप्रीः । सा॒कम् । ग॒न् । मन॑सा । य॒ज्ञम् । शि॒वः । नि॒युद्भि॒रिति॑ नि॒युत्ऽभिः॑ । शि॒वाभिः॑ ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(वायुः) पवनः (अग्रेगाः) योऽग्रे गच्छति सः (यज्ञप्रीः) यो यज्ञं प्राति पूरयति सः (साकम्) सह (गन्) गच्छति (मनसा) (यज्ञम्) (शिवः) मङ्गलमयः (नियुद्भिः) निश्चिताभिः क्रियाभिः (शिवाभिः) मङ्गलकारिणीभिः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा वायुर्नियुद्भिः शिवाभिर्यज्ञं गन तथा शिवोऽग्रेगा यज्ञप्रीः संस्त्वं मनसा साकं यज्ञमायाहि ॥ ३१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—अत्रायाहीति पदं पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते । यथा वायुरनेकैः पदार्थैस्सह गच्छत्यागच्छति तथा विद्वांसो धर्म्याणि कर्माणि विज्ञानेन प्राप्नुवन्तु ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (वायुः) पवन (नियुद्भिः) निश्चित (शिवाभिः) मंगलकारक क्रियाओं से (यज्ञम्) यज्ञ को (गन्) प्राप्त होता है वैसे (शिवः) मङ्गलस्वरूप (अग्रेगाः) अग्रगामी (यज्ञप्रीः) यज्ञ को पूर्ण करने हारे हुए आप (मनसा) मन की वृत्ति के (साकम्) साथ यज्ञ को प्राप्त हूजिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—इस मन्त्र में (आ, याहि) इस पद की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है । जैसे वायु अनेक पदार्थों के साथ जाता आता है वैसे विद्वान् लोग धर्मयुक्त कर्मों को विज्ञान से प्राप्त होवें ॥ ३१ ॥

वाय इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता ।

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ ३२ ॥

वायो इति वायो । ये । ते । सहस्रिणः । रथासः । तेभिः । आ । गहि । नियुत्वान् । सोमपीतय इति सोमऽपीतये ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(वायो) पवनवद्वर्त्तमान (ये) (ते) तव (सहस्रिणः) प्रशस्ताः सहस्रं जना विद्यन्ते येषु ते (रथासः) रमणीयानि यानानि (तेभिः) तैः (आ) (गहि) प्राप्नुहि (नियुत्वान्) समर्थः सन् (सोमपीतये) सोमस्य पानाय ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे वायो वायुरिव वर्त्तमान विद्वन् ! ये ते सहस्रिणो रथासः सन्ति तेभिः सह नियुत्वान्त्संस्त्वं सोमपीतय आ गहि ॥ ३२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा वायोरसंख्या रमणीया गतयः सन्ति तथा विविधाभिर्गतिभिःसमर्था भूत्वैश्वर्यं भुङ्ग्ध्वम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (वायो) पवन के तुल्य वर्त्तमान विद्वन् ! (ये) जो (ते) आप के (सहस्रिणः) प्रशस्त सहस्रों मनुष्यों से युक्त (रथासः) सुन्दर आराम देने वाले यानहैं (तेभिः) उन के सहित (नियुत्वान्) समर्थ हुए आप (सोमपीतये) सोम ओषधि का रस पीने के लिये (आ, गहि) आइये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे वायु की असंख्य रमण करने योग्य गति हैं वैसे अनेक प्रकार की गतियों से समर्थ होके ऐश्वर्य को भोगो ॥ ३२ ॥

एकयेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेवविषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विꣳशती च । तिसृभिश्च वहसे त्रिꣳशता च नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥ ३३ ॥

एकया । च । दशभिरिति दशऽभिः । च । स्वभूत इति स्वऽभूते । द्वाभ्याम् । इष्टये । विंशती । च । तिसृभिरिति तिसृऽभिः । च । वहसे । त्रिंशता । च । नियुद्भिरिति नियुत्ऽभिः । वायो इति वायो । इह । ता । वि । मुञ्च ॥ ३३ ॥

पदार्थः-(एकया) गत्या (च) (दशभिः) दशविधाभिर्गतिभिः (च) (स्वभूते) स्वकीयैश्वर्य (द्वाभ्याम्) विद्यापुरुषार्थाभ्याम् (इष्टये) विद्यासङ्गतये (विंशती) चत्वारिंशत् (च) (तिसृभिः) (च) (वहसे) प्राप्नोषि (त्रिंशता) एतत्संख्याकैः (च) (नियुद्भिः) (वायो) (इह) (ता) तानि (वि, मुञ्च) विशेषेण त्यज ॥ ३३ ॥

अन्वयः-हे स्वभूते वायो ! यथा पवन इहेष्टये एकया च दशभिश्च द्वाभ्यामिष्टये विंशती च तिसृभिश्च त्रिंशता च नियुद्भिः सह यज्ञं वहति तथा वहसे स त्वं ता वि मुञ्च ॥ ३३ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—यथा वायुरिन्द्रियैः प्राणैरनेकाभिर्गतिभिः पृथिव्यादिलोकैश्च सह सर्वस्येष्टं साध्नोति तथा विद्वांसोऽपि साध्नुयुः ॥ ३३ ॥

पदार्थः-हे (स्वभूते) अपने ऐश्वर्य से शोभायमान (वायो) वायु के तुल्य अर्थात् जैसे पवन (इह) इस जगत् में सङ्गति के लिये (एकया) एक प्रकार की गति (च) और (दशभिः) दशविध गतियों (च) और (द्वाभ्याम्) विद्या और पुरुषार्थ से (इष्टये) विद्या की सङ्गति के लिये (विंशती) दो बीशी (च) और (तिसृभिः) तीन प्रकार की गतियों से (च) और (त्रिंशता)

तीस (च) और (नियुद्भिः) निश्चित नियमों के साथ यज्ञ को प्राप्त होता वैसे (वहसे) प्राप्त होते सो आप (ता) उन सब को (वि,मुञ्च) विशेषकर छोड़िये अर्थात् उन का उपदेश कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वायु इन्द्रिय प्राण और अनेक गतियों और पृथिव्यादि लोकों के साथ सब के इष्ट को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् भी सिद्ध करें ॥ ३३ ॥

तववाय इत्यस्याऽङ्गिरस ऋषिः । वायुर्देवता ।
निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अथ किंवद्वायुः स्वीकर्त्तव्य इत्याह ॥
अब किसके तुल्य वायु का स्वीकार करें इस वि० ॥

तव॑ वायवृतस्पते त्वष्टु॑र्जामातरद्भुत । अवा॒ꣳस्या वृ॑णीमहे ॥ ३४ ॥

तव॑ । वा॒यो॒ऽइति॑ वायो । ऋ॒त॒स्प॒ते॒ । ऋ॒त॒प॒त॒ऽ इत्यृ॑तऽपते । त्वष्टुः॑ । जा॒मा॒तः॒ । अ॒द्भु॒त॒ । अवां॑ꣳसि । आ । वृ॒णी॒म॒हे॒ ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(तव) (वायो) बहुबल (ऋतस्पते) सत्यपालक (त्वष्टुः) विद्यया प्रदीप्तस्य (जामातः) कन्यापतिवद्वर्त्तमान (अद्भुत) आश्चर्यकर्मन् (अवांसि) रक्षणादीनि (आ) (वृणीमहे) स्वीकुर्महे ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे ऋतस्पते जामातरद्भुत वायो वयं यानि त्वष्टुस्तवाऽवांस्या वृणीमहे तानि त्वमपि स्वीकुरु ॥ ३४ ॥

भावार्थः--यथा जामाताऽऽश्चर्य्यगुणः सत्यसेवकः स्वीकर्त्तव्योऽस्ति तथा वायुरपि वरणीयोऽस्ति ॥ ३४ ॥

पदार्थ--हे (ऋतस्पते) सत्य के रक्षक (जामातः) जमाई के तुल्य वर्त्तमान (अद्भुत) आश्चर्यरूप कर्म करने वाले (वायो) बहुत वायु के विद्वन् हम लोग जो (त्वष्टुः) विद्या से प्रकाशित (तव) आप के (अवांसि) रक्षा आदि कर्मों का (आ, वृणीमहे) स्वीकार करते हैं उन का आप भी स्वीकार करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः--जैसे जमाई उत्तम आश्चर्य गुणों वाला सत्य ईश्वर का सेवक हुआ स्वीकार के योग्य होता है वैसे वायु भी स्वीकार करने योग्य है ॥ ३४ ॥

अभि त्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता ।
स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ राजधर्ममाह ॥

अब राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ ३५ ॥

अभि । त्वा । शूर । नोनुमः । अदुग्धाइवेत्यदुग्धाःऽइव । धेनवः । ईशानम् । अस्य । जगतः । स्वर्दृशमिति स्वःऽदृशम् । ईशानम् । इन्द्र । तस्थुषः ॥ ३५ ॥

पदार्थः--(अभि) (त्वा) त्वाम् (शूर) निर्भय (नोनुमः) भृशं सत्कुर्य्याम प्रशंसेम (अदुग्धाइव) अविद्यमानपयसइव (धेनवः) गावः (ईशानम्) ईशनशीलम् (अस्य) जगतः

जङ्गमस्य (स्वर्दृशम्) सुखेन द्रष्टुं योग्यम् (ईशानम्) (इन्द्र) सभेश (तस्थुषः) स्थावरस्य ॥ ३५॥

अन्वयः—हे शूरेन्द्र धेनवोऽदुग्धाइव वयमस्य जगतस्तस्थुष ईशानं स्वर्दृशमिन्द्रमीशानं त्वाऽभिनोनुमः ॥ ३५ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०-हे राजन्! यदि भवान् पक्षपातं विहायेश्वरवन्न्यायाधीशो भवेद्यदि कदाचिद्वयं करमपि न दद्याम तथाऽप्यस्मान् रक्षेत्तर्हि त्वदनुकूला वयं सदा भवेम ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भय (इन्द्र) सभापते (अदुग्धाइव) विना दूध की (धेनवः) गौओं के समान हमलोग (अस्य) इस (जगतः) चर तथा (तस्थुषः) अचर संसार के (ईशानम्) नियन्ता (स्वर्दृशम्) सुखपूर्वक देखने योग्य ईश्वर के तुल्य (ईशानम्) समर्थ (त्वा) आप को (अभि, नोनुमः) सन्मुख से सत्कार वा प्रशंसा करें ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजन्! जो आप पक्षपात छोड़ के ईश्वर के तुल्य न्यायाधीश होवें जो कदाचित् हम लोग कर भी न देवें तो भी हमारी रक्षा करें तो आप के अनुकूल हम सदा रहें ॥ ३५ ॥

न त्वावानित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । परमेश्वरो देवता ।
स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
ईश्वर एवोपासनीय इत्याह ॥
ईश्वर ही उपासना करने योग्य है इस वि० ॥

न त्वावाँ २॥ऽ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ३६ ॥

न । त्वावानिति त्वाऽवान् । अन्यः । दिव्यः । न । पार्थिवः । न । जात । न । जनिष्यते । अश्वायन्तः । अश्वयन्त इत्यश्वऽयन्तः । मघवन्निति मघऽवन् । इन्द्र । वाजिनः । गव्यन्तः । त्वा । हवामहे ॥ ३३ ॥

पदार्थः–(न) (त्वावान्) त्वत्सदृशः (अन्यः) भिन्नः (दिव्यः) शुद्धः (न) (पार्थिवः) पृथिव्यां विदितः (न) (जातः) उत्पन्नः (न) (जनिष्यते) उत्पत्स्यते (अश्वायन्तः) आत्मनोऽश्वमिच्छन्तः (मघवन्) परमपूजितैश्वर्य (इन्द्र) सर्वदुःखविदारक (वाजिनः) वेगवन्तः (गव्यन्तः) गां वाणीं चक्षाणाः (त्वा) (हवामहे) स्तुवीमः ॥३६॥

अन्वयः–हे मघवन्निन्द्रेश्वर वाजिनो गव्यन्तोऽश्वायन्तो वयं त्वा हवामहे यतः कश्चिदन्यः पदार्थो न त्वावान् दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते तस्माद्भवानेवाऽस्माकमुपास्यो देवोऽस्ति ॥ ३६ ॥

भावार्थः–न कोऽपि परमेश्वरेण सदृशः शुद्धो जातो वा जनिष्यमाणो वर्त्तमानो वाऽस्ति । अतएव सर्वैर्मनुष्यैरेतं विहायान्यस्य कस्याप्युपासनाऽस्य स्थाने नैव कार्या । इदमेव कर्मेहाऽमुत्र चानन्दप्रदं विज्ञेयम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः–हे (मघवन्) पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (इन्द्र) सब दुःखों के विनाशक परमेश्वर ! (वाजिनः) वेगवाले (गव्यन्तः) उत्तम वाणी बोलते हुए (अश्वायन्तः) अपने को शीघ्रता चाहते हुए हम लोग (त्वा) आप की (हवामहे) स्तुति करते हैं क्योंकि जिस कारण कोई (अन्यः) अन्य पदार्थ

(त्वावान्) आप के तुल्य (दिव्यः) शुद्ध (न) न कोई (पार्थिवः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (न) न कोई (जातः) उत्पन्न हुआ और (न) न (जनिष्यते) होगा इस से आपही हमारे उपास्य देव हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—न कोई परमेश्वर के तुल्य शुद्ध हुआ, न होगा और न है इसी से सब मनुष्यों को चाहिये की इस को छोड़ अन्य किसी की उपासना इस के स्थान में कदापि न करें यही कर्म इस लोक परलोक में आनन्ददायक जावें ॥ ३६ ॥

त्वामिदित्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
पुनाराजधर्मविषयमाह ॥

फिर राज धर्म विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥३७॥

त्वाम् । इत् । हि । हवामहे । सातौ । वाजस्य । कारवः । त्वाम् । वृत्रेषु । इन्द्र । सत्पतिमिति सत्ऽपतिम् । नरः । त्वाम् । काष्ठासु । अर्वतः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (इत्) एव (हि) (हवामहे) गृह्णीमः (सातौ) सङ्ग्रामे (वाजस्य) विद्याविज्ञानजन्यस्य कार्यस्य (कारवः) कर्त्तारः (त्वाम्) (वृत्रेषु) धनेषु (इन्द्र) सूर्यइव जगत्पालक (सत्पतिम्) सत्यस्य प्रचारेण पालकम् (नरः) नेतारः (त्वाम्) (काष्ठासु) दिक्षु (अर्वतः) आशुगामिनोऽश्वस्येव ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र वाजस्य हि कारवो नरो वयं सातौ त्वां वृत्रेषु सूर्यमिव सत्पतिं त्वामर्वत इव सेनायां पश्येम काष्ठासु त्वामिद्धवामहे ॥ ३७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे सेनासभेशौ युवां सूर्यवन्न्यायाभयप्रकाशकौ शिल्पिनां सङ्गृहीतारौ सत्यस्य प्रचारकौ भवेतम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के तुल्य जगत् के रक्षक राजन्! (वाजस्य) विद्या वा विज्ञान से हुए कार्यों के (हि) ही (कारवः) करने वाले (नरः) नायक हम लोग (सातौ) रण में (त्वाम्) आप को जैसे (वृत्रेषु) मेघों में सूर्य को वैसे (सत्पतिम्) सत्य के प्रचार के रक्षक (त्वाम्) आप को (अर्वतः) शीघ्रगामी घोड़े के तुल्य सेना में देखें (काष्ठासु) दिशाओं में (त्वाम्) आप को (इत्) ही (हवामहे) ग्रहण करें ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे सेना और सभा के पति! तुम दोनों सूर्य के तुल्य न्याय और अभय के प्रकाशक शिल्पियों का संग्रह करने और सत्य के प्रचार करने वाले होओ ॥ ३७ ॥

स त्वमित्यस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

स्वराड्बृहती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

विद्वान् किं करोतीत्याह ॥

विद्वान् क्या करता है इस वि० ॥

स त्वं न॑श्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया म॒हस्तवा॒नो॑ऽअद्रिवः । गामश्वꣳ र॒थ्य॒मिन्द्र॒ संकि॑र स॒त्रा वाजं॒ न जि॒ग्युषे॑ ॥ ३८ ॥

सः । त्वम् । नः । चित्र । वज्रहस्तेति वज्रऽहस्त । धृष्णुयेति धृष्णुऽया । महः । स्तवानः । अद्रिवइत्यद्रिऽवः । गाम् । अश्वम् । रथ्यम् । इन्द्र । सम् । किर । सत्रा । वाजम् । न । जिग्युषे ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(सः) पूर्वोक्तः (त्वम्) (नः) अस्मभ्यम् (चित्र) आश्चर्यस्वरूप (वज्रहस्त) (धृष्णुया) प्रगल्भतया (महः) महत् (स्तवानः) स्तुवन् (अद्रिवः) प्रशस्ताश्ममयवस्तुयुक्त (गाम्) वृषभम् (अश्वम्) (रथ्यम्) रथस्य वोढारम् (इन्द्र) (सम्) (किर) प्रापय (सत्रा) सत्यम् (वाजम्) विज्ञानम् (न) इव (जिग्युषे) जयशीलाय ॥ ३८ ॥

अन्वयः- हे चित्र वज्रहस्ताद्रिवइन्द्र धृष्णुया महः स्तवानः स त्वं जिग्युषे नः सत्रा वाजं न गां रथ्यमश्वं संकिर ॥ ३८ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०-यथा मेघसम्बन्धी सूर्यो वृष्ट्या सर्वान् सम्बध्नाति तथा विद्वान् सत्यविज्ञानेन सर्वान् प्रकाशयति ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (चित्र) आश्चर्यस्वरूप (वज्रहस्त) वज्र हाथ में लिये (अद्रिवः) प्रशस्त पत्थर के बने हुए वस्तुओं वाले (इन्द्र) शत्रुनाशक विद्वन् (धृष्णुया) ढीठता से (महः) बहुत (स्तवानः) स्तुति करते हुए (सः) सो पूर्वोक्त (त्वम्) आप (जिग्युषे) जय करने वाले पुरुष के लिये तथा (नः) हमारे लिये (सत्रा) सत्य (वाजम्) विज्ञान के (न) तुल्य (गाम्) बैल तथा (रथ्यम्) रथ के योग्य (अश्वम्) घोड़े को (सं किर) सम्यक् प्राप्त कीजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे मेघसम्बन्धी सूर्य, वर्षा से सब को सम्बद्ध करता है वैसे विद्वान् सत्य के विज्ञानसे सबके ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है॥३८॥

कयान इत्यस्य वामदेवऋषिः । अग्निर्देवता ।

गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि०॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ३९ ॥

कया । नः । चित्रः । आ । भुवत् । ऊती । सदावृध इति सदाऽवृधः । सखा । कया । शचिष्ठया । वृता ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(कया) (नः) अस्मान् (चित्रः) अद्भुतः (आ,भुवत्) भवेत् (ऊती) रक्षणादिक्रियया । अत्र सुपामितिपूर्वसवर्णादेशः (सदावृधः) यः सदा वर्धते तस्य (सखा) (कया) (शचिष्ठया) अतिशयितया क्रियया (वृता) या वर्त्तते तया ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! चित्रः सदावृधः सखाऽऽभुवत्कयोती नो रक्षेः कया शचिष्ठया वृताऽऽस्मान्नियोजयेः ॥ ३९ ॥

भावार्थः—योऽद्भुतगुणकर्मस्वभावो विद्वान् सर्वस्य मित्रं भूत्वा कुकर्माणि निवर्त्य सुकर्मभिरस्मान् योजयेत्सोऽस्माभिः सत्कर्त्तव्यः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! (चित्रः) आश्चर्य कर्म करने हारे (सदावृधः) जो सदा बढ़ता है उस के (सखा) मित्र (आ, भुवत्) हूजिये (कया) किसी (ऊती) रक्षणादिक्रिया से (नः) हमारी रक्षा कीजिये (कया) किसी (शचिष्ठया) अत्यन्त निकट सम्बन्धिनी (वृता) वर्त्तमान क्रिया से हम को युक्त कीजिये ॥ ३९ ॥

भावार्थः— जो आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला विद्वान् सब का मित्र हो और कुकर्मों की निवृत्ति करके उत्तम कर्मों से हम को युक्त करे उसका हमको सत्कार करना चाहिये ॥ ३९ ॥

कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

कस्त्वा॑ सत्यो मदा॑नां मᳫँहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः । दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑ ॥ ४० ॥

कः । त्वा॒ । स॒त्यः । मदा॑नाम् । मᳫँहि॑ष्ठः । म॒त्स॒त् । अन्ध॑सः । दृ॒ढा । चि॒त् । आ॒रुज॒ऽइत्या॒ऽरुजे॑ । वसु॑ ॥ ४० ॥

पदार्थः—(कः) सुखप्रदः (त्वा) त्वाम् (सत्यः) सत्सु साधुः (मदानाम्) हर्षाणाम् (मंहिष्ठः) अतिशयेन महावयुक्तः (मत्सत्) आनन्दयेत् (अन्धसः) अन्नात् (दृढा) दृढानि (चित्) इव (आरुजे) समन्ताद्रोगाय (वसू) वसूनि द्रव्याणि । अत्र सुपां सुलुगिति जसो लुक् ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यः कः सत्यो मंहिष्ठो विद्वांस्त्वाऽन्धसो मदानां मध्ये मत्सदारुजे। औषधानि चिदिव दृढा वसु संचिनुयात् सोऽस्माभिः पूजनीयः ॥४०॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०-यः सत्यप्रियआनन्दप्रदो विद्वान् परोपकाराय रोगनिवारणायौषधमिव वस्तूनि संचिनुयात्सएव सत्कारमर्हेत् ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जो (कः) सुखदाता (सत्यः) श्रेष्ठों में उत्तम (मंहिष्ठः) अति महत्व युक्त विद्वान् (त्वा) आप को (अन्धसः) अन्न से हुए (मदानाम्) आनन्दों में (मत्सत्) प्रसन्न करे (आरुजे) अतिरोग के अर्थ ओषधियों को जैसे इकट्ठा करे (चित्) वैसे (दृढा) दृढ़ (वसु) द्रव्यों का सञ्चय करे सो हम को सत्कार के योग्य होवे ॥ ४० ॥

भावार्थः- इस मन्त्र में उपमालं०—जो सत्य में प्रीति रखने और आनन्द देने वाला विद्वान् परोपकार के लिये रोगनिवारणार्थ ओषधियों के तुल्य वस्तुओं का सञ्चय करे वही सत्कार के योग्य होवे ॥ ४० ॥

अभीषुण इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
पादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
कीदृशा जना धनं लभन्त इत्याह ॥
कैसे जन धन को प्राप्त होते इस वि० ॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥ ४१ ॥

अभि । सु । नः । सखीनाम् । अविता । जरितॄणाम् । शतम् । भवासि । ऊतये ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(अभि) सर्वतः। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (सु) शोभने (नः) अस्माकम् (सखीनाम्) मित्राणाम् (अविता) रक्षकः (जरितृणाम्) स्तोतृणाम् (शतम्) (भवासि) भवेः (ऊतये) प्रीत्याद्याय ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यस्त्वं नः सखीनां जरितृणां चाविताऊतये शतं सु भवासि सोऽभि पूज्यः स्याः ॥ ४१ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः सुहृदां रक्षका असंख्यसुखप्रदा अनाथानां रक्षणे प्रवर्त्तन्ते तेऽसंख्यं धनं लभन्ते ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जो आप (नः) हमारे (सखीनाम्) मित्रों तथा (जरितृणाम्) स्तुति करने वाले जनों के (अविता) रक्षक (ऊतये) प्रीति आदि के अर्थ (शतम्) सैकड़ों प्रकार से (सु, भवासि) सुन्दर रीति कर के हूजिये सो आप (अभि) सब ओर से सत्कार के योग्य हों ॥ ४१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने मित्रों के रक्षक असंख्य प्रकार का सुख देने हारे अनाथों की रक्षा में प्रयत्न करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

यज्ञा यज्ञ इत्यस्य शंयुर्ऋषिः। यज्ञो देवता। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यज्ञायज्ञा वोऽअग्नये गिरागिरा च दक्षसे। प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ ४२ ॥

यज्ञायज्ञेतिं यज्ञाऽयंज्ञा । वः । अग्नयें । गिरागि-रेतिंगिराऽगिंरा । च । दक्षंसे । प्रप्रेति प्रऽप्रं । वयम् । अमृतंम् । जातवेंदसमितिं जातऽवेंदसम् । प्रियम् । मित्रम् । न । शंꣳसिषम् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(यज्ञायज्ञा) यज्ञे यज्ञे । अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः (वः) युष्मान् (अग्नये) पावकाय (गिरागिरा) वाण्यावाण्या (च) (दक्षसे) बलाय (प्रप्र) प्रकर्षेण (वयम्) (अमृतम्) नाशरहितम् (जातवेदसम्) जातविज्ञानम् (प्रियम्) प्रीतिविषयम् (मित्रम्) सखायम् (न) इव (शंसिषम्) प्रशंसेयम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथाऽहमग्नये गिरागिरा दक्षसे च यज्ञायज्ञा वो युष्मान् प्रप्रशंसिषम् । वयं जातवेदसममृतं प्रियं मित्रं न वो युष्मान् [illegible] सेम तथा यूयमप्याचरत ॥ ४२ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये मनुष्याः सुशिक्षितया वाण्या [illegible]नुष्ठाय बलं वर्द्धयित्वा मित्रवद्विदुषः सत्कृत्य संगच्छन्ते ते बहुज्ञा धन्याश्च जायन्ते ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अग्नये) अग्नि के लिये (च) और (गिरागिरा) वाणी २ से (दक्षसे) बल के अर्थ (यज्ञायज्ञा) यज्ञ २ में (वः) तुम लोगों की (प्रप्र, शंसिषम्) प्रशंसा करूं (वयम्) हम लोग (जातवेदसम्) ज्ञानी (अमृतम्) आत्मरूप से अविनाशी (प्रियम्) प्रीति के विषय (मित्रम्) मित्र के (न) तुल्य तुम्हारी प्रशंसा करें वैसे तुम भी आचरण किया करो ॥ ४२ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०-जो मनुष्य उत्तम शिक्षित वाणी से यज्ञों का अनुष्ठान कर बल बढ़ा और मित्रों के समान विद्वानों का सत्कार करके समागम करते हैं वे बहुत ज्ञान वाले धनी होते हैं ॥ ४२ ॥

पाहि न इत्यस्य भार्गवऋषिः । अग्निर्देवता ।

स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

आप्ताः किं कुर्युरित्याह ॥

आप्त धर्मात्मा जन क्या करें इस वि० ॥

पाहि नो॑ अग्न एक॑या पा॒ह्यु॒त द्वि॒तीय॑या । पा॒हि गी॒र्भिस्ति॒सृभि॑रूर्जां पते पा॒हि च॑त॒सृभि॑र्वसो ॥ ४३ ॥

पा॒हि । नः॒ । अ॒ग्ने॒ । एक॑या । पा॒हि । उ॒त । द्वि॒तीय॑या । पा॒हि । गी॒र्भिरिति॑ गीः॒ऽभिः॑ । ति॒सृभि॒रिति॑ ति॒सृऽभिः॑ । ऊ॒र्जा॒म् । प॒ते॒ । पा॒हि । च॒त॒सृभि॒रिति॑ च॒त॒सृऽभिः॑ व॒सो॒इति॑ वसो ॥ ४३ ॥

पदार्थः-(पाहि) रक्ष (नः) अस्मान् (अग्ने) पावकवद्विद्वन् (एकया) सुशिक्षया (पाहि) (उत) अपि (द्वितीयया) अध्यापनक्रियया (पाहि) (गीर्भिः) वाग्भिः (तिसृभिः) कर्मोपासनाज्ञानज्ञापिकाभिः (ऊर्जाम्) बलानाम् (पते) पालक (पाहि)(चतसृभिः) धर्मार्थकाममोक्षविज्ञापिकाभिः (वसो) सुवासप्रद ॥४३॥

अन्वयः–हे वसो अग्ने त्वमेकया नोऽस्मान् पाहि द्वितीयया पाहि तिसृभिर्गीर्भिः पाहि । हे ऊर्जा पते ! त्वं नोऽस्मान् चतसृभिरुत पाहि ॥ ४३ ॥

भावार्थः–आप्ता नान्यदुपदेशादध्यापनाद्वा मनुष्यकल्याणकरं विजानन्ति । अतोऽहर्निशमज्ञाननुकम्प्य सदोपदिशन्त्यध्यापयन्ति च ॥ ४३ ॥

पदार्थः–हे (वसो) सुन्दर वास देने हारे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! आप (एकया) उत्तम शिक्षा से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये (द्वितीयया) दूसरी अध्यापन क्रिया से (पाहि) रक्षा कीजिये (तिसृभिः) कर्म उपासना ज्ञान की जताने वाली तीन (गीर्भिः) वाणियों से (पाहि) रक्षा कीजिये । हे (ऊर्जाम्) पराक्रमों के (पते) रक्षक आप हमारी (चतसृभिः) धर्म अर्थ काम और मोक्ष का विज्ञान कराने वाली चार प्रकार की वाणी से (उत) भी (पाहि) रक्षा कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थः–सत्य वादी धर्मात्मा आप्तजन उपदेश करने और पढ़ाने से भिन्न किसी साधन को मनुष्य का कल्याणकारक नहीं जानते इस से नित्य प्रति अज्ञानियों पर कृपा कर सदा उपदेश करते और पढ़ाते हैं ॥ ४३ ॥

ऊर्जो नपातमित्यस्य शंय्युर्ऋषिः । वायुर्देवता ।
स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

ऊर्जो नपात॑ᳪ॒ स हि॒नायम॑स्म॒युर्दाशे॑म ह॒व्यदा॑तये । भुव॒द्वाजे॑ष्ववि॒ता भुव॑द्वृ॒धऽउ॒त त्रा॒ता त॒नूना॑म् ॥ ४४ ॥

ऊर्जः । नपातम् । सः । हिन । अयम् । अस्मयुरित्यस्मऽयुः । दाशेम । हव्यदातयऽइति हव्यऽदातये ॥ भुवत् । वाजेषु । अविता । भुवत् । वृधे । उत । त्राता । तनूनाम् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(ऊर्जः) पराक्रमस्य (नपातम्) अपातितारम् विद्याबोधनम् (सः) (हिन) हिनु वर्द्धय । अत्र हि गतौ वृद्धौ चेत्यस्माल्लोण्मध्यमैकवचने वर्णव्यत्ययेन उकारस्य अकारः (अयम्) (अस्मयुः) योऽस्मान् कामयते (दाशेम) स्वीकुर्याम (हव्यदातये) दातव्यानां दानाय (भुवत्) भवेत् (वाजेषु) सङ्ग्रामेषु (अविता) रक्षिता (भुवत्) भवेत् (वृधे) वर्धनाय (उत) अपि (त्राता) (तनूनाम्) शरीराणाम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन् ! स त्वमूर्जो नपातं हिन यतोऽयं भवानस्मयु र्वाजेष्वविता भुवदुतापि तनूनां वृधे त्राता भुवत् । ततस्त्वां हव्यदातये वयं दाशेम ॥ ४४ ॥

भावार्थः—यः पराक्रमं वीर्यं च न हन्याच्छरीरात्मनोर्वर्धकः सन् रक्षकः स्यादाप्तास्तस्मै विद्यां दद्युः । योऽस्माद्विपरीतोऽजितेन्द्रियो दुष्टाचारी निन्दको भवेत्स विद्याग्रहणेऽधिकारी न भवतीति वेद्यम् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थिन् ! (सः) सो आप (ऊर्जः) पराक्रम को (नपातम्) न नष्ट करने हारे विद्याबोध को (हिन) बढ़ाइये जिस से (अयम्) यह प्रत्यक्ष आप (अस्मयुः) हम को चाहने और (वाजेषु) संग्रा-

नों में (अविता) रक्षा करने वाले (भुवत्) होवें (उत) और तनूनाम् शरीरों के (वृधे) बढ़ने के अर्थ (त्राता) पालनकरने वाले (भुवत्) होवें इस से आप को (हव्यदातये) देने योग्य पदार्थों के देने के लिये हम लोग (दाशेम) स्वीकार करें ॥ ४४ ॥

भावार्थः-जो पराक्रम और बल को ननष्ट करे, शरीर और आत्मा की उन्नति करता हुआ रक्षक हो उस के लिये आप्त जन विद्या देवें । जो इस से विपरीत लम्पट दुष्टाचारी निन्दक हो वह विद्याग्रहण में अधिकारी नहीं होता यह जानें ॥ ४४ ॥

संवत्सर इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृद्भिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोसि वत्सरोऽसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताᳬं संवत्सरस्ते कल्पताम् । प्रेत्याऽएत्यै सं चाञ्च प्र च सारय । सुपर्णचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवः सीद ॥ ४५ ॥

संवत्सरः । असि । परिवत्सर इति परिऽवत्सरः । असि । इदावत्सर इतीदाऽवत्सरः । असि । इद्वत्सर इतीत्ऽवत्सरः । असि । वत्सरः । असि । उषसः । ते । कल्पन्ताम् । अहोरात्राः । ते । कल्पन्ताम् । अर्द्धमासा इत्यर्द्धऽमासाः । ते ।

कल्पन्ताम् । मासाः । ते । कल्पन्ताम् । ऋतवः । ते । कल्पन्ताम् । संवत्सरः । ते । कल्पताम् । प्रेत्या इति प्रऽइत्यै । एत्या इत्याऽइत्यै । सम् । च । अञ्च । प्र । च । सारय । सुपर्णचिदिति सुपर्णऽचित् । असि । तया । देवतया । अङ्गिरस्वादित्यङ्गिरःऽवत् । ध्रुवः । सीद ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(संवत्सरः) संवत्सरइव नियमेन वर्त्तमानः (असि) (परिवत्सरः) वर्जितव्यो वत्सर इव दुष्टाचारत्यागी (असि) (इदावत्सरः) निश्चयेन समन्ताद्वर्त्तमानः संवत्सर इव (असि) (इद्वत्सरः) निश्चितसंवत्सरइव (असि)(वत्सरः) वर्षइव (असि) (उषसः) प्रभाताः (ते) तुभ्यम् (कल्पन्ताम्) समर्था भवन्तु (अहोरात्राः) रात्रिदिनानि (ते) (कल्पन्ताम्) (अर्द्धमासाः) सितासिताः पक्षाः(ते) (कल्पन्ताम्) (मासाः) चैत्रादयः (ते) (कल्पन्ताम्)(ऋतवः) वसन्ताद्याः (ते) (कल्पन्ताम्) (संवत्सरः) (ते) (कल्पताम्) (प्रेत्यै) प्रकृष्टेन प्राप्त्यै (एत्यै) समन्ताद्गत्यै (सम्) सम्यक् (च) (अञ्च) प्राप्नुहि (प्र) (च) (सारय) (सुपर्णचित्) यः शोभनानि पर्णानि पालनानि चिनोति सः (असि) (तया) (देवतया) दिव्यगुणयुक्तया सम्यग्रूपया (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मप्राणवत् (ध्रुवः) दृढः (सीद) स्थिरो भव ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् जिज्ञासो ! वा यतस्त्वं संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसी-दावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि तस्मात्ते कल्याणकर्य्य उषसः कल्पन्तां

ते मङ्गलप्रदा अहोरात्राः कल्पन्तां तेऽर्द्धमासाः कल्पन्तां ते मासाः कल्पन्तां त ऋतवः कल्पन्तां ते संवत्सरः कल्पतां त्वं च प्रेत्यै समञ्च त्वमेत्यै स्व-प्रभावं प्रसारय च यतस्त्वं सुपर्णचिदसि तस्मात्तया देवतया सहाङ्गिरस्वद्: ध्रुवः सीद ॥ ४५ ॥

भावार्थः—य आप्ता मनुष्या व्यर्थं कालं न नयन्ति सुनियमैर्द्धर्म्मात्माः कर्त्तव्यानि कुर्वन्ति त्यक्तव्यानि त्यजन्ति तेषां सुप्रभातः शोभना अहोरात्रा अर्द्धमासा मासा ऋतवश्च गच्छन्ति । तस्मात्प्रकर्षगतये प्रयत्य सुमार्गेण गत्वा शुभान् गुणान् सुखानि च प्रसारयेयुः । सुलक्षणया वोढ्या पत्न्या च सहिता धर्मग्रहणेऽधर्मत्यागे च दृढोत्साहा सदा भवेयुरिति ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् वा जिज्ञासु पुरुष ! जिससे तू (संवत्सरः) संवत्सर के तुल्य नियम से वर्त्तमान (असि) है (परिवत्सरः) त्याज्य वर्ष के समान दुराचरण का त्यागी (असि) है (इदावत्सरः) निश्चय से अच्छे प्रकार वर्त्तमान वर्ष के तुल्य (असि) है इद्वत्सरः) निश्चित संवत्सर के सदृश (असि) है (वत्सरः) वर्ष के समान (असि) है इससे (ते) तेरे लिये (उषसः) कल्याण कारिणी उषा प्रभात वेला (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे लिये (अहोरात्राः) दिन रातें मंगल दायक (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे अर्थ (अर्द्धमासाः) शुक्ल कृष्ण पक्ष (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे लिये (मासाः) चैत्र आदि महीने (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे लिये (ऋतवः) वसन्तादि ऋतु (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे अर्थ (संवत्सरः) वर्ष (कल्पताम्) समर्थ हो । (च) और तू (प्रेत्यै) उत्तम प्राप्ति के लिये (सम्, अञ्च) सम्यक् प्राप्त हो (च) और तू (एत्यै) अच्छे प्रकार जाने के लिये (प्र, सारय) अपने प्रभाव का विस्तार कर जिस कारण तू (सुपर्णचित) सुन्दर रक्षा के साधनों का संचयकर्त्ता (असि) है इससे (तया) उस (देवतया)

उत्तम गुण युक्त समय रूप देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्)सूत्रात्मा प्राण वायु के समान (ध्रुव) दृढ़ निश्चल (सीद) स्थिर हो ॥ ४५ ॥

भावार्थः—जो आप्त मनुष्य व्यर्थ काल नहीं खोते सुन्दर नियमों से वर्त्तते हुए कर्तव्य कर्मों को करते, छोड़ने योग्यों को छोड़ते हैं उनके प्रभात काल, दिन रात, पक्ष, महिने ऋतु सब सुन्दर प्रकार व्यतीत होते हैं इसलिये उत्तम गति के अर्थ प्रयत्न कर अच्छे मार्ग से चल शुभ गुणों और सुखों का विस्तार करें। सुन्दर लक्षणों वाली वाणी वा स्त्री के सहित धर्म ग्रहण और अधर्म के त्याग में दृढ़ उत्साही सदा होवें ॥ ४५ ॥

अस्मिन्नध्याये सत्यप्रशंसाविज्ञापनं, सद्गुणस्वीकारो, राज्यवर्धनमनिष्टनिवारणं, जीवनवृद्धिर्मित्रविश्वासः, सर्वत्रकीर्त्तिकरणमैश्वर्यवर्द्धनमल्पमृत्युनिवारणं, शुद्धिकरणं, सुकृतानुष्ठानं, यज्ञकरणं, बहुधनधारणं, स्वामित्वप्रतिपादनं, सुवाग्ग्रहणं, सद्गुणेच्छाऽग्निप्रशंसा, विद्याधनवर्धनं, कारणवर्णनं, धनोपयोगः, परस्परेषां रक्षणं, वायुगुणवर्णनमाधाराऽऽधेयकथनमीश्वरगुणवर्णनं, शूरवीर कृत्यकथनं, प्रसन्नतासम्पादनं, मित्ररक्षणं, विद्वदाश्रयः, स्वास्मपालनं, वीर्यरक्षणं, युक्ताहारविहारश्चोक्तमतएतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सहसंगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

इस अध्याय में सत्य की प्रशंसा का जानना, उत्तम गुणों का स्वीकार, राज्यका बढ़ाना, अनिष्ट की निवृत्ति, जीवन को बढ़ाना, मित्र का विश्वास, सर्वत्र कीर्त्ति करना, ऐश्वर्य को बढ़ाना, अल्पमृत्यु का निवारण, शुद्धि करना, सुकर्म का अनुष्ठान, यज्ञ करना, बहुत धन का धारण, मालिक पन का प्रतिपादन, सुन्दर वाणी का ग्रहण, सद्गुणों की इच्छा, अग्नि की प्रशंसा, विद्या और धन को बढ़ाना, कारणका वर्णन, धन का उपयोग,परस्पर की रक्षा, वायु के गुणों का वर्णन, आधार आधेय का कथन, ईश्वर के गुणों का वर्णन,

शूरवीर के कृत्यों का कहना, प्रसन्नता करना, मित्र की रक्षा, विद्वानों का आश्रय, अपने आत्मा की रक्षा, वीर्य की रक्षा और युक्त आहार विहार कहे हैं इस से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये सप्तविंशतितमोऽध्यायः पूर्त्तिमगमत् ॥ २७ ॥
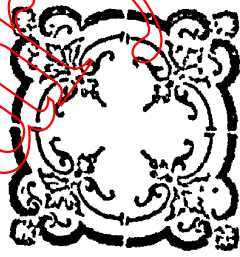
ओ३म्

अथाष्टाविंशोऽध्याय आरभ्यते

—:o*o:—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अथ मनुष्यैर्यज्ञेन कथं बलं वर्द्धनीयमित्याह ॥

अब अट्ठाईसवें अध्याय का आरम्भ है उसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों को यज्ञ से कैसे बल बढ़ाना चाहिये इस वि० ॥

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि । दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यतऽओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १ ॥

होता । यक्षत् । समिधेति सम्ऽइधा । इन्द्रम् । इडः । पदे । नाभा । पृथिव्याः । अधि । दिवः । वर्ष्मन् । सम् । इध्यते । ओजिष्ठः । चर्षणीसहाम् । चर्षणीसहामिति चर्षणिऽसहाम् । वेतु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ १ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) यजेत् (समिधा) ज्ञानप्रकाशेन (इन्द्रम्) विद्युदाख्यमग्निम् (इडः) वाण्याः । अत्र

जसादिषु छन्दसि वा वचनमिति याडभावः (पदे) प्राप्तव्ये (नाभा) नाभौ मध्ये (पृथिव्याः) भूमेः (अधि) उपरि (दिवः) प्रकाशस्य (वर्ष्मन्) वर्षके मेघमण्डले (सम्) (इध्यते) प्रदीप्यते (ओजिष्ठः) अतिशयेन बली (चर्षणीसहाम्) ये चर्षणीन् मनुष्यसमूहान् सहन्ते तेषाम् (वेतु) प्राप्नोतु (आज्यस्य) घृतादिकम् । अत्र कर्मणि षष्ठी (होतः) यजमान (यज) संगच्छस्व ॥ १ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होता समिधेडस्पदे पृथिव्या नाभा दिवोऽधि वर्ष्मन्निन्द्रं यक्षत्तेनौजिष्ठः सन् चर्षणीसहां मध्ये समिध्यत आज्यस्य वेतु तथा यज ॥ १ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैर्वेदमन्त्रैस्सुगन्ध्यादिद्रव्यमग्नौ प्रक्षिप्य मेघमण्डलं प्रापय्य जलं शोधयित्वा सर्वार्थं बलं वर्द्धनीयम् ॥ १ ॥

पदार्थः— हे (होतः) यजमान ! तू जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहण कर्त्ता जन (समिधा) ज्ञान के प्रकाश से (इडः) वाणी सम्बन्धी (पदे) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (पृथिव्याः) भूमि के (नाभा) मध्य और (दिवः) प्रकाश के (अधि) ऊपर (वर्ष्मन्) वर्षने हारे मेघमण्डल में (इन्द्रम्) बिजुली रूप अग्नि को (यक्षत्) सङ्गत करे उस से (ओजिष्ठः) अतिशय कर बली हुआ (चर्षणीसहाम्) मनुष्यों के झुंडों को सहने वाले योद्धाओं में (सम्, इध्यते) सम्यक् प्रकाशित होता है और (आज्यस्य) घृत आदि को (वेतु) प्राप्त होवे (यज) वैसे समागम किया कर ॥ १ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि वेद मन्त्रों से सुगन्धित आदि द्रव्य अग्नि में छोड़ मेघमण्डल को पहुंचा और जल को शुद्ध करके सब के लिये बल बढ़ावें ॥ १ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्यऋषिः। इन्द्रो देवता।
निचृज्जगतीछन्दः। निषादः स्वरः॥
राजपुरुषाः कीदृशाः स्युरित्याह॥
राजपुरुष कैसे हों इस वि० ॥

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम्। इन्द्रं देवꣳ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज॥ २॥

होता। यक्षत्। तनूनपातमिति तनूऽनपातम्। ऊतिभिरित्यूतिऽभिः। जेतारम्। अपराजितमित्यपराऽजितम्। इन्द्रम्। देवम्। स्वर्विदमिति स्वःऽविदम्। पथिभिरिति पथिऽभिः। मधुमत्तमैरिति मधुमत्ऽतमैः। नराशꣳसेन। तेजसा। वेतु। आज्यस्य। होतरिति होतः। यज॥ २॥

पदार्थः—(होता) सुखस्य प्रदाता (यक्षत्) संगच्छेत (तनूनपातम्) यः शरीराणि पाति तम् (ऊतिभिः) रक्षादिभिः (जेतारम्) जयशीलम् (अपराजितम्) अन्यैः पराजेतुमशक्यम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यकारकं राजानम् (देवम्) विद्याविनयाभ्यां सुशोभितम् (स्वर्विदम्) प्राप्तसुखम् (पथिभिः) धर्म्यैर्मार्गैः (मधुमत्तमैः) अतिशयेन मधुरजलादियुक्तैः (नराशंसेन) नरैराशंसितेन (तेजसा) प्रागल्भ्येन (वेतु) प्राप्नोतु (आज्यस्य) विज्ञेयम्। अत्र कर्मणि षष्ठी (होतः)(यज) ॥२॥

अन्वयः—हे होतर्भवान् यथा होतोतिभिर्मधुमत्तमैः पथिभिस्तनूनपातं जेतारमपराजितं स्वर्विदं देवमिन्द्रं यक्षत् नराशंसेन तेजसाऽऽज्यस्य वेतु तथा यज ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदि राजानः स्वयं न्यायमार्गेषु गच्छन्तः प्रजानां रक्षां विदध्युस्तेऽपराजितारः सन्तः शत्रूणां विजेतारः स्युः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (होतः) ग्रहण करने वाले पुरुष! आप जैसे (होता) सुख का दाता (ऊतिभिः) रक्षाओं तथा (मधुमत्तमैः) अतिमीठे जल आदि से युक्त (पथिभिः) धर्म युक्त मार्गों से (तनूनपातम्) शरीरों के रक्षक (जेतारम्) जयशील (अपराजितम्) शत्रुओं से न जीतने योग्य (स्वर्विदम्) सुख को प्राप्त (देवम्) विद्या और विनय से सुशोभित (इन्द्रम्) परमऐश्वर्यकारक राजा का (यक्षत्) सङ्ग करे (नराशंसेन) मनुष्यों से प्रशंसा किई गयी (तेजसा) प्रगल्भता से (आज्यस्य) जानने योग्य विषय को (वेतु) प्राप्त हो वैसे (यज) सङ्ग कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा लोग स्वयं राज्य के न्याय मार्ग में चलते हुए प्रजाओं की रक्षा करें वे पराजय को न प्राप्त होते हुए शत्रुओं के जीतने वाले हों ॥ २ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेवविषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् । देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३ ॥

होता । यक्षत् । इडाभिः । इन्द्रम् । ईडितम् । आजुह्वानमित्याऽजुह्वानम् । अमर्त्यम् । देवः । देवैः । सवीर्य्य इति सऽवीर्य्यः । वज्रहस्तइति वज्रऽहस्तः । पुरन्दर इति पुरम्ऽदरः । वेतु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३ ॥

पदार्थः-(होता) (यक्षत्) (इडाभिः) सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः (इन्द्रम्) परमविद्यैश्वर्यसम्पन्नम् (ईडितम्) प्रशस्तम् (आजुह्वानम्) स्पर्द्धमानम् (अमर्त्यम्) साधारणैर्मनुष्यैरसदृशम् (देवः) विद्वान् (देवैः) विद्वद्भिः सह (सवीर्यः) बलोपेतः (वज्रहस्तः) वज्राणि शस्त्रास्त्राणि हस्ते यस्य सः (पुरन्दरः) योऽरिपुराणि दृणाति सः (वेतु) प्राप्नोतु (आज्यस्य) विज्ञानेन रक्षितुं योग्यस्य राज्यस्य (होतः) (यज) ॥ ३ ॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथा होतेडाभिरमर्त्यमाजुह्वानमीडितमिन्द्रं यक्षद्यथाऽयं वज्रहस्तः पुरन्दरः सवीर्यो देवो देवैः सहाज्यस्यावयवान् वेतु तथा यज ॥ ३ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—यथा राजराजपुरुषाः पितृवत्प्रजाः पालयेयुस्तथैव प्रजा एतान् पितृवत्सेवेरन् य आप्तविद्वदनुमतया सर्वाणि कार्याणि कुर्युस्ते भ्रमं नाप्नुयुः ॥ ३ ॥

पदार्थः-हे (होतः) ग्रहीता पुरुष आप जैसे (होता) सुखदाता जन (इडाभिः) अच्छी शिक्षित वाणियों से (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों से विलक्षण (आजुह्वानम्) स्पर्द्धा करते हुए (ईडितम्) प्रशंसित (इन्द्रम्) उत्तम विद्या और ऐश्वर्यसे युक्त राजपुरुष को (यक्षत्) प्राप्त होवे जैसे यह (वज्रहस्तः)

हाथों में शस्त्र अस्त्र धारण किये (पुरन्दरः) शत्रुओं के नगरों को तोड़ने वाला (सवीर्यः) बलयुक्त (देवः) विद्वान् जन (देवैः) विद्वानों के साथ (आज्यस्य) विज्ञान से रक्षा करने योग्य राज्य के अवयवों को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) समागम कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे राजा और राजपुरुष पिता के समान प्रजाओं की पालना करें वैसे ही प्रजा इन को पिता के तुल्य सेवें जो आप्त विद्वानों की अनुमति से सब काम करें वे भ्रम को नहीं पावें ॥ ३ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । रुद्रो देवता ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यजद्बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ४ ॥

होता । यक्षत् । बर्हिषि । इन्द्रम् । निषद्वरम् । निसद्वरमिति निसत्ऽवरम् । वृषभम् । नर्यापसमिति नर्यऽअपसम् । वसुभिरिति वसुऽभिः । रुद्रैः । आदित्यैः । सयुग्भिरिति सयुक्ऽभिः । बर्हिः । आ । असदत् । वेतु । आज्यस्य । होतरिति होतः । यज ॥ ४ ॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (बर्हिषि) उत्तमायां विद्वत्सभायाम् (इन्द्रम्) नीत्या सुशोभमानम् (निषद्वरम्) निषीदन्ति वराः श्रेष्ठा मनुष्या यस्य समीपे तम् (वृषभम्) सर्वोत्कृष्टं

बलिष्ठम् (नर्य्यापसम्) नृषु साधून्यपांसि कर्माणि यस्य तम् (वसुभिः) प्रथमंकल्पैः (रुद्रैः) मध्यकक्षास्थैः (आदित्यैः) उत्तमकल्पैश्च विद्वद्भिः (सयुग्भिः) ये युञ्जन्ते तैः (बर्हिः) उत्तमां सभाम् (आसदत्) आसीदति (वेतु) प्राप्नोतु (आज्यस्य) कर्त्तव्यस्य न्यायस्य (होतः) (यज) ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे होतर्होता यथा सयुग्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैः सह बर्हिषि निषद्वरं वृषभं नर्यापसमिन्द्रं यक्षदाज्यस्य बर्हिरासदत्सुखं वेतु तथा यज ॥४॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा पृथिव्यादयो लोकाः प्राणादयो वायवः कालावयवा मासाः सह वर्त्तन्ते तथा ये राजप्रजाजनाः परस्परानुकूल्ये वर्त्तित्वा सभया प्रजापालनं कुर्युस्ते श्रेष्ठां प्रशंसां प्राप्नुवन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) उत्तम दान के दातः पुरुष ! (होता)सुख चाहने वाला पुरुष (जैसे) (सयुग्भिः) एक साथ योग करने वाले (वसुभिः) प्रथम कक्षा के (रुद्रैः) मध्यम कक्षा के और (आदित्यैः) उत्तम कक्षा के विद्वानों के साथ (बर्हिषि) उत्तम विद्वानों की सभा में (निषद्वरम्) जिस के निकट श्रेष्ठ जन बैठें उस (वृषभम्) सब से उत्तम बली (नर्यापसम्) मनुष्यों के उत्तम कामों का सेवन करने हारे (इन्द्रम्) नीति से शोभित राजा को (यक्षत्) प्राप्त होवे (आज्यस्य) करने योग्य न्याय की (बर्हिः) उत्तम सभा में (आ, असदत्) स्थित होवे और (वेतु) सुख को प्राप्त होवे वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे पृथिवी आदि लोक प्राण आदि वायु तथा काल के अवयव महीने सब साथ वर्त्तमान हैं वैसे जो राज और प्रजा के जन आपस में अनुकूल वर्त्त के सभा से प्रजा का पालन करें वे उत्तम प्रशंसा को पाते हैं॥४॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनः कीदृशा जनाः सुखिनो भवन्तीत्याह ॥
फिर कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस वि० ॥

होता यक्षदोजो न वीर्यꣳसहो द्वार इन्द्रमवर्द्धयन् । सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ५ ॥

होता । यक्षत् । ओजः । न । वीर्यम् । सहः । द्वारः । इन्द्रम् । अवर्द्धयन् । सुप्रायणाः । सुप्रायनाइति सुऽप्रायनाः । अस्मिन् । यज्ञे । वि । श्रयन्ताम् । ऋतावृधः । ऋतवृधऽइत्यृतऽवृधः । द्वारः । इन्द्राय । मीढुषे । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ५ ॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (ओजः) जलवेगः । ओज इत्युदकाना० निघं० १ । १२ (न) इव (वीर्यम्) बलम् (सहः) सहनम् (द्वारः) द्वाराणि (इन्द्रम्) ऐश्वर्यम् (अवर्द्धयन्) वर्धयन्तु (सुप्रायणाः) शोभनानि प्रकृष्टान्ययनानि यासु ताः (अस्मिन्) वर्त्तमाने (यज्ञे) संगन्तव्ये संसारे (वि) (श्रयन्ताम्) सेवन्ताम् (ऋतावृधः) या ऋतं सत्यं वर्द्धयन्ति ताः

(द्वारः) विद्याविनयद्वाराणि (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्ताय (मीढुषे) स्निग्धाय सेचनसमर्थाय (व्यन्तु) प्राप्नुवन्तु (आज्यस्य) विज्ञेयस्य राज्यविषयस्य (होतः) (यज)॥ ५ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा याः सुप्रायणा द्वार ओजो न वीर्यं सह इन्द्रं चावर्द्धयन् ता ऋतावृधो द्वारो मीढुष इन्द्रायास्मिन् यज्ञे विद्वांसो विश्रयन्तामाज्यस्य व्यन्तु होता च यक्षत्तथा यज ॥ ५ ॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलु०—ये मनुष्या अस्मिन् संसारे विद्याधर्मद्वाराण्युद्घाट्य पदार्थविद्यां संसेव्यैश्वर्यं वर्द्धयन्ति तेऽतुलानि सुखानि प्राप्नुवन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन! जैसे जो (सुप्रायणाः) सुन्दर अवकाश वाले (द्वारः) द्वार (ओजः) जल वेग के (न) समान (वीर्यम्) बल (सहः) सहन और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्द्धयन्) बढ़ावें उन (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाले (द्वारः) विद्या और विनय के द्वारों को (मीढुषे) स्निग्ध वीर्यवान् (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त राजा के लिये (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संगति के योग्य संसार में विद्वान् लोग (वि, श्रयन्ताम्) विशेष सेवन करें (आज्यस्य) जानने योग्य राज्य के विषय को (व्यन्तु) प्राप्त हों और (होता) ग्रहीता जन (यक्षत्) यज्ञ करे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः-इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य इस संसार में विद्या और धर्म के द्वारों को प्रसिद्ध कर पदार्थ विद्या को सम्यक् सेवन करके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे अतुल सुखों को पाते हैं ॥ ५ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

होता॑ यक्षदु॒षे इन्द्र॑स्य धे॒नू सु॒दुघे॑ मा॒तरा॑ म॒ही । स॒वा॒तरौ॒ न तेज॑सा व॒त्समिन्द्र॑मवर्द्धतां वी॒ताामाज्य॑स्य हो॒त॒र्यज॑ ॥ ६ ॥

होता॑ । यक्षत् । उ॒षेऽइत्यु॒षे । इन्द्र॑स्य । धे॒नूऽइति॑ धे॒नू । सु॒दुघे॒ऽइति॑ सु॒ऽदुघे॑ । मा॒तरा॑ । म॒हीऽइति॑ म॒ही । स॒वा॒तरा॒विति॑ स॒ऽवा॒तरौ॑ । न । तेज॑सा । व॒त्सम् । इ॒न्द्र॑म् । अ॒व॒र्द्ध॒ता॒म् । वी॒ता॒म् । आज्य॑स्य । होतः॑ । यज॑ ॥ ६ ॥

पदार्थः–(होता) (यक्षत्) (उषे) प्रतापयुक्त (इन्द्रस्य) विद्युतः (धेनू) दुग्धदात्र्यौ गावौ (सुदुघे) सुष्ठु कामप्रपूरिके (मातरा) मातृवद्वर्त्तमाने (मही) महत्यौ (सवातरौ) वायुना सह वर्त्तमानौ (न) इव (तेजसा) तीक्ष्णप्रतापेन (वत्सम्) (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (अवर्द्धताम्) वर्द्धेत (वीताम्) प्राप्नुताम् (आज्यस्य) प्रक्षेप्तुं योग्यस्य (होतः) (यज) ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथेन्द्रस्य सुदुघे मातरा मही धेनू सवातरौ उषे भौतिकसूर्य्याऽग्न्योस्तेजसेन्द्रं वत्सं वीतां होताऽऽज्यस्य यक्षदवर्द्धतां तथा यज ॥ ६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—हे मनुष्या यूयं यथा वायुना प्रेरितौ भौमविद्युतावग्नी सूर्यलोकतेजो वर्द्धयतो यथा धेनुवद्वर्त्तमानेऽउषे सर्वेषां व्यवहाराणामारम्भनिवृत्तिके भवतस्तथा प्रयतध्वम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (होतः) सुख दाता जन! आप जैसे (इन्द्रस्य) बिजुली की (सुदुघे) सुन्दर कामनाओं की पूरक (मातरा) माता के तुल्य वर्त्तमान (मही) बड़ी (धेनू, सवातरौ) वायु के साथ वर्त्तमान दुग्ध देने वाली दो गौ के (न) समान (उषे) प्रतापयुक्त भौतिक और सूर्यरूप अग्नि के (तेजसा) तीक्ष्ण प्रताप से (इन्द्रम्) परमऐश्वर्ययुक्त (वत्सम्) बालक को (वीताम्) प्राप्त हों तथा (होता) दाता (आज्यस्य) फेंकने योग्य वस्तु का (यक्षत्) संग करे और (अवर्द्धताम्) बढ़े वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो! तुम जैसे वायु से प्रेरणा किये भौतिक और विद्युत् अग्नि सूर्य लोक के तेज को बढ़ाते हैं और जैसे दुग्ध-दात्री गौ के तुल्य वर्त्तमान प्रतापयुक्त दिन रात सब व्यवहारों के आरम्भ और निवृत्ति कराने हारे होते हैं वैसे यत्न किया करो ॥ ६ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो गोतम ऋषिः । अश्विनौ देवते ।
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः । कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ७ ॥

होता । यक्षत् । दैव्या । होतारा । भिषजा । सखाया । हविषा । इन्द्रम् । भिषज्यतः । कवीऽइति कवी । देवौ । प्रचेतसाविति प्रऽचेतसा । इन्द्राय । धत्तः । इन्द्रियम् । वीताम् । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ७ ॥

पदार्थः– (होता) सुखप्रदाता (यक्षत्) (दैव्या) देवेषु विद्वत्सु साधू (होतारा) रोगं निवर्त्य सुखस्य प्रदातारौ (भिषजा) चिकित्सकौ (सखाया) सुहृदौ (हविषा) यथायोग्येन गृहीतव्यव्यवहारेण (इन्द्रम्) परमैश्वर्यमिच्छुकं जीवम् (भिषज्यतः) चिकित्सां कुरुतः (कवी) प्राज्ञौ (देवौ) वैद्यकविद्यया प्रकाशमानौ (प्रचेतसा) प्रकृष्टविज्ञानयुक्तौ (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (धत्तः) दध्यातान् (इन्द्रियम्) धनम् (वीताम्) प्राप्नुताम् (आज्यस्य) विज्ञानादेः (होतः) युक्ताहारविहारकृत् (यज) प्राप्नुहि ॥ ७ ॥

अन्वयः–हे होतस्त्वं यथा होताऽऽज्यस्य यक्षद्दैव्या होतारा सखाया कवी प्रचेतसौ देवौ भिषजा हविषेन्द्रं भिषज्यत इन्द्रायेन्द्रियं धत्त आयुर्वीतां तथा यज ॥ ७ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–हे मनुष्या यथा सद्वैद्या रोगिणोऽनुकम्प्यौ पथ्यादिना रोगान्निवार्यैश्वर्यायुषी वर्द्धयन्ति तथा यूयं सर्वेषु मैत्रीं भावयित्वा सर्वेषां सुखायुषी वर्द्धयत ॥ ७ ॥

पदार्थः–हे (होतः) युक्त आहार विहार के करने हारे वैद्य जन ! जैसे (होता) सुख देने हारे आप (आज्यस्य) जानने योग्य निदान आदि विषय को (यक्षत्) सङ्गत करते हैं (दैव्या) विद्वानों में उत्तम (होतारा) रोग को

निवृत्त कर सुख के देने वाले (सखाया) परस्पर मित्र (कवी) बुद्धिमान् (प्रचेतसौ) उत्तम विज्ञान से युक्त (देवौ) वैद्यक विद्या से प्रकाशमान (भिषजा) चिकित्सा करने वाले दो वैद्य (हविषा) यथायोग्य ग्रहण करने योग्य व्यवहार से (इन्द्रम्) परमऐश्वर्य के चाहने वाले जीव की (भिषज्यतः) चिकित्सा करते (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (इन्द्रियम्) धन को (धत्तः) धारण करते और अवस्था को (वीताम्) प्राप्त होते हैं वैसे (यज) प्राप्त हूजिये॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जैसे श्रेष्ठ वैद्य रोगियों पर कृपा कर ओषधि आदि के उपाय से रोगों को निवृत्त कर ऐश्वर्य और आयुर्दा को बढ़ाते हैं वैसे तुम लोग सब प्राणियों में मित्रता की वृत्ति कर सब के सुख और अवस्था को बढ़ाओ ॥ ७ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता।
निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः। इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ८ ॥

होता। यक्षत्। तिस्रः। देवीः। न। भेषजम्। त्रयः। त्रिधातव इति त्रिऽधातवः। अपसः। इडा। सरस्वती। भारती। महीः। इन्द्रपत्नीरितीन्द्रऽपत्नीः। हविष्मतीः। व्यन्तु। आज्यस्य। होतः। यज ॥ ८ ॥

पदार्थः–(होता) विद्याया दाताऽऽदाता वा (यक्षत्) (तिस्रः) त्रित्वसङ्ख्याकाः (देवीः) सकलविद्याप्रकाशिकाः (न) इव (भेषजम्) औषधम् (त्रयः) अध्यापकौपदेशकवैद्याः (त्रिधातवः) त्रयोऽस्थिमज्जवीर्याणि धातवो येभ्यस्ते (अपसः) कर्मठाः (इडा) प्रशंसितुमर्हा (सरस्वती) बहुविज्ञानयुक्ता (भारती) सुष्ठुविद्याया धारिका पोषिका वा वाणी (महीः) महत्यः पूज्याः (इन्द्रपत्नीः) इन्द्रस्य जीवस्य पत्न्यः स्त्रीवद्वर्त्तमानाः (हविष्मतीः) विविधविज्ञानसहिताः (व्यन्तु) प्राप्नुवन्तु (आज्यस्य) प्राप्तुं योग्यस्याऽध्यापनाऽध्ययनव्यवहारस्य (होतः) (यज) ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होताऽऽज्यस्य यक्षत्। यथा त्रिधातवोऽपसस्त्रयस्तिस्रो देवीर्न भेषजं मही इडा सरस्वती भारती च हविष्मतीरिन्द्रपत्नीर्व्यन्तु तथा जय ॥ ८ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०—यथा प्रशस्ता विज्ञानवती सुमेधा च स्त्रियः स्वसदृशान् पतीन् प्राप्य मोदन्ते तथाऽध्यापकोपदेशकवैद्या मनुष्याः स्तुतिविज्ञानयोगधारणायुक्तास्त्रिविधा वाचः प्राप्याऽऽनन्दन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (होतः) सुख चाहने वाले जन! जैसे (होता) विद्या का देने लेने वाला अध्यापक (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य पढ़ने पढ़ाने रूप व्यवहार को (यक्षत्) प्राप्त होवे जैसे (त्रिधातवः) हाड़, चरबी और वीर्य इन तीन धातुओं के वर्धक (अपसः) कर्मों में चेष्टा करते हुए (त्रयः) अध्यापक, उपदेशक और वैद्य (तिस्रः) तीन (देवीः) सब विद्याओं की प्रकाशिका वाणियों के

(न) समान (भेषजम्) औषध को (महीः) बड़ी पूज्य (इडा) प्रशंसा के योग्य (सरस्वती) बहुत विज्ञान वाली और (भारती) सुन्दर विद्या का धारण वा पोषण करने वाली (हविष्मतीः) विविध विज्ञानों के सहित (इन्द्रपत्नीः) जीवात्मा की स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान वाणी (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे (यज) इन को संगत कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे प्रशंसित विज्ञानवती और उत्तम बुद्धिमती स्त्रियां अपने योग्य पतियों को प्राप्त होकर प्रसन्न होती हैं वैसे अध्यापक उपदेशक और वैद्य लोग स्तुति ज्ञान और योगधारणायुक्त तीन प्रकार की वाणियों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं ॥८॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता ।

निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजं सुयजं घृतश्रियम् । पुरुरूपं सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥९॥

होता । यक्षत् । त्वष्टारम् । इन्द्रम् । देवम् । भिषजम् । सुयजमिति सुऽयजम् । घृतश्रियमिति घृतऽश्रियम् । पुरुरूपमिति पुरुऽरूपम् । सुरेतसमिति सुऽरेतसम् । मघोनम् । इन्द्राय । त्वष्टा । दधत् । इन्द्रियाणि । वेतु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ९ ॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (त्वष्टारम्) दोषविच्छेदकम् (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवन्तम् (देवम्) देदीप्यमानम् (भिषजम्) वैद्यम् (सुयजम्) सुष्ठुसङ्गन्तारम् (घृतश्रियम्) घृतेनोदकेन शोभमानम् (पुरुरूपम्) बहुरूपम् (सुरेतसम्) सुष्ठुवीर्यम् (मघोनम्) परमपूजितधनम् (इन्द्राय) जीवाय (त्वष्टा) प्रकाशकः (दधत्) धरन् सन् (इन्द्रियाणि) श्रोत्रादीनि धनानि वा (वेतु) प्राप्नोतु (आज्यस्य) ज्ञातुं योग्यस्य (होतः) (यज) ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता त्वष्टारं सुरेतसं मघोनं पुरुरूपं घृतश्रियं सुयजं भिषजं देवमिन्द्रं यक्षदाज्यस्येन्द्रायेन्द्रियाणि दधत्सन् त्वष्टा वेतु तथा यज ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यूयमाप्तं रोगनिवारकं श्रेष्ठौषधदायकं धनैश्वर्यवर्द्धकं वैद्यं सेवित्वा शरीरात्माऽन्तःकरणेन्द्रियाणां बलं वर्द्धयित्वा परमैश्वर्यं प्राप्नुत ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (होतः) शुभ गुणों के दाता जैसे (होता) पथ्य आहार विहार कर्त्ता जन (त्वष्टारम्) धातुवैषम्य से हुए दोषों को नष्ट करने वाले सुन्दर पराक्रमयुक्त (मघोनम्) परम प्रशस्त धनवान् (पुरुरूपम्) बहुरूप (घृतश्रियम्) जल से शोभायमान (सुयजम्) सुन्दर संग करने वाले (भिषजम्) वैद्य (देवम्) तेजस्वी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (यक्षत्) संग करता है और (आज्यस्य) जानने योग्य वचन के (इन्द्राय) प्रेरक जीव के लिये (इन्द्रियाणि) कान आदि इन्द्रियों वा धनों को (दधत्) धारण करता हुआ (त्वष्टा) तेजस्वी हुआ (वेतु) प्राप्त होता है वैसे तू (यज) संग कर ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! तुम लोग आप्त सत्यवादी रोगनिवारक सुन्दर ओषधि देने धन ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले वैद्य जन का सेवन कर शरीर आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के बल को बढ़ा के परम ऐश्वर्य को प्राप्त होओ ॥९॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता ।
स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् । मध्वा समञ्जन्पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १० ॥

होता । यक्षत् । वनस्पतिम् । शमितारम् । शतक्रतुमिति शतऽक्रतुम् । धियः । जोष्टारम् । इन्द्रियम् । मध्वा । समञ्जन्निति समऽअञ्जन् । पथिभिरिति पथिऽभिः । सुगेभिरिति सुऽगेभिः । स्वदाति । यज्ञम् । मधुना । घृतेन । वेतु । आज्यस्य । होतः । यज ॥१०॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (वनस्पतिम्) वनानां किरणानां स्वामिनं सूर्यम् (शमितारम्) यजमानम् (शतक्रतुम्) असंख्यातप्रज्ञम (धियः) प्रज्ञायाः कर्मणो वा (जोष्टारम्) प्रीतं सेवमानम् (इन्द्रियम्) धनम (मध्वा) मधुरेण विज्ञा-

नेन (समञ्जन्) सम्यक् प्रकटयन् (पथिभिः) मार्गैः (सुगेभिः) सुखेन गमनाधिकरणैः (स्वदाति) आस्वदेत । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (यज्ञम्) संगतं व्यवहारम् (मधुना) मधुरेण (घृतेन) आज्येनोदकेन वा (वेतु) व्याप्नोतु (आज्यस्य) विज्ञेयस्य संसारस्य (होतः) दातर्जन (यज) प्राप्नुहि ॥ १० ॥

अन्वयः-हे होतर्यथा होता वनस्पतिमिव शमितारं शतक्रतुं धियो जोष्टारं यक्षन्मध्वा सुगेभिः पथिभिराज्यस्येन्द्रियं समञ्जन्स्वदाति मधुना घृतेन यज्ञं वेतु तथा यज ॥ १० ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-ये मनुष्याः सूर्यवद्विद्याप्रज्ञाधर्मैश्वर्यप्रापका धर्म्यमार्गैर्गच्छन्तः सुखानि भुञ्जीरंस्तेऽन्येषामपि सुखप्रदा भवन्ति ॥ १० ॥

पदार्थः-हे (होतः) दान देने हारे जन! जैसे (होता) यज्ञकर्त्ता पुरुष (वनस्पतिम्) किरणों के स्वामी सूर्य के तुल्य (शमितारम्) यजमान (शतक्रतुम्) अनेक प्रकार की बुद्धि से युक्त (धियः) बुद्धि वा कर्म को (जोष्टारम्) प्रसन्न वा सेवन करते हुए पुरुष को (यक्षत्) सङ्ग करे (मध्वा) मधुर विज्ञान से (सुगेभिः) सुखपूर्वक गमन करने के आधार (पथिभिः) मार्गों करके (आज्यस्य) जानने योग्य संसार के (इन्द्रियम्) धन को (समञ्जन्) सम्यक् प्रकट करता हुआ (स्वदाति) स्वाद लेवे और (मधुना) मधुर (घृतेन) घी वा जल से (यज्ञम्) संगति के योग्य व्यवहार को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) तुम भी प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या बुद्धि धर्म और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले धर्मयुक्तमार्गों से चलते हुए सुखों को भोगें वे औरों को भी सुख देने वाले होते हैं ॥ १० ॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑ꣳ स्वाहाज्य॑स्य॒ स्वाहा॒ मेद॑सः॒ स्वाहा॑ स्तो॒काना॒ꣳस्वाहा॒ स्वाहा॑कृतीना॒ꣳ स्वाहा॑ ह॒व्यसू॑क्तीनाम् । स्वाहा॑ दे॒वा आ॑ज्य॒पा जु॑षा॒णा इन्द्र॒ आज्य॑स्य॒ व्यन्तु॒ होत॒र्यज॑ ॥ ११ ॥

होता॑ । य॒क्ष॒त् । इन्द्र॑म् । स्वाहा॑ । आज्य॑स्य । स्वाहा॑ । मेद॑सः । स्वाहा॑ । स्तो॒काना॑म् । स्वाहा॑ । स्वाहा॑कृतीना॒मिति॒ स्वाहा॑ऽकृतीनाम् । स्वाहा॑ । ह॒व्यसू॑क्तीना॒मिति॑ ह॒व्यऽसू॑क्तीनाम् । स्वाहा॑ । दे॒वाः । आ॒ज्य॒पा इत्या॑ज्य॒ऽपाः । जु॒षा॒णाः । इन्द्रः॑ । आज्य॑स्य । व्य॒न्तु॒ । होत॒रिति॒ होतः॑ । यज॑ ॥ ११ ॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (स्वाहा) सत्यांवाचम् (आज्यस्य) ज्ञातुमर्हस्य (स्वाहा) सत्यक्रियया (मेदसः) स्निग्धस्य (स्वाहा) (स्तोकानाम्) अपत्यानाम् (स्वाहा) (स्वाहाकृतीनाम्)

सत्यवाक्क्रियाऽनुष्ठानानाम् (स्वाहा) (हव्यसूक्तीनाम्) बहूनि हव्यानां सूक्तानि यासु तासाम् (स्वाहा) (देवाः) विद्वांसः (आज्यपाः) य आज्यं पिबन्ति वाऽऽज्येन रक्षन्ति ते (जुषाणाः) प्रीताः (इन्द्रः) परमैश्वर्यप्रदः (आज्यस्य) (व्यन्तु) (होतः) (यज) ॥११॥

अन्वयः- हे होतर्यथेन्द्रो होताऽऽज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानां स्वाहा स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यसूक्तीनां स्वाहेन्द्रं यक्षद्यथा स्वाहाऽऽज्यस्य जुषाणा आज्यपा देवा इन्द्रं व्यन्तु तथा यज ॥ ११ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये पुरुषाः शरीरात्माऽपत्यसत्क्रियाविद्यानां वृद्धिं चिकीर्षन्ति ते सर्वतः सुखाप्ता भवन्ति ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (होतः) विद्यादाता पुरुष ! जैसे (इन्द्रः) परमऐश्वर्य का दाता (होता) विद्योन्नति को ग्रहण करने हारा जन (आज्यस्य) जानने योग्य शास्त्र की (स्वाहा) सत्य वाणी को (मेदसः) चिकने धातु की (स्वाहा) यथार्थ क्रिया को (स्तोकानाम्) छोटे बालकों की (स्वाहा) उत्तमप्रिय वाणी को (स्वाहाकृतीनाम्) सत्य वाणी तथा क्रिया के अनुष्ठानों की (स्वाहा) होमक्रिया को और (हव्यसूक्तीनाम्) बहुत ग्रहण करने योग्य शास्त्रों के सुन्दर वचनों से युक्त बुद्धियों की (स्वाहा) उत्तम क्रियायुक्त (इन्द्रम्) परमऐश्वर्य को (यक्षत्) प्राप्त होता है जैसे (स्वाहा) सत्यवाणी करके (आज्यस्य) स्निग्ध वचन को (जुषाणाः) प्रसन्न किये हुए (आज्यपाः) घी आदि को पीने वा उस से रक्षा करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग ऐश्वर्य को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष शरीर, आत्मा, सन्तान, सत्कार और विद्या वृद्धि करना चाहते हैं वे सब ओर से सुखयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

देवं बर्हिरिन्द्रꣳ सुदेवं देवैर्वीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्द्धयत् । वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतꣳ राया । बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १२ ॥

देवम् । बर्हिः । इन्द्रम् । सुदेवमिति सुऽदेवम् । देवैः । वीरवदिति वीरऽवत् । स्तीर्णम् । वेद्याम् । अवर्द्धयत् । वस्तोः । वृतम् । प्र । अक्तोः । भृतम् । राया । बर्हिष्मतः । अति । अगात् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वेतु । यज ॥ १२ ॥

पदार्थः—(देवम्) दिव्यगुणम् (बर्हिः) अन्तरिक्षमिव । बर्हिरित्यन्तरिक्षना० निघं० १ । ३ (इन्द्रम्) परमैश्वर्यकारकम् (सुदेवम्) शोभनं विद्वांसम् (देवैः) विद्वद्भिः (वीरवत्) वीरैस्तुल्यम् (स्तीर्णम्) काष्ठैर्हविषा चाऽऽच्छादनीयम् (वेद्याम्) हवनाधारे कुण्डे (अवर्द्धयत्) वर्द्धयेत् (वस्तोः) दिने (वृतम्) स्वीकृतम् (प्र) (अक्तोः) रात्रौ (भृतम्) धृतम् (राया) धनेन (बर्हिष्मतः) अन्तरिक्षस्य सम्बन्धो विद्यते येषां तान् (अति)

उल्लङ्घने (अगात्) गच्छति (वसुवने) धनानां संविभागे (वसुधेयस्य) वसूनि धेयानि यस्मिँस्तस्य जगतः (वेतु) (यज) ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुधेयस्य वसुवने वेद्यां स्तीर्णं वस्तोर्वृतमक्तोर्भृतं हुतं द्रव्यं नैरोग्यं प्रावर्द्धयत्सुखं वेतु तथा बर्हिरिव राया सह देवं देवैः सह वीरवद्वर्त्तमानं सुदेवमिन्द्रं यज ॥ १२ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०—यथा यजमानो वेद्यां समित्सु चितं हुतघृतमग्निं वर्द्धयित्वाऽन्तरिक्षस्थानि वायुजलादीनि शोधयित्वा रोगनिवारणेन सर्वान् प्राणिनः प्रीणयति तथैव सज्जना जना धनादिना सर्वान् सुखयन्ति ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (बर्हिष्मतः) अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध रखने वाले वायु जलों को (अति, अगात्) उल्लङ्घन कर जाता (वसुधेयस्य) जिस में धनों का धारण होता है उस जगत् के (वसुवने) धनों के सेवने तथा (वेद्याम्) हवन के कुण्ड में (स्तीर्णम्) समिधा और घृतादि से रक्षा करने योग्य (वस्तोः) दिन में (वृतम्) स्वीकार किया (अक्तोः) रात्रि में (भृतम्) धारण किया हवन किया हुआ द्रव्य नीरोगता को (प्र, अवर्द्धयत्) अच्छे प्रकार बढ़ावे तथा सुख को (वेतु) प्राप्त करे वैसे (बर्हिः) अन्तरिक्ष के तुल्य (राया) धन के साथ (देवम्) उत्तम गुण वाले (देवैः) विद्वानों के साथ (वीरवत्) वीरजनों के तुल्य वर्त्तमान (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य करने वाले (सुदेवम्) सुन्दर विद्वान् का (यज) संग कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः--इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे यजमान वेदी में समिधाओं में सुन्दर प्रकार चयन किये और घृत चढ़ाये हुए अग्नि को बढ़ा अन्तरिक्षस्थ वायु जल आदि को शुद्ध कर रोग के निवारण से सब प्राणियों को तृप्त करता है वैसे ही सज्जन जन धनादि से सब को सुखी करते हैं ॥ १२ ॥

देवीरित्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता भुरिक् शक्वरी छन्दः । पञ्चमः । स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

देवीर्द्वार॒ इन्द्रँ॑सङ्घा॒ते वी॒ड्वीर्याम॑न्नवर्द्धयन्। आ वृ॒त्सेन॑ तरु॒णेन॑ कुमा॒रेण॑ च मीव॒ताप॒र्वा॑ण॒ꣳ रेणुक॑काटं नुदन्तां वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ १३ ॥

दे॒वीः । द्वारः॑ । इन्द्र॑म् । स॒ङ्घा॒त इति॑ सम्ऽघा॒ते । वी॒ड्वीः । याम॑न् । अ॒व॒र्द्ध॒य॒न् । आ । व॒त्सेन॑ । त॒रु॒णेन॑ । कु॒मा॒रेण॑ । च॒ । मी॒व॒ता । अप॑ । अर्वा॑णम् । रे॒णुक॑काट॒मिति॑ रे॒णुऽक॑काटम् । नु॒द॒न्ता॒म् । व॒सु॒वन॒ इति॑ व॒सु॒ऽवने॑ । व॒सु॒धेय॒स्येति॑ व॒सु॒ऽधेय॑स्य । व्य॒न्तु॒ । यज॑ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(देवीः) देदीप्यमानाः (द्वारः) द्वाराणि (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्यम् (सङ्घाते) सम्बन्धे (वीड्वीः) विशेषेण स्तोतुं योग्याः (यामन्) यामनि मार्गे (अवर्द्धयन्) वर्द्धयन्ति (आ) (वत्सेन) वत्सवत्तर्द्धमानेन (तरुणेन) युवाऽवस्थेन (कुमारेण) अकृतविवाहेन (च) (मीवता) हिंसता (अप) (अर्वाणम्) गच्छन्तमश्वम् (रेणुककाटम्) रेणुकैर्युक्तं कूपम् (नुदन्ताम्) प्रेरयन्तु (वसुवने) (वसुधेयस्य) (व्यन्तु) प्राप्नुवन्तु (यज) ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा वीड्वीर्देवीर्द्वारो रेणुककाटं याभन् वर्जयित्वा तरुणेन मीवता कुमारेण वत्सेन च सह वर्त्तमानमर्वाणमिन्द्रमावर्द्धयन् वसुवने सङ्घाते वसुधेयस्य विघ्नमप नुदन्तां व्यन्तु तथा यज ॥ १३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा पथिका मार्गे वर्त्तमानं कूपं निवार्य शुद्धं मार्गं कृत्वा प्राणिनः सुखेन गमयन्ति तथा बाल्यावस्थायां विवाहादीन्विघ्नान्निवार्य विद्यां प्रापय्य स्वसन्तानान्सुखमार्गं गमयन्तु ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (वीड्वीः) विशेष कर स्तुति के योग्य (देवीः) प्रकाशमान (द्वारः) द्वार (रेणुकाटम्) धूलि से युक्त कूप अर्थात् अन्धकुआ को (यामन्) मार्ग में छोड़ के (तरुणेन) ज्वान (मीवता) शूर दुष्टः हिंसा करते हुए (च) और (कुमारेण) ब्रह्मचारी (वत्सेन) बछर के तुल्य जन के साथ वर्त्तमान (अर्वाणम्) चलते हुए घोड़े यथा (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (आ, अवर्धयन्) बढ़ाते हैं (वसुवने) धन के सेवने योग्य (सङ्घाते) सम्बन्ध में (वसुधेयस्य) धनधारक संसार के विघ्न को (अप, नुदन्ताम्) प्रेरित करो और (व्यन्तु) प्राप्त होओ वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः— इस में वाचकलु० -हे मनुष्यो! जैसे बटोही जन मार्ग में वर्त्तमान कूप को छोड़ शुद्ध मार्ग कर प्राणियों को सुख से पहुंचाते हैं वैसे बाल्यावस्था में विवाहादि विघ्नों को हटा विद्या प्राप्त करा के अपने सन्तानों को सुख के मार्ग में चलावें ॥ १३ ॥

देवीत्यस्याश्विनावृषी अहोरात्रे देवते स्वराट् ।
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

दे॒वी उ॒षासा॒नक्तेन्द्रं॑ य॒ज्ञे प्र॑य॒त्य॑ह्वेताम् । दैवी॒र्विशः॒ प्राया॑सिष्टा॑ᳪ सुप्री॒ते सुधि॑ते वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज ॥ १४ ॥

देवी इति देवी । उषासानक्ता । उषसानक्तेत्युषसाऽनक्ता । इन्द्रम् । यज्ञे । प्रयतीति प्रऽयति । अह्वेताम् । दैवीः । विशः । प्र । अयासिष्टाम् । सुप्रीते इति सुऽप्रीते । सुधिते इति सुऽधिते । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वीताम् । यज ॥ १४ ॥

पदार्थः—(देवी) देदीप्यमाने (उषासानक्ता) रात्रिदिने (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं यजमानम् (यज्ञे) संगन्तव्ये यज्ञादिव्यवहारे (प्रयति) प्रयतन्ते यस्मिंस्तत्र (अह्वेताम्) आह्वयतः (दैवीः) देवानां न्यायकारिणां विदुषामिमाः (विशः) प्रजाः (प्र) (अयासिष्टाम्) प्राप्नुतः (सुप्रीते) सुष्ठु प्रीतिकराभ्यां ते (सुधिते) सुष्ठु हितकरे (वसुवने) धनविभागे (वसुधेयस्य) कोषस्य (वीताम्) व्याप्नुताम् (यज) ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा सुप्रीते सुधिते देवी उषासानक्ता प्रयति यज्ञ इन्द्रमह्वेतां वसुधेयस्य वसुवने दैवीर्विशः प्रायासिष्टां सर्वं जगद्वीतां व्याप्नुतां तथा यज ॥ १४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथाऽहर्निशं नियमेन वर्त्तित्वा प्राणिनो व्यवहारयतस्तथा यूयं नियमेन वर्त्तित्वा प्रजा आनन्दय सुखयत ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (सुप्रीते) सुन्दर प्रीति के हेतु (सुधिते) अच्छे हितकारी (देवी) प्रकाशमान (उषासानक्ता) रात दिन (प्रयति) प्रयत्न के निमित्त (यज्ञे) सङ्गति के योग्य यज्ञ आदि व्यवहार में (इन्द्रम्) परमैश्वर्य-

युक्त, यजमान को (अह्वताम्) शब्द व्यवहार कराते (वसुधेयस्य) जिस में धन धारण हो उस खज़ाने के (वसुवने) धन विभाग में (देवीः) न्यायकारी विद्वानों की इन (विशः) प्रजाओं को (प्र, अयासिष्टाम्) प्राप्त होते हैं और सब जगत् को (वीताम्) प्राप्त हों वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे दिन रात नियम से वर्त्तकर प्राणियों को शब्दादि व्यवहार कराते हैं वैसे तुम लोग नियम से वर्त्त कर प्रजाओं को आनन्द दे सुखी करो ॥ १४ ॥

देवीद्वत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता ।
भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्धताम् । अयाव्यन्याघा द्वेषाᳬंस्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १५ ॥

देवी इति देवी । जोष्ट्री इति जोष्ट्री । वसुधिती इति वसुऽधिती । देवम् । इन्द्रम् । अवर्धताम् । अयावि । अन्या । अघा । द्वेषांᳬसि । आ । अन्या । वक्षत् । वसु । वार्याणि । यजमानाय । शिक्षिते इति शिक्षिते । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वीताम् । यज ॥ १५ ॥

पदार्थः—(देवी) देदीप्यमाने (जोष्ट्री) सेवमाने (वसुधिती) द्रव्यधारिके (देवम्) प्रकाशस्वरूपम् (इन्द्रम्) सूर्यम्

(अवर्द्धताम्) वर्धयतः (अयावि) पृथक्कुरुतः (अन्या) भिन्ना (अघा) अन्धकाररूपा (द्वेषांसि) द्वेषयुक्तानि जन्तुजातानि (आ) (अन्या) भिन्ना प्रकाशरूपोषाः (वक्षत्) वहेत् (वसु) धनम् (वार्याणि) वारिषूदकेषु साधुनि (यजमानाय) पुरुषार्थिने (शिक्षिते) कृतशिक्षे सत्यौ (वसुवने) पृथिव्यादीनां संविभागे जगति (वसुधेयस्य) अन्तरिक्षस्य मध्ये (वीताम्) व्याप्नुताम् (यज) यज्ञं कुरु ॥ १५ ॥

अन्वयः-हे विद्वन् यथा वसुधिती जोष्ट्री देवी उषासानक्तेन्द्रं देवमवर्द्धतां तयोरन्याऽघा द्वेषांस्यायाव्यन्या च वसु वार्याणि च वक्षत्। यजमानाय वसुधेयस्य वसुवने शिक्षिते वीतां तथा यज ॥ १५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-हे मनुष्या यूयं यथा रात्रिदिने विभक्ते सती मनुष्यादीनां सर्वं व्यवहारं वर्द्धयतस्तयो रात्रिः प्राणिनः स्वापयित्वा द्वेषादीन्निवर्त्तयति। अन्यद्दिनञ्च तान्द्वेषादीन् प्रापयति सर्वान् व्यवहाराम् प्रद्योतयति च तथा योगाभ्यासेन रागादीन्निवार्य शान्त्यादीन् गुणान् प्राप्य सुखानि प्राप्नुत ॥ १५ ॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (वसुधिती) द्रव्य को धारण करने वाले (जोष्ट्री) सब पदार्थों को सेवन करते हुए (देवी) प्रकाशमान दिन रात (देवम्) प्रकाशस्वरूप (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्द्धताम्) बढाते हैं उन दिन रात के बीच (अन्या) एक (अघा) अन्धकाररूप रात्रि (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त जन्तुओं को (आ, अयावि) अच्छे प्रकार पृथक् करती और (अन्या) उन दोनों में से एक प्रात:काल उषा (वसु) धन तथा (वार्याणि) उत्तम जलों को (वक्षत्) प्राप्त करे (यजमानाय) पुरुषार्थी

मनुष्य के लिये (वसुधेयस्य) आकाश के बीच (वसुवने) जिस में पृथिवी आदि का विभाग हो ऐसे जगत् में (शिक्षिते) जिन में मनुष्यों ने शिक्षा की ऐसे हुए दिन रात (वीताम्) व्याप्त होवें (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! तुम लोग जैसे रात दिन विभाग को प्राप्त हुए मनुष्यादि प्राणियों के सब व्यवहार को बढ़ाते हैं। उन में से रात्रि प्राणियों को सुला कर द्वेष आदि को निवृत्त करती और दिन उन द्वेषादि को प्राप्त और सब व्यवहारों को प्रकट करता है वैसे प्रातःकाल में योगाभ्यास से रागादि दोषों को निवृत्त और शान्ति आदि गुणों को प्राप्त हो कर सुखों को प्राप्त होओ ॥१९॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता ।
भुरिगाकृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

दे॒वी ऊ॒र्जाहु॑ती दु॒घे सु॒दु॒घे पय॒सेन्द्र॑मवर्द्धताम् । इष॒मूर्ज॑म॒न्या व॑क्ष॒त्सग्धि॒ꣳ सपी॑तिम॒न्या नवे॑न॒ पूर्वं॒ दय॑माने पु॒राणे॑न॒ नव॒मधा॑ता॒मूर्ज॑मू॒र्जाहु॑ती ऽऊ॒र्जय॑माने॒ वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒ते व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ १९ ॥

दे॒वीऽइति॑ दे॒वी । ऊ॒र्जाहु॑ती॒ इत्यू॒र्जाऽआ॑हुती । दु॒घे । सु॒दु॒घे इति॑ सु॒ऽदु॒घे । पय॑सा । इन्द्र॑म् । अ॒व॒र्द्ध॒ताम् । इष॑म् । ऊर्ज॑म् । अ॒न्या । व॒क्ष॒त् । सग्धि॑म् । सपी॑ति॒मिति॑

सऽपीतिम् । अन्या । नवेन । पूर्वम् । दयमाने इति दयमाने । पुराणेन । नवम् । अधाताम् । ऊर्जम् । ऊर्जाहुती ऽइत्यूर्जाऽआहुती । ऊर्जयमानेऽइत्यूर्जयमाने । वसु । वार्याणि । यजमानाय । शिक्षितेऽइति शिक्षिते । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वीताम् । यज ॥ १६ ॥

पदार्थः—(देवी) दिव्यगुणप्रापिके (ऊर्जाहुती) बलप्राणधारिके (दुघे) सुखानां प्रपूरिके (सुदुघे) सुष्ठुकामवर्द्धिके (पयसा) जलेन (इन्द्रम्) ऐश्वर्यम्(अवर्धताम्) वर्द्धयतः (इषम्) अन्नम् (ऊर्जम्) बलम्(अन्या) रात्रिः (वक्षत) प्रापयति (सग्धिम्) समानं भोजनम् (सपीतिम्) पानेन सह वर्त्तमानम् (अन्या) दिनाख्या (नवेन) नवीनेन (पूर्वम्) (दयमाने)रात्र्यौ (पुराणेन) प्राचीनेन स्वरूपेण (नवम्) नवीनं स्वरूपम् (अधाताम्) दध्याताम् (ऊर्जम्) प्राणनम् (ऊर्जाहुती) बलस्य दात्र्यौ (ऊर्जयमाने) बलं कुर्वाणे (वसु) धनम् (वार्याणि) वरितुमर्हाणि कर्माणि (यजमानाय) सङ्गत्यै प्रवर्त्तमानाय जीवाय (शिक्षिते) विद्वद्भिरुपदिष्टे (वसुवने) धनदानाधिकरणे (वसुधेयस्य) वस्वैश्वर्यं धेयं यत्र तस्यैश्वरस्य (वीताम्) व्याप्नुताम् (यज) संगच्छस्व ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा वसुधेयस्य वसुवने वर्त्तमाने विद्वद्भिर्वसु वार्याणि शिक्षिते रात्रिदिने यजमानाय व्यवहारं वीतां तथोर्जाहुती देवी

पयसा दुघे सुदुघे सत्याविन्द्रमवर्द्धतां तयोरन्या इयमूर्जं वक्षदन्या सपीतिं सग्धिं वक्षद्दयमाने सत्यौ नवेन पूर्वं पुराणेन नवमधातामूर्जयमाने ऊर्जाहुती ऊर्जमधातां तथा यज ॥ १६ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-हे मनुष्या यथा रात्रिदिने वर्त्तमानस्वरूपेण पूर्वापरस्वरूपज्ञापिके आहारविहारप्रापिके वर्त्तेते तथाऽन्नौ हुता आहुतयः सर्वसुखप्रपूरिका जायन्ते । यदि मनुष्याः कालस्य सूक्ष्मामपि वेलां व्यर्थां नयेयुर्वाय्वादिपदार्थान्न शोधयेयुरदृष्टमनुमानेन न विद्युस्तर्हि सुखमपि नाप्नुयुः ॥ १६ ॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य धारण करने योग्य ईश्वर के (वसुवने) धन दान के स्थान जगत् में वर्त्तमान विद्वानों ने (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य (वसु) धन की (इशिक्षिते) जिन में शिक्षा की जावे वे रात दिन (यजमानाय) संगति के लिये प्रवृत्त हुए जीव के लिये व्यवहार को (वीताम्) व्याप्त हों वैसे (ऊर्जाहुती) बल तथा प्राण को धारण करने और (देवी) उत्तम गुणों को प्राप्त करने वाले दिन रात (पयसा) जल से (दुघे) सुखों को पूर्ण और (सुदुघे) सुन्दर कामनाओं के बढ़ाने वाले होते हुए (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्धताम्) बढ़ाते हैं उन में से (अन्या) एक (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) बल को (वक्षत्) पहुंचाती और (अन्या) दिनरूप वेला (सपीतिम्) पीने के सहित (सग्धिम्) ठीक समान भोजन को पहुंचाती है (दयमाने) आदान गमन गुण वाली अगली पिछली दो रात्रि प्रवृत्त हुई (नवेन) नये पदार्थ के साथ (पूर्वम्) प्राचीन और (पुराणेन) पुराणे के साथ (नवम्) नवीन स्वरूप वस्तु को (अधाताम्) धारण करें ऊर्जयमाने बल करते हुए (ऊर्जाहुती) अवस्था घटाने से बल को लेने हारे दिन रात (ऊर्जम्) जीवन को धारण करें वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है ॥ हे मनुष्यो! जैसे रात दिन अपने वर्त्तमान रूप से पूर्वापररूप को जताने तथा आहार विहार को प्राप्त करने

वाले होते हैं वैसे अग्नि में होमी हुई आहुतीं सब सुखों को पूर्ण करने वाली होती हैं। जो मनुष्य काल की सूक्ष्म वेला को भी व्यर्थ गमायें, वायु आदि पदार्थों को शुद्ध न करें, अदृष्ट पदार्थ को अनुमान से न जानें तो सुख को भी न प्राप्त हों॥ १६ ॥

देवा इत्यस्याश्विनावृषी । अश्विनौ देवते ।
भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्द्धताम्। हताघशꣳसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १७ ॥

देवा । दैव्या । होतारा । देवम् । इन्द्रम् । अवर्द्धताम् । हताघशꣳसाविति हतऽअघशꣳसौ । आ । अभार्ष्टाम् । वसु । वार्याणि । यजमानाय । शिक्षितौ । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वीताम् । यज ॥ १७ ॥

पदार्थः—(देवा) सुखप्रदातारौ (दैव्या) देवेषु दिव्येषु गुणेषु भवौ (होतारा) धर्त्तारौ वायुपावकौ (देवम्) दिव्यगुणम् (इन्द्रम्) सूर्यम् (अवर्द्धताम्) वर्द्धयताम् (हताघशंसौ) हता अघशंसाः स्तेना याभ्यान्तौ (आ) (अभार्ष्टाम्) दहताम् (वसु) धनम् (वार्याणि) वर्त्तुमर्हाणि उदकानि (यजमानाय) (शिक्षितौ) विज्ञापितौ (वसुवने) (वसुधेयस्य) (वीताम्) व्याप्नुताम् (यज)॥१७॥

अन्वयः-हे विद्वन्यथा दैव्या होतारा देवा वायुवह्नी इन्द्रं देवमवर्द्धतां हताघशंसौ रोगानाभाष्टां यजमानाय शिक्षितौ सन्तौ वसुधेयस्य वसुवने वसु वार्याणि च वीतां तथा यज ॥ १७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-यदि मनुष्या वायुविद्युतौ सूर्यनिमित्ते विज्ञायोपयुज्य धनानि सञ्चिनुयुस्तर्हि स्तेननाशकाः स्युः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (दैव्या) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध (होतारा) जगत् के धर्त्ता (देवा) सुख देने हारे वायु और अग्नि (देवम्) दिव्यगुणयुक्त (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्द्धताम्) बढावें (हताघशंसौ) चोरों को मारने के हेतु हुए रोगों को (आ, अभाष्टाम्) अच्छे प्रकार नष्ट करें (यजमानाय) कर्म में प्रवृत्त हुए जीव के लिये (शिक्षितौ) जताये हुए (वसुधेयस्य) सब ऐश्वर्य के आधार ईश्वर के (वसुवने) धन दान के स्थान जगत् में (वसु) धन और (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य जलों को (वीताम्) व्याप्त होवें वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सूर्यलोक के निमित्त वायु और विजुली को जान और उपयोग में ला के धनों का संचय करें तो चोरों को मारने वाले होवें ॥ १ ॥

देवीरित्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता ।
अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन् । अस्पृक्षद्भारती दिवꣳ रुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१८॥

देवीः । तिस्रः । तिस्रः । देवीः । पतिम् । इन्द्रम् । अवर्धयन् । अस्पृक्षत् । भारती । दिवम् । रुद्रैः । यज्ञम् । सरस्वती । इडा । वसुमतीति वसुऽमती । गृहान् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥ १८ ॥

पदार्थः–(देवीः) देव्यः(तिस्रः)त्रित्वसंख्याकाः(तिस्रः) पुनरुक्तमतिशयबोधनार्थम् (देवीः) दिव्याः क्रियाः(पतिम्) पालकम् (इन्द्रम्)सूर्यमिव जीवम् (अवर्धयन्) वर्धयन्ति (अस्पृक्षत्) स्पृहेत (भारती) धारिका (दिवम्) प्रकाशम् (रुद्रैः) प्राणैः (यज्ञम्) सङ्गतन्तव्यं व्यवहारम् (सरस्वती) विज्ञानयुक्ता वाक् (इडा) प्रशंसनीया वाणी (वसुमती) बहूनि वसूनि द्रव्याणि विद्यन्ते यस्यां सा (गृहान्) गृहस्थान् गृहाणि वा (वसुवने) (वसुधेयस्य) (व्यन्तु) (यज) ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् या रुद्रैर्भारती दिवं सरस्वती यज्ञं वसुमतीडा गृहान्धरन्त्यो देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रञ्चावर्द्धयन् वसुधेयस्य वसुवने गृहान् व्यन्तु तास्त्वं यज भवानस्पृक्षत् ॥ १८ ॥

भावार्थः— यथा जलाग्निवायुगतयो दिव्याः क्रियाः सूर्यप्रकाशं च वर्द्धयन्ति तथा ये मनुष्याः सकलविद्याधारिकामखिलक्रियाहेतुं सर्वदोषगुणविज्ञापिकां त्रिविधां वाचं विजानन्ति तेऽस्मिन्सर्वद्रव्याकरे संसारे श्रियमाप्नुवन्ति ॥ १८ ॥

पदार्थः— हे विद्वन् जो (रुद्रैः) प्राणों से (भारती) धारण करने हारी (दिवम्) प्रकाश को (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी (यज्ञम्) सङ्गति के योग्य व्यवहार को (वसुमती) बहुत द्रव्यों वाली (इडा) प्रशंसा के योग्य

वाणी (गृहान्) घरों वा गृहस्थों को धारण करती हुई (देवीः, तिस्रः) (तिसृः, देवीः) तीन दिव्य क्रियां " यहां पुनरुक्ति आवश्यकता जताने के लिये है " (पतिम्) पालन करने हारे (इन्द्रम्) सूर्य के तुल्य तेजस्वी जीव को (अवर्धयन्) बढ़ाती हैं (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन दान में सुरों को (व्यन्तु) प्राप्त हों उनको आप (यज) प्राप्त हूजिये और आप (अरुन्तत) अभिलाषा कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थः— जैसे जल अग्नि और वायु की गति उत्तम क्रियाओं और सूर्य के प्रकाश को बढ़ाती हैं वैसे जो मनुष्य सब विद्याओं का धारण करने सब क्रिया का हेतु और सब दोष गुणों को जताने वाली तीन प्रकार की वाणी को जानते हैं वे इस सब द्रव्यों के आधार संसार में लक्ष्मी को प्राप्त होजाते हैं ॥ १८ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता ।
कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

देव इन्द्रो नराश ँसस्त्रिवरूथस्त्रिवन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत् ॥ शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिस्तोत्रमश्विनाऽध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १९ ॥

देवः । इन्द्रः । नराश ँसः । त्रिवरूथ इति त्रिऽवरूथः । त्रिबन्धुर इति त्रिऽबन्धुरः । देवम् । इन्द्रम् । अवर्धयत् । शतेन । शितिपृष्ठानामिति शितिऽपृष्ठानाम् । आहित इत्याहितः । सहस्रेण । प्र । वर्त्तते । मित्रावरुणा । इत् । अस्य । होत्रम् । अर्हतः । बृहस्पतिः । स्तोत्रम् । अश्विना ।

अध्वर्यवम् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वेतु । यज ॥ १९ ॥

पदार्थः-(देवः) जीवः (इन्द्रः) ऐश्वर्यमिच्छुकः (नराशंसः) यो नराञ्छंसति स्तौति सः (त्रिवरूथः) त्रीणि त्रिविधसुखप्रदानि वरूथानि गृहाणि यस्य सः (त्रिवन्धुरः) त्रयो बन्धुरा बन्धनानि यस्य सः (देवम्) देदीप्यमानम् (इन्द्रम्) विद्युतम् (अवर्धयत्) वर्धयेत् (शतेन) एतत्सङ्ख्याकेन कर्मणा (शितिपृष्ठानाम्) शितयस्तीक्ष्णा गतयः पृष्ठे येषान्तेषाम् (आहितः) समन्ताद्धृतः (सहस्रेण) असङ्ख्येन पुरुषार्थेन (प्र,वर्त्तते) (मित्रावरुणा) प्राणोदानौ (इत्) एव (अस्य) जीवस्य (होत्रम्) अदनम् (अर्हतः) (बृहस्पतिः) बृहतां पालको विद्युद्रूपोऽग्निः (स्तोत्रम्) स्तुवन्ति येन तत् (अश्विना) सूर्याचन्द्रमसौ (अध्वर्यवम्) य आत्मनोऽध्वरमिच्छति तम् । अत्र वाच्छन्दसीत्यम्यपि गुणावादेशौ (वसुवने) यो वसूनि वनुते याचते तस्मै (वसुधेयस्य) संसारस्य (वेतु) (यज) ॥ १९ ॥

अन्वयः-हे विद्वन् ! यथा त्रिवन्धुरास्त्रिवरूथो नराशंसो देव इन्द्रः शतेनेन्द्रं देवमवर्धयद्यः शितिपृष्ठानां मध्य आहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणास्येद्धोत्रमर्हतो वसुधेयस्य बृहस्पतिः स्तोत्रमश्विनाऽध्वर्यवं वसुवने वेतु तथा यज ॥ १९ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-ये मनुष्यास्त्रिविधसुखकराणि त्रैकाल्यप्रबन्धानि गृहाणि रचयित्वाऽसङ्ख्यं सुखमवाप्य पथ्यं भोजनं याचमानाय यथायोग्य वस्तु ददति ते कीर्त्तिं लभन्ते ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (त्रिवन्धुरः) ऋषि आदि रूप तीन बन्धनों वाला (त्रिवरूथः) तीन सुखदायक घरों का स्वामी (नराशंसः) मनुष्यों की स्तुति करने और (इन्द्रः) ऐश्वर्य को चाहने वाला (देवः) जीव (शतेन) सैकड़ों प्रकार के कर्म से (देवम्) प्रकाशमान (इन्द्रम्) विद्युत्‌रूप अग्नि को (अवर्धयत्) बढ़ावे। जो (शितिपृष्ठानाम्) जिन की पीठ पर बैठने से शीघ्र गमन होते हैं उन पशुओं के बीच (आहितः) अच्छे प्रकार स्थिर हुआ (सहस्रेण) असङ्ख्य प्रकार के पुरुषार्थ से (प्र, वर्त्तते) प्रवृत्त होता है (मित्रावरुणा) प्राण और उदान (अस्य) इस (इत्) ही (होत्रम्) भोजन की (अर्हतः) योग्यता रखने वाले जीव के सम्बन्धी (वसुधेयस्य) संसार के (बृहस्पतिः) वड़े २ पदार्थों का रक्षक विजुली रूप अग्नि (स्तोत्रम्) स्तुति के साधन (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा और (अध्वर्यवम्) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले जन को (वसुवने) धन मांगने वाले के लिये (वेतु) कमनीय करे वैसे (यज) सङ्ग कीजिये॥ १९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विविध प्रकार के सुख करने वाले तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान् काल का प्रबन्ध जिन में हो सके ऐसे घरों को बना उन में असङ्ख्य सुख पा और पथ्य भोजन करके मांगने वाले के लिये यथायोग्य पदार्थ देते हैं वे कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं॥ १९॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। निचृदतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनर्विद्वांसः किं कुर्वन्तीत्याह॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस वि०॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्। दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृँहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥ २०॥

देवः । देवैः । वनस्पतिः । हिरण्यपर्णऽइति हिरण्यऽपर्णः । मधुशाखऽइति मधुऽशाखः । सुपिप्पलऽइति सुऽपिप्पलः । देवम् । इन्द्रम् । अवर्धयत् । दिवम् । अग्रेण । अस्पृक्षत् । आ । अन्तरिक्षम् । पृथिवीम् । अदृंहीत् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुऽधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वेतु । यज ॥ २० ॥

पदार्थः—(देवः) दिव्यगुणप्रदः (देवैः) देदीप्यमानैः (वनस्पतिः) किरणानां पालकः (हिरण्यपर्णः) हिरण्यानि तेजांसि पर्णानि यस्य सः (मधुशाखः) मधुराः शाखा यस्य (सुपिप्पलः) सुन्दरफलः (देवम्) दिव्यगुणम् (इन्द्रम्) दारिद्र्यविदारकम् (अवर्धयत्) वर्धयति (दिवम्) प्रकाशम् (अग्रेण) पुरस्सरेण (अस्पृक्षत्) स्पृहेत् (आ) समन्तात् (अन्तरिक्षम्) अवकाशम् (पृथिवीम्) भूमिम् (अदृंहीत्) धरेत् (वसुवने) वसु प्रदाय जीवाय (वसुधेयस्य) जगतः (वेतु) (यज) ॥२०॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा देवैः सह वर्त्तमानो हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रमवर्द्धयदग्रेण दिवमस्पृक्षदन्तरिक्षं तत्स्थांल्लोकान् पृथिवीञ्चादृंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु तथा यज ॥ २० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा वनस्पतयो मेघं वर्द्धयन्ति सूर्यश्च लोकान्धरति तथा विद्वांसो विद्यायाचिनं विद्यार्थिनं वर्धयन्ति ॥ २० ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (देवैः) दिव्य प्रकाशमान गुणों के साथ वर्त्तमान (हिरण्यपर्णः) सुवर्ण के तुल्य चिलकते हुए पत्तों वाला (मधुशाखः) मीठी डालियों से युक्त (सुपिप्पलः) सुन्दर फलों वाला (देवः) उत्तम गुणों का दाता (वनस्पतिः) सूर्य की किरणों में जल पहुंचा कर उष्णता की शान्ति से किरणों का रक्षक वनस्पति (देवम्) उत्तम गुणों वाले (इन्द्रम्) दरिद्रता के नाशक मेघ को (अवर्धयत्) बढ़ावे (अग्रेण) अग्रगामी होने से (दिवम्) प्रकाश को (अस्पृक्षत्) चाहे (अन्तरिक्षम्) अवकाश, उस में स्थित लोकों और (पृथिवीम्) भूमि को (आ, अदृंहीत्) अच्छे प्रकार धारण करे (वसुधेयस्य) संसार के (वसुवने) धन दाता जीव के लिये (वेतु) उत्पन्न होवे वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये॥ २०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वनस्पति ऊपर जल चढ़ा कर मेघ को बढ़ाते और सूर्य अन्य लोकों को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग विद्या को चाहने वाले विद्यार्थी को बढ़ाते हैं॥ २०॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता।

त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत्। स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥ २१॥

देवम्। बर्हिः। वारितीनाम्। देवम्। इन्द्रम्। अवर्धयत्। स्वासस्थमिति सुऽआसस्थम्। इन्द्रेण। आसन्नमि-

त्याऽसन्नम् । अन्या । बर्हीᳬषि । अभि । अभूत् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वेतु । यज ॥ २१ ॥

पदार्थः—(देवम्) दिव्यम् (बर्हिः) अन्तरिक्षम् (वारितीनाम्) वरणीयानां पदार्थानां मध्ये (देवम्) दिव्यगुणम् (इन्द्रम्) विद्युतम् (अवर्धयत्) वर्धयति (स्वासस्थम् सुष्ठ्वासते यस्मिँस्तम् (इन्द्रेण) ईश्वरेण (आसन्नम्) समीपस्थम् (अन्या) अन्यानि (बर्हींषि) अन्तरिक्षावयवाः (अभि) अभितः (अभूत्) भवेत् (वसुवने) पदार्थविद्यायाचिने (वसुधेयस्य) सर्वद्रव्याधारस्य जगतो मध्ये (वेतु) (यज) ॥ २१ ॥

अन्वयः-हे विद्वन् ! यथा देवं वारितीनां मध्येवर्त्तमानं स्वासस्थमिन्द्रेण सहासन्नमिन्द्रं बर्हिर्देवमवर्धयदन्या बर्हींष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु तथा यज ॥ २१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-हे विद्वांसो मनुष्या यूयं यथाऽभिव्याप्तमाकाशं सर्वान् पदार्थानभिव्याप्नोति सर्वेषां समीपमस्ति तथेश्वरस्य समीपवर्त्तिनं जीवं विज्ञायाऽस्मिन्संसारे सुपात्राय याचमानाय दानं ददत ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन ! जैसे (देवम्) दिव्य (वारितीनाम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों के बीच वर्त्तमान (स्वासस्थम्) सुन्दरप्रकार स्थिति के आधार (इन्द्रेण) परमेश्वर के साथ (आसन्नम्) निकटवर्त्ती (बर्हिः) आकाश (देवम्) उत्तम गुण वाले (इन्द्रम्) बिजुली को (अवर्धयत्) बढ़ाता है (अन्या) और (बर्हींषि) अन्तरिक्ष के अवयवों को (अभि, अभूत्) सब ओर से व्याप्त

होवे (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार जगत् के बीच (वसुवने) पदार्थ विद्या को चाहने वाले जन के लिये (वेतु) प्राप्त होवे आप (यज) प्राप्त हूजिये॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०— हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सब ओर से व्याप्त आकाश सब पदार्थों को व्याप्त होता और सब के समीप है वैसे ईश्वर के निकटवर्ती जीव को जान के इस संसार में मांगने वाले सुपात्र के लिये धनादि का दान देवो ॥ २१ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । अग्निर्देवता ।

निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २२ ॥

देवः । अग्निः । स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत् । देवम् । इन्द्रम् । अवर्धयत् । स्विष्टमिति सुऽइष्टम् । कुर्वन् । स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत् । स्विष्टमिति सुऽइष्टम् । अद्य । करोतु । नः । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति । वसुऽधेयस्य । वेतु । यज ॥ २२ ॥

पदार्थः—(देवः) दिव्यगुणः (अग्निः) पावकः(स्विष्टकृत्)यः शोभनमिष्टं करोति सः (देवम्) दिव्यगुणम्(इन्द्रम्) जीवम् (अवर्धयत्) वर्धयेत् (स्विष्टम्) शोभनञ्च तदिष्टम्(कुर्वन्)

सम्पादयन्(स्विष्टकृत्)उत्तमेष्टकारी (स्विष्टम्) अतिशयेनाभीप्सितम् (अद्य) (करोतु) (नः) अस्मभ्यम् (वसुवने)(वसुधेयस्य)(वेतु) यज ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा स्विष्टकृद्देवोऽग्निरिन्द्रं देवमवर्धयद्यथा च स्विष्टं कुर्वन् स्विष्टकृत्सन्नग्निः स्विष्टं करोति तथाऽद्य नः सुखं करोतु धनं वेतु वसुधेयस्य वसुवने यज च ॥ २२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-यथा गुणकर्मस्वभावैर्विज्ञातः कर्मसु संप्रयुक्तोऽग्निरभीष्टानि कार्याणि साध्नोति तथा विद्वद्भिर्वर्त्तितव्यम् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (स्विष्टकृत्) सुन्दर प्रकार इष्ट का साधक (देवः) उत्तम गुणों वाला (अग्निः) अग्नि (इन्द्रम्, देवम्) उत्तम गुणों वाले जीव को (अवर्धयत्) बढ़ावे तथा जैसे (स्विष्टम्) सुन्दर इष्ट को (कुर्वन्) सिद्ध करता और (स्विष्टकृत्) उत्तम इष्टकारी हुआ अग्नि (स्विष्टम्) अत्यन्त चाहे हुए कार्य को करता है वैसे (अद्य) आज (नः) हमारे लिये सुख को (करोतु) कीजिये (वेतु)धन को प्राप्त हूजिये और (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार जगत् के बीच (वसुवने) पदार्थविद्या को चाहते हुए मनुष्य के लिये (यज) दान कीजिये ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे गुण कर्म स्वभावों करके जाना गया कर्मों में नियुक्त किया अग्नि अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करता है वैसे विद्वानों को वर्त्तना चाहिये ॥ २२ ॥

अग्निमित्यस्याश्विनावृषी । अग्निर्देवता ।
कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न् पुरो॒डाशं॑ ब॒ध्नन्नि॒न्द्राय॒ च्छाग॑म् ।

सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय-च्छागेन। अघत्तं मेदस्तःप्रति पचताग्रभीदवी-वृधत्पुरोडाशेन त्वामद्य ऋषे ॥ २३ ॥

अग्निम्। अद्य। होतारम्। अवृणीत। अयम्। यजमानः। पचन्। पक्तीः। पचन्। पुरोडाशम्। ब-ध्नन्। इन्द्राय। छागम्। सूपस्था इति सुऽउपस्थाः। अद्य। देवः। वनस्पतिः। अभवत्। इन्द्राय। छा-गेन। अघत्। तम्। मेदस्तः। प्रति। पचता। अग्र-भीत्। अवीवृधत्। पुरोडाशेन। त्वाम्। अद्य। ऋषे ॥ २३ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) विद्वांसम् (अद्य) इदानीम् (होता-रम्) (अवृणीत) वृणुयात् (अयम्) (यजमानः) (पचन्) (पक्तीः) पाकान् (पचन्) (पुरोडाशम्) पाकविशेषम् (बध्नन्) बद्धं कुर्वन् (इन्द्राय) ऐश्वर्या-य (छागम्) छ्यति छिनत्ति रोगान् येन तम् (सूपस्थाः) ये सूप तिष्ठन्ति ते (अद्य) (देवः) (वनस्पतिः) व-नस्य किरणसमूहस्य पालकः सूर्यः (अभवत्) भवेत् (इ-न्द्राय) ऐश्वर्याय (छागेन) छेदनेन (अद्यत्) अत्ति (तम्) (मेदस्तः) मेदसः स्निग्धात् (प्रति) (पचता) (अग्रभीत्) गृह्णाति (अवीवृधत्) (पुरोडाशेन) (त्वाम्) (अद्य) (ऋषे) मन्त्रार्थवित् ॥ २३ ॥

अन्वयः— हे ऋषे विद्वन् यथाऽयं यजमानोऽद्येन्द्राय पक्तीः पचन् पुरोडाशं पचञ्छागं बध्नन्नग्निं होतारमवृणीत। यथा

वनस्पतिर्देव इन्द्राय छागेनाद्याभवन्मेदस्तस्तमद्यत्पचता सूपस्थाः स्यु स्तथा प्रत्यग्रभीत्पुरोडाशेनावीवृधत्तथा त्वामद्याऽहं वर्द्धयेयं एवं च तथा वर्त्तस्व॥२३॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा पाककर्त्तारश्शाकादीनि छित्वा भित्त्वाऽऽन्नव्यञ्जनानि पचन्ति तथा सूर्यः सर्वान् पचति। यथा सूर्यो वृष्टिद्वारा सर्वान् वर्द्धयति तथा सेवादिद्वारा मन्त्रार्थद्रष्टारो विद्वांसः सर्वैर्वर्द्धनीयाः ॥२३॥

पदार्थः—हे (ऋषे) मन्त्रार्थ जानने हारे विद्वन् जैसे (अयम्) यह (यजमानः) यज्ञ करने हारा पुरुष (अद्य) आज (इन्द्राय) ऐश्वर्य प्राप्ति के अर्थ (पक्तीः) पाकों को (पचन्) पकाता (पुरोडाशम्) होम के लिये पाक विशेष को (पचन्) पकाता और (छागम्) रोगों को नष्ट करने हारी बकरी को (बध्नन्) बांधता हुआ (होतारम्) यज्ञ करने में कुशल (अग्निम्) तेजस्वी विद्वान् को (अवृणीत) स्वीकार करे। जैसे (वनस्पतिः) किरण समूह का रक्षक (देवः) प्रकाशयुक्त सूर्यमण्डल (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (छागेन) छेदन करने के साथ (अद्य) इस समय (अभवत्) प्रसिद्ध होवे (मेदस्तः) चिकनाई वा गीलेपन से (तम्) उस हुत पदार्थ को (अद्यत्) खाता (पचता) सब पदार्थों को पकाते हुए सूर्य से (सूपस्थाः) सुन्दर उपस्थान करने वाले हों वैसे (प्रति, अग्रभीत्) ग्रहण करता है (पुराडोशेन) होम के लिये पकाये पदार्थ विशेष से (अवीवृधत्) अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे (त्वाम्) आप को (अद्य) मैं बढ़ाऊं और आप भी वैसे ही वर्त्ताव कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे रसोइये लोग साग आदि को काट कूट के अन्न और कढ़ी आदि पकाते हैं वैसे सूर्य सब पदार्थों को पकाता है जैसे सूर्य वर्षा के द्वारा सब पदार्थों को बढ़ाता है वैसे सब मनुष्यों को चाहिये कि सेवादि के द्वारा मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वानों को बढ़ावें ॥ २३ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः । अग्निर्देवता ।
स्वराड्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्षत्स॒मिधा॑नं म॒हद्यशः॒ सुस॑मिद्धं॒ वरे॑ण्यम॒ग्निमिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म् । गा॒य॒त्रीं छन्द॑ इन्द्रि॒यं त्र्यविं॒ गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥२४॥

होता॑ । य॒क्ष॒त् । स॒मिधा॑नमिति॑ स॒म्ऽइ॒धा॑नम् । म॒हत् । यशः॑ । सुस॑मिद्धमिति॒ सुऽस॑मिद्धम् । वरे॑ण्यम् । अ॒ग्निम् । इन्द्र॑म् । व॒यो॒धस॒मिति॑ वयः॒ऽधस॑म् । गा॒य॒त्रीम् । छन्दः॑ । इ॒न्द्रि॒यम् । त्र्य॒वि॒मिति॑ त्रि॒ऽअ॒विम् । गाम् । वयः॑ । दध॑त् । वेतु॑ । आज्य॑स्य । होतः॑ । यज॑ ॥ २४ ॥

पदार्थः–(होता) दाता (यक्षत्) सङ्गच्छेत (समिधानम्) सम्यक् प्रकाशमानम् (महत्) (यशः) कीर्त्तिम् (सुसमिद्धम्) सुष्ठु प्रदीप्यमानम् (वरेण्यम्) वर्त्तुमर्हम् (अग्निम्) पावकम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यकारकम् (वयोधसम्) कमनीयायुर्धारकम् (गायत्रीम्) सदर्थान् प्रकाशयन्तीम् (छन्दः) स्वातन्त्र्यम् (इन्द्रियम्) धनं श्रोत्रादि वा (त्र्यविम्) या त्रिधाऽवति ताम् (गाम्) पृथिवीम् (वयः) जीवनम् (दधत्) धरन् (वेतु) (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ २४ ॥

अन्वयः— हे होतस्त्वं यथा होताग्निमिव समिधानं सुसमिद्धं वरेण्यं महद्यशो वयोधसमिन्द्रं गायत्रीं छन्दः इन्द्रियं त्र्यविं गां वयश्च दधत्सन्यक्षदाज्यस्य वेतु तथा यज ॥ २४ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०— ये सद्विद्यादिपदार्थानां दानं कुर्वन्ति तेऽतुलां कीर्त्तिं प्राप्य सुखयन्ति ॥ २४ ॥

पदार्थः— हे (होतः) विद्यादि का ग्रहण करने हारे जन ! आप जैसे (होता) दाता पुरुष (अग्निम्) अग्नि के तुल्य (समिधानम्) सम्यक् प्रकाशमान (सुसमिद्धम्) सुन्दर शोभायमान (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य (महत्) बड़ी (यशः) कीर्त्ति (वयोधसम्) अभीष्ट अवस्था के धारक (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य करने वाले योग (गायत्रीम्) सत्य अर्थों का प्रकाश करने वाली गायत्री (छन्दः) स्वतन्त्रता (इन्द्रियम्) धन वा श्रोत्रादि इन्द्रियों (त्र्यविम्) तीन प्रकार से रक्षा करने वाली (गाम्) पृथिवी और (वयः) जीवन को (दधत्) धारण करता हुआ (यक्षत्) सङ्ग करे और (आज्यस्य) विज्ञान के रस को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे आप भी (यज) समागम कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष सत् विद्या आदि पदार्थों का दान करते हैं वे अतुल कीर्त्ति को पाकर आप सुखी होते और दूसरों को सुख करते हैं ॥ २४ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् । उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२५॥

होतां । यक्षत् । तनूनपातमिति तनूऽनपातम् । उद्भिदमित्युत्ऽभिदम् । यम् । गर्भम् । अदितिः । दधे । शुचिम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । उष्णिहम् । छन्दः । इन्द्रियम् । दित्यवाहमिति दित्यऽवाहम् । गाम् । वयः । दधत् । वेतु । आज्यस्य । होतः । यज ॥२५॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) (तनूनपातम्) शरीरादिरक्षकम् (उद्भिदम्) य उद्भिद्य जायते तम् (यम्) (गर्भम्) गर्भइव स्थितम् (अदितिः) माता (दधे) दधाति (शुचिम्) पवित्रम् (इन्द्रम्) सूर्यम् (वयोधसम्) वयोवर्धकम् (उष्णिहम्) उष्णिहा प्रतिपादितम् (छन्दः) बलकरम् (इन्द्रियम्) इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गम् (दित्यवाहम्) यो दित्यान् खण्डितान् वहति गमयति तम् (गाम्) वाचम् (वयः) कमनीयान् (दधत्) (वेतु) (आज्यस्य) (होतः) (यज)॥२५॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता तनूनपातमुद्भिदमदितिर्गर्भमिव यं दधे वयोधसं शुचिमिन्द्रं यक्षदाज्यस्योष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यावाहं गां वयश्च दधत्सन् वेतु तथैतान् यज ॥ २५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या भवन्तो तथा माता गर्भं जातं बालं च रक्षति तथा शरीरमिन्द्रयाणि च रक्षयित्वा विद्यायुषी वर्धयन्तु ॥२५॥

पदार्थः— हे (होतः) ज्ञान के यज्ञ के कर्त्तः। जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहण करने वाला जन (तनूनपातम्) शरीरादि के रक्षक (उद्भिदम्) शरीर

का भेदन कर निकलने वाले (गर्भम्) गर्भ को जैसे (अदितिः) माता धारण करती है वैसे (यम्) जिस को (दधे) धारण करता है (वयोधसम्) अवस्था के वर्धक (शुचिम्) पवित्र (इन्द्रम्) सूर्य्य को (यक्षत्) हवन का पदार्थ पहुंचाता है (आज्यस्य) विज्ञान सम्बन्धी (उष्णिहम्) उष्णिक् छन्द से कहे हुए (छन्दः) बलकारी (इन्द्रियम्) जीव के श्रोत्रादि चिन्हों और (दित्यवाहम्) खण्डितों को पहुंचाने वाले (गाम्) वाणी और (वयः) सुन्दर २ पक्षियों की (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त होवे वैसे इस सब को आप (यज) सङ्गत कीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०— हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे माता गर्भ और उत्पन्न हुए बालक की रक्षा करती है वैसे शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करके विद्या और आयुर्दा को बढ़ाओ ॥ २५ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृच्छकरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्ष॒दी॒डेन्य॒मीडि॒तं वृ॑त्र॒हन्त॑म॒मिडा॑भि॒रीड्य॒ꣳ सहः॒ सोम॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म् । अ॒नु॒ष्टुभं॒ छन्द॑ इन्द्रि॒यं प॑ञ्चा॒विं गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ २६ ॥

होता॑ । यक्ष॑त् । ई॒डेन्य॑म् । ई॒डि॒तम् । वृ॒त्र॒हन्त॑म॒मिति॑ वृत्र॒हन्ऽत॑मम् । इडा॑भिः । ईड्य॑म् । सहः॑ । सोम॑म् । इन्द्र॑म् । व॒यो॒धस॒मिति॑ वयः॒ऽधस॑म् । अ॒नु॒ष्टुभ॑म् ।

अनुस्तुभमित्यनुऽस्तुभम् । छन्दः । इन्द्रियम् । पञ्चाविमिति पञ्चाऽअविम् । गाम् । वयः । दधत् । वेतु । आज्यस्य । होता । यज ॥ २६ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) सङ्गच्छेत (ईडेन्यम्) स्तोतुमर्हम् (ईडितम्) प्रशस्तम् (वृत्रहन्तमम्) अतिशयेन वृत्रस्य मेघस्य हन्तारं सूर्यमिव (इडाभिः) सुशिक्षिताभिर्वाग्भिः (ईड्यम्) प्रशंसितुमर्हम् (सहः) बलम् (सोमम्) सोमाद्योषधिगणम् (इन्द्रम्) जीवम् (वयोधसम्) कमनीयानां प्राणानां धारकम् (अनुष्टुभम्) अनुस्तम्भकम् (छन्दः) स्वातन्त्र्यम् (इंद्रियम्) श्रोत्रादि (पञ्चाविम्) या पञ्च प्राणान् रक्षति ताम् (गाम्) पृथिवीम् (वयः) कमनीयं वस्तु (दधत्) धरन्सन् (वेतु) (आज्यस्य) विज्ञातुमर्हस्य (होतः) (यज) ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथा होता वृत्रहन्तममिवेडाभिरीडेन्यमीडितं सह ईड्यं सोमं वयोधसमिन्द्रं यक्षदिन्द्रियमनुष्टुभं छन्दः पञ्चाविं गां वयश्चाऽऽज्यस्य मध्ये दधद्वेतु तथैतान् यज ॥ २६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या न्यायेन प्रशस्तगुणेन सूर्येणोपमिताः प्रशस्ता भूत्वा विज्ञेयानि वस्तूनि विदित्वा स्तुतिर्बलं जीवनं धनं जितेन्द्रियतां राज्यं च धरन्ति ते प्रशंसार्हा भवन्ति ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन! जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (वृत्रहन्तमम्) मेघ को अत्यन्त काटने वाले सूर्य को जैसे वैसे (इडाभिः) अच्छी शिक्षित वाणियों से (ईडेन्यम्) स्तुति करने योग्य (ईडितम्) प्रशंसित (सहः) बल (ईड्यम्) प्रशंसा के योग्य (सोमम्) सोम आदि

ओषधिगण और (वयोधसम्) मनोहर प्राणों के धारक ! (इन्द्रम्) जीवात्मा को (यक्षत्) सङ्गत करे और (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि (अनुष्टुभम्) अनुकूल थांभने वाली (छन्दः) स्वतन्त्रता से (पञ्चाविम्) पांच प्राणों की रक्षा करने वाली (गाम्) पृथिवी और (आज्यस्य) जानने योग्य जगत् के बीच (वयः) अभाष्ट वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त होवे वैसे आप इन सब को (यज) सङ्गत कीजिये ॥ २६ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य न्याय के साथ प्रशंसित गुण वाले सूर्य के तुल्य प्रशंसित हो के विज्ञान के योग्य वस्तुओं को जान के स्तुति, बल, जीवन, धन, जितेन्द्रियपन और राज्य का धारण करते हैं वे प्रशंसा के योग्य होते हैं॥२६॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् । बृहतीं छन्दऽइन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २७ ॥

होता । यक्षत् । सुबर्हिषमिति सुऽबर्हिषम् । पूषण्वन्तमिति पूषण्ऽवन्तम् । अमर्त्यम् । सीदन्तम् । बर्हिषि । प्रिये । अमृता । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । बृहतीम् । छन्दः । इन्द्रियम् । त्रिवत्समिति त्रिऽवत्सम् । गाम् । वयः । दधत् । वेतु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ २७ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) (सुबर्हिषम्) शोभनं बर्हिरन्तरिक्षमुदकं वा यस्य तम् (पूषण्वन्तम्) बहुपुष्टियुक्तम् (अमर्त्यम्) मृत्युधर्मरहितम् (सीदन्तम्) तिष्ठन्तम् (बर्हिषि) आकाशमिव व्याप्ते (प्रिये) कमनीये परमात्मस्वरूपे (अमृता) नाशधर्मरहिते । अत्र विभक्तेराकारादेशः (इन्द्रम्) स्वकीयं जीवस्वरूपम् (वयोधसम्) त्रयः कर्मोपासनाज्ञानानि वत्सा इव यस्य तम् (गाम्) प्राप्तव्यं बोधम् (वयः) कमनीयं सुखम् (दधत्) (वेतु) प्राप्नोतु (आज्यस्य) (होतः) (यज)॥ २७ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा स होताऽमृता बर्हिषि प्रिये सीदन्तममर्त्यं पूषण्वन्तं सुबर्हिषं वयोधसमिन्द्रं यक्षत् आज्यस्य बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयश्च दधत्सन् कल्याणं वेतु तथैतानि यज ॥ २७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या ओषिंयं प्रज्ञानिष्ठं योगिनं सेवन्ते ते सर्वाण्यभीष्टानि सुखानि लभन्ते ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने वाले पुरुष ! तू जैसे वह (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (अमृता) नाशरहित (बर्हिषि) आकाश के तुल्य व्याप्त (प्रिये) चाहने योग्य परमेश्वर के स्वरूप में (सीदन्तम्) स्थिर हुए (अमर्त्यम्) शुद्ध स्वरूप से मृत्युरहित (पूषण्वन्तम्) बहुत पोष्टा (सुबर्हिषम्) सुन्दर अवकाश वा जलों वाला (वयोधसम्) व्याप्ति को धारण करने हारे (इन्द्रम्) अपने जीवस्वरूप को (यक्षत्) सङ्ग करे वह (आज्यस्य) जानने योग्य विज्ञान का सम्बन्धी (बृहतीम्) बृहती (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्)

श्रोत्र आदि इन्द्रिय (त्रिवत्सम्) कर्म, उपासना, ज्ञान, जिस को पुत्रवत् हैं उस वेद सम्बन्धी (गाम्) प्राप्त होने योग्य बोध तथा (वयः) मनोहर सुख को (दधत्) धारण करता हुआ कल्याण को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे इन्द्र को (यज) सङ्गत करे ॥ २७ ॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य वेदपाठी ब्रह्मनिष्ठ योगी पुरुष का सेवन करते हैं वे सब अभीष्ट सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
स्वराट्पङ्क्ती छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् । पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २८ ॥

होता । यक्षत् । व्यचस्वतीः । सुप्रायणाः । सुप्रायनाऽ इति सुऽप्रायनाः । ऋतावृधः । ऋतवृध इति ऋतऽवृधः । द्वारः । देवीः । हिरण्ययीः । ब्रह्माणम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । पङ्क्तिम् । छन्दः । इह । इन्द्रियम् । तुर्यवाहमिति तुर्यऽवाहम् । गाम् । वयः । दधत् । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ २८ ॥

पदार्थः-(होता) (यक्षत्) (व्यचस्वतीः) गमनाऽवकाशयुक्ताः (सुप्रायणाः) सुष्ठु प्रायणं प्रकर्षेण गमनं यासु ताः (ऋतावृधः) या ऋतं यथायोग्यं सत्यं वर्द्धयन्ति ताः (द्वारः) द्वाराणि (देवीः) दिव्यगुणाः (हिरण्ययीः) सुवर्णादिभिरनुलिप्ताः (ब्रह्माणम्) चतुर्वेदविदम् (इन्द्रम्) विद्यैश्वर्यम् (वयोधसम्) कमनीयानां विद्याबोधादीनां धातारम् (पङ्क्तिम्) (छन्दः) (इह) अस्मिन्संसारे (इन्द्रियम्)धनम् (तुर्यवाहम्) यस्तुर्यं चतुर्गुणं भारं वहति तम् (गाम्) (वयः) गमनम् (दधत्) (व्यन्तु) प्राप्नुवन्तु (आज्यस्य) प्राप्तव्यस्य घृतादिसम्बन्धपदार्थस्य (होतः) (यज) ॥ २८ ॥

अन्वयः-हे होतस्त्वं यथेह होता व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो हिरण्ययीर्देवीर्द्वारो वयोधसं ब्रह्माणमिन्द्रं पङ्क्तिं छन्द इन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयश्च दधदाज्यस्यैतानि यक्षत् यथा च जना व्यन्तु तथैतानि यज ॥ २८ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—मनुष्या अत्युत्तमानि सुन्दरद्वाराणि सुवर्णादियुक्तानि गृहाणि रचयित्वा तत्र निवासं विद्याभ्यासं च कुर्युस्ते ऽरोगा जायन्ते ॥ २८ ॥

पदार्थः-हे (होतः) यज्ञ करने वाले पुरुष ! तू जैसे (इह) इस संसार में (होता) ग्रहीता जन (व्यचस्वतीः) निकलने के अवकाश वाले (सुप्रायणाः) सुन्दर निकलना जिन में हो (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने हारे (हिरण्ययीः) सुनहरी चित्रों वाले (देवीः) उत्तम गुणयुक्त (द्वारः) द्वारों को

(वयोधसम्) कामना के योग्य विद्या तथा बोध आदि के धारण करने हारे (ब्रह्माणम्) चारों वेद के ज्ञाता (इन्द्रम्) विद्यारूप ऐश्वर्य वाले विद्वान् को (पंक्तिम्) पंक्ति (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) धन (तुर्यवाहम्) चौगुणा बोझ लें चलने हारे (गाम्) बैल और (वयः) गमन को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घृतादि के सम्बन्धी इन उक्त पदार्थों को (यक्षत्) संगत करें और जैसे मनुष्य को (व्यन्तु) प्राप्त होवें इन सब को (यज) प्राप्त हो ॥ २८ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य लोग अत्युत्तम सुन्दर द्वारों वाले सुवर्णादि पदार्थों से युक्त घरों को बना के वहां निवास और विद्या का अभ्यास करें वे रोगरहित होते हैं ॥ २८॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अहोरात्रे देवते ।
निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहतीऽउभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् । त्रिष्टुभं छन्दऽइहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

होता । यक्षत् । सुपेशसेति सुऽपेशसा । सुशिल्पेऽइति सुऽशिल्पे । बृहतीऽइति बृहती । उभेऽइत्युभे । नक्तोषासा । नक्तोषसेति नक्तोषसा । न । दर्शतेऽइति दर्शते । विश्वम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽ-

धसम् । त्रिष्टुभम् । त्रिस्तुभमिति त्रिऽस्तुभम् । छन्दः । इह । इन्द्रियम् । पष्ठवाहमिति पष्ठऽवाहम् । गाम् । वयः । दधत् । वीताम् । आज्यस्य । होतः । यज ॥ २९ ॥

पदार्थः—(होता) आदाता (यक्षत्) (सुपेशसा) सुन्दरस्वरूपवन्तौ विद्वांसावध्यापकौ (सुशिल्पे) सुन्दराणि शिल्पानि ययोस्ते (बृहती) महत्यौ (उभे) द्वे (नक्तोषासा) रात्रिदिने (न) इव (दर्शते) द्रष्टव्ये (विश्वम्) सर्वम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (वयोधसम्) कामनाधारकम् (त्रिष्टुभम्) एतच्छन्दोऽर्थम् (छन्दः) बलम् (इह) अस्मिञ्जगति (इन्द्रियम्) (पष्ठवाहम्) यः पष्ठेन पृष्ठेन वहति तम् (गाम्) वृषम् (वयः) (दधत्) (वीताम्) प्राप्नुताम् (आज्यस्य) प्राप्तुं योग्यस्य घृतादिपदार्थस्य सम्बन्धिनम् (होतः) (यज) ॥२९॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथेह बृहत्युभे सुशिल्पे दर्शते नक्तोषासा न सुपेशसा विश्वं वयोधसमिन्द्रं त्रिष्टुभं छन्दो वय इन्द्रियं पष्ठवाहं गां च वीतां यथाऽऽज्यस्यैतानि दधत्सन् होता यक्षत्तथा यज ॥ २९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—ये सकलैश्वर्यकराणि शिल्पकर्माणीह साध्नुवन्ति ते सुखिनो जायन्ते ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे पुरुष ! तू जैसे (इह) इस जगत् में (बृहती) बड़े (उभे) दोनों (सुशिल्पे) सुन्दर शिल्प कार्य जिन में हों वे (दर्शते) देखने योग्य (नक्तोषासा) रात्रि दिन के (न) समान

(सुपेशसा) सुन्दर रूप वाले अध्यापक उपदेशक दो विद्वान् (विश्वम्) सब (वयोधसम्) कामना के आधार (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द का अर्थ (छन्दः) बल (वयः) अवस्था (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि इन्द्रिय और (पष्ठवाहंम्) पीठ पर भार ले चलने वाले (गाम्) बैल को (वीताम्) प्राप्त हों जैसे (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घृतादि पदार्थ के सम्बन्धी इन को (दधत्) धारण करता हुआ (होता) ग्रहण करता पुरुष (यक्षत्) प्राप्त होवे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो संपूर्ण ऐश्वर्य करने हारे शिल्प कार्यों को इस जगत् में सिद्ध करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ २९ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अश्विनौ देवते ।
निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम् । जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

होता । यक्षत् । प्रचेतसेति प्रऽचेतसा । देवानाम् । उत्तममित्युत्ऽतमम् । यशः । होतारा । दैव्या । कवी इति कवी । सयुजेति सऽयुजा । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । जगतीम् । छन्दः । इन्द्रियम् । अनड्वाहम् । गाम् । वयः । दधत् । वीताम् । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३० ॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (प्रचेतसा) प्रकृष्टं चेतो विज्ञानं ययोस्तौ (देवानाम्) विदुषाम् (उत्तमम्) (यशः) कीर्तिम् (होतारा) दातारौ (दैव्या) देवेषु दिव्येषु कर्मसु साधू (कवी) मेधाविनौ (सयुजा) यौ सहैव युङ्क्तस्तौ (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम् (वयोधसम्) कमनीयसुखधारकम् (जगतीम्) (छन्दः) (इन्द्रियम्) धनम् (अनड्वाहम्) शकटवाहकम् (गाम्) वृषभम् (वयः) विज्ञानम् (दधत्) (वीताम्) प्राप्नुताम् (आज्यस्य) विज्ञेयस्य (होतः) (यज) ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा देवानां प्रचेतसा सयुजा दैव्या होतारा कवी अध्यापकाऽध्येतारौ श्रोताश्रावयितारौ वोत्तमं यशो वयोधसमिन्द्रं जगतीं छन्दो वय इन्द्रियमनड्वाहं गां च वीतां यथाऽऽज्यस्य मध्य एतानि दधत् सन् होता यक्षत्तथा यज ॥ ३० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यदि मनुष्याः पुरुषार्थं कुर्युस्तर्हि विद्यां कीर्त्तिं धनं च प्राप्य माननीया भवेयुः ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने हारे पुरुष ! तू जैसे (देवानाम्) विद्वानों के सम्बन्धी (प्रचेतसा) उत्कृष्ट विज्ञान वाले (सयुजा) साथ योग रखने वाले (दैव्या) उत्तम कर्मों में साधु (होतारा) दाता (कवी) बुद्धिमान् पढ़ने पढ़ाने वा सुनने सुनाने हारे (उत्तमम्) उत्तम (यशः) कीर्त्ति (वयोधसम्) अभीष्ट सुख के धारक (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य (जगतीम्, छन्दः) जगती छन्द (वयः) विज्ञान (इन्द्रियम्) धन और (अनड्वाहम्) गाड़ी चलाने हारे (गाम्) बैल को (वीताम्) प्राप्त हों जैसे (आज्यस्य) जानने योग्य पदार्थ के बीच इन उक्त सब का (दधत्) धारण करता हुआ (होता) ग्रहण करता जन (यक्षत्) प्राप्त होवे वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यदि मनुष्य पुरुषार्थ करें तो विद्या कीर्त्ति और धन को प्राप्त हो के माननीय होवें ॥ ३० ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । वाग्यो देवताः ।
भुरिक्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम् । विराजं छन्दं इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

होता । यक्षत् । पेशस्वतीः । तिस्रः । देवीः । हिरण्ययीः । भारतीः । बृहतीः । महीः । पतिम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । विराजमिति विऽराजम् । छन्दः । इह । इन्द्रियम् । धेनुम् । गाम् । न । वयः । दधत् । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (पेशस्वतीः) प्रशस्तसुरूपवतीः (तिस्रः) त्रित्वसंख्याः (देवीः) दात्र्यः (हिरण्ययीः) हिरण्यप्रकाराः (भारतीः) धारिकाः (बृहतीः) (महीः) महत्संयुक्ताः (पतिम्) पालकम् (इन्द्रम्) राजानम् (वयोधसम्) चिरायुर्धारकम् (विराजम्)

विविधानां पदार्थानां प्रकाशकम् (छन्दः) बलकरम् (इह) (इन्द्रियम्) इन्द्रैर्जीवैर्जुष्टं सुखम् (धेनुम्) दुग्धदात्रीम् (गाम्) (न) इव (वयः) कमनीयम् (दधत्) (व्यन्तु) प्राप्नुवन्तु (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे होतर्यथेह यो होता तिस्रो हिरण्ययीः पेशस्वतीर्भारतीर्बृहतीर्महीर्देवीस्त्रिविधा वाचो वयोधसं पतिमिन्द्रं विराजं छन्द वय इन्द्रियं च यक्षत्स धेनुं गां न व्यन्तु तथैतानि दधत्सन्नाज्यस्य फलं यज ॥ ३१ ॥

भावार्थः–अत्रोपमा वाचकलु०—ये मनुष्याः कर्मोपासनाज्ञानविज्ञापिकां वाणीं विजानन्ति ते महतीं कीर्त्तिं प्राप्नुवन्ति यथा धेनुर्वत्सान् तर्पयति तथेह विद्वांसोऽज्ञान् बालकान् तर्पयन्ति ॥ ३१ ॥

पदार्थः–हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन! जैसे (इह) इस जगत् में जो (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता जन (तिस्रः) तीन (हिरण्ययीः) सुवर्ण के तुल्य प्रिय (पेशस्वतीः) सुन्दर रूपों वाली (भारतीः) धारण करने हारी (बृहतीः) बड़ी गम्भीर (महीः) महान् पुरुषों ने ग्रहण की (देवीः) दान शील स्त्रियों, तीन प्रकार की वाणियों, (वयोधसम्) बहुत अवस्था वाले (पतिम्) रक्षक (इन्द्रम्) राजा, (विराजम्) विविध पदार्थों के प्रकाशक (छन्दः) विराट् छन्द, (वयः) कामना के योग्य वस्तु और (इन्द्रियम्) जीवों ने सेवन किये सुख को (यक्षत्) प्राप्त होता है वह (धेनुम्) दूध देने हारी (गाम्) गौ के (न) समान हम को (व्यन्तु) प्राप्त हो वैसे इन सब को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य विज्ञान के फल को (यज) प्राप्त हूजिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य कर्म उपासना और विज्ञान के जानने वाली वाणी को जानते हैं वे बड़ी कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं । जैसे धेनु बछड़ों को तृप्त करती है वैसे विद्वान् लोग मूर्ख बालबुद्धि लोगों को तृप्त करते हैं ॥३१॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
भुरिक् छक्करी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्द्धनं रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् । द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

होता । यक्षत् । सुरेतसमिति सुऽरेतसम् । त्वष्टारम् । पुष्टिवर्धनमिति पुष्टिऽवर्धनम् । रूपाणि । बिभ्रतम् । पृथक् । पुष्टिम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । द्विपदमिति द्विऽपदम् । छन्दः । इन्द्रियम् । उक्षाणम् । गाम् । न । वयः । दधत् । वेतु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (सुरेतसम्) शोभनं रेतो वीर्यं यस्य तम् (त्वष्टारम्) देदीप्यमानम् (पुष्टिवर्धनम्) यः पुष्ट्या वर्धयति तम् (रूपाणि) (बिभ्रतम्) धरन्तम् (पृथक्) (पुष्टिम्) (इन्द्रम्) परमैश्वर्यम्

(वयोधसम्) द्विपदम् द्वौ पादौ यस्मिन् तत् (छन्दः) (इन्द्रियम्) (उक्षाणम्) वीर्यसेचनसमर्थम् (गाम्) युवावस्थास्थं वृषभम् (न) इव (वयः) (दधत्) (वेतु) (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होता सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि पृथक् बिभ्रतं वयोधसं पुष्टिमिन्द्रं द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधत्सन्नाज्यस्य यक्षद्वेतु तथा यज ॥३२॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलु०—हे मनुष्या यथा वृषभा गा गर्भिणीः कृत्वा पशून् वर्धयन्ति तथा गृहस्थाः स्त्रीर्गर्भवतीः कृत्वा प्रजा वर्द्धयेयुः। यदि सन्तानेच्छा स्यात्तर्हि पुष्टिः सम्पादनीया। यथा सूर्यो रूपप्रकाशकोऽस्ति तथा विद्वान् विद्यासुशिक्षे प्रकाशयति ॥ ३२ ॥

पदार्थः-हे (होतः) दान देने हारे पुरुष! जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (सुरेतसम्) सुन्दर पराक्रम वाले (त्वष्टारम्) प्रकाशमान (पुष्टिवर्धनम्) जो पुष्टि से बढ़ाता उस (रूपाणि) सुन्दर रूपों को (पृथक्) अलग २ (बिभ्रतम्) धारण करने हारे (वयोधसम्) बड़ी अवस्था वाले (पुष्टिम्) पुष्टियुक्त (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य को (द्विपदम्) दो पग वाले मनुष्यादि (छन्दः) स्वतन्त्रता (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि इन्द्रिय (उक्षाणम्) वीर्य सींचने में समर्थ (गाम्) ज्वान बैल के (न) समान (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) विज्ञान के सम्बन्धी पदार्थ का (यक्षत्) होम करे तथा (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) होम कीजिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो! जैसे बैल गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ाता है वैसे गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती कर प्रजा को बढ़ावें। जो सन्तानों की चाहना करें तो शरीरादि की पुष्टि अवश्य करनी चाहिये। जैसे सूर्य रूप को जताने वाला है वैसे विद्वान् पुरुष विद्या और अच्छी शिक्षा का प्रकाश करने वाला होता है ॥ ३२ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम् । ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

होता । यक्षत् । वनस्पतिम् । शमितारम् । शतक्रतुमिति शतऽक्रतुम् । हिरण्यपर्णमिति हिरण्यऽपर्णम् । उक्थिनम् । रशनाम् । बिभ्रतम् । वशिम् । भगम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । ककुभम् । छन्दः । इह । इन्द्रियम् । वशाम् । वेहतम् । गाम् । वयः । दधत् । वेतु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत) (वनस्पतिम्) किरणपालकं सूर्यम् (शमितारम्)शान्तिकरम् (शतक्रतुम्) बहुप्रज्ञम् (हिरण्यपर्णम्) हिरण्यानि तेजांसि पर्णानि पालकानि यस्य तम् (उक्थिनम्) उक्थानि वक्तुं योग्यानि प्रशस्तानि वचनानि यस्य तम् (रशनाम्) अङ्गुलिम् । रशनेत्यङ्गुलिना० निघं० ३। ५ । (बिभ्रतम्) ध-

रन्तम् (वशिम्) वशकर्त्तारम् (भगम्) सेवनीयमैश्वर्यम् (इन्द्रम्) जीवम् (वयोधसम्) आयुर्धारकम् (ककुभम्) स्तम्भकम् (छन्दः) आह्लादकरम् (इह) इन्द्रियम् धनम्(वशाम्) वन्ध्याम् (वेहतम्) गर्भस्राविकाम् (गाम्) (वयः) कमनीयं वस्तु (दधत्) (वेतु) (आज्यस्य) (होतः) (यज) ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथेहाज्यस्य होता शमितारं हिरण्यपर्णं वनस्पतिमिव शतक्रतुमुक्थिनं रशनां बिभ्रतं वशिं भगं वयोधसमिन्द्रं ककुभं छन्द इन्द्रियं वशां वेहतं गां वयश्च दधत्सन्यक्षद्वेतु तथा यज ॥ ३३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः सूर्यवद्विद्याधर्मसुशिक्षाप्रकाशका धीमन्तः स्वाङ्गानि धरन्तो विद्यैश्वर्यं प्राप्याऽन्येभ्यो ददति ते प्रशंसामाप्नुवन्ति ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने हारे जन ! जैसे (इह) इस संसार में (आज्यस्य) घी आदि उत्तम पदार्थ का होता होम करने वाला (शमितारम्) शान्तिकारक (हिरण्यपर्णम्) तेजरूप रक्षाओं वाले (वनस्पतिम्) किरण पालक सूर्य के तुल्य (शतक्रतुम्) बहुत बुद्धि वाले (उक्थिनम्) प्रशस्त कहने योग्य वचनों से युक्त (रशनाम्) अङ्गुलि को (बिभ्रतम्) धारण करते हुए (वशिम्) वश में करने हारे (भगम्) सेवने योग्य ऐश्वर्य (वयोधसम्) अवस्था के धारक (इन्द्रम्) जीव (ककुभम्) अर्थ के निरोधक (छन्दः) प्रसन्नताकारक (इन्द्रियम्) धन (वशाम्) वन्ध्या तथा (वेहतम्)गर्भ गिराने हारी (गाम्) गौ और (वयः) अभीष्ट वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (यक्षत्) यज्ञ करे तथा (वेतु) चाहना करे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या धर्म और उत्तम शिक्षा के प्रकाश करने हारे बुद्धिमान् अपने अङ्गों को धारण करते हुए विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त हो के औरों को देते वे प्रशंसा पाते हैं ॥ ३३ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अग्निर्देवता ।
अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम् । अतिछन्दसं छन्द इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

होता । यक्षत् । स्वाहाकृतीरिति स्वाहाऽकृतीः । अग्निम् । गृहपतिमिति गृहऽपतिम् । पृथक् । वरुणम् । भेषजम् । कविम् । क्षत्रम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । अतिछन्दसमित्यतिऽछन्दसम् । छन्दः । इन्द्रियम् । बृहत् । ऋषभम् । गाम् । वयः । दधत् । व्यन्तु । आज्यस्य । होतः । यज ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(होता) (यक्षत्) (स्वाहाकृतीः) वाण्यादिभिः क्रियाः (अग्निम्) पावकमिव वर्त्तमानम् (गृहपतिम्) गृहस्य पालकम् (पृथक्)(वरुणम्) श्रेष्ठम् (भेषजम्) औषधम् (कविम्) मेधाविनम्(क्षत्रम्) राज्यम् (इन्द्रम्) राजानम् (वयोधसम्) कमनीयं जीवनधारकम् (अतिछन्दसम्) अ-

तिजगत्यादिप्रतिपादितम् (छन्दः) (इन्द्रियम्) श्रोत्रादिकम् (बृहत्) (ऋषभम्) अतिश्रेष्ठम् (गाम्) (वयः) (दधत्) (व्यन्तु) (आज्यस्य) होतः (यज) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा होता स्वाहाकृतीरग्निमिव गृहपतिं वरुणं पृथग्भेषजं कविं वयोधसमिन्द्रं क्षत्रमतिछन्दसं छन्दो बृहदिन्द्रियमृषभं गां वयश्च दधत्सन्नाज्यस्याहुतिं यक्षद्यथा जना एतानि व्यन्तु तथा यज ॥ ३४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्या वेदस्थानि छन्दांस्यतिछन्दांसि चाधीत्यार्थविदो भवन्ति ते सर्वा विद्याः प्राप्नुवन्ति ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन! तू जैसे (होता) ग्रहणकर्त्ता पुरुष (स्वाहाकृतीः) वाणी आदि से सिद्ध क्रिया (अग्निम्) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी (गृहपतिम्) घर के रक्षक (वरुणम्) श्रेष्ठ (पृथक्) अलग (भेषजम्) औषध (कविम्) बुद्धिमान् (वयोधसम्) मनोहर अवस्था को धारण करने हारे (इन्द्रम्) राजा (क्षत्रम्) राज्य (अतिछन्दसम्) अतिजगती आदि छन्द से कहे हुए अर्थ (छन्दः) गायत्री आदि छन्द (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय (ऋषभम्) अतिउत्तम (गाम्) बैल और (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) घी की आहुति का (यक्षत्) होम करे और जैसे लोग इन सब को (व्यन्तु) चाहैं वैसे (यज) होम यज्ञ कीजिये ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य वेदस्थ गायत्री आदि छन्द तथा अतिजगती आदि अतिछन्दों को पढ़ के अर्थ जानने वाले होते हैं वे सब विद्याओं को प्राप्त होजाते हैं ॥ ३४ ॥

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता।
भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥
कीदृशा जना वर्धन्त इत्याह॥

कैसे मनुष्य बढ़ते हैं इस वि०॥

देवं ब॒र्हिर्व॑यो॒धसं॑ दे॒वमिन्द्र॑मवर्धयत्। गा॒य॒त्र्या छन्द॑से॒न्द्रि॒यं चक्षु॒रिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑॥ ३५॥

दे॒वम्। ब॒र्हिः। व॒यो॒धस॒मिति॑ वयः॒ऽधस॑म्। दे॒वम्। इन्द्र॑म्। अ॒व॒र्ध॒य॒त्। गा॒य॒त्र्या। छन्द॑सा। इ॒न्द्रि॒यम्। चक्षुः॑। इन्द्रे॑। वयः॑। दध॑त्। व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑। व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य। वे॒तु। यज॑॥ ३५॥

पदार्थः—(देवम्) दिव्यगुणम् (बर्हिः) अन्तरिक्षम् (वयोधसम्) वयोवर्धकम् (देवम्) दिव्यस्वरूपम् (इन्द्रम्) सूर्यम् (अवर्धयत्) वर्धयति (गायत्र्या) (छन्दसा) (इन्द्रियम्) इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गम् (चक्षुः) नेत्रम् (इन्द्रे) जीवे (वयः) जीवनम् (दधत्) धरत् (वसुवने) धनविभाजकाय (वसुधेयस्य) द्रव्याऽऽधारस्य संसारस्य (वेतु) प्राप्नोतु (यज) संगच्छस्व॥ ३५॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयद्यथा च गायत्र्या छन्दसा चक्षुरिन्द्रियं वयश्चेन्द्रे दधत्सद्वसुधेयस्य वसुवने वेतु तथा यज॥ ३५॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-यथाऽऽकाशे सूर्यप्रकाशो वर्धते तथा वेदेषु प्रज्ञा वर्धते। येऽस्मिन्संसारे वेदद्वारा सर्वाः सत्यविद्या जानीयुस्ते सर्वतो वर्धेरन्॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष! जैसे (देवम्) उत्तम गुणों वाला (बर्हिः) अन्तरिक्ष (वयोधसम्) अवस्थावर्धक (देवम्) उत्तम रूप वाले (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयत्) बढ़ाता है अर्थात् चलने का अवकाश देता है और जैसे (गायत्र्या, छन्दसा) गायत्री छन्द से (इन्द्रियम्) जीव के चिन्ह (चक्षुः) नेत्र इन्द्रिय को और (वयः) जीवन को (इन्द्रे) जीव में ((दधत्) धारण करता हुआ (वसुधेयस्य) द्रव्य के आधार संसार के(वसुवने) धन का विभाग करने हारे मनुष्य के लिये (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) समागम कीजिये॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है वैसे वेदों का अभ्यास करने में बुद्धि बढ़ती है। जो इस जगत् में वेद के द्वारा सब सत्य विद्याओं को जानें वे सब ओर से बढ़ें॥ ३५ ॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता।
भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥
मनुष्यैः कीदृशानि गृहाणि निर्मातव्यानीत्याह॥
मनुष्यों को कैसे घर बनाने चाहियें इस वि०॥

देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्धयत्। उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ३६ ॥

देवीः। द्वारः। वयोधसमिति वयःऽधसम्। शुचिम्। इन्द्रम्। अवर्धयत्। उष्णिहा। छन्दसा। इन्द्रियम्। प्राणम्। इन्द्रे। वयः। दधत्। वसुवन इति वसुऽवने। वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य। व्यन्तु। यज॥ ३६ ॥

पदार्थः—(देवीः) देदीप्यमानानि (द्वारः) गमनागमनार्थानि द्वाराणि (वयोधसम्) जीवनाधारकम् (शुचिम्) पवित्रम् (इन्द्रम्) शुद्धं वायुम् (अवर्धयन्) वर्धयन्ति (उष्णिहा) (छन्दसा) (इन्द्रियम्) इन्द्रेण जीवेन जुष्टम् (प्राणम्) (इन्द्रे) जीवे (वयः) कमनीयं प्रियम् (दधत्) धरन्तः (वसुवने) द्रव्ययाचिने (वसुधेयस्य) धनाऽऽधारस्य कोषस्य (व्यन्तु) (यज) ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा देवीर्द्वारो वयोधसं शुचिमिन्द्रमिन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वसुधेयस्य वसुवनेऽवर्धयन् व्यन्तु तथोष्णिहा छन्दसैतान् वयश्च दधत्सन् यज ॥ ३६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यानि गृहाणि सन्मुखद्वाराणि सर्वतो वायुसञ्चारीणि सन्ति तत्र निवासेन जीवनं पवित्रता बलमारोग्यं च वर्धते तस्माद्बहुद्वाराणि बृहन्ति गृहाणि निर्मातव्यानि ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (देवीः) प्रकाशमान हुए (द्वारः) जाने आने के लिये द्वार (वयोधसम्) जीवन के आधार (शुचिम्) पवित्र (इन्द्रम्) शुद्ध वायु (इन्द्रियम्) जीवने से सेवे हुए (प्राणम्) प्राण को (इन्द्रे) जीव के निमित्त (वसुधेयस्य) धन के आधार कोष के (वसुवने) धन को मांगने वाले के लिये (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं और (व्यन्तु) शोभायमान होवें वैसे (उष्णिहा, छन्दसा) उष्णिक् छन्द से इन पूर्वोक्त पदार्थों और (वयः) कामना के योग्य प्रिय पदार्थों को (दधत्) धारण करते हुए (यज) हवन कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो घर सन्मुख द्वार वाले जिन में सब ओर से वायु आवे ऐसे हैं उनमें निवास करने से अवस्था, पवित्रता, बल और निरोगता बढ़ती है इस लिये बहुत द्वारों वाले बड़े२ घर बनाने चाहियें ॥ ३६ ॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्याः कथं वर्धेरन्नित्याह ॥
फिर मनुष्य कैसे बढ़ें इस वि० ॥

देवी उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३७॥

देवीऽइति देवी । उषासानक्ता । उषसानक्तेत्युषसानक्ता । देवम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । देवी । देवम् । अवर्धताम् । अनुष्टुभा । अनुस्तुभेत्यनुऽस्तुभा । छन्दसा । इन्द्रियम् । बलम् । इन्द्रे । वयः । दधत् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वीताम् । यज ॥ ३७ ॥

पदार्थः— (देवी) देदीप्यमाने (उषासानक्ता) रात्रिदिने इवाध्यापिकाऽध्येत्र्यौ स्त्रियौ (देवम्) दिव्यगुणम् (इन्द्रम्) जीवम् (वयोधसम्) (देवी) दिव्या पतिव्रता स्त्री (देवम्) दिव्यं स्त्रीव्रतं पतिम् (अवर्धताम्) (अनुष्टुभा) (छन्दसा) (इन्द्रियम्) इन्द्रेण जीवेन सेवितम् (बलम्) (इन्द्रे) जीवे (वयः) प्राणधारणम् (दधत्) (वसुवने) (वसुधेयस्य) (वीताम्) (यज) ॥ ३७ ॥

अन्वयः— हे विद्वन् यथोषासानक्तेव देवी वयोधसं देवमिन्द्रं देवी देवमिवावर्धेतां यथा च वसुधेयस्य वसुवने वीतां तथा वयोदधत्सन्ननुष्टुभा छन्दसेन्द्र इन्द्रियं बलं यज ॥ ३७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा प्रीत्या स्त्रीपुरुषौ व्यवस्थयाऽहोरात्रौ च वर्धेते तथा प्रीत्या धर्मव्यवस्थया च भवन्तो वर्धन्ताम् ॥३७॥

पदार्थः—हे विद्वन् जन ! जैसे (उषासानक्ता) दिन रात्रि के समान (देवी) सुन्दर शोभायमान पढ़ाने पढ़ने वाली दो स्त्रियां (वयोधसम्) जीवन का धारण करने वाले (देवम्) उत्तम गुणयुक्त (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवी) उत्तम पतिव्रता स्त्री (देवम्) उत्तम स्त्रीव्रत लम्पटतादि दोषरहित पति को बढ़ावे वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें और जैसे (वसुधेयस्य) धनाऽऽधार कोष के (वसुवने) धन को चाहने वाले के अर्थ (वीताम्) उत्पत्ति करें वैसे (वयः) प्राणों के धारण को (दधत्) पुष्ट करते हुए (अनुष्टुभा, छन्दसा) अनुष्टुप् छन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा में (इन्द्रियम्) जीवने से सेवन किये (बलम्) बल को (यज) सङ्गत कीजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे प्रीति से स्त्रीपुरुष और व्यवस्था से दिन रात बढ़ते हैं वैसे प्रीति और धर्म की व्यवस्था से आप लोग बढ़ा करें ॥ ३७॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
अथ स्त्रीपुरुषौ किं कुर्यातामित्याह ॥
अब स्त्रीपुरुष क्या करें इस वि० ॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३८॥

देवीऽइति देवी । जोष्ट्रीऽइति जोष्ट्री । वसुधिती इति वसुऽधिती । देवम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति व-

यः॒ऽधसम् । दे॒वीऽइति॑ दे॒वी । दे॒वम् । अ॒व॒र्ध॒ता॒म् । बृ॒ह॒त्या । छन्द॑सा । इ॒न्द्रि॒यम् । श्रोत्र॑म् । इन्द्रे॑ । वयः॑ । दध॑त् । व॒सु॒वन॒ऽइति॑ व॒सु॒ऽवने॑ । व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य । वी॒ता॒म् । यज॑ ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(देवी) देदीप्यमाने (जोष्ट्री) प्रीतिमत्यौ (वसुधिती) विद्याधारिके (देवम्) दिव्यगुणं (सन्तानम्) इन्द्रम् (अन्नदातारम्) वयोधसम् जीवनधारकम् (देवी) धर्मात्मा स्त्री (देवम्) धार्मात्मानं पतिम् (अवर्धताम्) (बृहत्या) (छन्दसा) (इन्द्रियम्) इन्द्रेणेश्वरेण सृष्टम् (श्रोत्रम्) शब्दश्रावकम् (इन्द्रे) जीवे (वयः) कमनीयं सुखम् (दधत्) (वसुवने) (वसुधेयस्य) (वीताम्) व्याप्नुतः (यज) ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा देवी जोष्ट्री वसुधिती स्त्रियौ वयोधसमिन्द्रं देवं देवी देवमिव प्राप्यावर्धेतां बृहत्या छन्दसेन्द्रे श्रोत्रमिन्द्रियं वीतां तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत्सन् यज ॥ ३८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथाऽध्यापिकोपदेशिके स्त्रियौ स्वसन्तानान्स्त्र्याः कन्याः स्त्रियश्च विद्याशिक्षाभ्यां वर्धयतस्तथा स्त्रीपुरुषौ परस्परप्रीत्या विद्याविचारेण स्वसन्तानान् वर्द्धयेताम् स्वयं च वर्धेताम् ॥३८॥

पदार्थः—हे विद्वन् जन ! जैसे (देवी) तेजस्विनी (जोष्ट्री) प्रीति वाली (वसुधिती) विद्या को धारण करने हारी पढ़ने पढ़ाने वाली दो स्त्रियां (वयोधसम्)

प्राप्त हो के (अवधर्ताम्)उन्नति को प्राप्त हो (बृहत्या, छन्दसा) बृहतीछन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा में (इन्द्रियम्) ईश्वर ने रचे हुए (श्रोत्रम्) शब्द सुनने के हेतु कान को (वीताम्) व्याप्त हों वैसे (वसुधेयस्य) धन के आधार कोष के (वसुवने) धन की चाहना के अर्थ (वयः) उत्तम मनोहर सुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञादि कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो ! जैसे पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियां अपने सन्तानों अन्य कन्या और वा स्त्रियों को विद्या तथा शिक्षा से बढ़ाती हैं वैसे स्त्री पुरुष परमप्रीति से विद्या के विचार के साथ अपने सन्तानों को बढ़ावें और आप बढ़ें ॥ २८ ॥

देवी इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

दे॒वी ऊ॒र्जाहु॑ती दु॒घे सु॒दु॒घे पय॒सेन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम् । प॒ङ्क्त्या छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ शु॒क्रमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ २९ ॥

दे॒वीऽइति॑ दे॒वी । ऊ॒र्जाहु॑ती॒ऽइत्यू॒र्जाऽआहु॑ती । दु॒घे इति॑ दु॒घे । सु॒दु॒घे इति॑ सु॒ऽदु॒घे । पय॑सा । इन्द्र॑म् । व॒यो॒धस॒मिति॑ वयः॒ऽधस॑म् । दे॒वीऽइति॑ दे॒वी । दे॒वम् । अ॒व॒र्ध॒ता॒म् । प॒ङ्क्त्या । छन्द॑सा । इ॒न्द्रि॒यम् । शु॒क्रम् । इन्द्रे॑ । वयः॑ । दध॑त् । व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑ । व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य । वी॒ता॒म् । यज॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—(देवी) दात्र्यौ (ऊर्जाहुती) सुसंस्कृतान्नाहुती (दुघे) पूरिके (सुदुघे) सुष्ठु कामप्रपूरिके (पयसा) जलवर्षणेन (इन्द्रम्) जीवम् (वयोधसम्) प्राणधारिणम् (देवी) पतिव्रता विदुषी स्त्री (देवम्) स्त्रीव्रतं विद्वांसम् (अवर्द्धताम्) पङ्क्त्या (छन्दसा) (इन्द्रियम्) धनम् (शुक्रम्) वीर्यम् (इन्द्रे) जीवे(वयः) कमनीयं सुखम् (दधत्) (वसुवने) धनसेविने (वसुधेयस्य) (वीताम्) (यज)॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा दुघेसुदुघे देवी ऊर्जाहुती पयसा वयोधसमिन्द्रं देवीदेवमिवावर्द्धतां पङ्क्त्या छन्दसा इन्द्रे शुक्रमिन्द्रियवीतां तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत्सन् यज ॥ ३९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-हे मनुष्या यथाऽग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिर्मेघमंडलं प्राप्य पुनरागत्य च शुद्धेन जलेन सर्वं जगत्पुष्णाति तथा विद्याग्रहणदानाभ्यां सर्वं पोषयत ॥३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जैसे (दुघे) पदार्थों को पूर्ण करने और (सुदुघे) सुन्दर प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने हारी (देवी)सुगन्धि को देने वाली (ऊर्जाहुती) अच्छे संस्कार किये हुए अन्न की दो आहुती (पयसा)जल की वर्षा से (वयोधसम्) प्राणधारी (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवी)पतिव्रता विदुषी स्त्री (देवम्) व्यभिचारादि दोषरहित पति को बढ़ाती है वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें (पङ्क्त्या, छन्दसा) पङ्क्तिछन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा के निमित्त (शुक्रम्) पराक्रम और (इन्द्रियम्) धन को (वीताम्) प्राप्त करें वैसे (वसुधेयस्य) धन के कोष के (वसुवने)धन का सेवन करने हारे के लिये (वयः) सुन्दर ग्राह्यसुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ३९ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जैसे अग्नि में छोड़ी हुई आहुति मेघमण्डल को प्राप्त हो फिर आकर शुद्ध किये हुए जल से सब जगत् को पुष्टि करती है वैसे विद्या के ग्रहण और दान से सब को पुष्ट किया करो ॥ ३९ ॥

देवा इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनः स्त्रीपुंसाभ्यां किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि०॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्धताम्। त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ४० ॥

देवा । दैव्या । होतारा । देवम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । देवौ । देवम् । अवर्धताम् । त्रिष्टुभा । त्रिस्तुभेति त्रिऽस्तुभा । छन्दसा । इन्द्रियम् । त्विषिम् । इन्द्रे । वयः । दधत् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वीताम् । यज ॥ ४० ॥

पदार्थः-(देवा) कमनीयौ विद्वांसौ (दैव्या) कमनीयेषु कुशलौ (होतारा) दातारावध्यापकोपदेशकौ (देवम्) कामयमानम् (इन्द्रम्) जीवम् (वयोधसम्) आयुर्धारकम् (देवौ) शुभगुणान् कामयमानौ मातापितरौ (देवम्) कमनीयं पुत्रम् (अवर्द्धताम्) वर्धयतः (त्रिष्टुभा) (छन्दसा) (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि (त्विषिम्) प्रकाशयुक्तम् (इन्द्रे) स्वात्मनि (वयः) (दधत्) (वसुवने) (वसुधेयस्य) (वीताम्) (यज) ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे होतारा यथा दैव्या देवा वयोधसं देवमिन्द्रं देवी देवमि॰ वाऽवर्द्धतां तथा वसुधेयस्य वसुवने वीतास्। हे विद्वन् त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रे त्विषिमिन्द्रियं वयो दधत्सन् त्वं यज ॥ ४० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु॰—यथाऽध्यापकोपदेशकौ विद्यार्थिशिष्यौ मातापितरावपत्यानि वर्धयतस्तथा विद्वांसौ स्त्रीपुरुषौ वेदविद्यया सर्वान् वर्द्धयेताम् ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (होतारा) दानशील अध्यापक उपदेशक लोगो! जैसे (दैव्या) कामना के योग्य पदार्थ बनाने में कुशल (देवा) चाहने योग्य दो विद्वान् (वयोधसम्) अवस्था के धारक (देवम्) कामना करते हुए (इन्द्रम्) जीवात्मा को जैसे (देवी) शुभ गुणों की चाहना करते हुए माता पिता (देवम्) अभीष्ट पुत्र को बढ़ावें वैसे (अवर्द्धताम्) बढ़ावें (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन सेवने वाले जन के लिये (वीतास्) प्राप्त हूजिये तथा हे विद्वन् पुरुष! (त्रिष्टुभा, छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (त्विषिम्) प्रकाशयुक्त (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय और (वयः) कुल को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञादि उत्तम कर्म कर ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु॰—जैसे पढ़ने और उपदेश करने हारे विद्यार्थी और शिष्यों को तथा माता पिता सन्तानों को बढ़ाते हैं वैसे विद्वान् स्त्री पुरुष वेद विद्या से सब को बढ़ावें ॥ ४० ॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता।
भुरिग् जगतीछन्दः। निषादः स्वरः ॥
अथ राजप्रजाधर्मविषयमाह ॥
अब राज प्रजा का धर्म वि॰ ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन्। जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥

देवीः । तिस्रः । तिस्रः । देवीः । वयोधसमिति वयःऽधसम् । पतिम् । इन्द्रम् । अवर्धयन् । जगत्या । छन्दसा । इन्द्रियम् । शूषम् । इन्द्रे । वयः । दधत् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(देवीः) देदीप्यमाना विदुष्यः (तिस्रः) त्रित्वसंख्याकाः (तिस्रः) अध्यापकोपदेशकपरीक्षिकाः (देवीः) अत्रादरार्थं द्विरुक्तिः (वयोधसम्) जीवनधारकम् (पतिम्) पालकं स्वामिनम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवन्तं सम्राजम् (अवर्द्धयन्) वर्धयेयुः (जगत्या) (छन्दसा) (इन्द्रियम्) (शूषम्) बलम् (इन्द्रे) स्वात्मनि (वयः) शत्रुबलव्यापकम् (दधत्) (वसुवने) (वसुधेयस्य) (व्यन्तु) व्याप्नुवन्तु (यज) ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा तिस्रो देवीस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन् व्यन्तु तथा जगत्या छन्दसेन्द्रे शूषमिन्द्रियं वयो दधत्सन् वसुधेयस्य वसुवने यज ॥ ४१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽध्यापकोपदेशकपरीक्षकाः स्त्रीपुरुषाः प्रजासु विद्यासदुपदेशान् प्रचारयेयुस्तथा राजैतेषां यथावद्रक्षां कुर्यादेवं राजप्रजाजनाः परस्परं प्रीताः सन्तः सर्वतो वृद्धिं प्राप्नुवन्तु ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (तिस्रः) तीन (देवीः) तेजस्विनी विदुषी (तिस्रः) तीन पढ़ाने, उपदेश करने और परीक्षा लेने वाली (देवीः) विदुषी

स्त्री (वयोधसम्) जीवन धारण करने हारे (पतिम्) रक्षक स्वामी (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य वाले चक्रवर्त्ती राजा को (अवर्धयन्) बढ़ावें तथा (व्यन्तु) व्याप्त होवें वैसे (जगत्या, छन्दसा) जगती छन्द से (इन्द्रे) अपने आत्मा में (शूषम्, वयः) शत्रुसेना में व्यापक होने वाले अपने बल तथा (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय को (दधत्) धारण करते हुए (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धनदाता के अर्थ (यज) अग्निहोत्रादि यज्ञ कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा लेने वाले स्त्री पुरुष प्रजाओं में विद्या और श्रेष्ठ उपदेशों का प्रचार करें वैसे राजा इनकी यथावत् रक्षा करे इस प्रकार राजपुरुष और प्रजा पुरुष आपस में प्रसन्न हुए सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हुआ करें ॥ ४१ ॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
अथ विद्वद्भिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
अब विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

देवो नराशꣳसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् । विराजा छन्दसेन्द्रियꣳ रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४२ ॥

देवः । नराशꣳसः । देवम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । देवः । देवम् । अवर्धयत् । विराजेति विऽराजा । छन्दसा । इन्द्रियम् । रूपम् । इन्द्रे । वयः । दधत् । वसुवनइति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वेतु । यज ॥ ४२ ॥

पदार्थः– (देवः) विद्वान् (नराशंसः) यो नरैराशंस्यते सः (देवम्) दिव्यगुणकर्मस्वभावम् (इन्द्रम्) राजानम् (वयोधसम्) चिरञ्जीविनम् (देवः) विद्वान् (देवम्) विद्वांसम् (अवर्धयत्) वर्धयेत् (विराजा)(छन्दसा) (इन्द्रियम्)(रूपम्) (इन्द्रे) (वयः) (दधत्) (वसुवने) (वसुधेयस्य) (वेतु) (यज) ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा नराशंसो देवो वयोधसं देवमिन्द्रं देवो देवमिवावर्धयद्विराजा छन्दसेन्द्रे रूपमिन्द्रियं वेतु तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो-दधत्सन् यज ॥ ४२ ॥

भावार्थः–अत्र वाचकलु०–विद्वद्भिः कदाचित्परस्परस्मिन्नीर्ष्ययाऽन्योऽन्यस्य हानिर्नैव कार्या किन्तु सदैव प्रीत्या वृद्धिः सम्पादनीया ॥ ४२ ॥

पदार्थः— हे विद्वन् जन! जैसे (नराशंसः) मनुष्यों से प्रशंसा करने योग्य (देवः) विद्वान् (वयोधसम्) बहुत अवस्था वाले (देवम्) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (इन्द्रम्) राजा को जैसे (देवः) विद्वान् (देवम्) विद्वान् को वैसे (अवर्धयत्) बढ़ावे (विराजा, छन्दसा) विराट् छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (रूपम्) सुन्दर रूप वाले (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि इन्द्रिय को (वेतु) प्राप्त करे वैसे (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन को सेवने वाले जन के लिये (वयः) अभीष्ट सुख को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज)सङ्गम वा दान कीजिये ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वानों को चाहिये कि कभी आपस में ईर्ष्या करके एक दूसरे की हानि नहीं करें किन्तु सदैव प्रीति से उन्नति किया करें ॥४२॥

देवइत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४३ ॥

देवः । वनस्पतिः । देवम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । देवः । देवम् । अवर्धयत् । द्विपदेति द्विऽपदा । छन्दसा । इन्द्रियम् । भगम् । इन्द्रे । वयः । दधत् । वसुवनइति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वेतु । यज ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(देवः) दिव्यगुणः (वनस्पतिः) वनानां पालको वटादिः (देवम्) दिव्यगुणम् (इन्द्रम्) ऐश्वर्यम् (वयोधम्) आयुर्धारकम् (देवः) दिव्यः सभ्यः (देवम्) दिव्यस्वभावं विद्वांसम् (अवर्धयत्) (द्विपदा) (छन्दसा) (इन्द्रियम्) धनम् (भगम्) ऐश्वर्यम् (इन्द्रे) (वयः) कमनीयं सुखम् (दधत्) (वसुवने) (वसुधेयस्य) वेतु (यज) ॥४३॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा वनस्पतिर्देवो वयोधसं देवमिन्द्रं देवो देवमिवाव र्धयत् । द्विपदा छन्दसेन्द्रे भगमिन्द्रियं वेतु तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधत्सन् यज ॥ ४३ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-हे विद्वांसो मनुष्या युष्माभिर्यथा वनस्पतयः पुष्कलं जलमधस्तादाकृष्य वायौ मेघमण्डले च प्रसार्य सर्वान् द्विज्जो रक्षन्ति यथा च राजपुरुषा राजपुरुषानवन्ति तथा वर्त्तित्वैश्वर्यमुन्नेयम् ॥४३॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (वनस्पतिः) वनों का रक्षक वट आदि (देव) उत्तम गुणों वाला (वयोधसम्) अधिक उमर वाले (देवम्) उत्तम गुणयुक्त (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को जैसे (देवः) उत्तम सभ्य जन (देवम्) उत्तम स्वभाव वाले विद्वान् को वैसे (अवर्धयत्) बढ़ावे (द्विपदा) दोपाद वाले (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (भगम्) ऐश्वर्य तथा (इन्द्रियम्) धन को (वेतु) प्राप्त हो वैसे (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन को देने हारे के लिये (वयः) अभीष्ट सुख को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञ कर ॥ ४३ ॥

भावार्थः—इसमन्त्र में वाचकलु०-हे विद्वान् मनुष्यों! तुम को जैसे वनस्पति पुष्कल जल को नीचे पृथिवी से आकर्षण करके वायु और मेघमण्डल में फैला के सब घास आदि की रक्षा करते और जैसे राजपुरुष राजपुरुषों की रक्षा करते हैं वैसे वर्त्त के ऐश्वर्य की उन्नति करनी चाहिये ॥ ४३ ॥

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनां दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वं दे॒वम॑वर्धयत् । क॒कुभा॒ छन्द॑से॒न्द्रियं यश॒ इन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ४४ ॥

देवम् । बर्हिः । वारितीनाम् । देवम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । देवम् । देवम् । अवर्धयत् । ककुभा । छन्दसा । इन्द्रियम् । यशः । इन्द्रे । वयः । दधत् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वेतु । यज ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(देवम्) दिव्यम् (बर्हिः) उदकम् । बर्हिरित्युदकना॰ निघं॰ १। १२। (वारितीनाम्) अन्तरिक्षस्थसमुद्राणाम् (देवम्) दिव्यम् (इन्द्रम्) राजानम् (वयोधसम्) बहुवयोधारकम् (देवम्) दिव्यगुणम् (देवम्) प्रकाशमानम् (अवर्धयत्) वर्धयेत् (ककुभा, छन्दसा) (इन्द्रियम्) इन्द्रस्य जीवस्य लिंगम् (यशः) कीर्त्तिम् (इन्द्रे) परमैश्वर्ये (वयः) (दधत्) (वसुवने) (वसुधेयस्य) (वेतु) (यज) ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा वारितीनां देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रं देवं देवं चावर्धयत्ककुभा छन्दसेन्द्रे यश इन्द्रियं वेतु तथा वसुधेयस्य वसुवने वयो दधद्यज ॥ ४४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु॰—हे विद्वांसो मनुष्या यथोदकं समुद्रान् प्रपूर्य जन्तून् संरक्ष्य मुक्तादीनि रत्नानि जनयति तथा धर्मेण धनकोषं प्रपूर्याऽन्यान् दरिद्रान् संरक्ष्य कीर्तिं वर्धयत ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जन ! जैसे (वारितीनाम्) अन्तरिक्ष के समुद्र का (देवम्) उत्तम (बर्हिः) जल (वयोधसम्) बहुत अवस्था वाले (देवम्) उत्तम (इन्द्रम्) राजा को और (देवम्) उत्तम गुणवान् (देवम्) प्रकाशमान् प्रत्येक जीव को (अवर्धयत्) बढ़ाता है (ककुभा, छन्दसा) ककुप्छन्द से

उत्तम ऐश्वर्य के निमित्त (यशः) कीर्त्ति तथा (इन्द्रियम्) जीव के चिन्हरूप श्रोत्रादि इन्द्रिय को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन को सेवने हारे के लिये (वयः) अभीष्ट सुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ४४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे विद्वान् मनुष्यो जैसे जल समुद्रों को भर और जीवों की रक्षा करके मोती आदि रत्नों को उत्पन्न करता है वैसे धर्म से धन के कोष को पूर्ण कर और अन्य दरिद्रियों की सम्यक् रक्षा करके कीर्ति को बढ़ाओ ॥ ४४ ॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडतिजगती । छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । अतिछन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुधेयस्य वसुवने वेतु यज ॥४५॥

देवः । अग्निः । स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत् । देवम् । इन्द्रम् । वयोधसमिति वयःऽधसम् । देवः । देवम् । अवर्धयत् । अतिछन्दसेत्यतिऽछन्दसा । छन्दसा । इन्द्रियम् । क्षत्रम् । इन्द्रे । वयः । दधत् । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । वसुवन इति वसुऽवने । वेतु । यज ॥४५॥

पदार्थः—(देवः) सर्वज्ञः (अग्निः) स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वरः (स्विष्टकृत्) यः शोभनमिष्टं करोति सः (देवम्) धार्मिकम् (इन्द्रम्) जीवम् (वयोधसम्) आयुषो ध-

त्तारम् (देवः) विद्वान् (देवम्) विद्यार्थिनम् (अवर्ध-यत्) वर्धयति (अतिछन्दसा) अति जगत्यादिना (छ-न्दसा) आह्लादकरेण (इन्द्रियम्) जीवेन सेवितम्(क्ष-त्रम्) राज्यम् (इन्द्रे) विद्याविनयान्विते (वयः) कम-नीयं वस्तु (दधत्) (वसुधेयस्य) (वसुवने) (वेतु) व्याप्नोतु (यज) ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा स्विष्टकृद्देवोऽग्निर्वयोधसं देवमिन्द्रं देवो देवमिवावर्धयदतिछन्दसा छन्दसेन्द्रे वसुधेयस्य वसुवने वयः क्षत्रमिन्द्रियं दधत्सन् वेतु तथा यज ॥ ४५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे विद्वांसो मनुष्या यथा परमेश्वरेण दयया सर्वान् पदार्थानुत्पाद्य जीवेभ्यः समर्प्य जगद्धितं कृतं तथा विद्याविनय-सत्सङ्गपुरुषार्थैर्धर्मानुष्ठानै राज्यं वर्धयत ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (स्विष्टकृत्) सुन्दर अभीष्ट को सिद्ध करने हारा (देवः) सर्वज्ञ (अग्निः) स्वयं प्रकाशस्वरूप ईश्वर (वयोधसम्) अवस्था के धारक (देवम्) धार्मिक (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवः) विद्वान् (देवम्) विद्यार्थी को वैसे (अवर्धयत्) बढ़ाता है (अतिछन्दसा, छन्दसा) अतिजगती आदि आनन्दकारक छन्द से (इन्द्रे) विद्या विनय से युक्त राजा के निमित्त (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन के दाता के लिये (वयः) मनो-हर वस्तु (क्षत्रम्) राज्य और (इन्द्रियम्) जीवने से सेवन किये हुए इन्द्रिय को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) व्याप्त होवे वैसे (यज) यज्ञादि उत्तम कर्म कीजिये ॥ ४५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे परमेश्वर ने अपनी दया से सब पदार्थों को उत्पन्न कर और जीवों के लिये समर्पण करके जगत् की वृद्धि की है वैसे विद्या, विनय, सत्सङ्ग, पुरुषार्थ और धर्म के अनुष्ठानों से राज्य को बढ़ाओ ॥ ४५ ॥

अग्निमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता ।
आकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मान॒: पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न्पुरो॒डाशं॑ ब॒ध्नन्निन्द्रा॑य व॒यो॒ध॒से छा॒गं॑म्। सू॒प॒स्था अ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभव॒दिन्द्रा॑य वयो॒ध॑से छा॒गेन॑ अघ॒त्तं मे॑द॒स्तः प्रति॑ प॒च॒ताऽग्र॑भी॒द॒वी॑वृधत्पुरो॒डाशे॑न॒ त्वाम॒द्यऽऋ॑षे ॥ ४६ ॥

अ॒ग्निम्। अ॒द्य। होता॑रम्। अ॒वृ॒णी॒त॒। अ॒यम्। यज॑मानः। पच॑न्। पक्तीः॑। पच॑न्। पु॒रो॒डाश॑म्। ब॒ध्नन्। इन्द्रा॑य। व॒यो॒ध॒स॒ इति॒ वयः॒ऽधसे॑। छा॒गम्। सू॒प॒स्था॒ऽइति॑ सु॒ऽउ॒प॒स्थाः॑। अ॒द्य। दे॒वः। वन॒स्पतिः॑। अ॒भ॒व॒त्। इन्द्रा॑य। व॒यो॒ध॒स॒ऽइति॒ वयः॒ऽधसे॑। छा॒गेन॑। अ॒घ॒त्तम्। मे॒द॒स्तः। प्रति॑। प॒च॒ता। अग्र॑भीत्। अवी॑वृधत्। पु॒रो॒डाशे॑न। त्वाम्। अ॒द्य। ऋ॒षे ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(अग्निम्) तेजस्विनम् (अद्य) इदानीम् (होतारम्) (अवृणीत) वृणुयात् (अयम्) (यजमानः) यज्ञकर्त्ता (पचन्) (पक्तीः) नानाविधान् पाकान् (पचन्) (पुरोडाशम्) (बध्नन्) (इन्द्राय) परमैश्वर्याय (वयोधसे) सर्वेषां

जीवनवर्धकाय (छागम्) छेदकम् (सूपस्थाः) ये सूप तिष्ठन्ति ते (अद्य) (देवः) विद्वान् (वनस्पतिः) वनानां पालकः (अभवत्) भवेत् (इन्द्राय) शत्रुविनाशकाय (वयोधसे) (छागेन) छेदनेन (अघत्तम्) भुञ्जीयाताम् (मेदस्तः) स्निग्धात् (प्रति) (पचता) परिपक्वभावं प्राप्तेन (अग्रभीत्) गृह्णीयात् (अवीवृधत्) वर्धेत (पुरोडाशेन) (त्वाम्) (अद्य) (ऋषे) मन्त्रार्थवित् ॥ ४६ ॥

अन्वयः-हे ऋषे यथाऽयं यजमानोऽद्य पक्तीः पचन्पुरोडाशं पचन्नग्निं होतारमद्यावृणीत तथा वयोधस इन्द्राय छागं भघ्नन् वृणु हि । यथाऽद्य वनस्पतिर्देवो वयोधस इन्द्राय छागेनाघत्तोऽभवत्तथा सूपस्था भवन्तु । यथा पचता पुरोडाशेन मेदस्तस्त्वां प्रत्यग्रभीदवीवृधत्तथा हे यजमानहोतारौ युवां पुरोडाशमघत्तम् ॥ ४६ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—यथा सूदा उत्तमान्यन्नानि व्यञ्जनानि च पक्त्वा भोजयेयुस्तथैतान् भोक्तारो विद्वांसो मानयेयुः । यथाऽजादयः पशवो घासादिकं भुक्त्वा सम्यक् पचन्ति तथैव भुक्तमन्नं पाचयेयुरिति ॥ ४६ ॥

अत्र होतृगुणवर्णनं वागश्विगुणप्रतिपादनं पुनर्होतृकर्त्तव्यप्रतिपादनं यज्ञवर्णनं विद्वत्प्रशंसा चोक्ताऽत एतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति बोध्यम् ॥

पदार्थः—हे (ऋषे) मन्त्रार्थ जानने वाले विद्वान् पुरुष ! जैसे (अयम्) (यजमानः) यज्ञ करने हारा (अद्य) इस समय (पक्तीः) नाना प्रकार

के पाकों को (पचन) पकाता और (पुरोडाशम्) यज्ञ में होमने के पदार्थ को (पचन्) पकाता हुआ (अग्निम्) तेजस्वि (होतारम्) होता को (अद्य) आज (अवृणीत) स्वीकार करे वैसे (वयोधसे) सब के जीवन को बढ़ाने हारे (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (छागम्) छेदन करने वाले बकरी आदि पशु को (बध्नन्) बांधते हुए स्वीकार कीजिये जैसे आज (वनस्पतिः) वनों का रक्षक (देवः) विद्वान् (वयोधसे) अवस्था वर्धक (इन्द्राय) शत्रु विनाशक राजा के लिये (छागेन) छेदन के साथ उद्यत (अभवत्) होवे वैसे सब लोग (सूपस्थाः) सुन्दर प्रकार समीप रहने वाले हों जैसे (पचता) पकाये हुए (पुरोडाशेन) यज्ञ पाक से (मेदस्तः) चिकनाई से (त्वाम्) आपको (प्रति, अग्रभीत्) ग्रहण करे और (अवीवृधत्) बढ़े वैसे हे यजमान और होता लोगो तुम दोनों यज्ञ के शेष भाग को (अघत्तम्) खाओ ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे रसोइये लोग उत्तम अन्न व्यञ्जनों को बना के भोजन करावें वैसे ही भोक्ता लोग उनका मान्य करें जैसे बकरी आदि पशु घास आदि को खा के सम्यक् पचा लेते हैं वैसे ही भोजन किये हुए अन्नादि को पचाया करें ॥ ४६ ॥

इस अध्याय में होता के गुणों, वाणी और अश्वियों के गुणों, फिर भी होता के कर्त्तव्य, यज्ञ की व्याख्या और विद्वानों की प्रशंसा को कहा है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वती स्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसर-

स्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां
समन्विते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्येऽष्टा-
विंशोऽध्यायः पूर्तिं प्रापत् ॥

ओ३म्

अथैकोनत्रिंशोऽध्याय आरम्यते ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

समिद्ध इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। अग्निर्देवता।
त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥
अथ मनुष्यैरग्निजलादिना किं साध्यमित्याह ॥

अब उनतीशवें अध्याय का आरम्भ है इस के पहिले मन्त्र में मनुष्यों को अग्नि जलादि से क्या सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

समिद्धो अञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः। वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ १ ॥

समिद्ध इति सम्ऽइद्धः। अञ्जन्। कृदरम्। मतीनाम्। घृतम्। अग्ने। मधुमदिति मधुऽमत्। पिन्वमानः। वाजी। वहन्। वाजिनम्। जातवेदइति जातऽवेदः। देवानाम्। वक्षि। प्रियम्। आ। सधस्थमिति सधऽस्थम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(समिद्धः) सम्यक् प्रदीप्तः (अञ्जन्) व्यक्तो भवन् (कृदरम्) उदरम् (मतीनाम्) मनुष्याणाम् (घृतम्)

उदकमाज्यं वा (अग्ने) अग्निवद्वर्त्तमान (मधुमत्) मधुरा बहवो गुणा विद्यन्ते यस्मिन् तत् (पिन्वमानः) सेवमानः (वाजी) वेगवान् जनः (वहन्) (वाजिनम् वेगवन्तमश्वम् (जातवेदः) जातप्रज्ञ (देवानाम्) विदुषाम् (वक्षि) वहसि प्रापयसि (प्रियम्) प्रीणन्ति यस्मिंस्तत् (आ) समन्तात् (सधस्थम्) सहस्थानम् ॥ १ ॥

अन्वयः-हे जातवेदोऽग्ने विद्वन् यथा समिद्धोऽञ्जन्नग्निर्मतीनां कृदरं मधुमद्घृतं पिन्वमानो वाजिनं वाजी वहन्निव देवानां सधस्थमावहति तथा प्रियं वक्षि प्रापय ॥ १ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—यदि मनुष्या जाठराग्निं प्रदीप्तं रक्षेयुर्बाह्यमग्निं संप्रयुञ्जीरंस्तर्ह्ययमश्ववद्यानानि देशान्तरं सद्यः प्रापयेत् ॥ १ ॥

पदार्थः-हे (जातवेदः) प्रसिद्ध बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् जन जैसे (समिद्धः) सम्यक् जलाया (अञ्जन्) प्रकट होता हुआ अग्नि (मतीनाम्) मनुष्यों के (कृदरम्) पेट और (मधुमत्) बहुत उत्तम गुणों वाले (घृतम्) जल वा घी को (पिन्वमानः) सेवन करता हुआ जैसे (वाजी) वेगवान् मनुष्य (वाजिनम्) शीघ्रगामी घोड़े को (वहन्) चलाता वैसे (देवानाम्) विद्वानों के (सधस्थम्) साथ स्थिति को (आ) प्राप्त करता है वैसे (प्रियम्) प्रीति के निमित्तस्थान को (वक्षि) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य जाठराग्नि को तेज रक्खें और बाहर के अग्नि को कलाकौशलादि में युक्त किया करें तो यह अग्नि घोड़े के तुल्य सवारियों को देशान्तर में शीघ्र पहुंचावें ॥ १ ॥

घृतेनेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान्प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान् । अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳬं स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

घृतेन । अञ्जन् । सम् । पथः । देवयानानिति देवऽयानान् । प्रजानन्निति प्रऽजानन् । वाजी । अपि । एतु । देवान् । अनु । त्वा । सप्ते । प्रदिश इति प्रऽदिशः । सचन्ताम् । स्वधाम् । अस्मै । यजमानाय । धेहि ॥ २ ॥

पदार्थः—(घृतेन) उदकेनाग्निना वा (अञ्जन्) प्रकटीभवन् (सम्) सम्यक् (पथः) मार्गान् (देवयानान्) देवा विद्वांसो यान्ति गच्छन्ति येषु तान् (प्रजानन्) प्रकर्षेण बुध्यमानः (वाजी) वेगवान् (अपि) (एतु) प्राप्नोतु (देवान्) विदुषः (अनु) (त्वा) त्वाम् (सप्ते) अश्व इव वेगकारक (प्रदिशः) सर्वा दिशः (सचन्ताम्) समवयन्तु (स्वधाम्) अन्नम् (अस्मै) (यजमानाय) धेहि ॥ २ ॥

अन्वयः—हे सप्तेऽश्व इव वर्त्तमान विद्वन् यथा वाज्यप्यग्निर्घृतेनाञ्जन् देवयानान्पथः समेतु तं प्रजानन्संस्त्वं देवानेहि येन त्वाऽनुप्रदिशः सचन्तां त्वमस्मै यजमानाय स्वधां धेहि ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०–येऽग्निजलादिप्रयुक्तैर्बाष्पयानैः सद्यो मार्गान् गत्वाऽऽगत्य सर्वासु दिक्षु भ्रमेयुस्ते तत्र पुष्कलान्यन्नादीनि संप्राप्य प्रज्ञया कार्याणि साद्धुं शक्नुवन्ति ॥ २ ॥

पदार्थः-हे (सप्ते) घोडे के समान वेग से वर्त्तमान विद्वान् जन ! जैसे (वाजी, अपि) वेगवान् भी अग्नि (घृतेन) घी वा जल से (अञ्जन्) प्रगट हुआ (देवयानान्) विद्वान् लोग जिन में चलते हैं उन (पथः) मार्गों को (सम्, एतु) सम्यक् प्राप्त होवे उस को (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानते हुए आप (देवान्) विद्वानों को (एहि) प्राप्त हूजिये जिस से (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल (प्रदिशः) सब दिशा विदिशाओं को (सचन्ताम्) सम्बन्ध करें आप (अस्मै) इस (यजमानाय) यज्ञ करने वाले पुरुष के लिये (स्वधाम्) अन्न को (धेहि) धारण कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०-जो पुरुष अग्नि और जलादि से युक्त किये भाफ से चलने वाले यानों से शीघ्र मार्गों में जा आ के सब दिशाओं में भ्रमण करें वे वहां २ सर्वत्र पुष्कल अन्नादि को प्राप्त कर बुद्धि से कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥२॥

ईड्य इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता ।

पङ्क्तिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चाऽसि मेध्यश्च सप्ते । अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥३॥

ईड्यः । च । असि । वन्द्यः । च । वाजिन् । आशुः । च । असि । मेध्यः । च । सप्ते । अग्निः । त्वा । देवैः । वसुभिरिति वसुऽभिः । सजोषा इति सऽजोषाः । प्रीतम् । वह्निम् । वहतु । जातवेदा इति जातऽवेदाः ॥३॥

पदार्थः—(ईड्यः) स्तोतुमर्हः (च) (असि) (वन्द्यः) वन्दितुं नमस्कर्त्तुं योग्यः (च) (वाजिन्) प्रशस्तवेगवन् (आशुः) शीघ्रगामी (च) (असि) (मेध्यः) संगमनीयः (च) (सप्ते) अश्व इव पुरुषार्थिन् (अग्निः) पावकः (त्वा) त्वाम् (देवैः) दिव्यगुणैः (वसुभिः) पृथिव्यादिभिः सह (सजोषाः) समानप्रीतिः (प्रीतम्) प्रशस्तम् (वह्निम्) वोढारम् (वहतु) (जातवेदाः) जातवित्तः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे वाजिन् सप्ते शिल्पिन् विद्वन् यतो जातवेदाः सजोषाः सन् भवान् वसुभिर्देवैः सह प्रीतं वह्निं वहतु यो च त्वा त्वामग्निर्वहतु तस्मात्त्वमीड्यश्चासि वन्द्यश्चासि आशुश्चासि मेध्यश्चासि ॥ ३ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः पृथिव्यादिविकारैर्यानादीनि रचयित्वा तत्र वेगवन्तं वोढारमग्निं संप्रयुञ्जीरंस्ते प्रशंसनीया मान्याः स्युः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित वेग वाले (सप्ते) घोड़े के तुल्य पुरुषार्थी उत्साही कारीगर विद्वन् ! जिस कारण (जातवेदाः) प्रसिद्ध भोगों वाले (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त हुए आप (वसुभिः) पृथिवी आदि (देवैः) दिव्य गुणों वाले पदार्थों के साथ (प्रीतम्) प्रशंसा को प्राप्त (वह्निम्) यज्ञ में होमे हुए पदार्थों को मेघमण्डल में पहुंचाने वाले अग्नि को (वहतु) प्राप्त कीजिये और जिस (त्वा) आप को (अग्निः) अग्नि पहुंचावे । इस लिये आप (ईड्यः) स्तुति के योग्य (च) भी (असि) हैं (वन्द्यः) नमस्कार करने योग्य (च) भी हैं (च) और (आशुः) शीघ्रगामी (च) तथा (मेध्यः) समागम करने योग्य (असि) हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी आदि विकारों से सवारी आदि को रच के उस में वेगवान् पहुंचाने वाले अग्नि को संप्रयुक्त करें वे प्रशंसा के योग्य मान्य होवें ॥ ३ ॥

स्तीर्णमित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् । देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ ४ ॥

स्तीर्णम् । बर्हिः । सुष्टरीम । सुस्तरीमेति सुऽस्तरीम । जुषाणा । उरु । पृथु । प्रथमानम् । पृथिव्याम् । देवेभिः । युक्तम् । अदितिः । सजोषा इति सऽजोषाः । स्योनम् । कृण्वाना । सुविते । दधातु ॥ ४ ॥

पदार्थः—(स्तीर्णम्) सर्वतोऽङ्गोपाङ्गैराच्छादितं यानम् (बर्हिः) अन्तरिक्षमुदकं वा (सुष्टरीम) सुष्ठु स्तृणीम । अत्र संहितायामिति दीर्घः (जुषाणा) सेवमाना (उरु) बहु (पृथु) विस्तीर्णम् (प्रथमानम्) प्रख्यातम् (पृथिव्याम्) भूमौ (देवेभिः) दिव्यैः पदार्थैः (युक्तम्) (अदितिः) नाशरहिता (सजोषा) समानैः सेविता (स्योनम्) सुखम् (कृण्वाना) कुर्वती (सुविते) प्रेरिते (दधातु) ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् वयं यथा पृथिव्यामुरु पृथु प्रथमानं स्तीर्णं बर्हिर्जुषाणा सजोषा देवेभिर्युक्तं स्योनं कृण्वानाऽदितिर्विद्युत्सर्वं सुविते दधातु तां सुष्टरीम तथा त्वं प्रयतस्व ॥ ४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या या पृथिव्यादिषु व्याप्ताऽखण्डिता विद्युद्विस्तीर्णानि कार्याणि संसाध्य सुखं जनयति तां कार्येषु प्रयुज्य प्रयोजनसिद्धिं सम्पादयत ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! हम लोग जैसे (पृथिव्याम्) भूमि में (उरु) बहुत (पृथु) विस्तीर्ण (प्रथमानम्) प्रख्यात (स्तीर्णम्) सब ओर से अङ्ग उपाङ्गों से पूर्ण यान और (बर्हिः) जल वा अन्तरिक्ष को (जुषाणा) सेवन करती हुई (सजोषाः) समान गुण वालों ने सेवन की (देवेभिः) दिव्य पदार्थों से(युक्तम्)युक्त (स्योनम्) सुख को(कृण्वाना)करती हुई (अदितिः) नाशरहित बिजुली सब को (सुविते) प्रेरणा किये यन्त्र में (दधातु) धारण करे उस को (सुष्टरीम) सुन्दर रीति से विस्तार करें वैसे आप भी प्रयत्न कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो ! जो पृथिवी आदि में व्याप्त अखण्डित बिजुली विस्तृत बड़े २ कार्य्यों को सिद्ध कर सुख को उत्पन्न करती है उस को कार्यों में प्रयुक्त कर प्रयोजनों की सिद्धि करो ॥ ४ ॥

एता इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः अग्निर्देवता ॥

त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः॥

कीदृग्द्वारवन्ति गृहाणि स्युरित्याह ॥

कैसे द्वारों वाले घर हों इस वि० ॥

एता उ वः सुभगा विश्वरूपा विपक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः । ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥ ५ ॥

एताः । ऊँऽइत्यूँ । वः । सुभगाऽइति सुऽभगाः । विश्वरूपाइति विश्वऽरूपाः । वि । पक्षोभिरिति पक्षऽभिः । श्रयमाणाः । उत् । आतैः । ऋष्वाः । सतीः । कवषाः । शुम्भमानाः । द्वारः । देवीः । सुप्रायणाः । सुप्रायनाइति सुऽप्रायनाः । भवन्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः—(एताः) दीप्तयः (उ) वितर्के (वः) युष्मभ्यम् (सुभगाः) सुष्ठ्वैश्वर्यप्रदाः (विश्वरूपाः) विविधरूपगुणाः (वि) (पक्षोभिः) पक्षैः (श्रयमाणाः)सेवमानाः (उत्) उत्कृष्टतया (आतैः)सततं गमकैः (ऋष्वाः) महत्यः । ऋष्व इति महन्ना० निघं० ३ । ३ । (सतीः) विद्यमानाः (कवषाः)शब्दं कुर्वाणाः (शुम्भमानाः) सुशोभिताः (द्वारः) (देवीः) देदीप्यमानाः (सुप्रायणाः) सुखेन गमनाधिकरणाः (भवन्तु) ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा व एताः सुभगा विश्वरूपा ऋष्वाः कवषा शुम्भमानाः सतीर्देवीर्द्वार उदातैः पक्षोभिः श्रयमाणाः पक्षिपङ्क्तय इव सुप्रायणा विभवन्तु तादृशीर्भवन्तो रचयन्तु ॥ ५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्यैरीदृशानि गृहद्वाराणि निर्मातव्यानि येभ्यो वायुनिरोधो न स्याद्यथाऽन्तरिक्षेऽनिरुद्धाः पक्षिणः सुखेनगच्छन्त्यागच्छन्ति तथा तेषु गन्तव्यमागन्तव्यं च ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (वः) तुम्हारी (एताः) ये दीप्ति (सुभगाः) सुन्दर ऐश्वर्यदायक (विश्वरूपाः) विविध प्रकार के रूपों वाले (ऋष्वाः) बड़े ऊंचे चौड़े (कवषाः) जिन में बोलने से शब्द की प्रतिध्वनि हो (शुम्भमानाः) सुन्दर शोभायुक्त (सतीः) हुए (देवीः) रंगों से चित्र विलाते हुए (उत्, आतैः) उत्तम रीति से निरन्तर जाने के हेतु (पक्षोभिः) बायें दहिने भागों से

(श्रयमाणाः) सेवित पक्षियों की पङ्क्तियों के तुल्य (सुप्रायणाः) सुख से जाने के आधार (द्वारः) द्वार (वि, भवन्तु) सर्वत्र घरों में हों वैसे (उ) ही आप लोग भी बनावें ॥ ५ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि ऐसे द्वारों वाले घर बनावें कि जिन से वायु न रुके। जैसे आकाश में विना रुकावट के पक्षी सुखपूर्वक उड़ते हैं वैसे उन द्वारों में जावें आवें ॥ ५ ॥

अन्तरेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । मनुष्या देवताः ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने । उषासा वाᳬ सुहिरण्ये सुशिल्पेऋतस्य योनाविह सादयामि ॥ ६ ॥

अन्तरा । मित्रावरुणा । चरन्तीऽइति चरन्ती । मुखम् । यज्ञानाम् । अभि । संविदानेऽइति सम्ऽविदाने । उषासा । उषसेत्युषसा । वाम् । सुहिरण्येऽइति सुऽहिरण्ये । सुशिल्पेऽइति सुऽशिल्पे । ऋतस्य । योनौ । इह । सादयामि ॥ ६ ॥

पदार्थः-(अन्तरा) अन्तरौ (मित्रावरुणा) प्राणोदानौ (चरन्ती) प्राप्नुवत्यौ (मुखम्) (यज्ञानाम्) सङ्गन्तव्यानाम् (अभि) पदार्थानाम् (संविदाने) सम्यग्विज्ञापिके (उषासा) प्रातःसायंवेले (वाम्) युवाम् (सुहिरण्ये) सुष्ठुतेजोयुक्ते (सुशिल्पे) सुष्ठुशिल्पक्रिया ययोस्ते (ऋतस्य) सत्यस्य (योनौ) निमित्ते (इह) अस्मिन् गृहे (सादयामि) स्थापयामि ॥ ६ ॥

अन्वयः– हे शिल्पविद्याप्रचारकौ विद्वांसौ यथाहमन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती यज्ञानां मुखमभि संविदाने सुहिरण्ये सुशिल्पे उषासा ऋतस्य योनाविह सादयामि तथा वां मह्यं स्थापयेतम् ॥ ६ ॥

भावार्थः– अत्र वाचकलु०–यथा प्रातः सायं वेले शुद्धस्थानसेविते मनुष्याणां प्राणोदानवत्सुखकारिके भवतस्तथा शुद्धदेशे निर्मितं बहुविस्तीर्णद्वारं गृहं सर्वथा सुखयति ॥ ६ ॥

पदार्थः– हे शिल्प विद्या के प्रचारक दो विद्वानो ! जैसे मैं (अन्तरा) भीतर शरीर में (मित्रावरुणा) प्राण तथा उदान (चरन्ती) प्राप्त होते हुए (यज्ञानाम्) सङ्गति के योग्य पदार्थों के (मुखम्) मुख्य भाग को (अभि,संविदाने)सब ओर से सम्यक् ज्ञान के हेतु (सुहिरण्ये) सुन्दर तेजयुक्त (सुशिल्पे) सुन्दर कारीगरी जिस में हो (उषासा) प्रातः तथा सायंकाल की वेलाओं को (ऋतस्य) सत्य के (योनौ) निमित्त (इह) इस घर में (सादयामि) स्थापन करता हूं वैसे (वाम्) तुम दोनों मेरे लिये स्थापन करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०–जैसे सवेरे तथा सायंकाल की वेला शुद्ध स्थान में सेवी हुई मनुष्यों को प्राण उदान के समान सुखकारिणी होती हैं वैसे शुद्ध देश में बनाया बड़े२ द्वारों वाला घर सब प्रकार सुखी करता है ॥ ६ ॥

प्रथमेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अश्विनौ देवते ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अथाऽध्ययनाध्यापने कथं स्यातामित्याह ॥
अब पढ़ने पढ़ाने कैसे होवें इस वि० ॥

प्रथमा वां सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा । अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ७ ॥

प्रथमा । वाम् । सरथिनेति सऽरथिना । सुवर्णेति सुऽवर्णा । देवौ । पश्यन्तौ । भुवनानि । विश्वा । अपिऽप्रयम् । चोदना । वाम् । मिमाना । होतारा । ज्योतिः । प्रदिशेति प्रऽदिशा । दिशन्ता ॥ ७ ॥

पदार्थः— (प्रथमा) आदिमौ (वाम्) युवयोः (सरथिना) रथिभिः सह वर्त्तमानौ (सुवर्णा) शोभनो वर्णो ययोस्तौ (देवौ) देदीप्यमानौ (पश्यन्तौ) समीक्षमाणौ (भुवनानि) निवासाऽधिकरणानि (विश्वा) सर्वाणि (अपिप्रयम्) प्रीणामि। ण्यन्ताल्लुङ्प्रयोगोऽयम्(चोदना)प्रेरणानि कर्माणि (वाम्) युवाम् (मिमाना) निश्चेतारौ (होतारा) दातारौ (ज्योतिः)प्रदीप्तिः (प्रदिशा) प्रकर्षेण बोधयन्तौ(दिशन्ता) उच्चारयन्तौ ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिनौ यौ प्रथमा सरथिना सुवर्णा विश्वा भुवनानि पश्यन्तौ वां चोदना मिमाना ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता होतारा देवौ विद्वांसौ कुर्यातां यथा त्वमहमपिप्रयन्तथा वा युवां तौ प्राप्नुतम् ॥ ७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये विद्यार्थिनो निष्कापट्येन विदुषः सेवन्ते ते विद्याप्रकाशं लभन्ते । यदि विद्वांसः कपटालस्ये विहाय सर्वान् सत्यमुपदिशेयुस्तर्हि ते सुखिनः कथं न जायेरन् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे दो विद्यार्थियो ! जो (प्रथमा) पहिले (सराथिना) रथ वालों के साथ वर्त्तमान (सुवर्णा) सुन्दर गोरेवर्ण वाले दो विद्वान (विश्वा) सब (भुवनानि) बसने के आधार लोकों को (पश्यन्तौ) देखते हुए (वाम्)

तुम दोनों के (चोदना) प्रेरणारूप कर्मों को (मिमाना) जांचते हुए (ज्योतिः) प्रकाश को (प्रदिशा) अच्छे प्रकार जानते तथा (दिशन्ता) उच्चारण करते हुए तुम को (होतारा) दानशील (दैव्या) तेजस्वी विद्वान् करें जैसे उन को मैं (अपिप्रयम्) तृप्त करता हूं वैसे (धाम्) तुम दोनों उन विद्वानों को प्राप्त होओ ॥७॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्यार्थी लोग निष्कपटता से विद्वानों का सेवन करते हैं वे विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं जो विद्वान् लोग कपट और आलस्य को छोड़ सब को सत्य का उपदेश करें तो वे सुखी कैसे न होवें ॥ ७ ॥

आदित्यैरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । सरस्वती देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञꣳ सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् । इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥ ८ ॥

आदित्यैः । नः । भारती । वष्टु । यज्ञम् । सरस्वती । सह । रुद्रैः । नः । आवीत् । इडा । उपहूतेत्युपऽहूता । वसुभिरिति वसुऽभिः । सजोषा इति सऽजोषाः । यज्ञम् । नः । देवीः । अमृतेषु । धत्त ॥ ८ ॥

पदार्थः—(आदित्यैः) पूर्णविद्यावद्भिः (नः) अस्मभ्यम् (भारती) सर्वविद्याधर्त्री सर्वथा पोषिका (वष्टु) कामयताम् (यज्ञम्) सङ्गतं योग्यं बोधम् (सरस्वती) प्रशस्तविज्ञानवती वाक् (सह) (रुद्रैः) मध्यमैर्विद्वद्भिः (नः) अस्मान् (आवीत्) प्राप्नुयात्

(इडा) स्तावि‌का वाक् (उपहूता) यथावत्स्पर्द्धिता (वसुभिः) प्रथमकल्पैर्विद्वद्भिः (सजोषाः) समानैः सेविताः (यज्ञम्) प्राप्तव्यमानन्दम् (नः) अस्मान् (देवीः) त्रिविधा वाणीः (अमृतेषु) नाशरहितेषु जीवादिपदार्थेषु (धत्त) धरत दत्त वा ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् भवान् या आदित्यैरुपदिष्टोपहूता भारती नो यज्ञं सम्पादयति तथा सह नोऽस्मान्वष्टु या रुद्रैरुपदिष्टा सरस्वती नोऽस्मानावीत् या सजोषा इडा वसुभिरुपदिष्टा सती यज्ञं साध्नोति हे जना ता देवीरस्मानमृतेषु दध्युस्ता यूयमस्मभ्यं धत्त ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरुत्तममध्यमनिकृष्टानां विदुषां सकाशाच्छ्रुता पठिता वा विद्यावाणी स्वीकार्य्या न मूर्खाणां सकाशात् सा वाणी मनुष्याणां सर्वदा सुखसाधिका भवति ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जो (आदित्यैः) पूर्ण विद्या वाले उत्तम विद्वानों ने उपदेश की (उपहूता) यथावत् स्पर्द्धा से ग्रहण की (भारती) सब विद्याओं को धारण और सब प्रकार पुष्टि करने हारी वाणी (नः) हमारे लिये (यज्ञम्) सङ्गत हमारे योग्य बोध को सिद्ध करती है उस के (सह) साथ (नः) हम को (वष्टु) कामना वाले कीजिये जो (रुद्रैः) मध्य कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की (सरस्वती) उत्तम प्रशस्त विज्ञानयुक्त वाणी (नः) हम को (आवीत्) प्राप्त होवे जो (सजोषाः) एक से विद्वानों ने सेवी (इडा) स्तुति की हेतु वाणी (वसुभिः) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की हुई (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य आनन्द को सिद्ध करती है। हे मनुष्यो ! ये (देवीः) दिव्यरूप तीन प्रकार की वाणी हम को (अमृतेषु) नाशरहित जीवादि नित्य पदार्थों में धारण करें उन को तुम लोग भी हमारे अर्थ (धत्त) धारण करो ॥८॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि उत्तम मध्यम निकृष्ट विद्वानों से सुनी वा पढ़ी विद्या तथा वाणी का स्वीकार करें किन्तु मूर्खों से नहीं, वह वाणी मनुष्यों को सब काल में सुख सिद्ध करने वाली होती है ॥ ८ ॥

त्वष्टेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । त्वष्टा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः । त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः ॥ ९ ॥

त्वष्टा । वीरम् । देवकाममिति देवऽकामम् । जजान । त्वष्टुः । अर्वा । जायते । आशुः । अश्वः । त्वष्टा । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । जजान । बहोः । कर्त्तारम् । इह । यक्षि । होतरिति होतः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(त्वष्टा) विद्यादिसद्गुणैःप्रकाशमानः (वीरम्) (देवकामम्) यो देवान् विदुषः कामयते तम् (जजान) जनयति (त्वष्टुः) प्रदीप्ताद्विचक्षणात् (अर्वा) शीघ्रंगन्ता (जायते) (आशुः) तीव्रवेगः (अश्वः) तुरङ्गः (त्वष्टा) स्वात्मप्रकाशितः (इदम्) (विश्वम्) सर्वम् (भुवनम्) लोकजातम् (जजान) जनयति (बहोः) बहुविधस्य संसारस्य (कर्त्तारम्) (इह) अस्मिन्संसारे (यक्षि) यजसि सङ्गच्छसे (होतः) आदातः ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे होतस्त्वं यथा त्वष्टा विद्वान् देवकामं वीरं जजान यथा त्वष्टुराशुरर्वाश्वो जायते यथा त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान तं बहोः कर्त्तारमिह यक्षि तथा वयमपि कुर्याम ॥ ९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०-ये विद्याकामान्मनुष्यान्विदुषः कुर्युर्ये सद्योजातशिक्षोऽश्वइव तीव्रवेगेन विद्याः प्राप्नोति यथा बहुविधस्य संसारस्य स्रष्टेश्वरः सर्वान्व्यवस्थापयति तथाऽध्यापकाऽध्येतारौ भवन्तु ॥९॥

पदार्थः—हे (होतः) ग्रहण करने हारे जन ! तू जैसे(त्वष्टा) विद्या आदि उत्तम गुणों से शोभित विद्वान् (देवकामम्) विद्वानों की कामना करने हारे (वीरम्) वीर पुरुष को (जजान) उत्पन्न करता है जैसे (त्वष्टुः) प्रकाश रूप शिक्षा से (आशुः) शीघ्रगामी (अर्वा) वेगवान् (अश्वः) घोड़ा (जायते) होता है। जैसे (त्वष्टा) अपने स्वरूप से प्रकाशित ईश्वर (इदम्) इस (विश्वम्) सब (भुवनम्) लोकमात्र को (जजान) उत्पन्न करता है उस (बहोः) बहुविध संसार के (कर्त्तारम्) रचने वाले परमात्मा का (इह) इस जगत् में (यक्षि) पूजन कीजिये वैसे हम लोग भी करें ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो विद्वान् लोग विद्या चाहने वाले मनुष्यों को विद्वान् करें, शीघ्र जिस को शिक्षा हुई हो उस घोड़े के समान तीक्ष्णता से विद्या को प्राप्त होता है जैसे बहुत प्रकार के संसार का स्रष्टा ईश्वर सब की व्यवस्था करता है वैसे अध्यापक और अध्येता होवें ॥ ९ ॥

अश्व इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्यऋषिः । सूर्य्योदेवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्वो॑ घृ॒तेन॒ त्मन्या॒ सम॑क्त॒ उप॑ दे॒वाँ२॥ऽऋ॑तु॒शः पाथ॑ एतु । वन॒स्पति॑र्देवलो॒कं प्र॑जा॒नन्न॒ग्निना॑ ह॒व्या स्व॑दि॒तानि॑ वक्षत् ॥ १० ॥

अश्वः । घृतेन । त्मन्या । समक्तऽइति सम्ऽअक्तः । उप । देवान् । ऋतुशऽइत्यृतुऽशः । पाथः । एतु । वनस्पतिः । देवलोकमिति देवऽलोकम् । प्रजानन्निति प्रऽजानन् । अग्निना । हव्या । स्वदितानि । वक्षत् ॥ १० ॥

पदार्थः—(अश्वः) आशुगामी वह्निः (घृतेन) उदकेन (त्मन्या) आत्मना । अत्राकारलोपो विभक्तेर्यादेशश्च । (समक्तः) सम्यक् प्रकटयन् (उप) (देवान्) दिव्यान् व्यवहारान् (ऋतुशः) ऋतावृतौ (पाथः) अन्नम् (एतु) प्राप्नोतु (वनस्पतिः) वनानां किरणानां पालकः सूर्यः (देवलोकम्) देवानां विदुषां लोकं दर्शकं व्यवहारम् (प्रजानन्) प्रकर्षेण विदन्त्सन् (अग्निना) पावकेन (हव्या) अत्तुमर्हाणि (स्वदितानि) आस्वादितानि (वक्षत्) वहेत् प्रापयेत् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे विद्वन् देवलोकं प्रजानन्त्सन् यथा घृतेन संयोजितोऽश्वस्त्मन्या ऋतुशो देवान्त्समक्तः सन् पाथ उपैतु अग्निना सह वनस्पतिः स्वदितानि हव्या वक्षत्तथा त्मन्या वर्त्तस्व ॥ १० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे विद्वांसो मनुष्याः! यथा सूर्य ऋतून् विभज्योत्तमानि सेवितव्यानि वस्तूनि जनयति तथोत्तमानधमान् विद्यार्थिनो विद्यांश्चाविद्यांश्च पृथक् परीक्ष्य सुशिक्षितान् संपादयन्तु, अविद्यांश्च निवर्त्तयन्तु ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (देवलोकम्) सब को मार्ग दिखाने वाले विद्वानों के मार्ग को (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानते हुए जैसे (घृतेन) जल से संयुक्त किया (अश्वः) शीघ्रगामी अग्नि (त्मन्या) आत्मा से (ऋतुशः) ऋतु २ में

(देवान्) उत्तम व्यवहारों को (समक्तः) सम्यक् प्रकट करता हुआ (पाथः) अन्न को (उप, एतु) निकट से प्राप्त हूजिये (अग्निना) अग्नि के साथ (वनस्पतिः) किरणों का रक्षक सूर्य (स्वदितानि) स्वादिष्ठ (हव्या) भोजन के योग्य अन्नों को (वक्षत) प्राप्त करे वैसे आत्मा से वर्त्ताव कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः— इस मंत्र में वाचकलु०- हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे सूर्य ऋतुओं का विभाग कर उत्तम सेवने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न करता है वैसे उत्तम अधम विद्यार्थी और विद्या अविद्या की अलग २ परीक्षा कर अच्छे शिक्षित करें और अविद्या की निवृत्ति करें ॥ १० ॥

प्रजापतेरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्यऋषिः । अग्निर्देवता ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने । स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥ ११ ॥

प्रजापतेरिति प्रजाऽपतेः । तपसा । वावृधानः । ववृधानऽइति ववृधानः । सद्यः । जातः । दधिषे । यज्ञम् । अग्ने । स्वाहाकृतेनेति स्वाहाऽकृतेन । हविषा । पुरोगाऽइति पुरःऽगाः । याहि । साध्याः । हविः । अदन्तु । देवाः ॥ ११ ॥

पदार्थः—(प्रजापतेः) प्रजायाः पालकस्य (तपसा) प्रतापेन (वावृधानः) वर्द्धमानः (सद्यः, जातः) शीघ्रं प्रसिद्धः सन् (दधिषे) धरसि (यज्ञम्) (अग्ने) पावकवद्वर्त्तमान विद्वन् ! (स्वाहाकृतेन) सुष्ठुसंस्कारक्रियया निष्पादितेन (हविषा) दातुमर्हेण (पुरोगाः) अग्रगण्या

अग्रगामिनो वा (याहि) प्राप्नुहि (साध्या) साधनसाध्याः (हविः) अत्तव्यमन्नम् (अदन्तु) भुञ्जताम् (देवाः) विद्वांसः ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे अग्ने! त्वं सद्यो जातः प्रजापतेस्तपसा वावृधानः स्वाहाकृतेन हविषा यज्ञं दधिषे ये पुरोगाः साध्यादेवा हविरदन्तु तान्याहि प्राप्नुहि ॥११॥

भावार्थः—ये मनुष्याः सूर्यवत्प्रजापालका धर्मेण प्राप्तस्य पदार्थस्य भोक्तारो भवन्ति ते सर्वोत्तमा गण्यन्ते ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि! आप (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुए (प्रजापतेः) प्रजारक्षक ईश्वर के (तपसा) प्रताप से (वावृधानः) बढ़ते हुए (स्वाहाकृतेन) सुन्दर संस्काररूप क्रिया से सिद्ध हुए (हविषा) होम में देने योग्य पदार्थ से (यज्ञम्) यज्ञ को (दधिषे) धारते हो जो (पुरोगाः) मुखिया वा अगुआ (साध्याः) साधनों से सिद्ध करने योग्य (देवाः) विद्वान् लोग (हविः) ग्राह्य अन्न का (अदन्तु) भोजन करें उन को (याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य के समान प्रजा के रक्षक धर्म से प्राप्त हुए पदार्थ के भोगने वाले होते हैं वे सर्वोत्तम गिने जाते हैं ॥ ११ ॥

यदक्रन्दइत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । यजमानो देवता ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १२ ॥

यत्। अक्रन्दः। प्रथमम्। जायमानः। उद्यन्नित्युत्ऽयन्। समुद्रात्। उत। वा। पुरीषात्। श्येनस्य। पक्षा। हरिणस्य। बाहूऽइति बाहू। उपस्तुत्यमित्युपऽस्तुत्यम्। महि। जातम्। ते। अर्वन्॥ १२॥

पदार्थः—(यत्) यदा (अक्रन्दः) शब्दं कुरुषे (प्रथमम्) (जायमानः) (उद्यन्) उदयं प्राप्नुवन् (समुद्रात्) अन्तरिक्षात्। समुद्र इत्यन्तरिक्षनाम निघं० १।३ (उत) अपि (वा) (पुरीषात्) पालकात् परमात्मनः (श्येनस्य) पक्षिणः (पक्षा) पक्षौ (हरिणस्य) हर्त्तुं शीलस्य वीरस्य (बाहू) भुजौ (उपस्तुत्यम्) उपगतस्तुतिविषयम् (महि) महत् कर्म (जातम्) (ते) तव (अर्वन्) अश्वइव वेगवद्विद्वन्॥ १२॥

अन्वयः—हे अर्वन् विद्वन्! यत्समुद्रादुत वा पुरीषात्प्रथमं जायमानो वायुरिवोद्यंस्त्वमक्रन्दस्तदा ते हरिणस्य बाहू श्येनस्य पक्षेव एतत् महि जातमुपस्तुत्यं भवति॥ १२॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथाऽन्तरिक्षात्प्रकटो वायुः कर्माणि कारयति तथा शुभान्गुणान् यूयं स्वीकुरुत यथा पशूनां मध्येऽश्वो वेगवानस्ति तथा शत्रूणां निग्रहे वेगवन्तः श्येन इव वीरसेना प्रगल्भा भवत यद्येवं कुरुत तर्हि सर्वं युष्माकं प्रशंसितं स्यात्॥ १२॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वेग वाले विद्वान् पुरुष! (यत्) जब (समुद्रात्) अन्तरिक्ष (उत, वा) अथवा (पुरीषात्) रक्षक परमात्मा से (प्रथमम्) पहिले (जायमानः) उत्पन्न हुए वायु के समान (उद्यन्) उदय को प्राप्त हुए

को प्राप्त हुए (अक्रन्दः) शब्द करते हो तब (हरिणस्य) हरणशील वीर जन (ते) आप के (बाहू) भुजा (श्येनस्य) श्येनपक्षी के (पक्षा) पंखों के तुल्य बल कारी है यह (महि) महत् कर्म (जातम्) प्रसिद्ध (उपस्तुत्यम्) समीपस्थ स्तुति का विषय होता है ॥ १२

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुआ वायु कर्मों को कराता वैसे मनुष्यों के शुभ गुणों को तुम लोग ग्रहण करो जैसे पशुओं में घोड़ा वेगवान् है वैसे शत्रुओं को रोकने में वेगवान् श्येन पक्षी के तुल्य वीर पुरुषों की सेना वाले दृढ़ ढीठ होओ यदि ऐसे करो तो सब कर्म तुम्हारे प्रशंसित होवे ॥१२॥

यमेनेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ॥
भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

य॒मेन॑ द॒त्तं त्रि॒त ए॑न॒मायु॑न॒गिन्द्र॑ एणं प्रथ॒मो अध्य॑तिष्ठत् । ग॒न्ध॒र्वोऽअ॑स्य र॒श॒नाम॑गृभ्णा॒त्सूरा॒दश्वं॑ वसवो॒ निर॑तष्ट ॥ १३ ॥

य॒मेन॑ । द॒त्तम् । त्रि॒तः । ए॒न॒म् । आ॒यु॒न॒क् । अ॒यु॒न॒गित्य॑युनक् । इन्द्रः॑ । ए॒न॒म् । प्र॒थ॒मः । अधि॑ । अ॒ति॒ष्ठ॒त् । ग॒न्ध॒र्वः । अ॒स्य॒ । र॒श॒नाम् । अ॒गृ॒भ्णा॒त् । सूरा॑त् । अश्व॑म् । व॒स॒वः॒ । निः । अ॒त॒ष्ट॒ ॥१३॥

पदार्थः—(यमेन) नियन्त्रा वायुना (दत्तम्) (त्रितः) त्रिभ्यः पृथिवीजलान्तरिक्षेभ्यः (एनम्) वह्निम् आयुनक्

युनक्ति (इन्द्रः) विद्युत् (एनम्)। अत्र छान्दसं णत्वम् (प्रथमः) विस्तीर्णः प्रख्यातः (अधि) (अतिष्ठत्) उपरि तिष्ठति (गन्धर्वः) गोः पृथिव्या धर्त्ता (अस्य) सूर्यस्य (रशनाम्) रशनावत्किरणगतिम् (अगृभ्णात्) गृह्णाति (सूरात्) सूर्य्यात् (अश्वम्) आशुगामिनं वायुम् (वसवः) विद्वांसः (निः) (अतष्ट) तक्ष्णोति तनूकरोति ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे वसवो य इन्द्रस्त्रितो यमेन दत्तमेनमश्वं युनक्ति यं प्राप्य प्रथमोऽध्यतिष्ठद्गन्धर्वः सन्नस्य रशनामगृभ्णाद्सूरात्सूराद्यमश्वं निरतष्ट तं यूयं विस्तारयत ॥ १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्या ईश्वरेणेह यस्मिन्पदार्थे यादृशी पदार्थ रचना कृता तां यूयं विद्यया संवित्तेतां सृष्टिविद्यां गृहीत्वाऽनेकानि सुखानि साध्नुत च ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (वसवः) विद्वानो जो (इन्द्रः) बिजुली (त्रितः) पृथिवी जल और आकाश से (यमेन) नियमकर्त्ता वायु ने (दत्तम्) दिये अर्थात् उत्पन्न किये (एनम्) इस अग्नि को (आयुनक्) युक्त करती है (एनम्) इस को प्राप्त हो के (प्रथमः) विस्तीर्ण प्रख्यात विद्युत् (अध्यतिष्ठत्) सर्वोपरि स्थित होती है (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करता हुआ (अस्य) इस सूर्य की (रशनाम्) रस्सी के तुल्य किरणों की गति को (अगृभ्णात्) ग्रहण करता है इस (सूरात्) सूर्य रूप से (अश्वम्) शीघ्र गामी वायु को (निरतष्ट) सूक्ष्म करता है उस को तुम लोग विस्तृत करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! ईश्वर ने इस संसार में जिस पदार्थ में जैसी रचना की है उस को तुम लोग विद्या से जानो और इस सृष्टि विद्या को ग्रहण कर अनेक सुखों को सिद्ध करो ॥ १३ ॥

असीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

असि यमोऽअस्यादित्योऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन । असि सोमेन समया विपृक्तऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ १४ ॥

असि । यमः । असि । आदित्यः । अर्वन् । असि । त्रितः । गुह्येन । व्रतेन । असि । सोमेन । समया । विपृक्तऽइति विऽपृक्तः । आहुः । ते । त्रीणि । दिवि । बन्धनानि ॥ १४ ॥

पदार्थः—(असि) (यमः) नियन्तान्यायाधीशइव (असि) (आदित्यः) सूर्यइव विद्यया प्रकाशितः (अर्वन्) वेगवान् वह्निरिव वर्त्तमान जन (असि) (त्रितः) त्रिभ्यः (गुह्येन) गुप्तेन (व्रतेन) शीलेन (असि) (सोमेन) ऐश्वर्येण (समया) समीपे (विपृक्तः) विशेषेण सम्बद्धः (आहुः) कथयन्ति (ते) तव(त्रीणि) (दिवि) प्रकाशे (बन्धनानि) ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे अर्वन् यतस्त्वं गुह्येन व्रतेन त्रितो यमइवास्यादित्य इवासि विद्वानिवासि सोमेन समया विपृक्तोऽसि तस्य ते दिवि त्रीणि बन्धनान्याहुः॥१४॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या युष्माभिर्न्यायेशादित्यसोमादिगुणैर्भवितव्यम्। यथाऽस्य संसारस्य मध्ये वायुसूर्याकर्षणैर्बन्धनानि सन्ति तथैव परस्परस्य शरीरवाङ्मनआकर्षणैः प्रेमबन्धनानि कर्त्तव्यानि ॥१४॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) वेगवान् अग्नि के समान जन! जिससे तू (गुह्येन) गुप्त (व्रतेन) स्वभाव तथा (त्रितः) कर्म उपासना ज्ञान से युक्त (यमः) नियम कर्त्ता न्यायाधीश के तुल्य (असि) है (आदित्यः) सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशित जैसा (असि) है विद्वान् के सदृश (असि) है (सोमेन) ऐश्वर्य के निकट (विपृक्तः) विशेष कर संबद्ध (असि) है उस (ते) तेरे (दिवि) प्रकाश में (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धनों को अर्थात् ऋषि देव पितृ ऋणों के बन्धनों को (आहुः) कहते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो तुमको योग्य है कि न्यायाधीश सूर्य और चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त होवें जैसे इस संसार के बीच वायु और सूर्य के आकर्षणों से बन्धन हैं वैसे ही परस्पर शरीर वाणी मन के आकर्षणों से प्रेम के बन्धन करें ॥ १४ ॥

त्रीणीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता।

भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

फिर उसी वि०॥

त्रीणि तऽआहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे। उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा तऽआहुः परमं जनित्रम्॥ १५॥

त्रीणि । ते । आहुः । दिवि । बन्धनानि । त्रीणि । अप्स्वित्यप्ऽसु । त्रीणि । अन्तरित्यन्तः । समुद्रे । उतेवेत्युतऽइव । मे । वरुणः । छन्त्सि । अर्वन् । यत्र । ते । आहुः । परमम् । जनित्रम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(त्रीणि) (ते) तव (आहुः) कथयन्ति (दिवि) विद्याप्रकाशे (बन्धनानि) (त्रीणि) (अप्सु) प्राणेषु (त्रीणि) (अन्तः) मध्ये (समुद्रे) अन्तरिक्षे (उतेव) यथोत्प्रेक्षणम् (मे) मम (वरुणः) श्रेष्ठः (छन्त्सि) अर्चसि । छन्दतीत्यर्चतिकर्मा० निघं० । ३ । १४ (अर्वन्) विज्ञानयुक्त (यत्र) यस्मिन् जन्मनि (ते) तव । अत्र ऋचितुनुघेतिदीर्घः (आहुः) (परमम्) प्रकृष्टम् (जनित्रम्) ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे अर्वन् विद्वन् यत्र दिवि ते त्रीणि बन्धनानि विद्वांस आहुर्योगाप्सु त्रीणि यत्रान्तर्मध्ये समुद्रे च त्रीणि बन्धनान्याहुस्ते च परमं जनित्रमाहुः । येन वरुणः सन् विदुषः छन्त्स्युतेव तानि मे सन्तु ॥ १५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या आत्ममनःशरीरैर्ब्रह्मचर्येण विद्यासु नियता भूत्वा विद्यासुशिक्षे सञ्चिनुत । द्वितीयं विद्याजन्मप्राप्यार्चिता भवत येन येन सह यावान् स्वस्य सम्बन्धोऽस्ति तं विजानीत ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) विज्ञानयुक्त विद्वान् जन ! (यत्र) जिस (दिवि) विद्या के प्रकाश में (ते) आप के (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धनों को विद्वान् लोग (आहुः) कहते हैं जहां (अप्सु) प्राणों में (त्रीणि) तीन

जहां अन्तः बीच में और (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (त्रीणि) तीन बन्धनों को (आहुः) कहते हैं और (ते) आप के (परमम्) उत्तम (जनित्रम्) जन्म को कहते हैं जिस से (वरुणः) श्रेष्ठ हुए विद्वानों का (छन्त्सि) सत्कार करते हो (उतेव) उत्प्रेक्षा के तुल्य वे सब (मे) मेरे होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०— हे मनुष्यो आत्मा मन और शरीर में ब्रह्मचर्य के साथ विद्याओं में नियत होके विद्या और सुशिक्षा का संचय करो द्वितीय विद्या जन्म को पाकर पूजित होवो जिस२ के साथ अपना जितना सम्बन्ध है उस को जानो ॥ १५ ॥

इमेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
मनुष्यैरश्वरक्षणेन किं साध्यमित्याह ॥

मनुष्यों को घोड़ों के रखने से क्या सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफाना सनितुर्निधाना । अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ १६ ॥

इमा । ते । वाजिन् । अवमार्जनानीत्यवऽमार्जनानि । इमा । शफानाम् । सनितुः । निधानेति निऽधाना । अत्र । ते । भद्राः । रशनाः । अपश्यम् । ऋतस्य । याः । अभिरक्षन्तीत्यभिऽरक्षन्ति । गोपाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(इमा) इमानि प्रत्यक्षाणि (ते) तव (वाजिन्) अश्वइव वेगादिगुणसेनाधीश(अवमार्जनानि)शुद्धिकरणानि

(इमा) इमानि (शफानाम्) खुराणाम् (सनितुः)रक्षणानि यमस्य (निधाना) निधानानि स्थानानि (अत्र) अस्मिन् सैन्ये । अत्र संहितायामिति दीर्घः । (ते) तव (भद्राः) शुभकरीः (रशनाः) रज्जवः (अपश्यम्) पश्यामि (ऋतस्य) यथार्थम् । अत्र कर्मणि षष्ठी (याः) (अभिरक्षन्ति) सर्वतः पान्ति (गोपाः) पालिकाः ॥१६॥

अन्वयः—हे वाजिन् ! यथाऽहं ते तवेमाश्वस्यावमार्जनानीमाशफानां सनितुर्निधानाऽपश्यमत्र तेऽश्वस्य या भद्रा गोपा रशना ऋतस्याभि रक्षन्ति ता अपश्यं तथा त्वं पश्य ॥ १६ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु०—ये स्नानेनाश्वादीनां शुद्धिं तच्छफानां रक्षणायायसो निर्मितस्य योजनमन्यानि रशनादीनि च संयोज्य सुशिक्ष्य रक्षन्ति ते युद्धादिषु कार्येषु कृतसिद्धयो भवन्ति ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) घोड़े के तुल्य वेगादि गुणों से युक्त सेनाधीश ! जैसे मैं (ते) आप के (इमा) इन प्रत्यक्ष घोड़ों की (अवमार्जनानि) शुद्धि क्रियाओं और (इमा) इन (शफानाम्) खुरों के (सनितुः)रखने के नियम के (निधाना) स्थानों को (अपश्यम्) देखता हूं (अत्र) इस सेना में (ते) आप के घोड़े की (याः) जो (भद्राः) सुन्दर शुभकारिणी (गोपाः) उपद्रव से रक्षा करने हारी (रशनाः) लगाम की रस्सी (ऋतस्य) सत्य की (अभिरक्षन्ति) सब ओर से रक्षा करती हैं उन को मैं देखूं वैसे आप भी देखें ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग स्नान से घोड़े आदि की शुद्धि तथा उन के सुम्मों की रक्षा के लिये लोहे के बनाये नालों को संयुक्त और लगाम की रस्सी आदि सामग्री को संयुक्त कर अच्छी शिक्षा दे रक्षा करते हैं वे युद्धादि कार्यों में सिद्धि करने वाले होते हैं ॥ १६ ॥

आत्मानमित्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता।
त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥
यानरचनेन किं कार्यमित्याह॥
यानरचना से क्या करना चाहिये इस वि०॥

आत्मानं॑ ते॒ मन॑सा॒राद॑जानामवो दि॒वा प॒तय॑न्तं पत॒ङ्गम्। शिरो॑ऽअपश्यं प॒थिभिः॑ सु॒गेभि॑ररे॒णुभि॒र्जेह॑मानं पत॒त्रि॥१७॥

आ॒त्मान॑म्। ते॒। मन॑सा। आ॒रात्। अ॒जा॒ना॒म्। अ॒वः। दि॒वा। प॒तय॑न्तम्। प॒त॒ङ्गम्। शिरः॑। अ॒प॒श्य॒म्। प॒थिभि॒रिति॑ प॒थिऽभिः॑। सु॒गेभि॒रिति॑ सु॒ऽगेभिः॑। अ॒रे॒णुभि॒रित्य॑रे॒णुऽभिः॑। जेह॑मानम्। प॒त॒त्रि॥१७॥

पदार्थः—(आत्मानम्)(ते) तव (मनसा) विज्ञानेन (आरात्) निकटे (अजानाम्) जानामि (अवः) अधस्तात् (दिवा) अन्तरिक्षेण सह (पतयन्तम्) पतन्तं गच्छन्तं सूर्यं प्रति (पतङ्गम्)(शिरः) दूराच्छिरइव लक्ष्यमाणम् (अपश्यम्)(पथिभिः) मार्गैः (सुगेभिः) सुखेन गमनाधिकरणैः (अरेणुभिः) अविद्यमाना रेणवो येषु तैः (जेहमानम्) प्रयत्नेन गच्छन्तम् (पतत्रि) पतनशीलम्॥१७॥

अन्वयः—हे विद्वन्नहं यथा मनसारादवो दिवा पतङ्गं प्रति पतयन्तं ते पतत्रि शिरआत्मानमजानाम्। अरेणुभिः सुगेभिः पथिभिर्जेहमानं पतत्रि शिरोऽपश्यं तथा त्वं पश्य॥१७॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यूयं सर्वेभ्यो वेगवत्तमं सद्यो गमयितारं वह्निमिव धारमानं पश्यत सम्प्रयुक्तैरग्न्यादिभिस्सहितेषु यानेषु स्थित्वा जलस्थलान्तरिक्षेषु प्रयत्नेन गच्छताऽऽच्छत यथा शिर उत्तमाङ्गमस्ति तथैव विमानयानमुत्तमं मन्तव्यम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! मैं जैसे (मनसा) विज्ञान से (आरात्) निकट में (अवः) नीचे से (दिवा) आकाश के साथ (पतङ्गम्) सूर्य के प्रति (पतयन्तम्) चलते हुए (ते) आप के (आत्मानम्) आत्मा स्वरूप को (अजानाम्) जानता हूं और (अरेणुभिः) धूलि रहित निर्मल (सुगेभिः) सुखपूर्वक जिन में चलना हो उन (पथिभिः) मार्गों से (जेहमानम्) प्रयत्न के साथ जाते हुए (पतत्रि) पक्षीवत् उड़ने वाले (शिरः) दूर से शिर के तुल्य गोलाकार लक्षित होते विमानादि यान को (अपश्यम्) देखता हूं वैसे आप भी देखिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! तुम लोग सब से अतिवेग वाले शीघ्र चलाने हारे अग्नि के तुल्य अपने आत्मा को देखो, सम्प्रयुक्त किये अग्नि आदि के सहित यानों में बैठ के जल स्थल और आकाश में प्रयत्न से ज ओ आओ, जैसे शिर उत्तम है वैसे विमान यान को उत्तम मानना चाहिये ॥ १७ ॥

अत्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ शूरवीराः किं कुर्वन्तित्याह ॥

अब शूरवीर लोग क्या करें इस वि० ॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः । यदा ते मर्त्तो अनु भोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ १८ ॥

अत्र। ते। रूपम्। उत्तममित्युत्ऽतमम्। अपश्यम्। जिगीषमाणम्। इषः। आ। पदे। गोः। यदा। ते। मर्त्तः। अनु। भोगम्। आनट्। आत्। इत्। ग्रसिष्ठः। ओषधीः। अजीगरित्यजीगः॥ १८॥

पदार्थः-(अत्र) अस्मिन् व्यवहारे। अत्र संहितायामिति दीर्घः (ते) तव (रूपम्) (उत्तमम्) (अपश्यम्) पश्येयम् (जिगीषमाणम्) शत्रून् विजयमानम् (इषः) अन्नानि (आ) समन्तात् (पदे) प्रापणीये (गोः) पृथिव्याः (यदा) (ते) तव (मर्त्तः) मनुष्यः (अनु) आनुकूल्ये (भोगम्) (आनट्) व्याप्नोति। आनडिति व्याप्तिकर्मा० निघं० २। १८ (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (ग्रसिष्ठः) अतिशयेन ग्रसिता (ओषधीः) (अजीगः) निगलसि॥ १८॥

अन्वयः- हे वीर ते जिगीषमाणमुत्तमं रूपं गोः पदेऽत्र इषश्चाऽपश्यं ते मर्त्तो यदा भोगमानट् तदाऽऽदिद्ग्रसिष्ठः संस्त्वमोषधीरन्वजीगः॥ १८॥

भावार्थः— हे मनुष्या यथोत्तमानि पश्वादीनि सेनाङ्गानि विजयकराणि स्युस्तथा शूरवीरा विजयहेतवो भूत्वा भूमिराज्ये भोगान् प्राप्नुवन्तु॥१८॥

पदार्थः- हे वीर पुरुष! (ते) आप के (जिगीषमाणम्) शत्रुओं को जीतते हुए (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) और (गोः) पृथिवी के (पदे) प्राप्त होने योग्य (अत्र) इस व्यवहार में (इषः) अन्नों के दानों को (आ, अपश्यम्) अच्छे प्रकार देखूं (ते) आप का (मर्त्तः) मनुष्य (यदा) जब (भोगम्) भोग्य वस्तु को (आनट्) व्याप्त होता है तब (आत्) (इत्) इसके अनन्तरही (ग्रसिष्ठः) अति खाने वाले हुए आप (ओषधीः) ओषधियों को (अनु, अजीगः) अनुकूलता से भोगते हो॥ १८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम घोड़े आदि सेना के अङ्ग विजय करने वाले हों वैसे शूरवीर विजय के हेतु हो कर भूमि के राज्य में भोगों को प्राप्त हों ॥ १८ ॥

अनुत्वेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्यो देवता ।
विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
मनुष्यैः कथं राजप्रजाकार्याणि साधनीयानीत्याह ॥

मनुष्यों को कैसे राजप्रजा के कार्य सिद्ध करने चाहियें इस वि० ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् । अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ १९ ॥

अनु । त्वा । रथः । अनु । मर्यः । अर्वन् । अनु । गावः । अनु । भगः । कनीनाम् । अनु । व्रातासः । तव । सख्यम् । ईयुः । अनु । देवाः । ममिरे । वीर्यम् । ते ॥ १९ ॥

पदार्थः—(अनु) पश्चादानुकूल्ये वा (त्वा) त्वाम् (रथः) यानानि (अनु) (मर्यः) मनुष्याः (अर्वन्) अश्वइव वर्त्तमान (अनु) (गावः) (अनु) (भगः) ऐश्वर्यम् (कनीनाम्) कमनीयानां जनानाम् (अनु) (व्रातासः) मनुष्याः । व्राता इति मनुष्यना० निघं० । २ । ३ (तव) (सख्यम्) मित्रस्य भावं वा (ईयुः) प्राप्नुः (अनु) (देवाः) विद्वांसः (ममिरे) मिनुयुः (वीर्यम्) पराक्रमं बलम् (ते) तव ॥ १९ ॥

अन्वयः–हे अर्वन् विद्वन् ! ते कनीनां मध्ये वर्त्तमाना देवा आसासोऽनुवीर्यमनुममिरे तव सख्यं चान्वीयुस्त्वानु रथो त्वानु मर्यो त्वाऽनु गावो त्वाऽनु भगश्च भवतु ॥ १९ ॥

भावार्थः–यदि मनुष्याः ! सुशिक्षिता भूत्वाऽन्यान्सुशिक्षितान्कुर्युस्तेषां मध्यादुत्तमान्सभासदः सम्पाद्य सभासदां मध्यादत्युत्तमं सभेशं स्थापयित्वा राजप्रजाप्रधानपुरुषाणामेकानुमत्या राजकार्याणि साधयेयुस्तर्हि सर्वेषामनुकूला भूत्वा सर्वाणि कार्याण्यलं कुर्य्युः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान विद्वन् ! (ते) आप के (कनीनाम्) शोभायमान मनुष्यों के बीच वर्त्तमान (देवाः) विद्वान् (आसासः) मनुष्य (अनु, वीर्यम्) बल पराक्रम के अनुकूल (अनु, ममिरे) अनुमान करें और (तव) आप की (सख्यम्) मित्रता को (अनु, ईयुः) अनुकूल प्राप्त हों (त्वा) आप के (अनु) अनूकुल (रथः) विमानादि यान (त्वा) आप के (अनु) अनूकुल वा पीछे आश्रित (मर्यः) साधारण मनुष्य (त्वा) आप के (अनु) अनूकुल वा पीछे (गावः) गौ और (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल (भगः) ऐश्वर्य होवे ॥ १९ ॥

भावार्थः–यदि मनुष्य अच्छे शिक्षित हो कर औरों को सुशिक्षित करें उन में से उत्तमों को सभासद् और सभासदों में से अत्युत्तम सभापति को स्थापन कर राज प्रजा के प्रधान पुरुषों की एक अनुमति से राजकार्यों को सिद्ध करें तो सब आपस में अनुकूल हो के सब कार्यों को पूर्ण करें ॥ १९ ॥

हिरण्यशृङ्ग इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यैरश्वादिपदार्थगुणविज्ञानेन किं साध्यमित्याह ॥

मनुष्यों को अश्वादि पदार्थों के गुण ज्ञान से क्या सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

हिरण्यशृङ्गोऽयोऽस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् । देवा इदस्य हविरद्यमायन्योऽअर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ २० ॥

हिरण्यशृङ्गऽ इति हिरण्यऽशृङ्गः । अयः । अस्य । पादाः । मनोजवाऽ इति मनःऽजवाः । अवरः । इन्द्रः । आसीत् । देवाः । इत् । अस्य । हविरद्यमिति हविःऽअद्यम् । आयन् । यः । अर्वन्तम् । प्रथमः । अध्यतिष्ठदित्यधिऽअतिष्ठत् ॥ २० ॥

पदार्थः—(हिरण्यशृङ्गः) हिरण्यानि तेजांसि शृङ्गाणीव यस्य सः (अयः) सुवर्णम् । अय इति हिरण्यना० निघं० १ । २ (अस्य) (पादाः) पद्यन्ते गच्छन्ति यैस्ते (मनोजवाः) मनसो जवो वेगइव जवो वेगो येषान्ते (अवरः) नवीनः (इन्द्रः) परमैश्वर्यहेतुर्विद्युदिव सभेशः (आसीत्) भवेत् (देवाः) विद्वांसः सभासदः (इत्) एव (अस्य) (हविरद्यम्) दातुमर्हमत्तुं योग्यं च (आयन्) प्राप्नुयुः (यः) (अर्वन्तम्) अश्ववत्प्राप्नुवन्तं वह्निम् (प्रथमः) आदिमः (अध्यतिष्ठत्) उपरि तिष्ठेत् ॥ २० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या योऽवरो हिरण्यशृङ्ग इन्द्र आसीद्यः प्रथमोऽर्वन्तमयश्चाध्यतिष्ठदस्य पादा मनोजवाः स्युर्देवा अस्य हविरद्यमिदायन् तं यूयमाश्रयत ॥ २० ॥

भावार्थः—ये मनुष्या अग्न्यादिपदार्थानां गुणकर्मस्वभावान् यथावज्जानीरंस्ते [illegible]न्यद्भुतानि कार्याणि साद्धुं शक्नुयुः । ये प्रीत्या राजकार्याणि [illegible]युस्ते सत्कारं ये नाशयेयुस्ते दण्डं चावश्यं प्राप्नुयुः ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (अवरः) नवीन (हिरण्यशृङ्गः) शृंग के तुल्य जिस के तेज हैं वह (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्य वाला विजुली के समान

सभापति (आसीत्) होवे जो (प्रथमः) पहिला (अर्वन्तम्) घोड़े के तुल्य मार्ग को प्राप्त होते हुए अग्नि तथा (अयः) सुवर्ण का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता अर्थात् अग्नि प्रयुक्त यान पर बैठ के चलाने वाला होवे राजा (अस्य) इस के (पादाः) पग (मनोजवाः) मन के तुल्य वेग वाले हों अर्थात् पग का चलना काम विमानादि से लेवे (देवाः) विद्वान् सभासद लोग (अस्य) इस राजा के (हविरद्यम्) देने और भोजन करने योग्य अन्न को (इत् आयन्) ही प्राप्त होवें उस को तुम लोग जानो ॥ २० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्न्यादि पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को यथावत् जानें वे बहुत अद्भुत कार्य्यों को सिद्ध कर सकें, जो प्रीति से राज कार्य्यों को सिद्ध करें वे सत्कार को और जो नष्ट करें वे दण्ड को अवश्य प्राप्त होवें ॥ २० ॥

ईर्मान्तास इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्या देवताः ।
भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
कीदृशा राजपुरुषा विजयमाप्नुवन्तीत्याह ॥
कैसे राजपुरुष विजय पाते हैं इस वि० ॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सꣳशूरणासो दिव्यासो अत्याः । हꣳसाइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ २१ ॥

ईर्मान्तास इतीर्मऽअन्तासः । सिलिकमध्यमास इति सिलिकऽमध्यमासः । सम् । शूरणासः । दिव्यासः । अत्याः । हꣳसाऽइवेति हꣳसाःऽइव । श्रेणिश इति श्रेणिऽशः । यतन्ते । यत् । आक्षिषुः । दिव्यम् । अज्मम् । अश्वाः ॥२१॥

पदार्थः—(ईर्मान्तासः) ईर्मः प्रेरितः स्थितिप्रान्तो येषान्ते (सिलिकमध्यमासः) सिलिकः संलग्नो मध्यदेशो येषान्ते

(सम्)(शूरणासः) सद्यो रणो युद्धविजयो येभ्यस्ते (दिव्यासः) प्राप्तदिव्यशिक्षाः (अत्याः)सततगामिनः (हंसाइव) हंसवद् गन्तारः (श्रेणिशः)बद्धपङ्क्तयः(यतन्ते)(यत्) ये (आक्षिषुः) प्राप्नुयुः (दिव्यम्) शुद्धम् (अज्मम्) अजन्ति गच्छन्ति यस्मिन्तं मार्गम्(अश्वाः)आशुगामिनः॥२१॥

अन्वयः—हे मनुष्या यद्ये ऽग्न्यादय इवेर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः शूरणासो दिव्यासोऽत्या अश्वाः श्रेणिशो हंसाइव यतन्ते दिव्यमज्मं समाक्षिषुस्तान्यूयं प्राप्नुत ॥ २१ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—येषां राजपुरुषाणां सुशिक्षिता दिव्यगतयो विजयहेतवस्सद्यो गामिनः पूरणानुगन्तारो हंसवद्गतयोऽश्वा अग्न्यादयः पदार्थाइव कार्यसाधकाः सन्ति ते सर्वत्र विजयमाप्नुवन्ति ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो अग्नि आदि पदार्थों के तुल्य (ईर्मान्तासः) जिन का बैठने का स्थान प्रेरणा किया गया (सिलिकमध्यमासः) गदा आदि से लगा हुआ है मध्य प्रदेश जिन का ऐसे (शूरणासः) शीघ्र युद्ध में विजय के हेतु (दिव्यासः) उत्तम शिक्षित (अत्याः) निरन्तर चलने वाले (अश्वाः) शीघ्रगामी घोड़े (श्रेणिशः) पङ्क्ति बांधे हुए (हंसाइव) हंस पक्षियों के तुल्य (यतन्ते) प्रयत्न करते हैं और (दिव्यम्) शुद्ध (अज्मम्) मार्ग को (सम्, आक्षिषुः) व्याप्त होवें उन को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं ०—जिन राजपुरुषों के सुशिक्षित उत्तम गति वाले घोड़े अग्न्यादि पदार्थों के समान कार्यसाधक होते हैं वे सर्वत्र विजय पाते हैं ॥ २१ ॥

तवेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । वायवो देवताः ।
विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
मनुष्यैरनित्यं शरीरं प्राप्य किं कार्यमित्याह ॥
मनुष्यों को अनित्य शरीर पा के क्या करना चाहिये इस वि० ॥

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तवं चित्तं वातइव ध्रजीमान् । तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ २२ ॥

तव । शरीरम् । पतयिष्णु । अर्वन् । तव । चित्तम् । वातऽइवेति वातःऽइव । ध्रजीमान् । तव । शृङ्गाणि । विष्ठिता । विस्थितेति विऽस्थिता । पुरुत्रेति पुरुऽत्रा । अरण्येषु । जर्भुराणा । चरन्ति ॥ २२ ॥

पदार्थः—(तव) (शरीरम्) (पतयिष्णु) पतनशीलम् (अर्वन्) अश्वइववर्त्तमान (तव) (चित्तम्) अन्तःकरणम् (वातइव) वायुवत् (ध्रजीमान्) वेगवान् (तव) (शृङ्गाणि) शृङ्गाणीवोच्छ्रितानि सेनाङ्गानि (विष्ठिता) विशेषेण स्थितानि (पुरुत्रा) पुरुषु बहुषु (अरण्येषु) जङ्गलेषु (जर्भुराणा) भृशं पोषकानि धारकाणि (चरन्ति) गच्छन्ति ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे अर्वन् वीर ! यस्य तव पतयिष्णु शरीरं तव चित्तं वातइव ध्रजीमान् तव पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा विष्ठिता शृङ्गाणि चरन्ति स त्वं धर्ममाचर ॥ २२ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०-ये मनुष्या अनित्येषु शरीरेषु स्थित्वा नित्यानि कार्य्याणि साध्नुवन्ति तेऽतुलसुखमाप्नुवन्ति ये वानस्थाः पशवइव भृत्याः सेनाश्च वर्त्तन्ते तेऽश्ववत्सद्योगामिनो भूत्वा शत्रून् विजेतुं शक्नुवन्ति ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान वीर पुरुष ! जिस (तव) तेरा (पतयिष्णु) नाशवान् (शरीरम्) शरीर (तव) तेरे (चित्तम्) अन्तःकरण की वृत्ति (वातइव) वायु के सदृश (ध्रजीमान्) वेगवाली अर्थात् शीघ्र दूरस्थ विषयों के तत्व जानने वाली (तव) तेरे (पुरुत्रा) बहुत (अरण्येषु) जङ्गलों में (जर्भुराणा) शीघ्र धारण पोषण करने वाले (विष्ठिता) विशेष कर स्थित (शृङ्गाणि) शृङ्गों के तुल्य ऊंचे सेना के अवयव (चरन्ति) विचरते हैं सो तू धर्म का आचरण कर ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य अनित्य शरीरों में स्थित हो नित्य कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे अतुल सुख पाते हैं और जो वन के पशुओं के तुल्य भृत्य और सेना हैं वे घोड़े के तुल्य शीघ्रगामी हो के शत्रुओं को जीतने को समर्थ होते हैं ॥ २२ ॥

उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्या देवताः ।
भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कीदृशा विद्वांसो हितैषिण इत्याह ॥

कैसे विद्वान् हितैषी होते हैं इस वि० ॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः । अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ २३ ॥

उप॑ । प्र । अ॒गा॒त् । श॒सन॑म् । वा॒जी । अर्वा॑ । दे॒व॒द्रीचा॑ । मन॑सा । दीध्या॑नः । अ॒जः । पु॒रः । नी॒य॒ते॒ । नाभिः॑ । अ॒स्य॒ । अनु॑ । प॒श्चात् । क॒वयः॑ । य॒न्ति॒ । रे॒भाः ॥ २३ ॥

पदार्थः—(उप) सामीप्ये (प्र) (अगात्) गच्छति (शसनम्) शंसन्ति हिंसन्ति यस्मिँस्तद्युद्धम् (वाजी) वेगवान् (अर्वा) गन्ताऽश्वः (देवद्रीचा) देवानञ्चता प्राप्नुवता (मनसा) (दीध्यानः) दीप्यमानः सन् (अजः) क्षेपणशीलः (पुरः) (नीयते) (नाभिः) मध्यभागः (अस्य) (अनु) आनुकूल्ये (पश्चात्) (कवयः) मेधाविनः (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (रेभाः) सर्वविद्यास्तोतारः । रेभइति स्तोतृना० निघं० ३ । १६ ॥ २३ ॥

अन्वयः—यो दीध्यानोऽजो वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा शसनमुपप्रागात् विद्वद्भिरस्य नाभिः पुरो नीयते तं पश्चाद् रेभाः कवयः अनुयन्ति ॥ २४ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसो दिव्येन विचारेण तुरङ्गान् सुशिक्ष्य गन्त्यादीन्संसाध्यैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति ते जगद्धितैषिणो भवन्ति ॥ २३ ॥

पदार्थः—जो (दीध्यानः) सुन्दर प्रकाशमान हुआ (अजः) फेंकने वाला (वाजी) वेगवान् (अर्वा) चालाक घोड़ा (देवद्रीचा) विद्वानों को प्राप्त होते हुए (मनसा) मन से (शसनम्) जिस में हिंसा होती है उस युद्ध को (उप, प्र, अगात्) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होता है ! विद्वानों से (अस्य) इस का (नाभिः) मध्यभाग अर्थात् पीठ (पुरः) आगे (नीयते) प्राप्त की जाती अर्थात् उस पर बैठते हैं उस को (पश्चात्) पीछे (रेभाः) सब विद्याओं की स्तुति करने वाले (कवयः) बुद्धिमान् जन (अनु, यन्ति) अनुकूलता से प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग उत्तम विचार से घोड़ों को अच्छी शिक्षा दे और अग्नि आदि पदार्थों को सिद्ध कर ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥ २३ ॥

उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्यो देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
के जना राज्यं शासितुमर्हन्तीत्याह ॥
कौन जन राज्यशासन करने योग्य होते हैं इस वि० ॥

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२॥ऽ अच्छा पितरं मातरं च । अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ २४ ॥

उप । प्र । अगात् । परमम् । यत् । सधस्थमिति सधऽस्थम् । अर्वान् । अच्छ । पितरम् । मातरम् । च । अद्य । देवान् । जुष्टतम इति जुष्टऽतमः । हि । गम्याः । अथ । आ । शास्ते । दाशुषे । वार्याणि ॥२४॥

पदार्थः—(उप) (प्र) (अगात्) प्राप्नोति (परमम्) (यत्) यः (सधस्थम्) सहस्थानम् (अर्वान्) ज्ञानी जनः । अत्र नलोपाभावश्छान्दसः । (अच्छ) सम्यक् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः । (पितरम्) जनकम् (मातरम्) जननीम् (च) (अद्य) इदानीम् । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः । (देवान्) विदुषः (जुष्टतमः) अतिशयेन सेवितः (हि) खलु (गम्याः) प्राप्नुहि (अथ) (आ) समन्तात् (शास्ते) इच्छति (दाशुषे) दात्रे (वार्याणि) स्वीकार्याणि भोग्यवस्तूनि ॥ २४ ॥

अन्वयः-हे विद्वन् यद्योऽर्वान् जुष्टतमस्सन् परमं सधस्थं पितरं मातरं देवांश्चाद्याशास्तेऽथ दाशुषे वार्याण्युपप्रागात् तं हि त्वमच्छ गम्याः ॥ २४ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—ये न्यायविनयाभ्यां परोपकारान्कुर्वन्ति ते उत्तमं उत्तमं जन्म श्रेष्ठान्पदार्थान् विद्वांसं पितरं विदुषीः मातॄश्च प्राप्य विद्वद्भक्ता भूत्वा महत्सुखं प्राप्नुयुस्ते राज्यमनुशासितुं शक्नुयुः ॥ २४ ॥

पदार्थः-हे विद्वन्! (यत्) जो (अर्वान्) ज्ञानी जन (जुष्टतमः) अतिशय कर सेवन किया हुआ (परमम्) उत्तम (सधस्थम्) साथियों के स्थान (पितरम्) पिता (मातरम्) माता (च) और (देवान्) विद्वानों की (अद्य) इस समय (आ, शास्ते) अधिक इच्छा करता है (अथ) इस के अनन्तर (दाशुषे) दाता जन के लिये (वार्याणि) स्वीकार करने और भोजन के योग्य वस्तुओं को (उप, प्र, अगात्) प्रकर्ष करके समीप प्राप्त होता है उस को (हि) ही आप (अच्छ, गम्याः) प्राप्त हूजिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग न्याय और विनय से परोपकारों को करते हैं वे उत्तम २ जन्म श्रेष्ठ पदार्थों विद्वान् पिता और विदुषी माता को प्राप्त हो और विद्वानों के सेवक हो के महान् सुख को प्राप्त हों वे राज्यशासन करने को समर्थ होवें ॥ २४ ॥

समिद्ध इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
धार्मिकाः किं कुर्वन्त्वित्याह ॥
धर्मात्मा लोग क्या करें इस वि० ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः । आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ २५ ॥

समिद्धऽइति सम्ऽइद्धः । अद्य । मनुषः । दुरोणे । देवः । देवान् । यजसि । जातवेद इति जातऽवेदः । आ । च । वह । मित्रमहऽ इति मित्रऽमहः । चिकित्वान् । त्वम् । दूतः । कविः । असि । प्रचेताऽइति प्रऽचेताः ॥ २५ ॥

पदार्थः–(समिद्धः) सम्यक् प्रकाशितः (अद्य) इदानीम् (मनुषः) मननशीलः (दुरोणे) गृहे (देवः) विद्वान् (देवान्) विदुषो दिव्यगुणान् वा (यजसि) सङ्गच्छसे (जातवेदः) प्राप्तप्रज्ञ (आ) (च) (वह) प्रापय हि (मित्रमहः) मित्राणि महयति पूजयति तत्सं-बुद्धौ (चिकित्वान्) विज्ञानवान् (त्वम्) (दूतः) यो दुनोति तापयति दुष्टान्सः (कविः) क्रान्तप्रज्ञो मेधावी (असि) (प्रचेताः) प्रकृष्टं चेतः संज्ञानमस्य सः ॥ २५ ॥

अन्वयः -हे जातवेदो मित्रमहो विद्वंस्त्वमद्य समिद्धोऽग्निरिव मनुषो देवः सन् यजसि चिकित्वान्दूतः प्रचेताः कविर्दुरोणेऽसि स त्वं देवांश्चावह ॥ २५ ॥

भावार्थः—यथाऽग्निर्दीपादिरूपेण गृहाणि प्रकाशयति तथा धार्मिका विद्वांसः स्वानि कुलानि प्रदीपयन्ति ये सर्वैः सह मित्रवद्वर्तन्ते त एव धार्मिकाः सन्ति ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुए (मित्रमहः) मित्रों का सत्कार करने वाले विद्वन् ! जो (त्वम्) आप (अद्य) इस समय (समिद्धः) सम्यक् प्रकाशित अग्नि के तुल्य (मनुषः) मननशील (देवः) विद्वान् हुए (यजसि) संग करते हो (च) और (चिकित्वान्) विज्ञानवान (दूतः) दुष्टों को दुःखदाई (प्रचेताः) उत्तम चेतनता वाला (कविः) सब विषयों में

अव्याहत बुद्धि (असि) हो सो आप (दुरोणे) घर में (देवान्) विद्वानों वा उत्तम गुणों को (आ, वह) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—जैसे अग्नि दीपक आदि के रूप से घरों को प्रकाशित करता है वैसे धार्मिक विद्वान् लोग अपने कुलों को प्रकाशित करते हैं जो मत्र के साथ मित्रवत् वर्त्तते हैं. वे ही धमात्मा हैं ॥ २५ ॥

तनूनपादित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान्देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व । मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २६ ॥

तनूनपादिति तनूऽनपात् । पथः । ऋतस्य । यानान् । मध्वा । समञ्जन्निति सम्ऽअञ्जन् । स्वदय । सुजिह्वेति सुऽजिह्व । मन्मानि । धीभिः । उत । यज्ञम् । ऋन्धन् । देवत्रेति देवऽत्रा । च । कृणुहि । अध्वरम् । नः ॥ २६ ॥

पदार्थः—(तनूनपात) यस्तनूर्विस्तृतान् पदार्थान् न पातयति तत्सम्बुद्धौ (पथः) (ऋतस्य) सत्यस्य जलस्य वा (यानान्) यान्ति येषु तान् (मध्वा) माधुर्येण (समञ्जन्) सम्यक् प्रकटीकुर्वन् (स्वदय) आस्वादय । अत्र संहितायामिति दीर्घः। (सुजिह्व) शोभनाजिह्वा वाग्वा

यस्य तत्सम्बुद्धौ (मन्मानि) यानानि (धीभिः) प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा (उत) अपि (यज्ञम्)सङ्गमनीयं व्यवहारम् (ऋन्धन्) संसाधयन् (देवत्रा) देवेषु विद्वत्सु स्थित्वा (च) (कृणुहि) कुरु (अध्वरम्) अहिंसनीयम् (नः) अस्माकम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—हे सुजिह्व तनूनपात् त्वमृतस्य यानानि पथोऽग्निरिव मध्वा समञ्जन्त्स्वदय धीभिर्मन्मान्युत नोऽध्वरं यज्ञमृन्धन्देवत्रा न कृणुहि ॥ २६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—धार्मिकैर्मनुष्यैः पथ्यौषधसेवनेन सुप्रकाशितैर्भवितव्यम् । आप्तेषु विद्वत्सु स्थित्वा प्रज्ञाः प्राप्याहिंसाख्यो धर्मः सेवितव्यः ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (सुजिह्व) सुन्दर जीभ वा वाणी से युक्त (तनूनपात्) विस्तृत पदार्थों को न गिराने वाले विद्वान् जन ! आप (ऋतस्य) सत्य वा जल के (यानानि) जिन में चलें उन (पथः) मार्गों को अग्नि के तुल्य (मध्वा) मधुरता अर्थात् कोमलता गान से (समञ्जन्) सम्यक् प्रकार करते हुए (स्वदय) स्वाद लीजिये अर्थात् प्रसन्न कीजिये (धीभिः) बुद्धियों वा कर्मों से (मन्मानि) यानों को (उत) और (नः) हमारे (अध्वरम्) नष्ट न करने और (यज्ञम्) संगत करने योग्य व्यवहार को (ऋन्धन्) सम्यक् सिद्ध करता हुआ (च) भी (देवत्रा) विद्वानों में स्थित हो कर (कृणुहि) कीजिये ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—धार्मिक मनुष्यों को चाहिये कि पथ्य औषध पदार्थों का सेवन करके सुन्दर प्रकार प्रकाशित होवें, आप्त विद्वानों की सेवा में स्थित हो तथा बुद्धियों को प्राप्त हो के अहिंसारूप धर्म को सेवें ॥ २६ ॥

नाराशꣳसस्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वान्देवता ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः । ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २७ ॥

नराशꣳसस्य । महिमानम् । एषाम् । उप । स्तोषाम । यजतस्य । यज्ञैः । ये । सुक्रतव इति सुऽक्रतवः । शुचयः । धियन्धा इति धियम्ऽधाः । स्वदन्ति । देवाः । उभयानि । हव्या ॥ २७ ॥

पदार्थः—(नराशंसस्य) नरैः प्रशंसितस्य (महिमानम्) महत्त्वम् (एषाम्) (उप) (स्तोषाम) प्रशंसेम । लेट् उत्तम बहुवचने रूपम् । (यजतस्य) सङ्गन्तुं योग्यस्य (यज्ञैः) सङ्गादिलक्षणैः (ये) (सुक्रतवः) शोभनप्रज्ञाकर्माणः (शुचयः) पवित्राः (धियन्धाः) ये श्रेष्ठां प्रज्ञामुत्तमं कर्म दधति ते (स्वदन्ति) भुञ्जते (देवाः) विद्वांसः (उभयानि) शरीरात्मसुखकराणि (हव्या) हव्यानि अत्तुमर्हाणि ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा वयं ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धा देवा उभयानि हव्या स्वदन्त्येषां यज्ञैर्नराशंसस्य यजतस्य व्यवहारस्य महिमानमुप स्तोषाम तथा यूयमपि कुरुत ॥ २७ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०—ये स्वयं शुद्धाः प्राज्ञा वेदशास्त्रविदो न भवन्ति तेऽन्यानपि विदुषः पवित्रान्कर्त्तुं न शक्नुवन्ति येषां यादृशा गुणा यादृशानि कर्माणि स्युस्तानि धर्मात्मभिर्यथावत्प्रशंसितव्यानि ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ये) जो (सुक्रतवः) सुन्दर बुद्धियों और कर्मों वाले (शुचयः) पवित्र (धियन्धाः) श्रेष्ठ धारणावती बुद्धि और कर्म को धारण करने हारे (देवाः) विद्वान् लोग (उभयानि) दोनों शरीर आत्मा को सुखकारी (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों को (स्वदन्ति) भोगते हैं (एषाम्) इन विद्वानों के (यज्ञैः) सत्संगादि रूप यज्ञों से (नराशंसस्य) मनुष्यों से प्रशंसित (यजतस्य) संग करने योग्य व्यवहार के (महिमानम्) बड़प्पन को (उप, स्तोषाम) समीप प्रशंसा करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ २७ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग स्वयम् पवित्र बुद्धिमान् वेद शास्त्र के वेत्ता नहीं होते वे दूसरों को भी विद्वान् पवित्र नहीं कर सकते । जिन के जैसे गुण जैसे कर्म हों उन की धर्मात्मा लोगों को यथार्थ प्रशंसा करनी चाहिये ॥ २७ ॥

आजुह्वान इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।
स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चायांह्यग्ने वसुभिः सजोषाः । त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ २८ ॥

आजुह्वान॒ऽइत्या॒ऽजुह्वा॑नः। ई॒ड्यः॑। वन्द्यः॑। च॒। आ। या॒हि॒। अ॒ग्ने॒। वसु॑भि॒रिति॒ वसु॑ऽभिः। स॒जोषा॒ऽइति॑ स॒ऽजोषाः॑। त्वम्। दे॒वाना॑म्। अ॒सि॒। य॒ह्व॒। होता॑। सः। ए॒नान्। य॒क्षि॒। इ॒षि॒तः। यजी॑यान्॥ २८॥

पदार्थः–(आजुह्वानः) समन्तात् स्पर्द्धमानः (ईड्यः) प्रशंसितुं योग्यः (वन्द्यः) नमस्करणीयः (च) (आ) (याहि) आगच्छ (अग्ने) पावकवत्पवित्र विद्वन् ! (वसुभिः) वासहेतु भूतैर्विद्वद्भिस्सह (सजोषाः) समानप्रीतिसेवनः (त्वम्) (देवानाम्) विदुषाम् (असि) (यह्व) महागुणविशिष्ट। यह्व इति महन्नाम० निघं० ३। ३। (होता) दाता (सः) (एनान्) (यक्षि) सङ्गच्छ (इषितः) प्रेरितः (यजीयान्) अतिशयेन यष्टा संगन्ता॥ २८॥

अन्वयः–हे यह्वाग्ने यस्त्वं देवानां होता यजीयानसि। इषितः सन्नेनान् यक्षि स त्वं वसुभिः सह सजोषा आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च तानायाहि॥२८॥

भावार्थः–यदि मनुष्याः! पवित्रात्मनां प्रशंसितानां विदुषां सङ्गेन स्वयं पवित्रात्मानो भवेयुस्ते धर्मात्मानः सन्तः सर्वत्र सत्कृताः स्युः॥ २८॥

पदार्थः–हे (यह्व) बड़े उत्तम गुणों से युक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य पवित्र विद्वन्! जो (त्वम्) आप (देवानाम्) विद्वानों के बीच (होता) दानशील (यजीयान) अति समागम करने हारे (असि) हैं (इषितः)प्रेरणा किये हुए

(एनान्) इन विद्वानों का (यक्षि) संग कीजिये (सः) सो आप (वसुभिः) निवास के हेतु विद्वानों के साथ (सजोषाः) समान प्रीति निबाहने वाले (आजुहृवानः) अच्छे प्रकार स्पर्द्धा ईर्ष्या करते हुए (ईड्यः) प्रशंसा (च) तथा (वन्द्यः) नमस्कार के योग्य इन विद्वानों के निकट (आ) (याहि) आया कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पवित्रात्मा प्रशंसित विद्वानों के संग से आप पवित्रात्मा होवें तो वे धर्मात्मा हुए सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होवें ॥ २८ ॥

प्राचीनमित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अन्तरिक्षं देवता ।
भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् । व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ २९ ॥

प्राचीनम् । बर्हिः । प्रदिशेति प्रऽदिशा । पृथिव्याः । वस्तोः । अस्याः । वृज्यते । अग्रे । अह्नाम् । वि । ऊँ इत्यूँ । प्रथते । वितरमिति विऽतरम् । वरीयः देवेभ्यः । अदितये । स्योनम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—(प्राचीनम्) प्राक्तनम् (बर्हिः) अन्तरिक्षवद् व्यापक ब्रह्म (प्रदिशा) प्रकृष्टया दिशा निर्देशेन (पृथिव्याः)

भूमेः (वस्तोः) दिनात् (अस्याः) (वृज्यते) त्यज्यते (अग्रे) प्रातःसमये (अह्नाम्) दिनानाम् (वि) (उ) (प्रथते) प्रकटयति (वितरम्) विशेषेण सन्तारकम् (वरीयः) अतिशयेन वरणीयं वरम् (देवेभ्यः) विद्वद्भ्यः (अदितये) अविनाशिने (स्योनम्) सुखम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यदस्याः पृथिव्या मध्ये प्राचीनं बर्हिर्वस्तोर्वृज्यते अह्नामग्रे देवेभ्य उ अदितये वितरं वरीयः स्योनं विप्रथते तद्यूयं प्रदिशा विजानीत प्राप्नुत च ॥ २९ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०–ये विद्वद्भ्यः सुखं दद्युस्ते सर्वोत्तमं सुखं लभेरन् । यथाऽऽकाशं सर्वासु दिक्षु पृथिव्यादिषु च व्याप्तमस्ति तथा जगदीश्वरः सर्वत्र व्याप्तोस्ति ये तमीदृशं परमात्मानं प्रातरुपासते ते धर्मात्मानः सन्तो विस्तीर्णसुखा जायन्ते ॥ २९ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो! जो (अस्याः) इस (पृथिव्याः) भूमि के बीच (प्राचीनम्) सनातन (बर्हिः) अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक ब्रह्म (वस्तोः) दिन के प्रकाश से (वृज्यते) अलग होता (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) आरम्भ प्रातःकाल में (देवेभ्यः) विद्वानों (उ) और (अदितये) अविनाशी आत्मा के लिये (वितरम्) विशेष कर दुःखों से पार करने हारे (वरीयः) अतिश्रेष्ठ (स्योनम्) सुख को (वि, प्रथते) विशेष कर प्रकट करता उस को तुम लोग (प्रदिशा) वेद शास्त्र के निर्देश से जानो और प्राप्त होओ ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० जो विद्वानों के लिये सुख देवें वे सर्वोत्तम सुख को प्राप्त हों जैसे आकाश सब दिशाओं और पृथिव्यादि में व्याप्त है वैसे जगदीश्वर सर्वत्र व्याप्त है। जो लोग ऐसे ईश्वर की प्रातःकाल उपासना करते वे धर्मात्मा हुए विस्तीर्ण सुखों वाले होते हैं॥२९॥

व्यचस्वतीरित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । स्त्रियो देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनः स्त्रीपुरुषौ किं कुर्यातामित्याह ॥
फिर स्त्रीपुरुष क्या करें इस वि० ॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः। देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥३०॥

व्यचस्वतीः। उर्विया। वि। श्रयन्ताम्। पतिभ्यऽइति पतिऽभ्यः। न। जनयः। शुम्भमानाः। देवीः। द्वारः। बृहतीः। विश्वमिन्वाऽइति विश्वमऽइन्वाः। देवेभ्यः। भवत। सुप्रायणाः। सुप्रायनाऽइति सुऽप्रायनाः ॥ ३० ॥

पदार्थः—(व्यचस्वतीः) शुभगुणेषु व्याप्तिमतीः (उर्विया) बहुत्वेन (वि) (श्रयन्ताम्) सेवन्ताम् (पतिभ्यः) गृहीतपाणिभ्यः (न) इव (जनयः) जायाः (शुम्भमानाः) सुशोभायुक्ताः (देवीः) देदीप्यमानाः (द्वारः) द्वारोऽवकाशरूपाः (बृहतीः) महतीः (विश्वमिन्वाः) विश्वव्यवहारव्यापिन्यः (देवेभ्यः) दिव्यगुणेभ्यः (भवत) (सुप्रायणाः) सुष्ठुप्रकृष्टमयनं गृहं यासु ताः ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यथा उर्विया व्यचस्वतीर्बृहतीर्विश्वमिन्वाः सुप्रायणा देवीर्द्वारो नेव पतिभ्यो देवेभ्यः शुम्भमाना जनयः सर्वान् स्वस्वपतीन् विश्रयन्तां तथा यूयं सर्वविद्यासु व्यापका भवत ॥ ३० ॥

भावार्थः-अत्रोपमावाचकलु०-यथा व्यापिका दिशोऽवकाशप्रदानेन सर्वेषां व्यवहारसाधकत्वेनानन्दप्रदाःसन्ति तथैव परस्परस्मिन्प्रीताः स्त्रीपुरुषा दिव्यानि सुख नि लब्ध्वाऽन्येषां हितकराःस्युः ॥ ३० ॥

पदार्थः- हे मनुष्यो ! जैसे (उर्विया) अधिकता से शुभ गुणों में (व्यचस्वतीः) व्याप्ति वाली (बृहतीः) महती (विश्वमिन्वाः) सब व्यवहारों में व्याप्त (सुप्राय णाः) जिन के होने में उत्तम घर हों (देवीः) आभूषणादि से प्रकाशमान (द्वारः) दरवाज़ों के (न) समान अवकाश वाली (पतिभ्यः) पाणिग्रहण विवाह करने वाले (देवेभ्यः) उत्तम गुणयुक्त पतियों के लिये (शुम्भमानाः) उत्तम शोभायमान हुई (जनयः) सब स्त्रियां अपने २ पतियों को (वि, श्रयन्ताम्) विशेष कर सेवन करें वैसे तुम लोग सब विद्याओं में व्यापक (भवत) हो ओ ॥ ३० ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०-जैसे व्यापक हुई दिशा अवकाश देने और सब के व्यवहारों की साधक होने से आनन्द देने वाली होती हैं वैसे ही आपस में प्रसन्न हुए स्त्री पुरुष उत्तम सुखों को प्राप्त हो के अन्यों के हितकारी होवें ॥ ३० ॥

आ सुष्वयन्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । स्त्रियो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजप्रजाधर्ममाह ॥

अब राजप्रजा धर्म अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ । दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियꣳ शुक्रपिशं दधाने ॥ ३१ ॥

आ । सुष्वयन्ती । सुस्वयन्तीऽइति सुऽस्वयन्ती । यजते ऽइति यजते । उपाकेऽइत्युपाके । उषासानक्ता । उषसा-

नक्तेत्युषसानक्तां । सदताम् । नि । योनौ । दिव्येऽइति दिव्ये । योषणेऽइति योषणे । बृहतीऽइति बृहती । सुरुक्मेऽइति सुऽरुक्मे । अधि । श्रियम् । शुक्रपिशमिति शुक्रऽपिशम् । दधानेऽइति दधाने ॥ ३१ ॥

पदार्थः— (आ) समन्तात् (सुष्वयन्ती) सुष्ठुशयाने इव । अत्र वर्णव्यत्ययेन पस्य स्थाने यः (यजते) सङ्गच्छते (उपाके) सन्निहिते (उषासानक्ता) रात्रिदिने (सदताम्) गच्छतः (नि) नितराम् (योनौ) कालाख्ये कारणे (दिव्ये) दिव्यगुणकर्मस्वभावे (योषणे) स्त्रियाविव (बृहती) महान्त्यौ (सुरुक्मे) सुशोभमाने (अधि) उपरि (श्रियम्) शोभां लक्ष्मीं वा (शुक्रपिशम्) शुक्रं भास्वरं पिशं तद्विपरीतं कृष्णं च (दधाने) धारयन्त्यौ ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यदि दिव्ये योषणे इव सुरुक्मे बृहती अधि श्रियं शुक्रपिशं च दधाने सुष्वयन्ती उपाके उषासानक्ता योनौ न्या सदतां ते भवान् यजते तर्ह्यतुलां श्रियं प्राप्नुयात् ॥ ३१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा कालेव सहवर्त्तमाने रात्रिदिने परस्परेण सम्बद्धे विलक्षणस्वरूपेण वर्त्तते तथा राजप्रजे परस्परं प्रीत्या वर्त्तेयाताम् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! यदि (दिव्ये) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाली (योषणे) दो स्त्रियों के समान (सुरुक्मे) सुन्दर शोभायुक्त (बृहती) बड़ी (अधि) अधिक (श्रियम्) शोभा वा लक्ष्मी को तथा (शुक्रपिशम्) प्रकाश और अन्धकाररूपों को (दधाने) धारण करती हुई (सुष्वयन्ती) सोती हुइयों के

समान (उषाके) निकटवर्त्तिनी (उपासानक्ता) दिन रात (योनौ) काल रूप कारण में (नि, आ, सदताम्) निरन्तर अच्छे प्रकार चलते हैं उन को (यजते) सङ्गत करते तो अतोल शोभा को प्राप्त होओ ॥ ३१ ॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो ! जैसे काल के साथ वर्त्तमान रात-दिन एक दूसरे से सम्बद्ध विलक्षण स्वरूप से वर्त्तते हैं वैसे राजा प्रजा परस्पर प्रीति के साथ वर्त्ता करें ॥ ३१ ॥

दैव्यावित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अथ शिल्पिभिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
अब कारीगर लोगों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै । प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ३२ ॥

दैव्या । होतारा । प्रथमा । सुवाचेति सुऽवाचा । मिमाना । यज्ञम् । मनुषः । यजध्यै । प्रचोदयन्तेति प्रऽचोदयन्ता । विदथेषु । कारूऽइति कारू । प्राचीनम् । ज्योतिः । प्रदिशेति प्रऽदिशा । दिशन्ता ॥ ३२ ॥

पदार्थः-(दैव्या) देवेषुकुशलौ (होतारा) दातारौ (प्रथमा) प्रख्यातौ (सुवाचा) प्रशस्तवाचौ (मिमाना) विदधतौ (यज्ञम्) सङ्गतिमयम् (मनुषः) मनुष्यान् (यजध्यै) यष्टुम् (प्रचोदयन्ता) प्रेरयन्तौ (विदथेषु) विज्ञानेषु (कारू) शिल्पिनौ (प्राचीनम्)

प्राक्तनम् (ज्योतिः) शिल्पविद्याप्रकाशम् (प्रदिशा) वेदादिशास्त्रप्रदेशेन निर्देशेन प्रमाणेन (दिशन्ता) उपदिशन्तौ ॥३२॥

अन्वयः—हे मनुष्या यौ दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं यजध्यै मनुषो विदथेषु प्रचोदयन्ता प्रदिशा प्राचीनं ज्योतिर्दिशन्ता कारू भवेतां ताभ्यां शिल्पविज्ञानशास्त्रमध्येयम् ॥ ३२ ॥

भावार्थः—अत्र कारुशब्दे द्विवचनमध्यापकहस्तक्रियाशिक्षकाभिप्रायम्। ये शिल्पिनः स्युस्ते यावद्विजानीयुस्तावत्सर्वमन्येभ्यः शिक्षयेयुः। यत उत्तरोत्तरं विद्यासन्ततिर्वर्धेत ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (दैव्या) विद्वानों में कुशल (होतारा) दानशील (प्रथमा) प्रसिद्ध (सुवाचा) प्रशंसित वाणी वाले (मिमाना) विधान करते हुए (यज्ञम्) सङ्गतिरूप यज्ञ के (यजध्यै) करने को (मनुषः) मनुष्यों को (विदथेषु) विज्ञानों में (प्रचोदयन्ता) प्रेरणा करते हुए (प्रदिशा) वेदशास्त्र के प्रमाण से (प्राचीनम्) सनातन (ज्योतिः) शिल्प विद्या के प्रकाश का (दिशन्ता) उपदेश करते हुए (कारू) दो कारीगर लोग होवें उन से शिल्प विज्ञान शास्त्र पढ़ना चाहिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (कारू) शब्द में द्विवचन अध्यापक और हस्त क्रिया शिक्षक इन दो शिल्पियों के अभिप्राय से है। जो कारीगर होवें वे जितनी शिल्पविद्या जानें उतनी सब दूसरों के लिये शिक्षा करें जिस से उत्तर२ विद्या की सन्तति बढ़े ॥३२॥

आ न इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। वाग्देवता।
भुरिक् पङ्क्तिछन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती। तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥ ३३ ॥

आ । नः । यज्ञम् । भारती । तूयम् । एतु । इडा । मनुष्वत् । इह । चेतयन्ती । तिस्रः । देवीः । बर्हिः । आ । इदम् । स्योनम् । सरस्वती । स्वपसऽइति सुऽअपसः । सदन्तु ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (नः) अस्मभ्यम् (यज्ञम्) शिल्पविद्याप्रकाशमयम् (भारती) एतद्विद्याधारिका क्रिया (तूयम्) वर्द्धकम् (एतु) प्राप्नोतु (इडा) सुशिक्षिता मधुरा वाक् (मनुष्वत्) मानववत् (इह) अस्मिन् शिल्पविद्याग्रहणव्यवहारे (चेतयन्ती) प्रज्ञापयन्ती (तिस्रः) (देवीः) देदीप्यमानाः (बर्हिः) प्रवृद्धम् (आ)(इदम्) (स्योनम्) सुखकारकम् (सरस्वती) विज्ञानवती प्रज्ञा (स्वपसः) सुष्ठ्वपांसि कर्माणि येषान्तान् (सदन्तु) प्रापयन्तु ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या या भारती इडा सरस्वतीह नस्तूयं यज्ञं मनुष्वच्चेतयन्त्यस्मानैतु इमास्तिस्रो देवीरिदं बर्हिः स्योनं स्वपसोऽस्मानासदन्तु ॥ ३३ ॥

भावार्थः—अत्र शिल्पव्यवहारे सुष्ठूपदेशक्रियाविधिज्ञापनं विद्याधारणं चेष्यते यदीमास्तिस्रो रीतीर्मनुष्या गृह्णीयुस्तर्हि महत्सुखमश्नुवीरन् ॥३३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (भारती) शिल्प विद्या को धारण करने हारी क्रिया (इडा) सुन्दर शिक्षित मीठी वाणी (सरस्वती) विज्ञान वाली बुद्धि (इह) इस शिल्प विद्या के ग्रहणरूप व्यवहार में (नः) हम को (तूयम्)

वर्धक (यज्ञम्) शिल्पविद्या के प्रकाशरूप यज्ञ को (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (चेतयन्ती) जनाती हुई हम को (आ, एतु) सब ओर से प्राप्त होवे ये पूर्वोक्त (तिस्रः) तीन (देवीः) प्रकाशमान (इदम्) इस (बर्हिः) बढ़े हुए (स्योनम्) सुखकारी काम को (स्वपसः) सुन्दर कर्मों वाले हम को (आ, सदन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त कर ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस शिल्प व्यवहार में सुन्दर उपदेश और क्रियाविधि का बताना और विद्या का धारण इष्ट है । यदि इन तीन रीतियों को मनुष्य ग्रहण करें तो बड़ा सुख भोगें ॥ ३३ ॥

य इम इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वान् देवता ।

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद्भुवनानि विश्वा । तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ ३४ ॥

यः । इमेऽइतीमे । द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी । जनित्रीऽइति जनित्री । रूपैः । अपिꣳशत् । भुवनानि । विश्वा । तम् । अद्य । होतः । इषितः । यजीयान् । देवम् । त्वष्टारम् । इह । यक्षि । विद्वान् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(यः) विद्वान् (इमे) प्रत्यक्ष (द्यावापृथिवी) विद्युद्भूमी (जनित्री) अनेककार्योत्पादिके (रूपैः) विचित्राभिराहुतिभिः (अपिंशत्) अवयवयति (भुवनानि) लोकान् (विश्वा) विश्वानि सर्वान् (तम्)(अद्य) इदानीम् (होतः) आदातः (इषितः) प्रेरितः (य-

जीयान्) अतिशयेन यष्टा सङ्गन्ता (देवम्) (त्वष्टारम्) वियोगसंयोगादिकर्त्तारम् (इह) अस्मिन् व्यवहारे (यक्षि) सङ्गच्छसे (विद्वान्) सर्वतो विद्याप्तः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे होतर्यो यजीयानिषितो विद्वान्यथेश्वर इह रूपैरिमे जनित्री द्यावापृथिवी विश्वा भुवनान्यपिंशत् तथा तं त्वष्टारं देवमद्य त्वं यक्षि तस्मात्सत्कर्त्तव्योऽसि ॥ ३४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—मनुष्यैरस्यां सृष्टौ परमात्मनो रचनाविशेषान् विज्ञाय तथैव शिल्पविद्या संप्रयोज्या ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) ग्रहण करने वाले जन ! (यः) जो (यजीयान्) अतिसमागम करने वाला (इषितः) प्रेरणा किया हुआ (विद्वान्) सब ओर से विद्या को प्राप्त विद्वान् जैसे ईश्वर (इह) इस व्यवहार में (रूपैः) चित्र विचित्र आकारों से (इमे) इन (जनित्री) अनेक कार्यों को उत्पन्न करने वाली (द्यावापृथिवी) बिजुली और पृथिवी आदि (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अपिंशत्) अवयवरूप करता है वैसे (तम्) उस (त्वष्टारम्) वियोग संयोग अर्थात् प्रलय उत्पत्ति करने हारे (देवम्) ईश्वर का (अद्य) आज तू (यक्षि) संग करता है इस से सत्कार करने योग्य है ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को इस सृष्टि में परमात्मा की रचनाओं की विशेषताओं को जान के वैसे ही शिल्पविद्या का प्रयोग करना चाहिये ॥ ३४ ॥

उपावसृजेत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनः तु होतव्यमित्याह ॥
ऋतु २ में होम करना चाहिये इस वि० ॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथं ऋतुथा हवींषि । वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ ३५ ॥

उपावसृजेत्युपऽअवसृज । त्मन्या । समञ्जन्निति सम्ऽअञ्जन् । देवानाम् । पाथः । ऋतुथेत्यृतुऽथा । हवींषि । वनस्पतिः । शमिता । देवः । अग्निः । स्वदन्तु । हव्यम् । मधुना । घृतेन ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(उपावसृज) यथावद्देहि (त्मन्या) आत्मना (समञ्जन्) सम्यक् मिश्रीकुर्वन् (देवानाम्) विदुषाम् (पाथः) भोग्यमन्नादिकम् (ऋतुथा) ऋतौ (हवींषि) आदातव्यानि (वनस्पतिः) किरणानां स्वामी (शमिता) शान्तिकरः (देवः) दिव्यगुणो मेघः (अग्निः) पावकः (स्वदन्तु) प्राप्नुवन्तु (हव्यम्) अत्तव्यम् (मधुना) मधुरादिरसेन (घृतेन) घृतादिना ॥ ३५ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं देवानां पाथो मधुना घृतेन समञ्जन् त्मन्या हवींषि ऋतुथोपावसृज तेन त्वया दत्तं हव्यं वनस्पतिः शमिता देवोऽग्निश्च स्वदन्तु ॥ ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः शुद्धानां पदार्थानामृता वृतौ होमः कर्त्तव्यो येन तद्धुतं द्रव्यं सूक्ष्मं भूत्वा क्रमेणाग्निसूर्यमेघान् प्राप्य वृष्टिद्वारा सर्वोपकारि स्यात्॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! तू (देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) भोगने योग्य अन्न आदि को (मधुना) मीठे कोमल आदि रस युक्त (घृतेन) घी आदि से (समञ्जन) सम्यक् मिलाते हुए (त्मन्या) अपने आत्मा से (हवींषि) लेने भोजन करने योग्य पदार्थों को (ऋतुथा) ऋतु २ में (उपावसृज) यथावत्

दिया कर अर्थात् होम किया कर। उस तैने दिये (हव्यम्) भोजन के योग्य पदार्थ को (वनस्पतिः) किरणों का स्वामी सूर्य्य (शमिता) शान्तिकर्त्ता (देवः) उत्तम गुणों वाला मेघ और (अग्निः) अग्नि (स्वदन्तु) प्राप्त होवें अर्थात् हवन किया पदार्थ उन को पहुंचे ॥ ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि शुद्ध पदार्थों का ऋतु २ में होम किया करें जिस से वह द्रव्य सूक्ष्म हो और क्रम से अग्नि सूर्य तथा मेघ को प्राप्त होके वर्षा के द्वारा सब का उपकारी होवे ॥ ३५ ॥

सद्य इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।

निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कीदृग्जनः सर्वानन्दयतीत्याह ॥

कैसा मनुष्य सब को आनन्द कराता है इस वि० ॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः । अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥ ३६ ॥

सद्यः । जातः । वि । अमिमीत । यज्ञम् । अग्निः । देवानाम् । अभवत् । पुरोगा इति पुरःऽगाः । अस्य । होतुः । प्रदिशीति प्रऽदिशि । ऋतस्य । वाचि । स्वाहाकृतमिति स्वाहाऽकृतम् । हविः । अदन्तु । देवाः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(सद्यः) शीघ्रम् (जातः) प्रकटीभूतः सन् (वि) विशेषेण (अमिमीत) मिमीते (यज्ञम्) अनेकविधव्यवहारम् (अग्निः) विद्याप्रकाशितो विद्वान् (देवानाम्) विदुषाम्

(अभवत्) भवति (पुरोगाः) अग्रगामी (अस्य) (होतुः) आदातुः (प्रदिशि) प्रदिशन्ति यया तस्याम् (ऋतस्य) सत्यस्य (वाचि) वाण्याम् (स्वाहाकृतम्) सत्येन निष्पादितं कृतहोमं वा (हविः) अत्तव्यमन्नादिकम् (अदन्तु) भुञ्जताम् (देवाः) विद्वांसः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्सद्यो जातोऽग्निर्होतुऋतस्य प्रदिशि वाचि यज्ञं व्यमिमीत देवानां पुरोगा अभवदस्य स्वाहाकृतं हविर्देवा अदन्तु तं सर्वोपरि विराजमानं मन्यध्वम् ॥ ३६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्यः सर्वेषां प्रकाशकानां मध्ये प्रकाशकोऽस्ति तथा यो विद्वत्सु विद्वान्सर्वोपकारी जनो भवति सएव सर्वेषामानन्दस्य भोजयिता भवति ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुआ (अग्निः) विद्या से प्रकाशित विद्वान् (होतुः) ग्रहण करने हारे पुरुष के (ऋतस्य) सत्य का (प्रदिशि) जिस से निर्देश किया जाता है उस (वाचि) वाणी में (यज्ञम्) अनेक प्रकार के व्यवहार को (वि, अमिमीत) विशेष कर निर्माण करता और (देवानाम्) विद्वानों में (पुरोगाः) अग्रगामी (अभवत्) होता है (अस्य) इस के (स्वाहाकृतम्) सत्य व्यवहार से सिद्ध किये वा होम किये से बचे (हविः) भोजन के योग्य अन्नादि को (देवाः) विद्वान् लोग (अदन्तु) खावें उस को सर्वोपरि विराजमान मानो ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य सब प्रकाशक पदार्थों के बीच प्रकाशक है वैसे जो विद्वानों में विद्वान् सब का उपकारी जन होता है वही सब को आनन्द का भुगवाने वाला होता है ॥ ३६ ॥

केतुमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।
गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
आप्ताः कीदृशाइत्याह ॥
आप्त लोग कैसे होते हैं इस वि० ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३७ ॥

केतुम् । कृण्वन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे । सम् । उषद्भिरित्युषत्ऽभिः । अजायथाः ॥३७॥

पदार्थः—(केतुम्) प्रज्ञाम् । केतुरिति प्रज्ञाना० निघं० । ३ । ९ (कृण्वन्) कुर्वन् (अकेतवे) अविद्यमानप्रज्ञाय जनाय (पेशः) हिरण्यम् । पेशइति हिरण्यना० निघं० ।१ २ । (मर्याः) मनुष्याः (अपेशसे) अविद्यमानं पेशः सुवर्णं यस्य तस्मै नराय (सम्) सम्यक् (उषद्भिः) य उषन्ति हविर्दहन्ति तैर्यजमानैः (अजायथाः) ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् यथा मर्या अपेशसे पेशोऽकेतवे केतुं कुर्वन्ति तैरुषद्भिः सह प्रज्ञां श्रियं च कृण्वन् संस्त्वं समजायथाः ॥ ३७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—तएव आप्ता ये स्वात्मवदन्येषामपि सुखमिच्छन्ति तेषामेव संगेन विद्याप्राप्तिरविद्याहानिः श्रियो लाभो दरिद्रताया विनाशश्च भवति ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे (मर्याः) मनुष्य (अपेशसे) जिस के सुवर्ण नहीं है उस के लिये (पेशः) सुवर्ण को और (अकेतवे) जिस को

बुद्धि नहीं है उस के लिये (केतुम्) बुद्धि को करते हैं उन (उषद्भिः) होम करने वाले यजमान पुरुषों के साथ बुद्धि और धन को (कृण्वन्) करते हुए आप (सम्, अजायथाः) सम्यक् प्रसिद्ध हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वे ही आप्त जन हैं जो अपने आत्मा के तुल्य अन्यों का भी सुख चाहते हैं उन्हीं के संग से विद्या की प्राप्ति अविद्या की हानि धन का लाभ और दरिद्रता का विनाश होता है ॥ ३७ ॥

जीमूतस्येवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । विद्वान्देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
वीरा राजपुरुषा किं कुर्युरित्याह ॥
वीर राज पुरुष क्या करें इस वि० ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति सम-दामुपस्थे । अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳस त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥ ३८ ॥

जीमूतस्येवेति जीमूतस्यऽइव । भवति । प्रतीकम् । यत् । वर्मी । याति । समदामिति सऽमदाम् । उपस्थऽइत्युपऽस्थे । अनाविद्धया । तन्वा । जय । त्वम् । सः । त्वा । वर्मणः । महिमा । पिपर्त्तु ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(जीमूतस्येव) यथा मेघस्य (भवति) (प्रतीकम्) येन प्रत्येति तल्लिङ्गम् (यत्) (वर्मी) कवचवान् (याति) प्राप्नोति (समदाम्) सह मदेन हर्षेण वर्त्तन्ते यत्र युद्धेषु तेषाम् (उपस्थे) समीपे (अनाविद्धया) अप्राप्तक्षतया (तन्वा) शरीरेण (जय) (त्वम्) (सः) (त्वा) त्वाम् (वर्मणः) रक्षणस्य (महिमा) महत्त्वम् (पिपर्त्तु) पालयतु ॥ ३८ ॥

अन्वयः--यद्यो वर्म्यनाविद्धया तन्वा समदामुपस्थे प्रतीकं याति स जीमूतस्येव विद्युद्भवति । हे विद्वन् यस्त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु स त्वं शत्रून् जय ॥ ३८ ॥

भावार्थः--अत्रोपमालं०- यथा मेघस्य सेना सूर्यप्रकाशमावृणोति तथा कवचादिना शरीरमावृणुयात् । यथा समीपस्थयोः सूर्यमेघयोः संग्रामो भवति तथैव वीरैराजपुरुषैर्योद्धव्यम् । सर्वतो रक्षापि विधेया ॥ ३८ ॥

पदार्थः--(यत्) जो (वर्मी) कवच वाला योद्धा (अनाविद्धया) जिस में कुछ भी घाव न लगा हो उस (तन्वा) शरीर से (समदाम्) आनन्द के साथ जहां वर्त्तें उन युद्धों के (उपस्थे) समीप में (प्रतीकम्) जिस से निश्चय करे उस चिन्ह को (याति) प्राप्त होता है (सः) वह (जीमूतस्येव) मेघ के निकट जैसे विजुली वैसे (भवति) होता है । हे विद्वन् जिस (त्वा) आप को (वर्मणः) रक्षा का (महिमा) महत्व (पिपर्त्तु) पाले सो (त्वम्) आप शत्रुओं को (जय) जीतिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः--इस मन्त्र में उपमालं०--जैसे मेघ की सेना सूर्य के प्रकाश को रोकती है वैसे कवच आदि से शरीर का आच्छादन करे जैसे समीपस्थ सूर्य और मेघ का संग्राम होता है वैसे ही वीर राजपुरुषों को युद्ध और रक्षा भी करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

धन्वनेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः ।

त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम । धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ ३९ ॥

धन्वना । गाः । धन्वना । आजिम् । जयेम । धन्वना । तीव्राः । समदऽइति सऽमदः । जयेम । धनुः । शत्रोः । अपकाममित्यपऽकामम् । कृणोति । धन्वना । सर्वाः । प्रदिशऽइति प्रऽदिशः । जयेम ॥ ४० ॥

पदार्थः—(धन्वना) धनुरादिशस्त्रास्त्रविशेषेण (गाः) पृथिवीः (धन्वना) (आजिम्) सङ्ग्रामम् । आजाविति सङ्ग्रामना० निघं० २ । १७ (जयेम) (धन्वना) शतघ्न्यादिभिः शस्त्रास्त्रैः (तीव्राः) तीव्रवेगवतीः शत्रूणां सेनाः (समदः) मदेन सह वर्त्तमानाः (जयेम) (धनुः) शस्त्रास्त्रम् (शत्रोः) अरेः (अपकामम्) अपगतश्चासौ कामश्च तम् (कृणोति) करोति (धन्वना) (सर्वाः) (प्रदिशः) दिशोपदिशः (जयेम) ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे वीरा यथा वयं यद्धनुः शत्रोरपकामं कृणोति तेन धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं च जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम तथा यूयमप्येतेन जयत ॥ ३९ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या धनुर्वेदविज्ञानक्रियाकुशला भवेयुस्तर्हि सर्वत्रैव तेषां विजयः प्रकाशेत यदि विद्याविनयशौर्यादिगुणैर्भूगोलैकराज्यमिच्छेयुस्तर्हि किमप्यशक्यं न स्यात् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो! जैसे हम लोग जो (धनुः) शस्त्र अस्त्र (शत्रोः) वैरी की (अपकामम्) कामनाओं को नष्ट (कृणोति) करता है उस (धन्वना) धनुष् आदि शस्त्र अस्त्र विशेष से (गाः) पृथिवियों को और (धन्वना) उक्त शस्त्र विशेष से (आजिम्) संग्राम को (जयेम) जीतें (धन्वना) तोप आ-

दि शस्त्र-अस्त्रों से (तीव्राः) तीव्र वेग वाली (समदः) आनन्द के साथ वर्त्तमान शत्रुओं की सेनाओं को (जयेम) जीतें (धन्वना) धनुष् से (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशा प्रदिशाओं को (जयेम) जीतें वैसे तुम लोग भी इस धनुष् आदि से जीतो ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य धनुर्वेद के विज्ञान की क्रियाओं में कुशल हों तो सब जगह ही उन का विजय प्रकाशित होवे जो विद्या विनय और शूरता आदि गुणों से भूगोल के एक राज्य को चाहें तो कुछ भी अशक्य न हो ॥ ३९ ॥

वक्ष्यन्तीवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः ।
निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना । योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन् ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥ ४० ॥

वक्ष्यन्तीवेति वक्ष्यन्तीऽइव । इत् । आ । गनीगन्ति । कर्णम् । प्रियम् । सखायम् । परिषस्वजाना । परिषस्वजानेति परिऽस्वजाना । योषेवेति योषाऽइव । शिङ्क्ते । वितेतेति विऽतता । अधि । धन्वन् । ज्या । इयम् । समने । पारयन्ती ॥ ४० ॥

पदार्थः—(वक्ष्यन्तीव) यथा वदिष्यन्ती विदुषी स्त्री तथा (इत्) एव (आगनीगन्ति) भृशं बोधं प्रापयन्ति (कर्णम्)

श्रुतस्तुतिम् (प्रियम्) कमनीयम् (सखायम्)सुहृद्वर्त्त-मानम् (परिषस्वजाना) परितः सर्वतः सङ्गं कुर्वाणा (योषेव) स्त्री (शिङ्क्ते) शब्दयति (वितता)विस्तृता (अधि) उपरि (धन्वन्) धन्वनि (ज्या) प्रत्यञ्चा (इयम्) (समने) सङ्ग्रामे (पारयन्ती) विजयं प्रापयन्ती॥४०॥

अन्वयः- हे वीरा येयं वितता धन्वन्नधि ज्या वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं पतिं परिषस्वजाना योषेव शिङ्क्ते समने पारयन्ती वर्त्तते तान्निर्मातुं बद्धुं चालयितुं च विजानीत ॥ ४० ॥

भावार्थः— अत्र द्वावुपमालं०- यदि मनुष्या धनुर्ज्यादिशस्त्रास्त्ररचनस-म्बन्धचालनक्रिया विजानीयुस्तर्हीमामुपदेशिकां मातरमिव सुखप्रदां पत्नीं विजयसुखं च प्राप्नुयुः ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जो (इयम्) यह (वितता) विस्तारयुक्त (धन्वन्) धनुष में (अधि) ऊपर लगी (ज्या) प्रत्यञ्चा तांत (वक्ष्यन्तीव) कहने को उद्यत हुई विदुषी स्त्री के तुल्य (इत्) ही (आगनीगन्ति)शीघ्र बोध को प्राप्त कराती हुई जसे (कर्णम्) जिस की स्तुति सुनी जाती (प्रियम्) प्यारे (सखायम्) मित्र के तुल्य वर्त्तमान पति को (परिषस्वजाना) सब ओर से संग करती हुई (योषेव) स्त्री बोलती वैसे (शिङ्क्ते) शब्द करती है (समने) संग्राम में (पारयन्ती) विजय को प्राप्त कराती हुई वर्त्तमान है उस के बनाने बांधने और चलाने को जानो ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालंकार हैं । जो मनुष्य धनुष् की प्रत्यञ्चा आदि शस्त्र अस्त्रों की रचना सम्बन्ध और चलाना आदि क्रियाओं को जाने तो उपदेश करने और माता के तुल्य सुख देने वाली पत्नी और विजय सुख को प्राप्त हों ॥ ४० ॥

ते आचरन्तीइत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः।
त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥
पुनस्तमेव विषयमाह॥
फिर उसी वि०॥

तेऽ आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे। अप शत्रून्विध्यताᳬ संविदाने आर्त्नीऽइमे विष्फुरन्ती अमित्रान्॥ ४१॥

तेऽइति ते। आचरन्तीऽइत्याऽचरन्ती। समनेवेति समनाऽइव। योषा। मातेवेति माताऽइव। पुत्रम्। बिभृताम्। उपस्थऽइत्युपऽस्थे। अप। शत्रून्। विध्यताम्। संविदानेऽइति सम्ऽविदाने। आर्त्नीऽइत्यार्त्नी। इमेऽइतीमे। विष्फुरन्ती। विस्फुरन्तीऽइति विऽस्फुरन्ती। अमित्रान्॥ ४१॥

पदार्थः—(ते) धनुर्ज्ये (आचरन्ती) समतात्प्राप्नुवत्यौ (समनेव)सम्यक् प्राण इव प्रिया (योषा) विदुषी स्त्री (मातेव) जननीव (पुत्रम्) सन्तानम् (बिभृताम्) धरेताम् (उपस्थे) समीपे (अप) दूरीकरणे (शत्रून्) अरीन् (विध्यताम्) ताडयेताम् (संविदाने) सम्यग्विज्ञाननिमित्ते (आर्त्नी) प्राप्यमाणे (इमे) (विष्फुरन्ती) विशेषेण चालयन्त्यौ (अमित्रान्) मित्रभावरहितान् ॥४१॥

अन्वयः— हे वीरा ये योषा समनेव पतिं मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे आचरन्ती शत्रूनप विध्यतामिमे संविदाने आर्त्नी अमित्रान् विष्फुरन्ती वर्त्तेते ते यथावत् संप्रयुङ्ग्ध्वम्॥ ४१॥

भावार्थः—अत्र द्वावुपमालं०—यथा हृद्या स्त्री पतिं विदुषी च माता पुत्रं सम्पोषयतस्तथा धनुर्ज्ये संविदितक्रिये शत्रून् पराजित्य वीरान् प्रसादयतः ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो! दो धनुष की प्रत्यञ्चा (योषा) विदुषी (समनेव) प्राण के समान सम्यक् पति को प्यारी स्त्री स्वपति को और (मातेव) जैसे माता (पुत्रम्) अपने सन्तान को (बिभृताम्) धारण करें वैसे (उपस्थे) समीप में (आचरन्ती) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई (शत्रून्) शत्रुओं को (अप) (विध्यताम्) दूर तक ताडना करें (इमे) ये (संविदाने) अच्छे प्रकार विज्ञान की निमित्त (आर्त्नी) प्राप्त हुई (अमित्रान्) शत्रुओं को (विष्फुरन्ती) विशेष कर चलायमान करती वर्त्तमान हैं (ते) उन दोनों का यथावत् सम्यक् प्रयोग करो अर्थात् उन को काम में लाओ ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालं०—जैसे हृदय को प्यारी स्त्री पति को और विदुषी माता अपने पुत्र को अच्छे प्रकार पुष्ट करती हैं वैसे सम्यक् प्रसिद्ध काम देने वाली धनुष् की दो प्रत्यञ्चा शत्रुओं को पराजित कर वीरों को प्रसन्न करती हैं ॥४१॥

बह्वीनामित्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः।
त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्यं। इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ४२ ॥

बह्वीनाम्। पिता। बहुः। अस्य। पुत्राः। चिश्चा। कृणोति। समना। अवगत्येत्यवऽगत्यं। इषुधिरितीषुऽधिः। सङ्काः। पृतनाः। च। सर्वाः। पृष्ठे। निनद्ध इति निऽनद्धः। जयति। प्रसूत इति प्रऽसूतः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(बह्वीनाम्) ज्यानाम् (पिता) पितृवद्रक्षकः (बहुः) बहुगुणः (अस्य) (पुत्रः) सन्तान इव सम्बन्धी (चिश्चा) चिश्चिश्चेति शब्द (कृणोति) करोति (समनाः) संग्रामान् । अत्राकारादेशः (अवगत्य) (इषुधिः) इषवो धीयन्ते यस्मिन्सः (संकाः) समवेता विकीर्णा वा (पृतना) सेनाः (च) (सर्वाः) (पृष्ठे) पश्चाद्भागे (निनद्धः) निश्चयेन नद्धो बद्धः (जयति) (प्रसूतः) उत्पन्नः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे वीरा यो बह्वीनां पितेवास्य बहुः पुत्रइव पृष्ठे निनद्ध इषुधिः प्रसूतः सन् समनावगत्य चिश्चा कृणोति येन वीरः सर्वाः संका पृतनाश्च जयति तं यथावद्रक्षत ॥ ४२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथाऽनेकासां कन्यानां बहूनां पुत्राणां च पिताऽपत्यशब्दैः संकीर्णो भवति तथैव धनुर्ज्येषुधयः संमिलिता अनेकविधशब्दान् जनयन्ति यस्य वामहस्ते धनुः पृष्ठे इषुधियौं दक्षिणेन हस्तेनेषुं निःसार्य्य धनुर्ज्यया संयोज्य विमुच्याऽभ्यासेन शीघ्रकारित्वं करोति सएव विजयी भवति ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जो (बह्वीनाम्) बहुत प्रत्यञ्चाओं का (पिता) पिता के तुल्य रखने वाला (अस्य) इस पिता का (बहुः) बहुत गुण वाले (पुत्रः) पुत्र के समान सम्बन्धी (पृष्ठे) पिछले भाग में (निनद्धः) निश्चित बंधा हुआ (इषुधिः) बाण जिस में धारण किये जाते वह धनुष (प्रसूतः) उत्पन्न हुआ (समना) संग्रामों को (अवगत्य) प्राप्त होके (चिश्चा) चिं

चिं, चिं, ऐसा शब्द (कृणोति) करता है और जिस से वीर पुरुष (संवाः) सब (संकाः) इकट्ठी वा फैली हुई (पृतनाः) सेनाओं को (जयति) जीतता है उस की यथावत् रक्षा करो ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अनेक कन्याओं और बहुत पुत्रों का पिता अपत्य शब्द से संयुक्त होता है वैसे ही धनुष् प्रत्यंचा और वाण मिल कर अनेक प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करते हैं जिस के वाम हाथ में धनुष् पीठ पर वाण दाहिने हाथ से वाण को निकाल के धनुष् की प्रत्यंचा से संयुक्त कर छोड़ के अभ्यास से शीघ्रता करने की शक्ति को करता है वही विजयी होता है ॥ ४२ ॥

रथ इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः ।
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः । अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ४३ ॥

रथे । तिष्ठन् । नयति । वाजिनः । पुरः । यत्रयत्रेति यत्रऽयत्र । कामयते । सुषारथिः । सुसारथिरिति सुऽसारथिः । अभीशूनाम् । महिमानम् । पनायत । मनः । पश्चात् । अनु । यच्छन्ति । रश्मयः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(रथे) रमणीये भूजलान्तरिक्षगमके याने (तिष्ठन्) (नयति) गमयति (वाजिनः) अश्वानग्न्या-

दीन्वा (पुरः) अग्रे (यत्रयत्र) यस्मिन्यस्मिन्सङ्ग्रामे देशे वा (कामयते) (सुषारथिः) शोभनश्चासौ सारथिश्चाऽश्वानामग्न्यादीनां वा नियन्ता (अभीशूनाम्) अभितः सद्यो गन्तॄणाम् (महिमानम्) महत्त्वम् (पनायत) प्रशंसत (मनः) (पश्चात्) (अनु) (यच्छन्ति) निगृह्णन्ति (रश्मयः) रज्जवः किरणा वा ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः सुषारथी रथे तिष्ठन् यत्रयत्र कामयते तत्र तत्र वाजिनः पुरो नयति येषां मनः सुशिक्षित हस्तगता रश्मयः पश्चादश्वाननुयच्छन्ति तेषामभीशूनां महिमानं यूयं पनायत ॥ ४३ ॥

भावार्थः—यदि राजराजपुरुषाः साम्राज्यं ध्रुवं विजयं चेच्छेयुस्तर्हि सुशिक्षितानमात्यानश्वाद्यन्या चालयित्री मलेशामग्र्यध्यक्षाञ्छस्त्राऽस्त्राणि शरीरा त्म बलं चावश्यं सम्पादयेयुः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (सुषारथिः) सुन्दर सारथिः घोड़ों वा अग्न्यादि को नियम में रखने वाला (रथे) रमण करने योग्य पृथिवी जल वा आकाश में चलाने वाले यान में (तिष्ठन्) बैठा हुआ (यत्रयत्र) जिस २ संग्राम वा देश में (कामयते) चाहता है वहां २ (वाजिनः) घोड़ों वा वेग वाले अग्न्यादि पदार्थों को (पुरः) आगे (नयति) चलाता है जिन का (मनः) मन अच्छा शिक्षित (रश्मयः) लगाम की रस्सी वा किरण हस्तगत हैं (पश्चात्) पीछे से घोड़ों वा अग्न्यादि को (अनु,यच्छन्ति) अनुकूल निग्रह करते हैं उन (अभीशूनाम्) सब ओर से शीघ्र चलने हारों के (महिमानम्) महत्त्व की तुम लोग (पनायत) प्रशंसा करो ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जो राजा और राजपुरुष चक्रवर्त्ती राज्य और निश्चल विजय चाहें तो अच्छे शिक्षित मन्त्री अश्व आदि तथा अन्य चलाने वाली सामग्री अध्यक्षों शस्त्र अस्त्रों और शरीर आत्मा के बल को अवश्य सिद्ध करें ॥ ४३ ॥

तीव्रानित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः । अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्क्षिणन्ति शत्रूँ१॥ रनपव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

तीव्रान । घोषान् । कृण्वते । वृषपाणय इति वृषऽपाणयः । अश्वाः। रथेभिः । सह । वाजयन्तः । अवक्रामन्त इत्यवऽक्रामन्तः। प्रपदैरितिप्रऽपदैः। अमित्रान् । क्षिणन्ति । शत्रून् । अनपव्ययन्त इत्यनपऽव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(तीव्रान्) तीक्ष्णान् (घोषान्) शब्दान् (कृण्वते) कुर्वन्ति (वृषपाणयः) रक्षका वृषा बलिष्ठा वृषभादय उत्तमाः प्राणिनः प्राणिवद्येषां ते (अश्वाः) आशुगमयितारः (रथेभिः) रमणीयैर्यानैः (सह) (वाजयन्तः) वीरादीन् सद्यो गमयन्तः (अवक्रामन्तः) धर्षयन्तः (प्रपदैः) प्रकृष्टैः पारगमनैः (अमित्रान्) मित्रभावरहितान् (क्षिणन्ति) क्षयं प्रापयन्ति (शत्रून्) अरीन् (अनपव्ययन्तः) अपव्ययमप्रापयन्तः ॥ ४४॥

अन्वयः—हे वीरा ये वृषपाणयो रथेभिः सह वाजयन्तः प्रपदैरमित्रानवक्रामन्तोऽश्वास्तीव्रान् घोषान्कृण्वतेऽनपव्ययन्तः सन्तः शत्रून् क्षिणन्ति तान् यूयं प्राणवत्पालयत ॥ ४४ ॥

भावार्थः-यदि राजपुरुषा हस्त्यश्ववृषभादीन्भृत्यानध्यक्षांश्च सुशिक्ष्यानेकविधानि यानानि निर्माय शत्रून् विजेतुमभिलषन्ति तर्हि तेषां ध्रुवो विजयो भवति ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो! जो (वृषपाणयः) जिन के बलवान् बैल आदि उत्तम प्राणी हाथों के समान रक्षा करने वाले हैं (रथेभिः) रमण के योग्य यानों के (सह) साथ (वाजयन्तः) वीर आदि को शीघ्र चलाने हारे (प्रपदैः) उत्तम पगों की चालों से (अमित्रान्) मित्रता रहित दुष्टों को (अवक्रामन्तः) धमकाते हुए (अश्वाः) शीघ्र चलाने हारे घोड़े (तीव्रान्) तीखे (घोषान्) शब्दों को (कृण्वते) करते हैं और जो (अनपव्ययन्तः) व्यर्थ खर्च न कराते हुए योद्धा (शत्रून्) वैरियों को (क्षिणन्ति) क्षीण करते हैं उन को तुम लोग प्राण के तुल्य पालो ॥४४॥

भावार्थः-जो राजपुरुष हाथी, घोड़ा, बैल, आदि भृत्यों और अध्यक्षों को अच्छी शिक्षा दे तथा अनेक प्रकार के यानों को बना के शत्रुओं के जीतने की अभिलाषा करते हैं तो उन का निश्चल दृढ़ विजय होता है ॥ ४४ ॥

रथवाहनमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

रथवाहन॑ᳪ हविर॑स्य नाम॒ यत्रायु॑धं निहि॑तमस्य॒ वर्म॑ । तत्रा॒ रथ॒मुप॑ श॒ग्मᳪ स॑देम वि॒श्वाहा॑ व॒यᳪ सु॑मन॒स्यमा॑नाः ॥ ४५ ॥

र॒थ॒वाह॑नम् । र॒थ॒वाह॑न॒मिति॑ रथ॒ऽवाह॑नम् । ह॒विः । अ॒स्य॒ । नाम॑ । यत्र॑ । आयु॑धम् । निहि॑त॒मिति॒ निऽहि॑तम् । अ॒स्य॒ । वर्म॑ । तत्र॑ । रथ॑म् । उप॑ । श॒ग्मम् । स॒दे॒म॒ । वि॒श्वाहा॑ । व॒यम् । सु॒म॒न॒स्यमा॑ना॒ऽइति॑ सुऽमन॒स्यमा॑नाः ॥ ४५ ॥

पदार्थः– (रथवाहनम्) रथान्वहन्ति गमयन्ति येन तत् (हविः) आदातव्याग्नीन्धनजलकाष्ठधात्वादि (अस्य) योद्धुः (नाम) (यत्र) याने (आयुधम्) भुशुंडिशतघ्न्यासिधनुर्बाणशक्तिपद्मपाशादि(निहितम्) घृतम् (अस्य) योद्धुः (वर्म) कवचम् (तत्र) तस्मिन् । अत्र ऋचितुनु० इति दीर्घः । (रथम्) रमणासाधनं यानम् (उप) (शग्मम्) सुखम् । शग्ममिति सुखना० निघं० ३ । ६ (सदेम) प्राप्नुयाम् (विश्वाहा) सर्वेष्वहस्सु(वयम्) (सुमनस्यमानाः) सुष्ठु विचारयन्तः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे वीरा अस्य यत्र रथवाहनं हविरायुधमस्य वर्म च नाम च निहितं तत्र सुमनस्यमाना वयं शग्मं रथं विश्वाहोप सदेम ॥ ४५ ॥

भावार्थः–हेमनुष्या यस्मिन्याने‌ऽग्न्यादिरश्वादिश्चयुज्यते तत्रयुद्धसामग्रीः संस्थाप्य नित्यमन्वीक्ष्य स्थित्वा सुविचारेण शत्रुभिः सह संयुद्ध्य नित्यं सुखं प्राप्नुत ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! (अस्य) इस योद्धा जन के (यत्र) जिस यान में (रथवाहनम्) जिस से विमानादि यान चलते वह (हविः) ग्रहण करने योग्य अग्नि, इन्धन,जल, काठ और धातु आदि सामग्री तथा (आयुधम्)बन्दूक तोप खड्ग धनुष् बाण शक्ति और पद्मफांसी आदि शस्त्र और (अस्य) इस योद्धा के (वर्म) कवच और (नाम) नाम (निहितम्) स्थित हैं (तत्र)उस यान में (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए (वयम्) हम लोग (शग्मम्)सुख तथा उस (रथम्) रमण योग्य यान को (विश्वाहा) सब दिन (उप,सदेम) निकट प्राप्त होवें ॥ ४५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस यान में अग्नि आदि तथा घोड़े आदि संयुक्त किये जाते उसमें युद्ध की सामग्री धर नित्य उस की देख भाल कर उस में बैठ और सुन्दर विचार से शत्रुओं के साथ सम्यक् युद्ध करो नित्य सुख को प्राप्त होओ ॥ ४५ ॥

स्वादुषꣳसद इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वादुषꣳसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः । चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ४६ ॥

स्वादुषꣳसदः । स्वादुसꣳसद इति स्वादुऽसꣳसदः । पितरः । वयोधा इति वयःऽधाः । कृच्छ्रेश्रित इति कृच्छ्रेऽश्रितः । शक्तीवन्तः । शक्तीवन्त इति शक्तिऽवन्तः । गभीराः । चित्रसेना इति चित्रऽसेनाः । इषुबला इतीषुऽबलाः । अमृध्राः । सतोवीरा इति सतःऽवीराः । उरवः । व्रातसाहाः । व्रातसाहा इति व्रातऽसाहाः ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(स्वादुषꣳसदः) ये स्वादुषु भोज्याद्यन्नेषु सम्यक् सीदन्ति ते (पितरः) पालनक्षमाः (वयोधाः) ये दीर्घं वयो जीवनं दधति ते (कृच्छ्रेश्रितः) ये कृच्छ्रे कष्टे श्रितः कष्टं सेवमानाः

(शक्तीवन्तः) सामर्थ्ययुक्ताः। अत्र छन्दसीर इति वत्वम् (गभीराः) आगाधाशयाः (चित्रसेनाः) अद्भुतसैन्याः (इषुबलाः) इषुभिः शस्त्रास्त्रैस्सह बलं सैन्यं येषान्ते (अमृध्राः) अकोमलाङ्गा दृढाङ्गाः (सतोवीराः) सतो विद्यमानस्य सैन्यस्य मध्ये वीराः प्राप्तयुद्धविद्याशिक्षाः (उरवः) विशालजघनोरस्काः (व्रातसाहाः) ये व्रातान् वीराणां समूहान्सहन्ते ते ॥ ४६ ॥

अन्वयः— हे योद्धारो वीरा यूयं ये स्वादुषंसदो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराश्चित्रसेना इषुबला अमृध्रा उरवो व्रातसाहाः सतोवीराः पितरः स्युस्तानाश्रित्य युद्धं कुरुत ॥ ४६ ॥

भावार्थः— तेषामेव सदा विजयो राज्यश्रीः प्रतिष्ठा दीर्घमायुर्बलं विद्याश्च भवन्ति ये स्वाधिष्ठातॄणामाप्तानां शासने तिष्ठन्ति ॥ ४६ ॥

पदार्थः— हे युद्ध करने हारे वीर पुरुषो ! तुम लोग जो (स्वादुषंसदः) भोजन के योग्य अन्नादि पदार्थों का सम्यक् सेवने वाले (वयोधाः) अधिक अवस्था युक्त (कृच्छ्रेश्रितः) उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिये कष्ट सेवते हुए (शक्तीवन्तः) सामर्थ्य वाले (गभीराः) महाशय (चित्रसेनाः) आश्चर्य गुण युक्त सेना वाले (इषुबलाः) शस्त्र अस्त्रों के सहित जिनकी सेना (अमृध्राः) दृढ़ शरीर वाले (उरवः) बड़े२ जिन के जंघा और छाती (व्रातसाहाः) वीरों के समूहों को सहने वाले (सतोवीराः) विद्यमान सेना के बीच युद्ध विद्या की शिक्षा को प्राप्त वीर (पितरः) पालन करने हारे राज पुरुष हों उन का आश्रय ले युद्ध करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः-उन्हीं का सदा विजय राज्य श्री प्रतिष्ठा बड़ी अवस्था बल और विद्या होती हैं जो अपने अधिष्ठाता आप्त सत्यवादी सज्जनों की शिक्षा में स्थित होते हैं ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणास इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । धनुर्वेदाऽध्यापका देवताः ।
विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
के सत्कर्त्तव्या इत्याह ॥
किन का सत्कार करना चाहिये इस वि० ॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवीअनेहसा । पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नोअघशंस ईशत ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणासः । पितरः । सोम्यासः । शिवेऽइति शिवे । नः । द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी । अनेहसा । पूषा । नः । पातु । दुरितादिति दुःऽइतात् । ऋतावृधः । ऋतावृधऽइत्यृतऽवृधः । रक्ष । माकिः । नः । अघशंसऽइत्यघऽशंसः । ईशत ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(ब्राह्मणासः) वेदेश्वरविदः (पितरः) पालकाः (सोम्यासः) ये सोमगुणमर्हन्ति ते (शिवे) कल्याणकरे (नः) अस्मभ्यम् (द्यावापृथिवी) प्रकाशभूमी (अनेहसा) अविनाशिनौ (पूषा) पुष्टिकरः (नः) अस्मान् (पातु) (दुरितात्) दुष्टान्यायाचरणात् (ऋतावृधः) य ऋतं सत्यं वर्द्धयन्ति ते (रक्ष) । अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः (माकिः) निषेधे (नः) अस्मान् (अघशंसः) पापप्रशंसी स्तेनः (ईशत) समर्थो भवेत् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये सोम्यास ऋतावृधः पितरो ब्राह्मणासो विद्वांसो नः कल्याणकरा अनेहसा द्यावापृथिवी च शिवे भवतः ।

पूषा परमात्मा नो दुरितात् पातु यतो नो हिंसितुमघशंसो माकिरीशत तान् रक्ष स्तेनाञ्जहि ॥ ४७ ॥

भावार्थः- हे मनुष्या ये विद्वांसो युष्मान् धर्म्ये कृत्ये प्रवर्त्य दुष्टाचारात् पृथक् रक्षन्ति दुष्टाचारिणां बलं निरून्धन्त्यस्माकं पुष्टिञ्च जनयन्ति ते सदा सत्कर्त्तव्याः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सोम्यासः) उत्तम आनन्दकारक गुणों के योग्य (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाले (पितरः) रक्षक (ब्राह्मणासः) वेद और ईश्वर के जानने हारे विद्वान् जन (नः) हमारे लिये कल्याण करने हारे और (अनेहसा) कारण रूप से अविनाशी (द्यावापृथिवी) प्रकाश पृथिवी (शिवे) कल्याणकारी हों (पूषा) पुष्टि करने हारा परमात्मा (नः) हम को (दुरितात्) दुष्ट अन्याय के आचरण से (पातु) बचावे जिस से (नः) हम को मारने को (अघशंस) पाप की प्रशंसा करने हारा चोर (माकिः) न (ईशत) समर्थ हो उन विद्वानों की तू रक्षा कर और चोरों को मार ॥ ४७ ॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन तुम को धर्मयुक्त कर्त्तव्य में प्रवृत्त कर दुष्ट आचरण से पृथक् रखते दुष्टाचारियों के बल को नष्ट और हमारी पुष्टि करते वे सदैव सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४७ ॥

सुपर्णमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुना राजधर्ममाह ॥
फिर राजधर्म अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता । यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥४८॥

सुपर्णमिति सुऽपर्णम् । वस्ते । मृगः । अस्याः । दन्तः । गोभिः । सन्नद्धेति सम्ऽनद्धा । पतति । प्रसूतेति प्रऽसूता । यत्र । नरः । सम् । च । वि । च । द्रवन्ति । तत्र । अस्मभ्यम् । इषवः । शर्म । यंसन् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(सुपर्णम्) शोभनानि पर्णानि पालनानि पूरणानि यस्य तं रथादिकम् (वस्ते) धरति (मृगः) यो मार्ष्टि कस्तूर्या सः (अस्याः) (दन्तः) दाम्यते येन सः (गोभिः) धेनुभिस्सह (सन्नद्धा) सम्यग्बद्धा (पतति) (प्रसूता) प्रेरिता सती (यत्र) यस्याम्। अत्र ऋचितु-नु० इति दीर्घः (नरः) नायकाः सम् सम्यक् (च) (वि) विशेषेण (च) (द्रवन्ति) गच्छन्ति (तत्र) (अस्मभ्यम्) (इषवः) बाणाद्याः शस्त्रविशेषाः (शर्म) सुखम् (यंसन्) यच्छन्तु ददतु ॥ ४८ ॥

अन्वयः—हे वीरा यत्र सेनायां नरो नायकाः स्युर्या सुपर्णं वस्ते यत्र गोभिस्सह दन्तो मृगइव इषवो धावन्ति या सन्नद्धा प्रसूता शत्रुषु पतति इतस्ततश्चास्या वीराः संद्रवन्ति विद्रवन्ति च तत्रास्मभ्यं भवन्तः शर्म यंसन् ॥ ४८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे राजपुरुषा युष्माभिः शत्रुभिरप्रधर्षिणी हृष्टा पुष्टा सेना संपादनीया तस्यां सुपरीक्षिता योद्धारोऽध्यक्षाश्च रक्षणीयास्तैः शस्त्रास्त्रप्रक्षेपणेषु कुशलैर्जनैर्विजयः प्राप्तव्यः ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! (यत्र) जिस सेना में (नरः) नायक लोग हों जो (सुपर्णम्) सुन्दर पूर्ण रक्षा के साधन उस रथादि को (वस्ते)

धारण करती और जहां (गोभिः) गौओं के सहित (दन्तः जिस का दमन किया जाता उस (मृगः) कस्तूरी से शुद्ध करने वाले मृग के तुल्य (इषवः) वाण आदि शस्त्र विशेष चलते हैं जो (सन्नद्धा) सम्यक् गोष्ठी बंधी (प्रसूता) प्रेरणा की हुई शत्रुओं में (पतित) गिरती (च) और इधर उधर (अस्याः) इस सेना के वीर पुरुष (सम्, द्रवन्ति) सम्यक् चलते (च) और (वि) विशेष कर दौड़ते हैं (तत्र) उस सेना में (अस्मभ्यम्) हमारे लिये आप लोग (शर्म) सुख (यंसन्) देओ ॥४८॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु० - हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि शत्रुओं से न धमकने वाली रुष्ट पुष्ट सेना सिद्ध करो उस में सुन्दर परीक्षित योद्धा और अध्यक्ष रक्खो उन शस्त्र अस्त्रों के चलाने में कुशल जनों से विजय को प्राप्त होओ ॥४८॥

ऋजीत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः ।

विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

ऋजी॑ते॒ परि॑ वृङ्ग्धि॒ नोऽश्मा॑ भवतु नस्त॒नूः ।
सोमो॒ अधि॑ ब्रवीतु॒ नोऽदि॑तिः॒ शर्म॑ यच्छतु ॥४९॥

ऋजी॑ते । परि॑ । वृ॒ङ्ग्धि॒ । नः॒ । अश्मा॑ । भ॒वतु । नः॒ । त॒नूः । सोमः॑ । अधि॑ । ब्र॒वी॒तु॒ । नः॒ । अदि॑तिः । शर्म॑ । य॒च्छ॒तु॒ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(ऋजीते) सरले व्यवहारे (परि) सर्वतः (वृङ्ग्धि) वर्त्तय (नः) अस्माकम् (अश्मा) यथा पाषाणः (भवतु) (नः) अस्माकम् (तनूः) शरीरम् (सोमः) ओ-

षधिराजः (अधि) (ब्रवीतु) (नः) अस्मभ्यम् (अदितिः) पृथिवीं (शर्म) गृहं सुखं वा (यच्छतु) ददातु ॥ ४९ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वमृजीते नोऽस्माकं शरीराद्रोगान् परिवृङ्ग्धि यतो नस्तनूरश्मा भवतु यः सोमोऽस्ति तं याचादितिरस्ति ते भवान्नोऽधि ब्रवीतु नः शर्म च यच्छतु ॥ ४९ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्या ब्रह्मचर्यौषधपथ्यसुनियमसेवनेन शरीराणि रक्षेयुस्तर्हि तेषां शरीराणि दृढानि भवेयुर्यथा शरीराणां पार्थिवादि गृहमस्ति तथा जीवस्येदं गृहम् ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! आप (ऋजीते) सरल व्यवहार में (नः) हमारे शरीर से रोगों को (परि, वृङ्ग्धि) सब ओर से पृथक् कीजिये जिस से (नः) हमारा (तनूः) शरीर (अश्मा) पत्थर के तुल्य दृढ़ (भवतु) हो जो (सोमः) उत्तम ओषधि है उस और जो (अदितिः) पृथिवी है उन दोनों का आप (अधि, ब्रवीतु) अधिकार उपदेश कीजिये और (नः) हमारे लिये (शर्म) सुख वा घर (यच्छतु) दीजिये ॥ ४९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य, औषध, पथ्य और सुन्दर नियमों के सेवन से शरीरों की रक्षा करें तो उन के शरीर दृढ़ होवें जैसे शरीरों का पृथिवी आदि का बना घर है वैसे जीव का यह शरीर घर है ॥ ४९ ॥

आजङ्घन्तीत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः ॥
विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
पुना राजधर्ममाह ॥
फिर राजधर्म को कहते हैं ॥

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२॥ऽउप जिघ्नते। अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥५०॥

आ । जङ्घन्ति । सानु । एषाम् । जघनान् । उप । जिघ्नते । अश्वाजनीत्यश्वऽअजनि । प्रचेतस इति प्रऽचेतसः । अश्वान् । समत्स्विति समत्ऽसु । चोदय ॥ ५० ॥

पदार्थः-(आ) समन्तात् (जङ्घन्ति) भृशं घ्नन्ति ताडयन्ति (सानु) अवयवम् (एषाम्) अश्वादीनाम् (जघनान्) यूनः (उप) (जिघ्नते) घ्नन्ति गमयन्ति (अश्वाजनि) या अश्वान् जनयति सुशिक्षितान् करोति तत्सम्बुद्धौ (प्रचेतसः) शिक्षया प्रकर्षेण विज्ञापितान् (अश्वान्) तुरङ्गान् (समत्सु) सङ्ग्रामेषु(चोदय) प्रेरय ॥ ५० ॥

अन्वयः-हे अश्वाजनि विदुषि राज्ञि यथा वीरा एषां सानु आजङ्घन्ति जघनानुप जिघ्नते तथा त्वं समत्सु प्रचेतसोऽश्वांश्चोदय ॥ ५० ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-यथा राजा राजपुरुषाश्च यानाश्वचालनयुद्धव्यवहारान् जानीयुस्तथा तत्स्त्रियोऽपि विजानन्तु ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (अश्वाजनि) घोड़ों को शिक्षा देने वाली विदुषि राणी जैसे वीर पुरुष (एषाम्) इन घोड़े आदि के (सानु) अवयव को (आ,जङ्घन्ति) अच्छे प्रकार शीघ्र ताड़ना करते हैं (जघनान) ज्वानों को (उपजिघ्नते) समीप से चलाते हैं वैसे तू (समत्सु) सङ्ग्रामों में (प्रचेतसः) शिक्षा से विशेष कर चेतन किये (अश्वान) घोड़ों को (चोदय) प्रेरणा कर ॥ ५० ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०— जैसे राजा और राजपुरुष विमानादि रथ और घोड़ों के चलाने तथा युद्ध के व्यवहारों को जान वैसे उन की स्त्रियां भी जानें ॥५०॥

अहिरिवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । महावीरः सेनापतिर्देवता ।
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

अहिरिव भोगैः पर्य्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ ५१ ॥

अहिरिवेत्यहिःऽइव । भोगैः । परि । एति । बाहुम् । ज्यायाः । हेतिम् । परिबाधमानऽइति परिऽबाधमानः । हस्तघ्नऽइति हस्तऽघ्नः । विश्वा । वयुनानि । विद्वान् । पुमान् । पुमांसम् । परि । पातु । विश्वतः ॥ ५१ ॥

पदार्थः-(अहिरिव) मेघ इव गर्जन् 'अहिरिति मेघना० निघं० १ । १० (भोगैः) (परि) सर्वतः (एति) प्राप्नोति (बाहुम्) बाधकं शत्रुम् (ज्यायाः) प्रत्यञ्चायाः (हेतिम्) बाणम् (परिबाधमानः) सर्वतो निवारयन् (हस्तघ्नः) यो हस्ताभ्यां हन्ति सः (विश्वा) सर्वाणि (वयुनानि) विज्ञानानि (विद्वान्) (पुमान्) पुरुषार्थी (पुमांसम्) (पुरुषार्थिनम्) (परि) सर्वथा (पातु) रक्षतु (विश्वतः) संसारे भवाद्विघ्नात् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्य यो हस्तघ्नो विद्वान् पुमान् भवान् ज्याया हेतिं प्रक्षिप्य बाहु परिबाधमानः पुमांसं विश्वतः परि पातु सोऽहिरिव भोगैर्विश्वा वयुनानि पर्य्येति ॥ ५१ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालं०—यो विद्वान् बाहुबलः शस्त्रास्त्रप्रक्षेपणवित्छत्रून्निवारयन्पुरुषार्थेन सर्वान् सर्वस्माद्रक्षन् मेघवत्सुखभोगवर्द्धकः स्यात्स सर्वान् मनुष्यान् विद्याः प्रापयितुं समर्थो भवेत् ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जो (हस्तघ्नः) हाथों से मारने वाले (विद्वान्) विद्वान् (पुमान्) पुरुषार्थी आप (ज्यायाः) प्रत्यञ्चा से (हेतिम्) बाण को चला के (बाहुम्) बाधा देने वाले शत्रु को (परिबाधमानः) सब ओर से निवृत्त करते हुए (पुमांसम्) पुरुषार्थी जन की (विश्वतः) सब प्रकार से (परि, पातु) चारों ओर से रक्षा कीजिये सो (अहिरिव) मेघ के तुल्य गर्जते हुए आप (भोगैः) उत्तम भोगों के सहित (विश्वा) सब (वयुनानि) विज्ञानों को (परि, एति) सब ओर से प्राप्त होते हो ॥ ५१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो विद्वान् भुजबल वाला शस्त्र अस्त्र के चलाने का ज्ञाता शत्रुओं को निवृत्त करता पुरुषार्थ से सब को सब से रक्षा करता हुआ मेघ के तुल्य सुख और भोगों का बढ़ाने वाला हो वह सब मनुष्यों को विद्या प्राप्त कराने को समर्थ होवे ॥ ५१ ॥

वनस्पत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । सुवीरो देवता ।
भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुना राजप्रजाधर्मविषयमाह ॥
फिर राजप्रजा धर्म वि० ॥

वन॑स्पते वी॒ड्व॑ङ्गो॒ हि भू॒या अ॒स्मत्स॑खा प्र॒तर॑णः सु॒वीरः॑ । गोभिः॒ सन्न॑द्धो असि वी॒डय॑स्वा॒स्था॒ता ते॑ जयतु॒ जेत्वा॑नि ॥ ५२ ॥

वन॑स्पते । वी॒ड्व॑ङ्ग॒ऽ इति॑ वी॒डुऽअ॑ङ्गः । हि । भू॒याः । अ॒स्मत्स॒खेत्य॒स्मत्ऽस॑खा । प्र॒तर॑ण॒ऽइति॑ प्रऽतर॑णः । सु॒वीर॒ऽ इति॑ सु॒ऽवीरः॑ । गोभिः॑ । सन्न॑द्ध॒ऽ इति॒ सम्ऽन॑द्धः । अ॒सि । वी॒डय॑स्व । आ॒स्था॒तेत्या॑ऽस्था॒ता । ते॒ । ज॒य॒तु॒ । जेत्वा॑नि ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(वनस्पते) किरणानां रक्षकः सूर्य इव वनादीनां पालक विद्वन् राजन् (वीड्वङ्गः) प्रशंसिताङ्गः (हि)(भूयाः) भवेः (अस्मत्सखा) अस्माकं मित्रम् (प्रतरणः) शत्रुबलस्योल्लङ्घकः (सुवीरः) शोभना वीरा यस्य सः (गोभिः) पृथिव्यादिभिः(सन्नद्धः) तत्परः सम्बद्धः (असि) (वीडयस्व) दृढान् कुरु (आस्थाता) समन्तात् स्थिरः सेनापतिः (ते)तव (जयतु) (जेत्वानि) जेतुं योग्यानि शत्रुसैन्यानि ॥ ५२ ॥

अन्वयः—हे वनस्पते त्वमस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरो वीड्वङ्गोहि भूयाः । यतो गोभिः सन्नद्धोऽस्यतोऽस्मान् वीडयस्व त आस्थाता वीरो जेत्वानि जयतु ॥ ५२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा सूर्येण किरणानां किरणैः सूर्यस्य नित्यः सम्बन्धोऽस्ति तथा राजसेनाप्रजानां सम्बन्धो भवितुं योग्यः । यदि सेनेशादयो जितेन्द्रियाः शूरवीराः स्युस्तर्हि सेनाः प्रजा अपि तादृश्यो भवेयुः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) किरणों के रक्षक सूर्य के समान वन आदि के रक्षक विद्वन् राजन् ! आप (अस्मत्सखा) हमारे रक्षक मित्र (प्रतरणः) शत्रुओं के बल का उल्लङ्घन करने हारे (सुवीरः) सुन्दर वीर पुरुषों से युक्त (वीड्वङ्गः) प्रशंसित अवयव वाले (हि) निश्चय कर (भूयाः) हूजिये जिस कारण आप (गोभिः) पृथिवी आदि के साथ (सन्नद्धः) सम्बन्ध रखते तत्पर (असि) हैं इसलिये हम को(वीडयस्व)दृढ कीजिये(ते)आप का(अवस्थाता)

युद्ध में अच्छे २ प्रकार स्थिर रहने वाला वीर सेनापति (जेत्वानि) जीतने योग्य शत्रुओं को (जयतु) जीते ॥ ५२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य के साथ किरणों और किरणों के साथ सूर्य का नित्य सम्बन्ध है वैसे राजा सेना तथा प्रजाओं का सम्बन्ध होने योग्य है जो सेनापति आदि जितेन्द्रिय शूर वीर हों तो सेना और प्रजा भी वैसी ही जितेन्द्रिय होवें ॥ ५२ ॥

दिव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरो देवता।
विराट् जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥
पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतꣳ सहः। अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज ॥ ५३॥

दिवः। पृथिव्याः। परि। ओजः। उद्भृतमित्युत्ऽभृतम्। वनस्पतिभ्य इति वनस्पतिऽभ्यः। परि। आभृतामित्याऽभृतम्। सहः। अपाम्। ओज्मानम्। परि। गोभिः। आवृतमित्याऽवृतम्। इन्द्रस्य। वज्रम्। हविषा। रथम्। यज ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(दिवः) सूर्यात् (पृथिव्याः) भूमेः (परि) (ओजः) पराक्रमम् (उद्भृतम्) उत्कृष्टतया धृतम् (वनस्पतिभ्यः) वटादिभ्यः (परि) (आभृतम्) सम-

न्तात् पोषितम् (सहः) बलम् (अपाम्) जलानां सकाशात् (ओज्मानम्) पराक्रमयुक्तं रसम् (परि)(गोभिः) किरणैः (आवृतम्) आच्छादितम् (इन्द्रस्य) सूर्यस्य (वज्रम्) कुलिशमिव (हविषा) आदानेन (रथम्) यानम् (यज) ॥ ५३ ॥

अन्वयः—हे विद्वँस्त्वं दिवः पृथिव्या उद्धृतमोजः परि यज वनस्पतिभ्य आभृतं सहः परि यज। अपां सकाशादोज्मानं परि यज। इन्द्रस्य गोभिरावृतं वज्रं रथं हविषा यज॥ ५३ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः पृथिव्यादिभ्यो भूतेभ्यस्तज्जायाः सृष्टेश्च सकाशाद्बलपराक्रमौवर्द्धनीयौ तद्योगेन च विमानादीनि यानानि निर्मातव्यानि॥५३॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप (दिवः) सूर्य और (पृथिव्याः) पृथिवी से (उद्भृतम्) उत्कृष्टता से धारण किये (ओजः) पराक्रम को (परि, यज) सब ओर से दीजिये (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वनस्पतियों से (आभृतम्) अच्छे प्रकार पुष्ट किये (सहः) बल को (परि) सब ओर से दीजिये (अपाम्) जलों के सम्बन्ध से (ओज्मानम्) पराक्रम वाले रस को (परि) चारों ओर से दीजिये। तथा (इन्द्रस्य) सूर्य की (गोभिः) किरणों से (आवृतम्) युक्त चिलकते हुए (वज्रम्) वज्र के तुल्य (रथम्) यान को (हविषा) ग्रहण से संगत कीजिये ॥५३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पृथिवी आदि भूतों और उन से उत्पन्न हुई सृष्टि के सम्बन्ध से बल और पराक्रमों को बढ़ावें और उन के योग से विमान आदि यानों को बनाया करें ॥ ५३ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरो देवता ।
निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः । सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ ५४ ॥

इन्द्रस्य । वज्रः । मरुताम् । अनीकम् । मित्रस्य । गर्भः । वरुणस्य । नाभिः । सः । इमाम् । नः । हव्यदातिमिति हव्यऽदातिम् । जुषाणः । देव । रथ । प्रति । हव्या । गृभाय ॥ ५४ ॥

पदार्थः— (इन्द्रस्य) विद्युतः (वज्रः) निपातः (मरुताम्) मनुष्याणाम् (अनीकम्) सैन्यम् (मित्रस्य) सख्युः (गर्भः) अन्तस्थ आशयः (वरुणस्य) श्रेष्ठस्य (नाभिः) आत्मनो मध्यवर्त्ती विचारः (सः) (इमाम्) प्रत्यक्षाम् (नः) अस्मान् (हव्यदातिम्) दातव्यानां दानम् (जुषाणः) सेवमानः (देव) दिव्यविद्य (रथ) रमणीयस्वरूप (प्रति) (हव्या) आदातुमर्हाणि वस्तूनि (गृभाय) गृहाण ॥ ५४ ॥

अन्वयः— हे देव रथेमां हव्यदातिं जुषाणस्त्वं य इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिरस्य सं नोऽस्मान् हव्या च प्रति गृभाय ॥ ५४ ॥

भावार्थः– येषां मनुष्याणां सेनाऽतिश्रेष्ठा विद्युद्विद्या मित्राशय आप्तविचारो विद्यादिदानञ्च स्वीकृतानि सन्त्यन्येभ्यो देयानि च ते सर्वतो मङ्गलावृताः स्युः ॥ ५४ ॥

पदार्थः— हे (देव) उत्तम विद्या वाले (रथ) रमणीय स्वरूप विद्वन् ! (इमाम्) इस (हव्यदातिम्) देने योग्य पदार्थों के दान को (जुषाणः) सेवते हुए (सः) पूर्वोक्त आप जो (इन्द्रस्य) बिजुली का (वज्रः) गिरना (मरुताम्) मनुष्यों की (अनीकम्) सेना (मित्रस्य) मित्र के (गर्भः)अन्तःकरण का आशय और (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन के (नाभिः) आत्मा का मध्यवर्त्ती विचार है उस को (नः) और हम को(हव्या) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (प्रति,गृभाय) प्रतिग्रह अर्थात् स्वीकार कीजिये ॥ ५४ ॥

भावार्थः— जिन मनुष्यों की सेना अतिश्रेष्ठ, बिजुली की विद्या, मित्र का आशय, आप्त सत्यवक्ताओं का विचार और विद्यादि का दान स्वीकार किये तथा दूसरों को दिये हैं वे सब ओर से मंगलयुक्त होवें ॥ ५४ ॥

उपश्वासयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः ।
भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

उपं श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् । स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अपं सेध शत्रून् ॥ ५५ ॥

उपं । श्वासय । पृथिवीम् । उत । द्याम् । पुरुत्रेति पुरुऽत्रा । ते । मनुताम् । विष्ठितम् । विस्थितमिति विऽस्थितम् । जगत् । सः । दुन्दुभे ।

सजूरिति सऽजूः । इन्द्रेण । देवैः । दूरात् । दवीयः । अप । सेध । शत्रून् ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(उप) (श्वासय) प्राणय (पृथिवीम्) अन्तरिक्षम् (उत) अपि (द्याम्) विद्युत्प्रकाशम् (पुरुत्रा) बहुविधम् (ते) तव (मनुताम्) विजानातु (विष्ठितम्) व्याप्तम् (जगत्) (सः) (दुन्दुभे) दुन्दुभिरिव गम्भीरगर्जन ! (सजूः) संयुक्तः (इन्द्रेण) ऐश्वर्येण युक्तैः (देवैः) दिव्यैर्विद्वद्भिर्गुणैर्वा (दूरात्) (दवीयः) अतिदूरम् (अप) (सेध) दूरीकुरु (शत्रून्)॥५५॥

अन्वयः—हे दुन्दुभे स त्वमिन्द्रेण देवैः सजूर्दूराच्छत्रून् दवीयोपसेध पुरुत्रा पृथिवीमुत द्यामुपश्वासय भवान् ताभ्यां विष्ठितं जगन्मनुतां तस्य ते राज्यमानन्दितं स्यात् ॥ ५५ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या विद्युद्विद्यावीरैः शत्रून् दूरे प्रक्षिप्यैश्वर्येण विदुषो दूरादाहूय सत्कुर्युरन्तरिक्षविद्युद्भ्यां व्याप्तं सर्वं जगद्विज्ञाय विविधा विद्याः क्रियाः साधयेयुस्ते जगदानन्दयितारः स्युः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे (दुन्दुभे) नगाड़े के तुल्य गरजने हारे (सः) सो आप (इन्द्रेण) ऐश्वर्य से युक्त (देवैः) उत्तम विद्वान वा गुणों के साथ (सजूः) संयुक्त (दूरात्) दूर से भी (दवीयः) अति दूर (शत्रून्) शत्रुओं को(अपसेध) पृथक् कीजिये (पुरुत्रा) बहुत विध (पृथिवीम्) आकाश (उत) और (द्याम्) बिजुली के प्रकाश को (उप श्वासय) निकट जीवन धारण कराइये आप उन अन्तरिक्ष और बिजुली से (विष्ठितम्) व्याप्त (जगत्) संसार को (मनुताम्) मानो उस (ते) आप को राज्य आनन्दित होवे ॥ ५५ ॥

भावार्थः--जो मनुष्य विद्युत् विद्या से हुए अस्त्रों से शत्रुओं को दूर फेंक ऐश्वर्य से विद्वानों को दूर से बुला के सत्कार करें अन्तरिक्ष और बिजुली से व्याप्त सब जगत् को जान विविध पकार की विद्या और क्रियाओं को सिद्ध करें वे जगत् को आनन्द कराने वाले होवे हैं ॥ ५५ ॥

आक्रन्दयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वादयितारो वीरा देवताः ।
भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
राजपुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः । अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥ ५६ ॥

आ । क्रन्दय । बलम् । ओजः । नः । आ । धाः । निः । स्तनिहि । दुरितेति दुःऽइता । बाधमानः । अप । प्रोथ । दुन्दुभे । दुच्छुनाः । इतः । इन्द्रस्य मुष्टिः । असि । वीडयस्व ॥ ५६

पदार्थः--(आ) (क्रन्दय) समन्ताद् ह्वय रोदय वा (बलम्) (ओजः) पराक्रमम् (नः) अस्मभ्यम् (आ) (धाः) धेहि (निः) नितराम् (स्तनिहि) विस्तृणीहि (दुरिता) दुष्टानि व्यसनानि (बाधमानः) निवारयन् (अप) (प्रोथ) परि प्राप्नुहि (दुन्दुभे) दुन्दुभिरिव गर्जितसेन ! (दुच्छुनाः) दुष्टाः श्वानइव वर्त्तमानाः (इतः) सेनायाः (इन्द्रस्य) विद्युतः (मुष्टिः) मुष्टिरिव (असि) (वीडयस्व) दृढय ॥ ५६ ॥

अन्वयः—हे दुन्दुभे दुरिता बाधमानस्त्वं नो बलमाक्रन्दयौज आधाः सैन्यं निष्टनिहि ये दुच्छुनास्तानपाक्रन्दय यतस्त्वं मुष्टिरसि तस्मादित इन्द्रस्य वीडयस्व सुखानि प्रोथ ॥ ५६ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैः श्रेष्ठाः सत्कर्त्तव्या दुष्टा रोदनीयाः सर्वेषां दुर्व्यसनानि दूरीकारयित्वा सुखानि प्रापयितव्यानि ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (दुन्दुभे) नगाड़ों के तुल्य जिन की सेना गर्जती ऐसे सेनापते (दुरिता) दुष्ट व्यसनों को (बाधमानः) निवृत्त करते हुए आप (नः) हमारे लिये (बलम्) बल को (आ, क्रन्दय) पहुंचाइये (ओजः) पराक्रम को (आ,धाः) अच्छे प्रकार धारण कीजिये सेना को (नि,ष्टनिहि) विस्तृत कीजिये जो (दुच्छुनाः) दुष्ट कुत्तों के तुल्य वर्त्तमान हैं उन को (अप) बुरे प्रकार रुलाइये जिस कारण आप (मुष्टिः) मूठों के तुल्य प्रबन्धकर्त्ता (असि) हैं इस से (इतः) इस सेना से (इन्द्रस्य) बिजुली के अवयवों को (वीडयस्व) दृढ़ कीजिये और सुखों को (प्रोथ) पूरण कीजिये ॥ ५६ ॥

भावार्थः— राजपुरुषों को चाहिये कि श्रेष्ठों का सत्कार करें दुष्टों को रुलावें सब मनुष्यों के दुर्व्यसनों को दूर करके सुखों को प्राप्त करें ॥ ५६ ॥

आमूरित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वादयितारो वीरा देवताः ।
भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति । समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ५७ ॥

आ । अमूः । अज । प्रत्यर्वर्त्तयेति प्रतिऽआर्वर्त्तय । इमाः । केतुमदिति केतुऽमत् । दुन्दुभिः । वावदीति । सम् । अश्वपर्णाऽइत्यश्वंऽपर्णाः । चरन्ति । नः । नरः । अस्माकम् । इन्द्र । रथिनः । जयन्तु ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (अमूः) शत्रुसेनाः (अज) प्राक्षिप (प्रत्यावर्त्तय) (इमाः) स्वसेनाः (केतुमत्)केतुः प्रशस्ता ध्वजा यासु ताः । अत्र स्त्रीप्रत्ययस्य लुक् ।(दुन्दुभिः)(वावदीति) (सम्) (अश्वपर्णाः) अश्वानां पर्णानि पालनानि यासु सेनासु ताः(चरन्ति) गच्छन्ति (नः)अस्मान् (नरः)नायकाः (अस्माकम्) (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्तरथिनः प्रशस्तरथयुक्ता वीराः (जयन्तु) ॥ ५७ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र त्वममू राज इमाः केतुमत् प्रत्यावर्त्तय यथा दुन्दुभिर्वावदीति तथा नोऽश्वपर्णाः सञ्चरन्ति येऽस्माकं रथिनो नरः शत्रूञ्जयन्तु ते सत्कृताः स्युः ॥ ५७ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये राजपुरुषाः शत्रुसेना निवर्त्तयितुं स्वसेना योधयितुं समर्थाः स्युस्ते सर्वत्र शत्रूञ्जेतुं शक्नुयुः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त राजपुरुष! आप (.अमूः) उन शत्रु सेनाओं को (आ,अज) अच्छे प्रकार दूर फेंकिये (केतुमत्) ध्वजा वाली (इमाः) इन अपनी सेनाओं को (प्रति, आवर्त्तय) लौटा लावो जैसे (दुन्दुभिः) नगाड़ा (वावदीति)अत्यन्त बजता है वैसे (नः) हम को (अश्वपर्णाः) घोड़ों का जिन में पालन हो वे सेना (सम्, चरन्ति)सम्यक् विचरती हैं

जो (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) प्रशंसित रथों पर चढ़ हुए वीर (नरः) नायक जन शत्रुओं को (जयन्तु) जीतें वे सत्कार को प्राप्त हों ॥ ५७ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जो राजपुरुष शत्रुओं की सेनाओं को निवृत्त करने और अपनी सेनाओं को युद्ध करने को समर्थ हों वे सर्वत्र शत्रुओं को जीत सकें ॥ ५७ ॥

आग्नेय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । विद्वांसो देवताः ।

भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ कीदृशाः पशवः किं गुणा इत्याह ॥

अब कैसे पशु कैसे गुणों वाले होते हैं इस वि० ॥

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः संहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्पेत्वः ॥ ५८ ॥

आग्नेयः । कृष्णग्रीव इति कृष्णऽग्रीवः । सारस्वती । मेषी । बभ्रुः । सौम्यः । पौष्णः । श्यामः । शितिपृष्ठ इति शितिऽपृष्ठः । बार्हस्पत्यः । शिल्पः । वैश्वदेव इति वैश्वऽदेवः । ऐन्द्रः । अरुणः । मारुतः । कल्माषः । ऐन्द्राग्नः । संहित इति सम्ऽहितः । अधोराम इत्यधःऽरामः । सावित्रः । वारुणः । कृष्णः । एकशितिपादित्येकऽशितिपात् । पेत्वः ॥ ५८ ॥

पदार्थः–(आग्नेयः) अग्निदेवताकः (कृष्णग्रीवः) कृष्णा ग्रीवा यस्य सः (सारस्वती) सरस्वती देवताका (मेषी) (बभ्रुः) धूम्रवर्णः (सौम्यः) सोमदेवताकः (पौष्णः) पूषदेवताकाः (श्यामः) श्यामवर्णः (शितिपृष्ठः) कृष्णपृष्ठः (बार्हस्पत्यः) बृहस्पतिदेवताकः (शिल्पः) नानावर्णाः (वैश्वदेवः) विश्वदेवदेवताकः (ऐन्द्रः) इन्द्रदेवताकः (अरुणः) रक्तवर्णः (मारुतः) मरुद्देवताकः (कल्माषः) श्वेतकृष्णवर्णः (ऐन्द्राग्नः) इन्द्राग्निदैवत्यः (संहितः) दृढाङ्गः (अधोरामः) अधःक्रीडी (सावित्रः) सवितृदेवताकः (वारुणः) वरुणदैवत्यः (कृष्णः) (एकशितिपात्) एकः शितिः पादोऽस्य (पेत्वः) पतनशीलः ॥ ५८ ॥

अन्वयः–हे मनुष्या यूयं य आग्नेयः स कृष्णग्रीवो या सारस्वती सा मेषी यः सौम्यः स बभ्रुर्यः पौष्णः स श्यामो बार्हस्पत्यः स शितिपृष्ठो यो वैश्वदेवः स शिल्पो य ऐन्द्रः सोऽरुणो यो मारुतः स कल्माषः य ऐन्द्राग्नः स संहितो यः सावित्रः सोऽधोरामो य एकशितिपात्पेत्वः कृष्णः स वारुणश्चेत्येतान् विजानीत ॥५८॥

भावार्थः–हे मनुष्या युष्माभिर्यद्दैवत्या ये ये पशवो विख्यातास्ते तत्तद्गुणाऽसिरिषा सन्तीति वेद्यम् ॥५८॥

पदार्थः–हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला अर्थात् अग्नि के उत्तम गुणों से युक्त है वह (कृष्णग्रीवः) काले गले वाला पशु जो (सारस्वती) सरस्वती वाणी के गुणों वाली वह (मेषी) भेड जो (सौम्यः) चन्द्रमा के गुणों वाला वह (बभ्रुः) धुमेला पशु जो (पौष्णः) पुष्टि आदि गुणों वाला वह (श्यामः) श्याम रंग से युक्त पशु जो (बार्हस्पत्यः) बड़े

आकाशादि के पालन आदि गुणयुक्त वह (शितिपृष्ठः) काली पीठ वाला पशु जो (वैश्वदेवः) सब विद्वानों के गुणों वाला वह (शिल्पः) अनेक वर्ण युक्त जो (ऐन्द्रः) सूर्य्य के गुणों वाला वह (अरुणः) लालरंग युक्त जो (मारुतः) वायु के गुणों वाला वह (कल्माषः) खाखी रंगयुक्त जो (ऐन्द्राग्नः) सूर्य्य अग्नि के गुणों वाला वह (संहितः) मोटे दृढ़ अङ्गयुक्त जो (सावित्रः) सूर्य के गुणों से युक्त वह (अधोरामः) नीचे विचरने वाला पक्षी जो (एकशितिपात्) जिस का एक पग काला (पेत्वः) उड़ने वाला और (कृष्णः) काले रंग से युक्त वह (वारुणः) जल के शान्त्यादि गुणों वाला है इस प्रकार इन सब को जानो ॥ ५८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जिस २ देवता वाले जो २ पशु विख्यात हैं वे २ उन २ गुणों वाले उपदेश किये हैं ऐसा जानो ॥ ५८ ॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।

भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्नयेऽनी॑कवते॒ रोहि॑ताञ्जिरन॒ड्वान॒धोरा॑मौ सा॑वि॒त्रौ पौ॒ष्णौ र॑ज॒तना॑भी वैश्वदे॒वौ पि॒शङ्गौ॑ तूप॒रौ मा॑रु॒तः क॒ल्माष॑ आग्ने॒यः कृ॒ष्णो॒ऽजः सा॑रस्व॒ती मे॒षी वा॑रु॒णः पेत्वः॑ ॥ ५९ ॥

अ॒ग्नये॑ । अनी॑कवत॒ऽ इत्यनी॑कऽवते । रोहि॑ताञ्जि॒रिति॒ रोहि॑तऽअञ्जिः । अ॒न॒ड्वान् । अ॒धोरा॑वा॒वित्य॒धःऽरा॑मौ । सा॒वि॒त्रौ । पौ॒ष्णौ । र॒ज॒तना॑भी॒ऽइति॑

रजतऽनाभी । वैश्वदेवाविति वैश्वऽदेवौ । पिशङ्गौ । तूपरौ । मारुतः । कल्माषः । आग्नेयः । कृष्णः । अजः । सारस्वती । मेषी । वारुणः । पेत्वः ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(अग्नये) विज्ञानादिगुणप्रकाशाय (अनीकवते) प्रशस्तसेनायुक्ताय (रोहिताञ्जिः) रोहिता रक्ता अञ्जयो लक्षणानि यस्य सः (अनड्वान्) वृषभः (अधोरामौ) अधोभागे श्वेतवर्णौ (सावित्रौ) सवितृगुणौ (पौष्णौ) पूषदैवत्यौ (रजतनाभी) रजतवर्णनाभियुक्तौ (वैश्वदेवौ) (पिशङ्गौ) पीतवर्णौ (तूपरौ) अविद्यमानशृङ्गौ (मारुतः) मरुद्दैवत्यः (कल्माषः) (आग्नेयः) अग्निदैवत्यः (कृष्णः) (अजः) (सारस्वती) वाक्गुणाः (मेषी) (वारुणः) जलगुणाः (पेत्वः) शीघ्रगामी ॥ ५९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यूयं येऽनीकवतेऽग्नये रोहिताञ्जिरनड्वान् सावित्रावधोरामौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ तूपरौ पिशङ्गौ मारुतः कल्माषः आग्नेयःकृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वश्चास्ति तान्यथा गुणं संप्रयोजय ॥ ५९ ॥

भावार्थः—अत्र पशूनां यावन्तो गुणा उक्तास्ते सर्वे गुणा एकस्मिन्नग्नौ संहिता सन्तीति वेद्यम् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (अनीकवते) प्रशंसित सेना वाले (अग्नये) विज्ञान आदि गुणों के प्रकाशक सेनापति के लिये (रोहिताञ्जिः) लाल चिन्हों वाला (अनड्वान्) बैल (सावित्रौ) सूर्य के गुण वाले (अधोरामौ) नीचे भाग में श्वेत-वर्ण वाले (पौष्णौ) पुष्टि आदि गुण युक्त (रजतनाभी) चांदी के वर्ण के तुल्य जिन की नाभि (वैश्वदेवौ)सब विद्वानों के संबंधी

(तूपरौ) मुण्डे (पिशङ्गौ) पीले दो पशु (मारुतः) वायु देवता वाला (कल्माषः) खाखी रङ्ग युक्त (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला (कृष्णः,अजः) काला बकरा (सारस्वती) वाणी के गुणों वाली (मेषी) भेड़ और (वारुणः) जल के गुणों वाला (पेत्वः) शीघ्रगामी पशु है इन सब को गुणों के अनुकूल काम में लाओ ॥ ५९ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में पशुओं के जितने गुण कहे हैं वे सब एक अग्नि में इकट्ठे हैं यह जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः ।
पूर्वस्य विराट् प्रकृतिः, वैराजाभ्यामित्युत्तरस्य
प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
कीदृशा जनाः कार्याणि साद्धुं शक्नुवन्तीत्याह ॥
कैसे मनुष्य कार्यसिद्धि कर सकते हैं इस वि० ॥

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकवि शाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्र औष्णिहाय त्रयस्त्रि शाय रैवताय द्वा-

दशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्या अष्टाकपालः ॥ ६० ॥

अग्नये। गायत्राय। त्रिवृत इति त्रिऽवृते। राथन्तरायेति राथम्ऽतराय। अष्टाकपालऽ इत्यष्टाऽकपालः। इन्द्राय। त्रैष्टुभाय। त्रैस्तुभायेति त्रैऽस्तुभाय। पञ्चदशायेति पञ्चऽदशाय। वार्हताय। एकादशकपालऽइत्येकादशऽकपालः। विश्वेभ्यः। देवेभ्यः। जागतेभ्यः। सप्तदशेभ्यऽ इति सप्तऽदशेभ्यः। वैरूपेभ्यः। द्वादशकपालऽइति द्वादशऽकपालः। मित्रावरुणाभ्याम्। आनुष्टुभाभ्याम्। आनुस्तुभाभ्यामित्यानुऽस्तुभाभ्याम्। एकविंशाभ्यामित्येकऽविंशाभ्याम्। वैराजाभ्याम्। पयस्या। बृहस्पतये। पाङ्क्ताय। त्रिणवाय। त्रिनवायेति त्रिऽनवाय। शाक्वराय। चरुः। सवित्रे। औष्णिहाय। त्रयस्त्रिंशायेति त्रयःऽत्रिंशाय। रैवताय। द्वादशकपालऽ इति द्वादशऽकपालः। प्राजापत्यऽइति प्राजाऽपत्यः। चरुः। अदित्यै। विष्णुपत्न्याऽ इति विष्णुऽपत्न्यै। चरुः। अग्नये। वैश्वानराय। द्वादशकपालऽइति द्वादशऽ कपालः। अनुमत्या ऽइत्यनुऽमत्यै। अष्टाकपालऽ इत्यष्टाऽकपालः ॥ ६० ॥

पदार्थः—(अग्नये) पावकाय (गायत्राय) गायत्रादिछन्दोविज्ञापिताय (त्रिवृते) यस्त्रिभिः सत्वरजस्तमोगुणैर्युक्तस्तस्मै (राथन्तराय) यो रथैः समुद्रादींस्तरति तस्मै (अष्टाकपालः) अष्टसु कपालेषु संस्कृतः (इन्द्राय) ऐश्वर्याय (त्रैष्टुभाय) त्रिष्टुप्छन्दसा

ङ्ख्याताय (पञ्चदशाय) पञ्चदश च यस्मिन् सन्ति तस्मै (बार्हताय) बृहतां सम्बन्धिने (एकादशकपालः) एकादशसु कपालेषु संस्कृतः पाकः (विश्वेभ्यः) समस्तेभ्यः (देवेभ्यः) दिव्यगुणेभ्यो जनेभ्यः (जागतेभ्यः) जगतीबोधितेभ्यः (सप्तदशेभ्यः) एतत्सङ्ख्यया सङ्ख्यातेभ्यः वैरूपेभ्यः विविधस्वरूपेभ्यः (द्वादशकपालः) द्वादशसु कपालेषु संस्कृतः (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राणोदानाभ्याम् (आनुष्टुभाभ्याम्) (एकविंशाभ्याम्) एतत्सङ्ख्यायुक्ताभ्याम् (वैराजाभ्याम्) विराट्छन्दो ज्ञापिताभ्याम् (पयस्या) पयसि जले कुशली (बृहस्पतये) बृहतां पालकाय (साङ्क्ताय) पङ्क्तिषु साधवे (त्रिणवाय) त्रिभिः कर्मोपासनाज्ञानैः स्तुताय (शाक्वराय) शक्तिजाय (चरुः) पाकः (सवित्रे) ऐश्वर्योत्पादकाय (औष्णिहाय) उष्णिग्बोधिताय (त्रयस्त्रिंशाय) एतत्सङ्ख्याताय (दैवताय) धनसम्बधिने (द्वादशकपालः) द्वादशसु कपालेषु संस्कृतः (प्राजापत्यः) प्रजापतिदेवताकः (चरुः) स्थालीपाकः (अदित्यै) अखण्डितायाः अन्तरिक्षरूपायै (विष्णुपत्न्यै) विष्णुना व्यापकेन पालितायै (चरुः) पाकः (अग्नये) विद्युद्रूपाय (वैश्वानराय) विश्वेषु सर्वेषु नरेषु राजमानाय (द्वादशकपालः) (अनुमत्यै) यानुमन्यते तस्यै (अष्टाकपालः) अष्टसु कपालेषु संसाधितः ॥ ६० ॥

अन्वयः—हे मनुष्या! युष्माभिस्त्रिवृते राथन्तराय गायत्रायाग्नयेऽष्टाकपालः पञ्चदशाय त्रैष्टुभाय बार्हतायेन्द्रायैकादशकपालो विश्वेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो देवेभ्यो द्वादशकपाल आनुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां मित्रावरुणाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरूरौण्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय दैवताय सवित्रे द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुर्वैश्वानरायाग्नये द्वादशकपालोऽनुमत्या अष्टाकपालश्च निर्मातव्यः ॥ ६० ॥

भावार्थः—येऽग्न्यादिप्रयोगायाष्टाविधादीनि यन्त्राणि निर्मिमीरंस्ते सृष्टैरुक्तैः पदार्थैरनेकानि कार्याणि साद्धुं शक्नुयुरिति ॥ ६० ॥

अस्मिन्नध्यायेऽग्निविद्वद्दृढप्राणापानाऽध्यापकोपदेशकवागश्वाग्निविद्वत्प्रशंसनीयपदार्थगृहद्वाररात्रिदिनशिल्पिश्रीशब्दाश्वसेनाध्यक्षानिरक्षासृष्ट्युपकारग्रहणविघ्ननिवारणशत्रुसेनापराजयस्वसेनासंरक्षणपशुगुणयज्ञानां निरूपणादेतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम् ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये कि (त्रिवृते) सत्त्व रज और तमोगुण इन तीन गुणों से युक्त (राथन्तराय) रथों अर्थात् जल यानों से समुद्रादि को तरने वाले (गायत्राय) गायत्री छन्द से जताये हुए (अग्नये) अग्नि के अर्थ (अष्टाकपालः) आठ खपरों में संस्कार किया (पञ्चदशाय) पन्द्रहवें प्रकार के (त्रैष्टुभाय) त्रिष्टुप् छन्द से प्रख्यात (बार्हताय) बड़ों के साथ सम्बन्ध रखने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (एकादशकपालः) ग्यारह खपरों में संस्कार किया पाक (विश्वेभ्यः) सब (जागतेभ्यः) जगती छन्द से जताये हुए (सप्तदशेभ्यः) सत्रहवें (वैरूपेभ्यः) विविध रूपों वाले (देवेभ्यः) दिव्य गुण युक्त मनुष्यों के लिये (द्वादशकपालः) बारह खपरों में संस्कार किया पाक (आनुष्टुभाभ्याम्) अनुष्टुप् छन्द से प्रकाशित हुए (एकविंशाभ्याम्) इक्कीसवें (वैराजाभ्याम्) विराट् छन्द से जताये हुए (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के अर्थ (पयस्या) जल क्रिया में कुशल विद्वान् (बृहस्पते) बड़ों के रक्षक (पाङ्क्ताय) पाङ्क्तों में श्रेष्ठ (त्रिणवाय) कर्म

उपासना और ज्ञानों से स्तुति किये (शाक्राय) शक्ति से प्रगट हुए के लिये (चरुः) पाकविशेष (औष्णिहाय) उष्णिक् छन्द से जताये हुए (त्रयस्त्रिंशाय) तेंतीशवें (रैवताय) धन के सम्बन्धि (सवित्रे) ऐश्वर्य उत्पन्न करनें हारे के लिये (द्वादशकपालः) बारह खपरों में संस्कार किया (प्राजापत्यः) प्रजापति देवता वाला (चरुः) बटलोई में पका अन्न (आदित्यै) अखण्डित (विष्णुपत्न्यै) विष्णु व्यापक ईश्वर से रक्षित अन्तरिक्ष रूप के लिये (चरुः) पाक (वैश्वानराय) सब मनुष्यों में प्रकाशमान (अग्नये) बिजुलीरूप अग्नि के लिये (अष्टाकपालः) बारह खपरों में पका हुआ और (अनुमत्यै) पीछे मानने वाले के लिये (अष्टाकपालः) आठ खपरों में सिद्ध किया पाक बनाना चाहिये ॥ ६० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि के प्रयुक्त करने के लिये आठ प्रकार आदि के यन्त्रों को बनावें वे रचे हुए प्रसिद्ध पदार्थों से अनेक कार्यों को सिद्ध कर सकें ॥ ६० ॥

इस अध्याय में अग्नि, विद्वान्, घर, प्राण, अपान, अध्यापक, उपदेशक, वाणी, घोड़ा, अग्नि, विद्वान्, प्रशस्त पदार्थ, घर, द्वार, रात्रि, दिन, शिल्पी, शोभा शस्त्र, अस्त्र, सेना, ज्ञानियों की रक्षा, सृष्टि से उपकार ग्रहण, विघ्न निवारण, शत्रुसेना का पराजय अपनी सेना का सङ्ग और रक्षा पशुओं के गुण और यज्ञों का निरूपण होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण परमहंसपरिव्राजकाचार्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेदभाष्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

ओ३म्

अथ त्रिंशोऽध्याय आरम्यते ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

देवेत्यस्य नारायण ऋषिः। सविता देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

तत्रादावीश्वरात्किं प्रार्थनीयमित्याह ॥

अब तीसवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये इस वि० ॥

देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ १ ॥

देव। सवितरिति सवितः। प्र। सुव। यज्ञम्। प्र। सुव। यज्ञपतिमिति यज्ञऽपतिम्। भगाय। दिव्यः। गन्धर्वः। केतपूरिति केतऽपूः। केतम्। नः। पुनातु। वाचः। पतिः। वाचम्। नः। स्वदतु ॥ १ ॥

पदार्थः—(देव) दिव्यस्वरूप (सवितः) सकलैश्वर्ययुक्त जगदुत्पादक (प्र) प्रकर्षेण (सुव (संपादय (यज्ञम्) राजधर्माख्यम् (प्र) (सुव) उत्पादय (यज्ञपतिम्) यज्ञस्य राज्यस्य पालकम् (भगाय) ऐश्वर्य-

युक्ताय धनाय। भग इति धनना० निघं० २। १० (दिव्यः) दिवि शुद्धस्वरूपे भवः (गन्धर्वः) यो गां पृथिवीं धरति। सः (केतपूः) यः केतं विज्ञानं पुनाति सः (केतम्) प्रज्ञानम्। केत इति प्रज्ञाना० निघं० ३। ६ (नः) अस्माकम् (पुनातु) पवित्रयतु (वाचस्पतिः) वाण्याः पालकः (वाचम्) वाणीम् (नः) अस्माकम् (स्वदतु) आस्वादयतु॥ १॥

अन्वयः—हे देव सवितर्जगदीश्वर त्वं यो दिव्यो गन्धर्वः केतपू राजा नः केतं पुनातु यो वाचस्पतिर्नो वाचं स्वदतु तं यज्ञपतिं भगाय प्रसुव यज्ञञ्च प्रसुव॥ १॥

भावार्थः—यो विद्याशिक्षावर्द्धकः शुद्धगुणकर्मस्वभावो राज्यं पातुं यथायोग्यैश्वर्यं वर्धको धार्मिकाणां पालकः परमेश्वरोपासकः सकलशुभगुणाढ्यो भवेत्स एव राजा भवितुं योग्यो भवति॥१॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यस्वरूप (सवितः) समस्त ऐश्वर्य से युक्त और जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर जो आप (दिव्यः) शुद्ध स्वरूप में हुआ (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने हारा (केतपूः) विज्ञान को पवित्र करने वाला राजा (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करे और जो (वाचः) वाणी का (पतिः) रक्षक (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मीठी चिकनी कोमल प्रिय करे उस (यज्ञपतिम्) राज्य के रक्षक राजा को (भगाय) ऐश्वर्ययुक्त धन के लिये (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिये और (यज्ञम्) राजधर्मरूप यज्ञ को भी (प्र, सुव) सिद्ध कीजिये॥ १॥

भावार्थः जो विद्या की शिक्षा को बढ़ाने वाला शुद्धगुणकर्मस्वभावयुक्त राज्य की रक्षा करने को यथायोग्य ऐश्वर्य को बढ़ाने हारा धर्मात्माओं का रक्षक परमेश्वर का उपासक और समस्त शुभ गुणों से युक्त हो वही राजा होने के योग्य होता है॥ १॥

तत्सवितुरित्यस्य नारायण ऋषिः। सविता देवता।
निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि। धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ २ ॥

तत्। स॒वि॒तुः। वरे॑ण्यम्। भर्गः॑। दे॒वस्य॑। धी॒म॒हि॒। धियः॑। यः। नः॒। प्र॒चो॒दया॒दिति॑ प्रऽचो॒दया॑त् ॥ २ ॥

पदार्थः—(तत्) (सवितुः) समग्रस्य जगदुत्पादकस्य सर्वैश्वर्यप्रदस्य (वरेण्यम्) वर्त्तुमर्हमत्युत्तमम् (भर्गः) भृज्जन्ति दुःखानि यस्मात्तत् (देवस्य) सुखप्रदातुः (धीमहि) धरेम (धियः) प्रज्ञाः कर्माणि वा (यः) (नः) अस्माकम् (प्रचोदयात्) प्रेरयेत् ॥ २ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो नो धियः प्रचोदयात् तस्य सवितुर्देवस्य यद्वरेण्यं भर्गो यथा वयं धीमहि तथा तद्यूयमपि दधेध्वम् ॥ २ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथा परमेश्वरो जीवानशुभाचरणान्निवर्त्य शुभाचरणे प्रवर्त्तयति तथा राजापि कुर्यात् यथा परमेश्वरे पितृभावं कुर्वन्ति तथा राजन्यपि कुर्युर्यथा परमेश्वरो जीवेषु पुत्रभावमाचरति तथा राजापि प्रजासु पुत्रभावमाचरेत्। यथा परमेश्वरः सर्वदोषक्लेशाऽन्यायेभ्यो निवृत्तोऽस्ति तथैव राजापि भवेत् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (सवितुः) समग्र जगत् के उत्पादक सर्व ऐश्वर्य तथा (देवस्य) सुख के देने हारे ईश्वर के जो (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य अत्युत्तम (भर्गः) जिस से दुःखों का नाश हो उस शुद्ध स्वरूप को जैसे हम लोग (धीमहि) धारण करें वैसे (तत्) उस ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को तुम लोग भी धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे परमेश्वर जीवों को अशुभाचरण से अलग कर शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी करे जैसे परमेश्वर में पितृभाव करते अर्थात् उस को पिता मानते हैं वैसे राजा को भी मानें जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्रभाव का आचरण करता है वैसे राजा भी प्रजाओं में पुत्रवत् वर्त्तें जैसे परमेश्वर सब दोष क्लेश और अन्यायों से निवृत्त है वैसे राजा भी होवे ॥ २ ॥

विश्वानीत्यस्य नारायण ऋषिः। सविता देवता।
गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥
पुनस्तमेव विषयमाह॥
फिर उसी वि० ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ ३ ॥

विश्वा॑नि। दे॒व॒। स॒वि॒त॒रिति॑ सवितः। दु॒रि॒तानीति॑ दुःऽइ॒तानि॑। परा॑। सु॒व॒। यत्। भ॒द्रम्। तत्। नः॒। आ। सु॒व॒ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(विश्वानि) समग्राणि (देव) दिव्यगुणकर्मस्वभाव (सवितः) उत्तमगुणकर्मस्वभावेषु प्रेरक परमेश्वर

दुष्टाचरणानि दुःखानि वा (परा) दूरार्थे (सुव) गमय (यत्) (भद्रम्) भन्दनीयं धर्म्याचरणं सुखं वा (तत्) (नः) (अस्मभ्यम्) (आ) समन्तात् (सुव) जनय ॥ ३ ॥

अन्वयः-हे देव सवितस्त्वमस्मद्विश्वानि दुरितानि परा सुव यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ३ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—यथोपासितो जगदीश्वरस्स्वभक्तान् दुष्टाचारान्निवर्त्त्य श्रेष्ठाचारे प्रवर्त्तयति तथा राजाऽपि प्रजा अधर्मान्निवर्त्त्य धर्मे प्रवर्त्तयेत् स्वयमपि तथा स्यात् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (देव) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त (सवितः) उत्तम गुण गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा देने वाले परमेश्वर आप हमारे (विश्वानि) सब (दुरितानि) दुष्ट आचरण वा दुःखों को (परा, सुव) दूर कीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारी धर्मयुक्त आचरण वा सुख है (तत्) उस को (नः) हमारे लिये (आ, सुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे उपासना किया हुआ जगदीश्वर अपने भक्तों को दुष्ट आचरण से निवृत्त कर श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी अधर्म से प्रजाओं को निवृत्त कर धर्म में प्रवृत्त करे और पाप भी वैसा होवे ॥३॥

विभक्तारमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सविता देवता ।

गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

विभक्तार॑ꣳ हवामहे वसो॑श्चित्रस्य राधसः । स॒वितारं॑ नृचक्षसम् ॥ ४ ॥

विभक्तारमिति विऽभक्तारम् । हवामहे । वसोः । चित्रस्य । राधसः । सवितारम् । नृऽचक्षसमिति नृऽचक्षसम् ॥ ४ ॥

पदार्थः-(विभक्तारम्) विभाजयितारम् (हवामहे) प्रशंसेम (वसोः) सुखानां वासहेतोः (चित्रस्य) अद्भुतस्य (राधसः) धनस्य (सवितारम्) जनयितारम् (नृचक्षसम्) नृणां द्रष्टारं परमात्मानम् ॥ ४ ॥

अन्वयः-हे मनुष्या यं वसोश्चित्रस्य राधसो विभक्तारं सवितारं नृचक्षसं वयं हवामहे तं यूयमप्याहूयत ॥ ४ ॥

भावार्थः-अत्र वाचकलु०-हे राजन् यथा परमेश्वरः स्वस्वकर्मानुकूलं सर्वजीवेभ्यः फलं ददाति तथा भवानपि ददातु । यथा जगदीश्वरो यादृशं यस्य कर्म पापं पुण्यं यावच्चाऽस्ति तावदेव तादृशं तस्मै ददाति तथा त्वमपि यस्य यावद्वस्तु यादृशंकर्म च तावत्तादृशं च तस्मै देहि यथा परमेश्वरः पक्षपातं विहाय सर्वेषु जीवेषु वर्त्तते तथा त्वमपि भव ॥ ४ ॥

पदार्थः--हे मनुष्यो ! जिस (वसोः) सुखों के निवास के हेतु (चित्रस्य) आश्चर्यस्वरूप (राधसः) धन का (विभक्तारम्) विभाग करने हारे (सवितारम्) सब के उत्पादक (नृचक्षसम्)सब मनुष्यों के अन्तर्यामि स्वरूप से सब कामों के देखने हारे परमात्मा की हम लोग (हवामहे) प्रशंसा करें उस की तुम लोग भी प्रशंसा करो ॥ ४ ॥

भावार्थः— इस मन्त्र मे वाचकलु० — हे राजन् ! जैसे परमेश्वर अपने२ कर्मों के अनुकूल सब जीवों को फल देता है वैसे आप भी देओ जैसे जगदीश्वर जैसा जिस का पाप वा पुण्यरूप जितना कर्म है उतना वैसा फल उस

के लिये देता वैसे आप भी जिस का जैसा वस्तु वा जितना कर्म है उस को वैसा वा उतना फल दीजिये जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ के सब जीवों में वर्त्तता है वैसे आप भी हूजिये ॥४॥

ब्रह्मण इत्यस्य नारायण ऋषिः। परमेश्वरो देवता।
स्वराडतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥
ईश्वरवद्राज्ञापि कर्त्तव्यमित्याह॥
ईश्वर के तुल्य राजा को भी करना चाहिये इस वि० ॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयाया अयोगूं कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मणे। ब्राह्मणम्। क्षत्राय। राजन्यम्। मरुद्भ्यऽ इति मरुत्ऽभ्यः। वैश्यम्। तपसे। शूद्रम्। तमसे। तस्करम्। नारकाय। वीरहणम्। वीरहनमिति वीरऽहनम्। पाप्मने। क्लीबम्। आक्रयायाऽइत्याऽक्रयायै। अयोगूम्। कामाय। पुंश्चलूम्। अतिक्रुष्टायेत्यतिऽक्रुष्टाय। मागधम् ॥ ५ ॥

पदार्थः— (ब्रह्मणे) वेदेश्वरविज्ञानप्रचाराय (ब्राह्मणम्) वेदेश्वरविदम् (क्षत्राय) राज्याय पालनाय वा (राजन्यम्) राजपुत्रम् (मरुद्भ्यः) पश्वादिभ्यः प्रजाभ्यः (वैश्यम्) विक्षु प्रजासु भवम् (तपसे) सन्तापजन्याय सेवनाय

(शूद्रम्) प्रीत्या सेवकं शुद्धिकरम् (तमसे) अन्धकाराय प्रवृत्तम् (तस्करम्) चोरम् (नारकाय) नरके दुःखबन्धने भवाय कारागाराय (वीरहणम्) यो वीरान् हन्ति तम् (पाप्मने) पापाचरणाय प्रवृत्तम् (क्लीबम्) नपुंसकम् (आक्रयायै) आक्रमन्ति प्राणिनो यस्यां तस्यै हिंसायै प्रवर्त्तमानम् (अयोगूम्) अयसा शस्त्रविशेषेण सह गन्तारम् (कामाय) विषयसेवनाय प्रवृत्तान् (पुंश्चलूम्) पुंभिः सह चलितचित्तां व्यभिचारिणीम् (अतिक्रुष्टाय) अत्यन्तनिन्दनाय प्रवर्त्तकम् (मागधम्) नृशंसम् ॥ ५ ॥

अन्वयः–हे परमेश्वर राजन् वा त्वमत्र ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं सर्वतो जनय तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयाया अयोगूं कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधञ्च दूरे गमय ॥ ५ ॥

भावार्थः–हे राजन् यथा जगदीश्वरो जगति परोपकाराय पदार्थान् जनयति दोषान्निवारयति तथा त्वमिह राज्ये सज्जनानुत्कर्षय दुष्टान् निःसारय दण्डय ताडय च यतः शुभगुणानां प्रवृत्तिर्दुर्व्यसनानाञ्च निवृत्तिः स्यात् ॥५॥

पदार्थः–हे परमेश्वर वा राजन्! आप इस जगत् में (ब्रह्मणे) वेद और ईश्वर के ज्ञान के प्रचार के अर्थ (ब्राह्मणम्) वेद ईश्वर के जानने वाले को (क्षत्राय) राज्य वा राज्य की रक्षा के लिये (राजन्यम्) राजपूत को (मरुद्भ्यः) पशु आदि प्रजा के लिये (वैश्यम्) प्रजाओं में प्रसिद्ध जन को (तपसे) दुःख से उत्पन्न होने वाले सेवन के अर्थ (शूद्रम्) प्रीति से सेवा करने तथा शुद्धि करने हारे शूद्र को सब ओर से उत्पन्न कीजिये (तमसे) अन्धकार

के लिये प्रवृत्त हुए (तस्करम्) चोर को (नारकाय) दुःख बन्धन में हुए कारागार के लिये (वीरहणम्) वीरों को मारने हारे जन को (पाप्मने) पापाचरण के लिये प्रवृत्त हुए (क्लीवम्) नपुंसक को (आक्रयायै) प्राणियों की जिस में भागाभूगी होती उस हिंसा के अर्थ प्रवृत्त हुए (अयोगूम्) लोहे के हथियार विशेष के साथ चलने हारे जन को (कामाय) विषय सेवन के लिये प्रवृत्त हुई (पुंश्चलूम्) पुरुषों के साथ जिस का चित्त चलायमान उस व्यभिचारिणी स्त्री को और (अतिक्रुष्टाय) अत्यन्त निन्दा करने के लिये प्रवृत्त हुए (मागधम्) भाट को दूर पहुंचाइये ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे जगदीश्वर जगत् में परोपकार के लिये पदार्थों को उत्पन्न करता और दोषों को निवृत्त करता है वैसे आप इस राज्य में सज्जनों की उन्नति कीजिये, दुष्टों को निकालिये, दण्ड और ताड़ना भी दीजिये, जिस से शुभ गुणों की प्रवृत्ति और दुष्टव्यसनों की निवृत्ति होवे ॥ ५ ॥

नृत्तायेत्यस्य नारायण ऋषिः । परमेश्वरो देवता ।
निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
पुना राजपुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥
फिर राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभꣳ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम् ॥ ६ ॥

नृत्ताय । सूतम् । गीताय । शैलूषम् । धर्माय । सभाचरमिति सभाऽचरम् । नरिष्ठायै । भीमलम् । नर्माय । रेभम् । हसाय । कारिम् । आनन्दायेत्यानन्दा-

र्य । स्त्रीषखम् । स्त्रीसखमिति स्त्रीऽसखम् । प्रमदऽइति प्रऽमदे । कुमारीपुत्रमिति कुमारीऽपुत्रम् । मेधायै । रथकारमिति रथऽकारम् । धैर्य्याय । तक्षाणम् ॥६॥

पदार्थः- (नृत्ताय)नृत्त्या (सूतम्) क्षत्रियाद्ब्राह्मण्यां जातम् (गीताय) गानाय (शैलूषम्) गायनम् (धर्माय) धर्मरक्षणाय (सभाचरम्) यः सभायां चरति तम् (नरिष्ठायै)अतिशयिता दुष्टा नराः सन्ति यस्यां तस्यै प्रवृत्तम् (भीमलम्) यो भीमान् भयंकारान् लाति ददाति तम् (नर्माय) कोमलत्वाय (रेभम्) स्तोतारम् । रेभ इति स्तोतृना० निघं० ३ । १६ । (हसाय) हसनाय प्रवृत्तम् (कारिम्) उपहासकर्त्तारम् (आनन्दाय) (स्त्रीषखम्) स्त्रिया मित्रं पतिम् (प्रमदे) प्रमादाय प्रवृत्तम् (कुमारीपुत्रम्) विवाहात्पूर्वं व्यभिचारेणोत्पन्नम् (मेधायै) प्रज्ञायै (रथकारम्) विमानादिरचकं शिल्पिनम् (धैर्याय) तक्षाणम्) तनूकर्त्तारम् ॥ ६ ॥

अन्वयः- हे जगदीश्वर राजन् ! वा त्वं नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नर्माय रेभमानन्दाय स्त्रीषखं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणमासुव नरिष्ठायै भीमलं हसाय कारिं प्रमदे कुमारीपुत्रं परासुव ॥ ६ ॥

भावार्थः-राजपुरुषैः परमेश्वरोपदेशेन राजाज्ञया च सर्वे श्रेष्ठा धार्मिका जना उत्साहनीया हास्यभयप्रदा निवारणीया अनेकाः सभाः निर्माय सर्वा व्यवस्थाः शिल्पविद्योन्नतिश्च कार्य्या ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! वा राजन् ! आप (नृत्ताय) नाचने के लिये (सूतम्) क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुए सूत को (गीताय) गाने के अर्थ (शैलूषम्) गाने हारे नट को (धर्माय) धर्म की रक्षा के लिये (सभाचरम्) सभा में विचरने हारे सभापति को (नर्माय) कोमलता के अर्थ (रेभम्) स्तुति करने हारे को (आनन्दाय) आनन्द भोगने के अर्थ (स्त्रीषखम्) स्त्री से मित्रता रखने वाले पति को (मेधायै) बुद्धि के लिये (रथकारम्) विमानादि को रचने हारे कारीगर को (धैर्याय) धीरज के लिये (तक्षाणम्) महीन काम करने वाले बढ़ई को उत्पन्न कीजिये (नरिष्ठायै) अतिदुष्ट नरों की गोष्ठी के लिये प्रवृत्त हुए (भीमलम्) भयंकर विषयों को ग्रहण करने वाले को (हसाय) हंसने के अर्थ प्रवृत्त हुए (कारिम्) उपहासकर्त्ता को और (प्रमदे) प्रमाद के लिये प्रवृत्त हुए (कुमारीपुत्रम्) विवाह से पहिले व्यभिचार से उत्पन्न हुए को दूर कर दीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः— राज पुरुषों को चाहिये कि परमेश्वर के उपदेश और राजा की आज्ञा से सब श्रेष्ठ धर्मात्मा जनों को उत्साह दें हंसी करने और भय देने वालों को निवृत्त करें अनेक सभाओं को बना के सब व्यवस्था और शिल्पविद्या की उन्नति किया करें ॥ ६ ॥

तपस इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वांसो देवता । निचृदष्टिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

तप॑से कौला॒लं मा॒यायै॑ क॒र्मार॑ᳬ रू॒पाय॑ मणिका॒रᳬ शु॒भे व॒पᳬ श॑र॒व्या᳖या इषुका॒रᳬ हे॒त्यै ध॑नुष्का॒रं कर्म॑णे ज्याका॒रं दि॒ष्टाय॑ रज्जुस॒र्जं मृ॒त्यवे॑ मृगयु॒मन्त॑काय श्व॒निन॑म् ॥ ७ ॥

तपसे । कौलालम् । मायायै । कर्मारम् । रूपाय । मणिकारमिति मणि-ऽकारम् । शुभे । वपम् । शरव्यायै । इषुकारमितीषुऽकारम् । हेत्यै । धनुष्कारम् । धनुः कारमिति धनुःऽकारम् । कर्मणे । ज्याकारमिति ज्याऽकारम् । दिष्टाय । रज्जुसर्जमिति रज्जुऽसर्जम् । मृत्यवे । मृगयुमिति । मृगऽयुम् । अन्तकाय । श्वनिनमिति श्वऽनिनम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(तपसे) तपनाय (कौलालम्) कुलाल पुत्रम् (मायायै) प्रज्ञावृद्धये । मायेति प्रज्ञाना० निघं० ३ । ९ । (कर्मारम्) यः कर्माण्यलंकरोति तम् (रूपाय) सरूपनिर्मापकाय (मणिकारम्) यो मणीन् करोति तम् (शुभे) शुभाचरणाय (वपम्) यो वपति क्षेत्राणि कृषीवल इव विद्यादिशुभान् गुणाँस्तम् (शरव्यायै) शराणां निर्माणाय (इषुकारम्) य इषून् वाणान् करोति तम् (हेत्यै) वज्रादिशस्त्रनिर्माणाय (धनुष्कारम्) यो धनुरादीनि करोति तम् (कर्मणे) क्रियासिद्धये (ज्याकारम्) यो ज्यां प्रत्यञ्चां करोति तम् (दिष्टाय) दिशत्यतिसृजति येन तस्मै (रज्जुसर्जम्) यो रज्जुः सृजति तम् (मृत्यवे) मृत्युकरणाय प्रवृत्तम् (मृगयुम्) य आत्मानो मृगान् हन्तुमिच्छति तं व्याधम् (अन्तकाय) यो अन्तं करोति तस्मै हितकरम् (श्वनिनम्) बहुश्वपालम् ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे जगदीश्वर नरेश ! वा त्वं तपसे कौलालं मायायै कर्मारं रूपाय मणिकारं शुभे वपं शरव्यायै इषुकारं हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जमासुव । मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनं परासुव ॥ ७ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैर्यथा परमेश्वरेण सृष्टौ रचनाविशेषा दर्शितास्तथा शिल्पविद्यया सृष्टिदृष्टान्तेन च रचना विशेषाः कर्त्तव्याः। हिंसकाः श्वपालिनश्चांडालादयो दूरे निवासनीयाः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आप (तपसे) वर्त्तन पकाने के ताप को झेलने के अर्थ (कौलालम्) कुम्हार के पुत्र को (मायायै) बुद्धि बढ़ाने के लिये (कर्मारम्) उत्तम शोभित काम करने हारे को (रूपाय) सुन्दर स्वरूप बनाने के लिये (मणिकारम्) मणि बनाने वाले को (शुभे) शुभ आचरण के अर्थ (वपम्) जैसे किसान खेत को वैसे विद्यादि शुभ गुणों के बोने वाले को (शरव्यायै) बाणों के बनाने के लिये (इषुकारम्) बाणकर्त्ता को (हेत्यै) वज्र आदि हथियार बनाने के अर्थ (धनुष्कारम्) धनुष् आदि के कर्त्ता को (कर्मणे) क्रियासिद्धि के लिये (ज्याकारम्) प्रत्यञ्चा के कर्त्ता को (दिष्टाय) और जिस से अति रचना हो उस के लिये (रज्जुसर्जम्) रज्जु बनाने वाले को उत्पन्न कीजिये और (मृत्यवे) मृत्यु करने को प्रवृत्त हुए (मृगयुम्) व्याध को तथा (अन्तकाय) अन्त करने वाले के हितकारी (श्वनिनम्) बहुत कुत्ते पालने वाले को अलग बसाइये ॥ ७ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे परमेश्वर ने सृष्टि में रचनाविशेष दिखाये हैं वैसे शिल्पविद्या से और सृष्टि के दृष्टान्त से विशेष रचना किया करें और हिंसक तथा कुत्तों के पालने वाले चण्डालादि को दूर बसावें ॥ ७ ॥

नदीभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वांसो देवताः।
कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य

उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यतायाऽअकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

नदीभ्यः । पौञ्जिष्ठम् । ऋक्षीकाभ्यः । नैषादम् । नैसादमिति नैऽसादम् । पुरुषव्याघ्रायेति पुरुषऽव्याघ्राय । दुर्मदमिति दुःऽमदम् । गन्धर्वाप्सरोभ्यऽइति गन्धर्वाप्सरःऽभ्यः । व्रात्यम् । प्रयुग्भ्यऽइति प्रयुक्ऽभ्यः । उन्मत्तमित्युत्ऽमत्तम् । सर्पदेवजनेभ्यऽइति सर्पऽदेवजनेभ्यः । अप्रतिपदमित्यप्रतिऽपदम् । अयेभ्यः । कितवम् । ईर्यतायै । अकितवम् । पिशाचेभ्यः । विदलकारीमिति विदलऽकारीम् । यातुधानेभ्यऽइति यातुऽधानेभ्यः । कण्टकीकारीमिति कण्टकीऽकारीम् ॥ ८ ॥

पदार्थः-(नदीभ्यः) सरिद्विनाशाय प्रवृत्तम् (पौञ्जिष्ठम्) पुक्कसम् (ऋक्षीकाभ्यः) या ऋक्षा गतीः कुर्वन्ति ताभ्यः प्रवृत्तम् (नैषादम्) निषादस्य पुत्रम् (पुरुषव्याघ्राय) व्याघ्रइव पुरुषस्तस्मै हितम् (दुर्मदम्) दुर्गतो दुष्टो मदोऽभिमानं यस्य तम् (गन्धर्वाप्सरोभ्यः) गन्धर्वाश्चाप्सरसश्च ताभ्यः प्रवृत्तम् (व्रात्यम्) असंस्कृतम् (प्रयुग्भ्यः) ये प्रयुञ्जते तेभ्यः प्रवृत्तम् (उन्मत्तम्) उन्मादरोगिणम् (सर्पदेवजनेभ्यः) सर्पाश्च देवजनाश्च तेभ्यो हितम् (अप्रतिपदम्) अनिश्चितबुद्धिम् (अयेभ्यः)

य अध्यन्ते प्राप्यन्ते पदार्थास्तेभ्यः प्रवृत्तम् (कितवम्) द्यूतकारिणम् (ईर्य्यतायै) कम्पनाय प्रवृत्तम् (अकितवम्) अद्यूतकारिणम् (पिशाचेभ्यः) पिशिता नष्टाऽऽशा येषां ते पिशाचाः, अथवा पिशितमवयवीभूतं सरक्तं वा मांसमाचामन्ति भक्षयन्तीति पिशाचाः। उभयथा पृषोदरादित्वात्सिद्धिः। (विदलकारीम्) या विगतान् दलान् करोति ताम् (यातुधानेभ्यः) यान्ति येषु ते यातवो मार्गास्तेभ्यो धनं येषान्तेभ्यः प्रवृत्तम् (कण्टकीकारीम्) या कण्टकीं करोति ताम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर नृप वा त्वं नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्तं सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्य्यताया अकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीं परासुव ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे राजन्! यथा परमेश्वरो दुष्टेभ्यो महात्मनो दूरे वासयति दुष्टाः परमेश्वराद्दूरे वसन्ति तथा त्वं दुष्टेभ्यो दूरे वस दुष्टांश्च स्वतो दूरे वासय सुशिक्षया साधून् सम्पादय वा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आप (नदीभ्यः) नदियों को बिगाड़ने के लिये प्रवृत्त हुए (पौञ्जिष्ठम्) धानुक को (ऋक्षीकाभ्यः) गमन करने वाली स्त्रियों के अर्थ प्रवृत्त हुए (नैषादम्) निषाद के पुत्र को (पुरुषव्याघ्राय) व्याघ्र के तुल्य हिंसक पुरुष के हितकारी (दुर्मदम्) दुष्ट अभिमानी को (गन्धर्वाप्सरोभ्यः) गाने नाचने वाली स्त्रियों के लिये प्रवृत्त हुए (व्रात्यम्) संस्कार रहित मनुष्य को (प्रयुग्भ्यः) प्रयोग करने वालों के अर्थ प्रवृत्त हुए (उन्मत्तम्) उन्माद रोग वाले को (सर्पदेवजनेभ्यः) सांप तथा मूर्खों के लिये हितकारी (अप्रतिपदम्) संशयात्मा को (अयेभ्यः) जो पदार्थ प्राप्त किये जाते उन के

लिये प्रवृत्त (कितवम्) ज्वारी को (ईर्य्यतायै) कम्पन के लिये प्रवृत्त हुए (अकितवम्) जुआ न करने हारे को (पिशाचेभ्यः) दुष्टाचार करने से जिनकी आशा नष्ट होगई वा रुधिर सहित कच्चा मांस खाने के लिये प्रवृत्त (विदलकारीम्) पृथक् २ टुकड़ों को करने हारी को और (यातुधानेभ्यः) मार्गों से जिनके धन आता उस के लिये प्रवृत्त हुई (कण्टकीकारीम्) कांटे बोने वाली को पृथक् कीजिये ॥८॥

भावार्थः—हे राजन् जैसे परमेश्वर दुष्टों से महात्माओं को दूर बसाता और दुष्ट परमेश्वर से दूर बसते हैं वैसे आप दुष्टों से दूर बसो और अपने से दुष्टों को दूर बसाइये वा सुशिक्षा से श्रेष्ठ कीजिये ॥ ८ ॥

सन्धय इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता ।
भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

स॒न्धये॑ जा॒रं गे॒हायो॑पप॒तिमार्त्यै॒ परि॑वित्तं॒ निर्ऋ॑त्यै परिविविदा॒नमरा॑द्ध्या एदिधिषुःप॒तिं निष्कृ॑त्यै पेशस्का॒रीᳪं᳭ सं॒ज्ञा॒नाय॑ स्मरका॒रीं प्र॑का॒मोद्या॒योप॒सदं॒ वर्णा॒यानु॒रुधं॒ बला॒योप॒दाम् ॥ ९ ॥

स॒न्धय॒ऽइति॑ स॒म्ऽधये॑ । जा॒रम् । गे॒हाय॑ । उ॒प॒प॒तिमित्यु॑प॒ऽप॒तिम् । आर्त्या॒ऽइत्याऽऋ॑त्यै । परि॑वित्त॒मिति॒ परि॑ऽवित्तम् । निर्ऋ॑त्या॒ऽइति॒ निः ऋ॑त्यै । प॒रि॒वि॒वि॒दा॒नमिति॒ परि॑ऽविविदानम् । अरा॑द्ध्यै । ए॒दि॒धि॒षुः॒प॒तिमित्ये॑दिधिषुःऽप॒तिम् । निष्कृ॑त्यै । निःकृ॑त्या॒ऽइति॒ निःकृ॑त्यै । पे॒श॒स्का॒रीम् । पे॒शः॒का॒रीमिति॑ पेशः॒ऽका॒रीम् । सं॒ज्ञा॒नायेति॑ स॒म्ऽज्ञा॒नाय॑ । स्म॒र॒का॒रीति॑ स्मरऽका॒रीम् । प्र॒का॒मो॒द्यायेति॑ प्रका॒मऽउ॒द्याय॑ । उ॒प॒सद॒मित्यु॑प॒ऽसद॑म् । वर्णा॑य । अ॒नु॒रुध॒मित्य॑नु॒ऽरुध॑म् । बला॑य । उ॒प॒दामित्यु॑प॒ऽदाम् ॥ ९ ॥

पदार्थः-(सन्धये) परस्त्रीसमागमनाय प्रवर्त्तमानम् (जारम्) व्यभिचारिणम् (गेहाय) गृहपत्नीसङ्गमाय प्रवृत्तम् (उपपतिम्) यः पत्युः समीपे वर्त्तते तम् (आर्त्यै) कामपीडायै प्रवृत्तम् (परिवित्तम्) कृतविवाहे कनिष्ठे बन्धावविवाहितं ज्येष्ठम् (निर्ऋत्यै) पृथिव्यैः प्रवृत्तम् । निर्ऋतिरिति पृथिवीना० निघं० १ । १ (परिविविदानम्) अप्राप्तदाये ज्येष्ठे प्राप्तदायं कनिष्ठम् (अराध्यै) अविद्यमानसंसिद्धये प्रवृत्तम् (एदिधिषुः पतिम्) अकृतविवाहायां ज्येष्ठायां पुत्र्यामूढा कनिष्ठा तस्याः पतिम् (निष्कृत्यै) प्रायश्चित्ताय प्रवर्त्तमानम् (पेशस्कारीम्) रूपकर्त्रीम् (सञ्ज्ञानाय) सम्यक् ज्ञानं कामप्रबोधं तस्मै प्रवृत्ताम् (स्मरकारीम्) या स्मरं कामं करोति तां दूतिकाम् (प्रकामोद्याय) यः प्रकृष्टैः कामैरुद्यतस्तस्मै (उपसदम्) यः समीपे सीदति तम् (वर्णाय) स्वीकरणाय प्रवृत्तम् (अनुरुधम्) योऽनुरुणद्धि तम् (बलम्) बलवृद्धये (उपदाम्) उप समीपे दीयते ताम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर सभेश राजन् वा त्वं सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्यै एदिधिषुः पतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीं सञ्ज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदां परासुव ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे राजन् यथा परमेश्वरो जारादीन् दुष्टान् दण्डयति तथा त्वमेतान् दण्डय यथेश्वरः पापत्यागिनो निगृह्णाति तथा त्वं धार्मिकाननुगृहाण॥९॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा सभापति राजन् ! आप (सन्धये) परस्त्रीगमन के लिये प्रवृत्त (जारम्) व्यभिचारी को (गेहाय) गृहपत्नी के सङ्ग के लिये प्रवृत्त

हुए (उपपतिम्) पति की विद्यमानता में दूसरे व्यभिचारी पति को (आर्त्यैः) काम पीडा के लिये प्रवृत्त हुए (परिवित्तम्) छोटे भाई का विवाह होने में विना विवाहे ज्येष्ठ भाई को (निर्ऋत्यै) पृथिवी के लिये प्रवृत्त हुए (परिविविदानम्) ज्येष्ठ भाई के दाय को न प्राप्त होने में दाय को प्राप्त हुए छोटे भाई को (अराध्यै) अविद्यमान पदार्थ को सिद्ध करने के लिये प्रवृत्त हुए (एदिधिषुःपतिम्) ज्येष्ठ पुत्री के विवाह से पहिले विवाहित हुई छोटी पुत्री के पति को (निष्कृत्यै) प्रायश्चित्त के लिये प्रवृत्त हुई (पेशस्कारीम्) शृङ्गार विशेष से रूप करने हारी व्यभिचारिणी को (सम्, ज्ञानाय) उत्तम कामदेव को जगाने के अर्थ प्रवृत्त हुई (स्मरकारीम्) कामदेव को चेतन कराने वाली दूती को (प्रकामोद्याय) उत्कृष्ट कामों से उद्यत हुए के लिये (उपसदम्) साथी को (वर्णाय) स्वीकार के लिये प्रवृत्त हुए (अनुरुधम्) पीछे से रोकने वाले को (बलाय) बल बढ़ाने के अर्थ (उपदाम्)नज़र भेंट वा घूंस को पृथक् कीजिये॥ ९ ॥

भावार्थः—हे राजन्! जैसे परमेश्वर जार आदि दुष्ट जनों को दण्ड देता वैसे आप भी इन को दण्ड दीजिये और ईश्वर पाप छोड़ने वालों पर कृपा करता है वैसे आप धार्मिक जनों पर अनुग्रह किया कीजिये ॥ ९ ॥

उत्सादेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता ।
भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥

उत्सादेभ्यऽ इत्युत्ऽसादेभ्यः । कुब्जम् । प्रमुदऽ इति प्रऽमुदे । वामनम् । द्वाःर्भ्यऽ इति द्वाःऽभ्यः । स्रामम् । स्वप्नाय । अन्धम् । अधर्माय । बधिरम् । पवित्राय । भिषजम् । प्रज्ञानायेति प्रऽज्ञानाय । नक्षत्रदर्शमिति नक्षत्रऽदर्शम् । आशिक्षायाऽ इत्याऽशिक्षायै । प्रश्निनम् । उपशिक्षायाऽ इत्युपऽशिक्षायै । अभिप्रश्निनमित्यभिऽप्रश्निनम् । मर्यादायै । प्रश्नविवाकमिति प्रश्नऽविवाकम् ॥ १० ॥

पदार्थः—(उत्सादेभ्यः) नाशेभ्यः प्रवृत्तम् (कुब्जम्) वक्राङ्गम् (प्रमुदे) प्रकृष्टानन्दाय (वामनम्) ह्रस्वाङ्गम् (द्वार्भ्यः) सवर्णेभ्य आच्छादनेभ्यः प्रवृत्तम् (स्रामम्) सततं प्रस्नावितजलनेत्रम् (स्वप्नाय) निद्रायै (अन्धम्) (अधर्माय) धर्माचरणरहिताय (बधिरम्) श्रोत्रविकलम् (पवित्राय) रोगनिवारणेन शुद्धिकरणाय (भिषजम्) वैद्यम् (प्रज्ञानाय) प्रकृष्टज्ञानवर्धनाय (नक्षत्रदर्शम्) यो नक्षत्राणि पश्यत्येतैर्दर्शयति वा तम् (आशिक्षायै) समन्ताद्विद्योपादानाय (प्रश्निनम्) प्रशस्ताः प्रश्ना विद्यन्ते यस्य (उपशिक्षायै) उपवेदादिविद्योपादानाय (अभिप्रश्निनम्) अभितः बहवः प्रश्ना विद्यन्ते यस्य तम् (मर्यादायै) न्यायाऽन्यायव्यवस्थायै (प्रश्नविवाकम्) यः प्रश्नान् विवेचयति तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर राजन् ! वा त्वमुत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामं स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं परासुव । पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकमासुव ॥ १० ॥

भावार्थः—हे राजन्! यथेश्वरः पापाचरणफलप्रदानेन कुब्जवामनस्त्रवितजल-नेत्रान्धबधिरान् मनुष्यादीन् करोति भिषग्ज्योतिर्विद्ध्यापकपरीक्षकप्रश्नोत्तरविवेचकेभ्यः श्रेष्ठकर्मफलदानेन पवित्रता प्रज्ञाविद्याग्रहणाध्यापनपरीक्षा-प्रश्नोत्तरकरणसामर्थ्योऽस्वददाति तथैव त्वं येन येनाङ्गेन नरा विचेष्टन्ते तस्य तस्याङ्गस्योपरि दण्डनिपातनेन वैद्यादीनां प्रतिष्ठाकरणेन च राजधर्म सततमुन्नय ॥ १० ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन्! आप (उत्सादेभ्यः) नाश करने को प्रवृत्त हुए (कुब्जम्) कुबड़े को (प्रमुदे) प्रबल कामादि के आनन्द के लिये (वामनम्) छोटे मनुष्य को (द्वार्भ्यः) आच्छादन के अर्थ (स्रामम्) जिस के नेत्रों से निरन्तर जल निकले उस को (स्वप्नाय) सोने के लिये (अन्धम्) अन्धे को और (अधर्माय) धर्माचरण से रहित के लिये (बधिरम्) बहिरे को पृथक् कीजिये और (पवित्राय) रोग की निवृत्ति करने के अर्थ (भिषजम्) वैद्य को (प्रज्ञानाय) उत्तम ज्ञान बढ़ाने के अर्थ (नक्षत्रदर्शम्) नक्षत्रों को देखने वा इन से उत्तम विषयों को दिखाने हारे गणितज्ञ ज्योतिषी को (आशिक्षायै) अच्छे प्रकार विद्या ग्रहण के लिये (प्रश्निनम्) प्रशंसित प्रश्नकर्त्ता को (उपशिक्षायै) उपवेदादि विद्या के ग्रहण के लिये (अभि, प्रश्निनम्) सब ओर से बहुत प्रश्न करने वाले को और (मर्यादायै) न्याय अन्याय की व्यवस्था के लिये (प्रश्नविवाकम्) प्रश्नों के विवेचन कर उत्तर देने वाले को उत्पन्न कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—हे राजन्! जैसे ईश्वर पापाचरण के फल देने से लूले, लंगड़े, बौना, चिपड़े, अंधरे, बहिरे मनुष्यादि को करता और वैद्य ज्योतिषी अध्यापक परीक्षक तथा प्रश्नोत्तरों के विवेचकों के अर्थ श्रेष्ठ कर्मों के फल देने से पवित्रता बुद्धि विद्या के ग्रहण पढ़ने परीक्षा लेने और प्रश्नोत्तर करने का सामर्थ्य देता है वैसे ही आप भी जिस २ अङ्ग से मनुष्य विरुद्ध करते हैं उस २ अंग पर दण्ड मारने और वैद्यादि की प्रतिष्ठा करने से राजधर्म की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥ १० ॥

अर्मेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता ।
स्वराडतिशक्करी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्य्यायाविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपᳯं श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

अर्मेभ्यः । हस्तिपमिति हस्तिऽपम् । जवाय । अश्वपमित्यश्वऽपम् । पुष्ट्यै । गोपालमिति गोऽपालम् । वीर्य्याय । अविपालमित्यविऽपालम् । तेजसे । अजपालमित्यजऽपालम् । इरायै । कीनाशम् । कीलालाय । सुराकारमिति सुराऽकारम् । भद्राय । गृहपमिति गृहऽपम् । श्रेयसे । वित्तधमिति वित्तऽधम् । अध्यक्ष्यायेत्याधिऽअक्ष्याय । अनुक्षत्तारमित्यनुऽक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(अर्मेभ्यः) प्रापकेभ्यः (हस्तिपम्) हस्तीनां पालकम् (जवाय) वेगाय (अश्वपम्) अश्वानां रक्षकं शिक्षकम् (पुष्ट्यै) रक्षणाय (गोपालम्) गवां पालकम् (वीर्य्याय) वीर्य्यवृद्धये (अविपालम्) अवीनां रक्षकम् (तेजसे) तेजोवर्द्धनाय (अजपालम्) अजानां

रक्षकम् (इरायै) अन्नादिवृद्धये । इरेत्यन्नना० निघं० २ । ७ (कीनाशम्) कृषीबलम् (कीलालाय) अन्नाय । कीलाल इत्यन्नना० निघं० २ । ७ (सुराकारम्) सोम-निष्पादकम् (भद्राय) कल्याणाय (गृहपम्) गृहाणां रक्षकम् (श्रेयसे) धर्म्मार्थकामप्राप्तये (वित्तधम्) यो वित्तंधनं दधाति तम् (आध्यक्ष्याय) अध्यक्षाणां भावाय (अनुक्षत्तारम्) सारथ्यनुकूलम् ॥ ११ ॥

अन्वयः— हे ईश्वर राजन् ! वा त्वमर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाऽश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्य्यायाऽविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपं श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायाऽनुक्षत्तारमासुव ॥ ११ ॥

भावार्थः— राजपुरुषैः सुशिक्षितान् हस्तिरक्षकादीन् सङ्गृह्यैतैर्बहवो व्यवहाराः साधनीयाः ॥ ११ ॥

पदार्थः— हे ईश्वर वा राजन् ! आप (अर्मेभ्यः) प्राप्ति कराने वालों के लिये (हस्तिपम्) हाथियों के रक्षक को (जवाय) वेग के अर्थ (अश्वपम्) घोड़ों के रक्षक शिक्षक को (पुष्ट्यै) पुष्टि रखने के लिये (गोपालम्) गौओं के पालने हारे को (वीर्य्याय) वीर्य्य बढ़ाने के अर्थ (अविपालम्) गड़रिये को (तेजसे) तेज वृद्धि के लिये (अजपालम्) बकरे बकरियों को (इरायै) अन्नादि के बढ़ाने के अर्थ (कीनाशम्) खितिहर को (कीलालाय) अन्न के लिये (सुराकारम्) सोम ओषधियों के रस को निकालने वाले को और (भद्राय) कल्याण के अर्थ (गृहपम्) घरों के रक्षक को (श्रेयसे) धर्म, अर्थ और कामना की प्राप्ति के अर्थ (वित्तधम्) धन धारण करने वालों को और (आध्यक्ष्याय) अध्यक्षों के स्वत्व के लिये (अनुक्षत्तारम्) अनुकूल सारथि को उत्पन्न कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः- राजपुरुषों को चाहिये कि अच्छे शिक्षित हाथी आदि को रखने वाले पुरुषों को ग्रहण कर इन से बहुत से व्यवहार सिद्ध करें ॥ ११ ॥

भायै इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वान् देवता।
विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितार सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारमवऽऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

भायै। दार्वाहारमिति दारुऽआहारम्। प्रभाया इति प्रऽभायै। अग्न्येधमित्यग्निऽएधम्। ब्रध्नस्य। विष्टपाय। अभिषेक्तारम्। अभिषेक्तारमित्यभिऽसेक्तारम्। वर्षिष्ठाय। नाकाय। परिवेष्टारमिति परिऽवेष्टारम्। देवलोकायेति देवऽलोकाय। पेशितारम्। मनुष्यलोकायेति मनुष्यऽलोकाय। प्रकरितारमिति प्रऽकरितारम्। सर्वेभ्यः। लोकेभ्यः। उपसेक्तारमित्युपऽसेक्तारम्। अवऽऋत्या इत्यवऽऋत्यै। वधाय। उपमन्थितारमित्युपऽमन्थितारम्। मेधाय। वासःपल्पूलीमिति वासःऽपल्पूलीम्। प्रकामायेति प्रऽकामाय। रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

पदार्थः– (भार्यै) दीप्त्यै (दार्वाहारम्) यो दारूणि काष्ठान्याहरति तम् (प्रभायै) (अग्न्येधम्) अग्निश्चेधश्च तत् (ब्रध्नस्य) अश्वस्य । ब्रध्न इत्यश्वना० निघं० १ । १४ (विष्टपाय) विशन्ति यत्र तस्मै मार्गाय (अभिषेक्तारम्) अभिषेककर्त्तारम् (वर्षिष्ठाय) अतिवृद्धाय श्रेष्ठाय (नाकाय) अविद्यमानदुःखाय (परिवेष्टारम्) परिवेषणकर्त्तारम् (देवलोकाय) देवानां दर्शनाय (पेशितारम्) विद्यावयववेत्तारम् (मनुष्यलोकाय) मनुष्यत्वदर्शनाय (प्रकरितारम्) विक्षेप्तारम् (सर्वेभ्यः) (लोकेभ्यः) संहतेभ्यः (उपसेक्तारम्) उपसेचनकर्त्तारम् (अवऋत्यै) विरुद्धप्राप्त्यै (वधाय) हननाय प्रवृत्तम् (उपमन्थितारम्) समीपे विलोडितारम् (मेधाय) सङ्गमाय (वासःपल्पूलीम्) वाससां शुद्धिकरीम् (प्रकामाय) प्रकृष्टकामनासिद्धये (रजयित्रीम्) विविधरागकारिणीम् ॥ १२ ॥

अन्वयः–हे जगदीश्वर राजन् वा त्वं भार्यै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारं सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीमासुव । अवऋत्यै वधायोपमन्थितारं परासुव ॥ १२ ॥

भावार्थः–राजपुरुषादिमनुष्यैरीश्वरसृष्टेः सकाशात्सर्वाः सामग्रीर्ग्राह्यास्ताभिः शरीरबलं विद्यान्यायप्रकाशो महत्सुखं राज्याभिषेकाः दुःखविनाशो विद्वत्सङ्गो मनुष्यस्वभावो वस्त्रादिपवित्रता निष्पादनीया विरोधश्च त्यक्तव्यः ॥ १२ ॥

पदार्थः–हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (भार्यै) दीप्ति के लिये (दार्वाहारम्) काष्ठों को पहुंचाने वाले को (प्रभायै) कान्ति शोभा के लिये (अग्न्येधम्)

अग्नि और इन्धन को (अश्वस्य) घोड़े के (विष्टपाय) मार्ग के अर्थ (अभिषेक्तारम्) अभिषेक राजतिलक करने वाले को (वर्षिष्ठाय) अति श्रेष्ठ (नाकाय), सब दुःखों से रहित सुख विशेष के लिये (परिवेष्टारम्) परोसने वाले को (देवलोकाय) विद्वानों के दर्शन के लिये (पेशितारम्) विद्या के अवयवों को जानने वाले को (मनुष्यलोकाय) मनुष्यपन के देखने को (प्रकरितारम्) विक्षेप करने वाले को (सर्वेभ्यः) सब (लोकेभ्यः) लोकों के लिये (उपसेक्तारम्) उपसेचन करने वाले को (मेधाय) सङ्गम के अर्थ (वासःपल्पूलीम्) वस्त्रों को शुद्ध करने वाली ओषधि को और (प्रकामाय) उत्तम कामना की सिद्धि के लिये (रजयित्रीम्) उत्तम रंग करने वाली ओषधि को उत्पन्न प्रकट कीजिये और (अवऋत्यै) विरुद्ध प्राप्ति जिस में हो उस (वधाय) मारने के लिये प्रवृत्त हुए (उपमन्थितारम्) ताडनादि से पीड़ा देने वाले दुष्ट को दूर कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—राजपुरुषादि मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर रचित सृष्टि से सब सामग्रियों को ग्रहण करें उन से शरीर का बल विद्या और न्याय का प्रकाश बड़ा सुख राज्य का अभिषेक दुःखों का विनाश विद्वानों का सेग मनुष्यों का स्वभाव वस्त्रादि की पवित्रता अच्छी सिद्ध करें और विरोध को छोड़ें ॥ १२ ॥

ऋतयेत्यस्य नारायण ऋषिः । ईश्वरो देवता ।

कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥ १३ ॥

ऋतये। स्तेनहृदयमिति स्तेनऽहृदयम्। वैरहत्यायेति वैरऽहत्याय। पिशुनम्। विविक्त्याऽइति विऽविक्त्यै। क्षत्तारम्। औपद्रष्ट्यायेत्यौपऽद्रष्ट्याय। अनुक्षत्तारमित्यनुऽक्षत्तारम्। बलाय। अनुचरमित्यनुऽचरम्। भूम्ने। परिष्कन्दम्। परिस्कन्दमिति परिऽस्कन्दम्। प्रियाय। प्रियवादिनमिति प्रियऽवादिनम्। अरिष्ट्यै। अश्वसादमित्यश्वऽसादम्। स्वर्गायेति स्वःऽगाय। लोकाय। भागदुघमिति भागऽदुघम्। वर्षिष्ठाय। नाकाय। परिवेष्टारमिति परिऽवेष्टारम्॥१३॥

पदार्थः— (ऋतये) हिंसायै प्रवृत्तम् (स्तेनहृदयम्) चोरस्य हृदयमिव हृदयमस्यतम् (वैरहत्याय) वैरं हत्या च यस्मिन् कर्मणि तस्मै प्रवर्त्तमानम् (पिशुनम्) विरुद्धसूचकम् (विविक्त्यै) विवेकाय (क्षत्तारम्) क्षतात्तारकं धर्मात्मानम् (औपद्रष्ट्याय) उपद्रष्टृत्वाय (अनुक्षत्तारम्) (बलाय) (अनुचरम्) (भूम्ने) बहुत्वाय (परिष्कन्दम्) सर्वतो रेतसः सेक्तारम् (प्रियाय) प्रीत्यै (प्रियवादिनम्) (अरिष्ट्यै) कुशलप्राप्तये (अश्वसादम्) योऽश्वान् सादयति तम् (स्वर्गाय) सुखविशेषाय (लोकाय) दर्शनाय सङ्घाताय वा (भागदुघम्) यो भागान् दोग्धि प्रपिपर्त्ति तम् (वर्षिष्ठाय) अतिशयेन वृद्धाय (नाकाय) अविद्यमानदुःखायाऽऽनन्दाय (परिवेष्टारम्) परितः सर्वतो व्याप्तविद्यां विद्वांसम्॥१३॥

अन्वयः—हे परमात्मन् राजन् वा त्वमृतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं परासुव। विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्यायानुक्षत्तारं बलायाऽनुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादं स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारमासुव॥१३॥

भावार्थः—राजादिमनुष्यैर्दुष्टसङ्गं विहाय श्रेष्ठसङ्गं विधाय विवेकादीन्युत्पाद्य सुखयितव्यम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् वा राजन् आप (अर्तये) हिंसा करने के लिये प्रवृत्त हुए (स्तेनहृदयम्) चोर के तुल्य छली कपटी को और (वैरहत्याय) वैर तथा हत्या जिस कर्म में हो उस के लिये प्रवृत्त हुए (पिशुनम्) निन्दक को पृथक् कीजिये। (विविक्त्यै) विवेक करने के लिये (क्षत्तारम्) ताड़ना से रक्षा करने हारे धर्मात्मा को (औपद्रष्ट्र्याय) उपद्रष्टा होने के लिये (अनुक्षत्तारम्) धर्मात्मा के अनुकूल वर्त्ती को (बलाय) बल के अर्थ (अनुचरम्) सेवक को (भूम्ने) सृष्टि की अधिकता के लिये (परिष्कन्दम्) सब ओर से वीर्य्य सींचने वाले को (प्रियाय) प्रीति के अर्थ (प्रियवादिनम्) प्रियवादी को (अरिष्ट्यै) कुशल प्राप्ति के लिये (अश्वसादम्) घोड़ों को चलाने वाले को (स्वर्गाय) सुख विशेष के (लोकाय) देखने वा संचित करने के लिये (भागदुघम्) अंशों को पूर्ण करने वाले को (वर्षिष्ठाय) अति श्रेष्ठ (नाकाय) सब दुःखों से रहित आनन्द के लिये (परिवेष्टारम्) सब ओर से व्याप्त विद्या वाले विद्वान् को प्रकट कीजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—राजा आदि उत्तम मनुष्यों को चाहिये कि दुष्टों के संग को छोड़ श्रेष्ठों का संग कर विवेक आदि को उत्पन्न कर सुखी होवें ॥ १३ ॥

मन्यव इत्यस्य नारायण ऋषिः। राजेश्वरौ देवते।

निचृदत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसीवि० ॥

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥ १४ ॥

मन्यवे । अयस्तापमित्ययःऽतापम् । क्रोधाय । निसरमिति निऽसरम् । योगाय । योक्तारम् । शोकाय । अभिसर्त्तारमित्यभिऽसर्त्तारम् । क्षेमाय । विमोक्तारमिति विऽमोक्तारम् । उत्कूलनिकूलेभ्यऽ इत्युत्कूलऽनिकूलेभ्यः । त्रिष्ठिनम् । त्रिस्थिनमिति त्रिऽस्थिनम् । वपुषे । मानस्कृतम् । मानःऽकृतमिति मानःऽकृतम् । शीलाय । आञ्जनीकारीमित्याञ्जनीऽकारीम् । निर्ऋत्याऽइति निःऽऋत्यै । कोशकारीमिति कोशऽकारीम् । यमाय । असूम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—(मन्यवे) आन्तर्यक्रोधाय प्रवृत्तम् (अयस्तापम्) लोहसुवर्णतापकम् (क्रोधाय) बाह्यक्रोपाय प्रवृत्तम् (निसरम्) यो निश्चितं सरति गच्छति तम् (योगाय) युञ्जन्ति यस्मिँस्तस्मै (योक्तारम्) योजकम् (शोकाय) (अभिसर्त्तारम्) आभिमुख्ये गन्तारम् (क्षेमाय) रक्षणाय (विमोक्तारम्) दुःखाद्विमोचकम् (उत्कूलनिकूलेभ्यः) ऊर्द्धनीचतटेभ्यः (त्रिष्ठिनम्) ये त्रिषु जलस्थलान्तरिक्षेषु तिष्ठन्ति ते त्रिष्ठा बहवस्त्रिष्ठा विद्यन्ते यस्य तम् (वपुषे) शरीरहिताय (मानस्कृतम्) मनस्कृतेषु विचारेषु कुशलम् (शीलाय) जितेन्द्रियत्वादिशीलिने (आञ्जनीकारीम्) आञ्जनीः प्रसिद्धाः क्रियाः कर्त्तुं शीलं यस्यास्ताम् (निर्ऋत्यै) भूम्यै (कोशकारीम्) या कोशं करोति ताम् (यमाय) दण्डदानाय प्रवृत्तम् (असूम्) याऽस्यति प्रक्षिपति ताम् ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर ! राजन् वा ! त्वं मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं शोकायाभिसर्त्तारं यमायासूं परासुव । योगाय योक्तारं क्षेमाय

विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतं शीलायाऽऽञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीमालुव ॥ १४ ॥

भावार्थः-हे राजादयो मनुष्या ये तप्तं लोहमिव क्रुद्धा अन्येषां परितापका धर्मनियमानां विनाशकाः स्युस्तान् दण्डयित्वा योगाभ्यासकर्त्रादीन् सत्कृत्य सर्वत्र यानगमकान् सङ्गृह्य यथावत् सुखं युष्माभिरुन्नेयम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा सभापते राजन् ! आप (मन्यवे) आन्तर्य क्रोध के अर्थ प्रवृत्त हुए (अयस्तापम्) लोह वा सुवर्ण को तपाने वाले को (क्रोधाय) बाह्य क्रोध के लिये प्रवृत्त हुए (निसरम्) निश्चित चलने वाले को (शोकाय) शोच के लिये प्रवृत्त हुए (अभिसर्त्तारम्) सन्मुख चलने वाले को और (यमाय) दण्ड देने के लिये प्रवृत्त हुई (असूम्) क्रोध से इधर उधर हाथ आदि फेंकने वाली को दूर कीजिये और (योगाय) योगाभ्यास के लिये (योक्तारम्) योग करने वाले को (क्षेमाय) रक्षा के लिये (विमोक्तारम्) दुःख से छुडाने वाले को (उत्कूलनिकूलेभ्यः) ऊपर नीचे किनारों पर चढ़ाने उतारने के लिये (त्रिष्ठिनम्) जल स्थल और आकाश में रहने वाले विमानादि यानों से युक्त पुरुष को (वपुषे) शरीर हित के लिये (मानस्कृतम्) मन से किये विचारों में प्रवीण को (शीलाय) जितेन्द्रियता आदि उत्तम स्वभाव वाले के लिये (आञ्जनीकारीम्) प्रसिद्ध क्रियाओं के करने हारे स्वभाववाली स्त्री को और (निर्ऋत्यै) भूमि के लिये (कोशकारीम्) कोश का संचय करने वाली स्त्री को उत्पन्न वा प्रगट कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! जो तपे लोहे के तुल्य क्रोध को प्राप्त हुए औरों को दुःख देने और धर्म नियमों को नष्ट करने वाले हों उन को दण्ड देकर योगाभ्यास करने वाले आदि का सत्कार कर सब जगह सवारी चलाने वालों को इकट्ठा कर तुम को यथावत् सुख बढ़ाना चाहिये ॥ १४ ॥

यमायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते ।

विराट् कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

यमायं यमसूमथर्वभ्योऽवतोका संवत्सराय पर्यायिणींपरिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जरां संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धं साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥ १५ ॥

यमार्य । यमसूमिति यमऽसूम् । अथर्वभ्यऽ इत्यथर्वऽभ्यः । अवतोकामित्यवऽतोकाम् । संवत्सराय । पर्यायिणीम् । पर्यायिनीमिति परिऽआयिनीम् । परिवत्सरायेति परिऽवत्सराय । अविजातामित्यविऽजाताम् । इदावत्सराय । अतीत्वरीमित्यतिऽइत्वरीम् । इद्वत्सरायेतीत्ऽवत्सराय । अतिष्कद्वरीम् । अतिस्कद्वरीमित्यतिऽस्कद्वरीम् । वत्सराय । विजर्जरामिति विऽजर्जराम् । संवत्सराय । पलिक्नीम् । ऋभुभ्यऽ इत्यृभुऽभ्यः । अजिनसन्धमित्यजिनऽसन्धम् । साध्येभ्यः । चर्मम्नमिति चर्मऽम्नम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(यमाय)नियन्त्रे(यमसूम्)या यमान् नियन्तॄन् सूते ताम्(अथर्वभ्यः)अहिंसकेभ्यः(अवतोकाम्)निरपत्यम्

पदार्थः-(संवत्सराय)(पर्य्यायिणीम्) परितःकालक्रमज्ञाम् (परिवत्सराय) द्वितीयवर्षनिर्णयाय (अविजाताम्) अप्रसूतां ब्रह्मचारिणीम् (इदावत्सराय) इदावत्सरस्तृतीयस्तत्र कार्य्यसम्पादनाय । अत्र वर्णव्यत्ययः । (अतीत्वरीम्) अतिगमनशीलाम् (इद्वत्सराय) पञ्चमाय वर्षाय (अतिष्कद्वरीम्) अतिशयेन या स्कन्दति जानाति ताम् (वत्सराय) सामान्याय (विजर्जराम्) विशेषेण जर्जरीभूताम् (संवत्सराय) चतुर्थायानुवत्सराय । अत्रानोः पूर्वपदस्य लोपः (पलिक्नीम्) श्वेतकेशाम् (ऋभुभ्यः) मेधाविभ्यः (अजिनसन्धम्) जेतुमयोग्यान् संदधाति तम् । अत्र जि धातोःकर्मणि नक् उ० । ३ । २ । (साध्येभ्यः) ये साद्धुं योग्यास्तेभ्यः (चर्मम्नम्) यश्चर्म विज्ञानं म्नात्यभ्यस्यति तम् ॥१५॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर राजन् ! वा त्वं यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकां संवत्सराय पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जरां संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धं साध्येभ्यश्चर्मम्नमासुव ॥ १५ ॥

भावार्थः—प्रभवादिषष्टिसंवत्सरेषु पञ्च पञ्च कृत्वा द्वादश युगानि भवन्ति प्रत्येकयुगे क्रमेण संवत्सरपरिवत्सरे दावत्सरानुवत्सरेद्वत्सराः पञ्च सञ्ज्ञा भवन्ति तान् सर्वकालावयवमूलान् विशेषतया याः स्त्रियो यथावद्विजानन्ति व्यर्थं न नयन्ति ताः सर्वार्थसिद्धिमाप्नुवन्ति ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! वा राजन् ! आप (यमाय) नियम कर्त्ता के लिये (यमसूम्) नियन्ताओं को उत्पन्न करने वाली को (अथर्वभ्यः) अहिंसकों के

लिये (अवतोकाम्) जिस की सन्तान बाहर निकल गयी हो उस स्त्री को (संवत्सराय) प्रथम संवत्सर के अर्थ (पर्यायिणीम्) सब ओर से काल के क्रम को जानने वाली को (परिवत्सराय) दूसरे वर्ष के निर्णय के लिये (अविजाताम्) ब्रह्मचारिणी कुमारी को (इदावत्सराय) तीसरे इदा वत्सर में कार्य साधने के अर्थ (अतीत्वरीम्) अत्यन्त चलने वाली को (इद्वत्सराय) पाचवें इद्वत्सर के ज्ञान के अर्थ (अतिष्कद्वरीम्) अतिशय कर जानने वाली को (वत्सराय) सामान्य संवत्सर के लिये (विजर्जराम्) वृद्धा स्त्री को (संवत्सराय) चौथे अनुवत्सर के लिये (पलिक्नीम्) श्वेत केशों वाली को (ऋभुभ्यः) बुद्धिमानों के अर्थ (अजिनसन्धम्) नहीं जीतने योग्य पुरुषों से मेल रखने वाले को (साध्येभ्यः) और साधने योग्य कार्यों के लिये (चर्मम्नम्) विज्ञान शास्त्र का अभ्यास करने वाले पुरुष को उत्पन्न कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—प्रभव आदि ६० साठ संवत्सरों में पांच २ कर १२ बारह युग होते हैं उन प्रत्येक युग में क्रम से संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर; ये पांच संज्ञा हैं उन सब काल के अवयवों के मूल संवत्सरों को विशेष कर जो स्त्री लोग यथावत् जान के व्यर्थ नहीं गंवाती वे सब प्रयोजनों की सिद्धि को प्राप्त होती हैं ॥ १५ ॥

सरोभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते ।
विराट् कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो वैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पारायं मार्गारमवारायं केवर्त्तं तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥ १६ ॥

सरोभ्य॒ऽ इति॒ सरः॑ऽभ्यः। धैव॒रम्। उ॒प॒स्था॒व॑राभ्य॒ऽ इत्यु॑प॒ऽस्था॒व॑राभ्यः। दा॒शम्। वै॒श॒न्ता॒भ्यः॑। बै॒न्दम्। न॒ड्व॒ला॒भ्यः॑। शौष्क॑लम्। पा॒राय। मा॒र्गा॒रम्। आ॒वा॒राय। कै॒व॒र्त्तम्। ती॒र्थेभ्यः॑। आ॒न्दम्। विष॑मेभ्य॒ऽइति॒ विऽस॑मेभ्यः। मै॒ना॒लम्। स्वने॑भ्यः। पर्ण॑कम्। गुहा॑भ्यः। किरा॑तम्। सानु॑भ्य॒ऽ इति॒ सानु॑ऽभ्यः। जम्भ॑कम्। पर्व॑तेभ्यः। कि॒म्पू॒रु॒षम्। कि॒म्पु॒रु॒षमिति॒ किम्ऽपु॒रु॒षम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(सरोभ्यः) तडागेभ्यस्तारणाय (धैवरम्) धीवरस्यापत्यम् (उपस्थावराभ्यः) उपस्थिताभ्योऽवराभ्यो निकृष्टक्रियाभ्यः (दाशम्) दाशत्यस्मै तम् (वैशन्ताभ्यः) वेशन्ता अल्पजलाशयास्ता एव ताभ्यः (बैन्दम्) निषादस्यापत्यम् (नड्वलाभ्यः) नडा विद्यन्ते यासु भूमिषु ताभ्यः (शौष्कलम्) यश्शुष्कैर्मत्स्यैर्जीवति तम् (पाराय) युद्धकर्मसमाप्त्यर्थं प्रवृत्तम् (मार्गारम्) यो मृगाणामरिर्व्याधस्तस्यापत्यम् (अवाराय) अर्वाचीनभागगमनाय (कैवर्त्तम्) जले नौकायाः पारावारयोर्गमकम् (तीर्थेभ्यः) तरन्ति यैस्तीर्यन्ते वा तेभ्यः (आन्दम्) बन्धितारम् (विषमेभ्यः) निकटदेशेभ्यः (मैनालम्) यो मैनं कामदेवमलति वारयति तं जितेन्द्रियम् (स्वनेभ्यः) शब्देभ्यः (पर्णकम्) यः पर्णेषु पालनेषु कुत्सितस्तम् (गुहाभ्यः) कन्दराभ्यः (किरातम्) जनविशेषम् (सानुभ्यः) शैलशिखरेभ्यः (जम्भकम्)

यो जम्भयति नाशयति तम् (पर्वतेभ्यः) गिरिभ्यः (किम्पूरुषम्) जाङ्गलं कुत्सितं मनुष्यम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर राजन् वा ! त्वं सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो वैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं विषमेभ्यो मैनालमवाराय केवर्त्तं तीर्थेभ्य आन्दमासुव। पाराय मार्गारं स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातं सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषं परासुव ॥१६ ॥

भावार्थः—मनुष्या ईश्वरगुणकर्मस्वभावानुकूलैः कर्मभिर्धीवरादीन् संरक्ष्य व्याधादीन् परित्यज्योत्तमं सुखं प्राप्नुवन्तु ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (सरोभ्यः) बड़े तलावों के लिये (धैवरम्) धीमर के लड़के को (उपस्थावराभ्यः) समीपस्थ निकृष्ट क्रियाओं के अर्थ (दाशम्) जिस को दिया जावै उस सेवक को (वैशन्ताभ्यः) छोटे २ जलाशयों के प्रबन्ध के लिये (वैन्दम्) निषाद के अपत्य को (नड्वलाभ्यः) नरसल वाली भूमि के लिये (शौष्कलम्) मच्छियों से जीवने वाले को और (विषमेभ्यः) विकट देशों के लिये (मैनालम्) कामदेव को रोकने वाले को (अवाराय) अपनी ओर आने के लिये (केवर्त्तम्) जल में नौका को इस पार उस पार पहुंचाने वाले को (तीर्थेभ्यः) तरने के साधनों के लिये (आन्दम्) बांधने वाले को उत्पन्न कीजिये (पाराय) हरिण आदि की चेष्टा को समाप्त करने को प्रवृत्त हुए (मार्गारम्) व्याध के पुत्र को (स्वनेभ्यः शब्दों के लिये (पर्णकम्) रक्षा करने में निन्दित शील को (गुहाभ्यः) गुहाओं के अर्थ (किरातम्) बहेलिये को (सानुभ्यः) शिखरों पर रहने के लिये प्रवृत्त हुए (जम्भकम्) नाश करने वाले को और (पर्वतेभ्यः) पहाड़ों से (किम्पूरुषम्) खोटे जंगली मनुष्य को दूर कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग ईश्वर के गुणकर्म स्वभावों के अनुकूल कर्मों से कहार आदि की रक्षा कर और बहेलिये आदि हिंसकों को छोड़ के उत्तम सुख पावें ॥१६ ॥

बीभत्साया इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते ।
विराड् धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्या अपगल्भꣳ सꣳशराय प्रच्छिदम् ॥ १७ ॥

बीभत्सायै । पौल्कसम् । वर्णाय । हिरण्यकारमिति हिरण्यऽकारम् । तुलायै । वाणिजम् । पश्चादोषायेति पश्चाऽदोषाय । ग्लाविनम् । विश्वेभ्यः । भूतेभ्यः । सिध्मलम् । भूत्यै । जागरणम् । अभूत्यै । स्वपनम् । आर्त्या इत्याऽऋत्यै । जनवादिनमिति जनऽवादिनम् । व्यृद्ध्या इति विऽऋद्ध्यै । अपगल्भमित्यपऽगल्भम् । सꣳशरायेति सम्ऽशराय । प्रच्छिदमिति प्रऽछिदम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—(बीभत्सायै) भर्त्सनाय प्रवृत्तम् (पौल्कसम्) पुल्कसस्यान्त्यजस्याऽपत्यम् । अत्र पृषोदरादित्वादभीष्टसिद्धिः (वर्णाय) सुरूपसंपादनाय (हिरण्यकारम्) सुवर्णकारं सूर्यं वा (तुलायै) तोलनाय (वाणिजम्) वणिगपत्यम् (पश्चादोषाय) पश्चाद्दोषदानाय प्रवृत्तम् (ग्लाविनम्) अहर्षितारम् (विश्वेभ्यः) सर्वे-

भ्यः (भूतेभ्यः) (सिध्मलम्) सिध्माः सुखसाधका विद्यन्ते यस्य तम् (भूत्यै) ऐश्वर्याय (जागरणम्) जागृतम् (अभूत्यै) अनैश्वर्याय (स्वपनम्) निद्राम् (आर्त्यै) पीडानिवृत्तये (जनवादिनम्) प्रशस्ता जनवादा विद्यन्ते यस्य तम् (व्यृद्ध्यै) विगता चासौ ऋद्धिश्च व्यृद्धिस्तस्यै (अपगल्भम्) प्रगल्भतारहितम् (संशराय) सम्यग्धिंसनाय प्रवृत्तम् (प्रच्छिदम्) यः प्रच्छिनत्ति तम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे ईश्वर वा राजन् ! त्वं बीभत्सायै पौल्कसं पश्चादोषाय ग्लाविनमभूत्यै स्वपनं व्यृद्ध्या अपगल्भं संशराय प्रच्छिदं परासुव । वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमार्त्यै जनवादिनमासुव ॥ १७ ॥

भावार्थः—ये मनुष्या नीचसङ्गं त्यक्त्वोत्तमसङ्गतिं कुर्वन्ति ते सर्वव्यवहारसिद्धयैश्वर्यवन्तो जायन्ते । येऽनलसाः सन्तोः सिद्धये यतन्ते ते सुखं ये चाऽलसास्ते च दारिद्र्यमाप्नुवन्ति ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (बीभत्सायै) धमकाने के लिये प्रवृत्त हुए (पौल्कसम्) भंगी के पुत्र को (पश्चादोषाय) पीछे दोष देने को प्रवृत्त हुए (ग्लाविनम्) हर्ष को नष्ट करने वाले को (अभूत्यै) दरिद्रता के अर्थ समर्थ (स्वपनम्) सोने को (व्यृद्ध्यै) संपत् के विगाड़ने के अर्थ प्रवृत्त हुए (अपगल्भम्) प्रगल्भता रहित पुरुष को तथा (संशराय) सम्यक् मारने के लिये प्रवृत्त हुए (प्रच्छिदम्) अधिक छेदन करने वाले को पृथक् कीजिये और (वर्णाय) सुन्दररूप बनाने के लिये (हिरण्यकारम्) सुनार वा सूर्य्य को (तुलायै) तोलने के अर्थ (वाणिजम्) वणिये के पुत्र को (विश्वेभ्यः) सब (भूतेभ्यः) प्राणियों के लिये (सिध्मलम्) सुख सिद्ध करने वाले जिस के सहायी हों उस जन को (भूत्यै) ऐश्वर्य होने के अर्थ (जागरणम्)

प्रबोध को और (आर्त्यै) पीडा की निवृत्ति के लिये (जनवादिनम्) मनुष्यों को प्रशंसा के योग्य वाद विवाद करने वाले उत्तम मनुष्य को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः— जो मनुष्य नीचों का संग छोड़ के उत्तम पुरुषों की संगति करते हैं वे सब व्यवहारों की सिद्धि से ऐश्वर्य वाले होते हैं जो अनालसी हो के सिद्धि के लिये यत्न करते वे सुखी और जो आलसी होते वे दरिद्रता को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

अक्षराजायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते ।
निचृत्प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

अक्षराजायं कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥ १८ ॥

अक्षराजायेत्यक्षऽराजाय । कितवम् । कृताय । आदिनवदर्शमित्यादिनवऽदर्शम् । त्रेतायै । कल्पिनम् । द्वापराय । अधिकल्पिनमित्यधिऽकल्पिनम् । आस्कन्दायेत्याऽस्कन्दाय । सभास्थाणुमिति सभाऽस्थाणुम् । मृत्यवे । गोव्यच्छमिति गोऽव्यच्छम् । अन्तकाय । गोघातमिति गोऽघातम् । क्षुधे ।

यः । गाम् । विकृन्तन्तमिति विऽकृन्तन्तम् । भिक्षमाणः । उपतिष्ठतीत्युपऽतिष्ठति । दुष्कृताय । दुःकृतायेति दुःऽकृताय । चरकाचार्य्यमिति चरकऽआचार्य्यम् । पाप्मने । सैलगम् ॥ १८ ॥

पदार्थः–(अक्षराजाय) येऽक्षैः क्रीडन्ति तेषां राजा तस्मै हितम् (कितवम्) द्यूतकारिणम् (कृताय) (आदिनवदर्शम्) य आदौ नवान् पश्यति तम् (त्रेतायै) त्रयाणां भवाय (कल्पिनम्) कल्पः प्रशस्तं सामार्थ्यं विद्यते यस्य तम् (द्वापराय) द्वावपरौ यस्मिन्तस्मै (अधिकल्पिनम्) अधिगतसामर्थ्ययुक्तम्(आस्कन्दाय) समन्ताच्छोषणाय (सभास्थाणुम्) सभायां स्थितम् (मृत्यवे) मारणाय (गोव्यच्छम्) गोषु विचेष्टितारम् (अन्तकाय) नाशाय (गोघातम्) गवां घातकम् (क्षुधे) (यः) (गाम्) धेनुम् (विकृन्तन्तम्) विच्छेदयन्तम् (भिक्षमाणः) (उपतिष्ठति) (दुष्कृताय) दुष्टाचाराय प्रवृत्तम् (चरकाचार्यम्) चरकाणां भक्षकाणामाचार्य्यम् (पाप्मने) पापात्मने हितम् (सैलगम्) सीलाङ्गस्य दुष्टस्यापत्यं सैलगम् ॥ १८ ॥

अन्वयः–हे जगदीश्वर वा राजन्! त्वमक्षराजाय कितवं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां छिनत्ति तं विकृन्तन्तं यो भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय तं चरकाचार्यं पाप्मने सैलगं परासुव। कृतायाऽऽदिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाऽधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुमासुव॥१८॥

भावार्थः—ये ज्योतिर्विदादिसत्याचरणान् सत्कुर्वन्ति दुष्टाचारान् गोघ्नादीन् ताडयन्ति ते राज्यं कर्त्तुं शक्नुवन्ति ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! वा राजन् ! आप (अक्षराजाय) पासों से खेलने वालों के प्रधान के हितकारी (कितवम्) जुआ करने वाले को (कृत्यवे) मारने के अर्थ (गोव्यच्छम्) गौओं में बुरी चेष्टा करने वाले को (अन्तकाय) नाश के अर्थ (गोघातम्) गौओं के मारने वाले को (क्षुधे) क्षुधा के लिये (यः) जो (गाम्) गौ को मारता उस (विकृन्तन्तम्) काटते हुए को जो (भिक्षमाणः) भीख मांगता हुआ (उपतिष्ठति) उपस्थित होता है (दुष्कृताय) दुष्ट आचरण के लिये प्रवृत्त हुए उस (चरकाचार्य्यम्) भक्षण करने वालों के गुरु को (पाप्मने) पापी के हितकारी (सैलगम्) दुष्ट के पुत्र को दूर कीजिये (कृताय) किये हुए के अर्थ (आदिनवदर्शम्) आदि में नवीनों को देखने वाले को (त्रेतायै) तीन के होने के अर्थ (कल्पिनम्) प्रशंसित सामर्थ्य वाले को (द्वापराय) दो जिस के इधर सम्बन्धी हों उस के अर्थ (अधिकल्पिनम्) अधिकतर सामर्थ्ययुक्त को और (आस्कन्दाय) अच्छे प्रकार सुखाने के अर्थ (सभास्थाणुम्) सभा में स्थिर होने वाले को प्रकट वा उत्पन्न कीजिये ॥१८॥

भावार्थः—जो मनुष्य ज्योतिषी आदि सत्याचारियों का सत्कार करते और दुष्टाचारी गोहत्यारे आदि को ताडना देते हैं वे राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥ १८ ॥

प्रतिश्रुत्काया इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते ।
भुरिग्धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रतिश्रुत्काया अर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दायाडम्बरघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोऽरण्याय दावपम् ॥१९॥

प्रतिश्रुत्काया इति प्रतिऽश्रुत्कायै । अर्त्तनम् । घोषाय । भषम् । अन्ताय । बहुवादिनमिति बहुऽवादिनम् । अनन्ताय । मूकम् । शब्दाय । आडम्बराघा- तमित्याडम्बरऽआघातम् । महसे । वीणावादमिति वीणाऽवादम् । क्रोशाय । तूणवध्ममिति तूणवऽध्मम् । अवरस्पराय । अवरपरायेति अवरऽपराय । शङ्खध्ममिति शङ्खऽध्मम् । वनाय । वनपमिति वनऽपम् । अन्यतोरण्यायेत्य- न्यतःऽअरण्याय । दावपमिति दावऽपम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—(प्रतिश्रुत्कायै) प्रतिज्ञात्र्यै (अर्त्तनम्) प्रापकम् (घोषाय) (भषम्) परिभाषकम् (अन्ताय) समीपाय ससीमाय वा (बहुवादिनम्) (अनन्ताय) निःसीमाय (मूकम्) अवाचम् (शब्दाय) प्रवृत्तम् (आडम्बराघातम्) आडम्बरस्याघातकं कोलाहलकर्त्तारम् (महसे) महते (वीणावादम्) वाद्यविशेषम् (क्रोशाय) रोदनाय प्रवृ- त्तम् (तूणवध्मम्) यस्तूणवं धमति तम् (अवरस्पराय) योऽवरेषां परस्तस्मै (शङ्खध्मम्) यः शङ्खान् धमति तम् (वनाय) (वनपम्) जङ्गलरक्षकम् (अन्यतोरण्याय) अन्यतोऽरण्यानि यस्मिन् देशे तद्विनाशाय प्रवृत्तम् (दावपम्) वनदाहकम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर ! राजन्! वा त्वं प्रतिश्रुत्काया अर्त्तनं घोषाय भष- मन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकं महसे वीणावादमवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमासुव । शब्दायाडम्बराघातं क्रोशाय तूणवध्ममन्यतोरण्याय दावपम्परासुव ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः स्वकीयैस्स्त्रीपुरुषादिभिरध्यापनसंवादादिव्यवहाराः साधनीयाः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन्! आप (प्रतिश्रुत्कायै) प्रतिज्ञा करने वाली के अर्थ (अर्त्तनम्) प्राप्ति कराने वाले को (घोषाय) घोषणे के लिये (भषम्) सब ओर से बोलने वाले को (अन्ताय) समीप वा मर्य्यादा वाले के लिये (बहुवादिनम्) बहुत बोलने वाले को (अनन्ताय) मर्यादा रहित के लिये (मूकम्) गूंगे को (महसे) बड़े के लिये (वीणावादम्) वीणा बजाने वाले को (अवरस्पराय) नीचे के शत्रुओं के अर्थ (शङ्खध्मम्) शङ्ख बजाने वाले को और (वनाय) वन के लिये (वनपम्) जङ्गल की रक्षा करने वाले को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये (शब्दाय) शब्द करने को प्रवृत्त हुए (आडम्बराघातम्) हल्ला गुल्ला करने वाले को (क्रोशाय) कोशने को प्रवृत्त हुए (तूणवध्मम्) बाजे विशेष को बजाने वाले को (अन्यतोरण्याय) अन्य अर्थात् ईश्वरीय सृष्टि से जहां वन हों उस देश की हानि के लिये (दावपम्) वन को जलाने वाले दूर कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने स्त्री पुरुष आदि के साथ पढ़ाने और संवाद करने आदि व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ १९ ॥

नर्मायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते ।
भुरिगतिजगती छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी वि० ॥

नर्माय पुँश्चलूँ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥ २० ॥

नर्माय । पुंश्चलूम् । हसाय । कारिम् । यादसे । शाबल्याम् । ग्रामण्यम् । ग्रामन्यमिति ग्रामऽन्यम् । गणकम् । अभिक्रोशकमित्यभिऽक्रोशकम् । तान् । महसे । वीणावादमिति वीणाऽवादम् । पाणिघ्नमिति पाणिऽघ्नम् । तूणवध्ममिति तूणवऽध्मम् । तान् । नृत्ताय । आनन्दायेत्याऽनन्दाय तलवम् ॥ २० ॥

पदार्थः-(नर्माय) क्रीडायै प्रवृत्ताम् (पुँश्चलूम्) व्यभिचारिणीं स्त्रियम् (हसाय) हसनाय प्रवृत्ताम् (कारिम्) विक्षेपकम् (यादसे) जलजन्तवे प्रवृत्ताम् (शाबल्याम्) शबलस्य कर्बुरवर्णस्य सुताम् (ग्रामण्यम्) ग्रामस्य नायकम् (गणकम्) गणितविदम् (अभिक्रोशकम्) योऽभितः क्रोशति आह्वयति तम् (तान्) (महसे) पूजनाय (वीणावादम्) (पाणिघ्नम्) यः पाणिभ्यां हन्ति तम् (तूणवध्मम्) यस्तूणवं धमति तम् (तान्) (नृत्ताय) नर्त्तनाय (आनन्दाय) (तलवम्) यो हस्तादि तलानि वाति हिनस्ति तम् ॥ २० ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर राजन् वा त्वं नर्माय पुंश्चलूं हसाय कारिं यादसे शाबल्यां पराऽसुव । ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्ताय्याऽऽनन्दाय तलवमासुव ॥ २० ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्हास्यव्यभिचारादिदोषांस्त्यक्त्वा गानवादित्रनृत्यादिकर्मणां शिक्षां प्राप्यानन्दितव्यम् ॥ २० ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा ! राजन् ! आप (नर्माय) क्रीडा के लिये प्रवृत्त हुई (पुंश्चलूम्) व्यभिचारिणी स्त्री को (हसाय) हंसने को प्रवृत्त हुए (कारिम्) विक्षिप्त पागल को और (यादसे) जल जन्तुओं के मारने को प्रवृत्त हुई (शाबल्याम्) कबरे मनुष्य की कन्या को दूर कीजिये (ग्रामण्यम्) ग्रामाधीश (गणकम्) ज्योतिषी और (अभिक्रोशकम्) सब ओर से बुलाने वाले जन (तान्) इन सब को (महसे) सत्कार के अर्थ (वीणावादम्) वीणा बजाने (पाणिघ्नम्) हाथों से वादित्र बजाने और (तूणवध्मम्) तूणवनामक बाजे को बजाने वाले (तान्) उन सब को (नृत्ताय) नांचने के लिये और (आनन्दाय) आनन्द के अर्थ (तलवम्) ताली आदि बजाने वाले को उत्पन्न वा प्रसिद्ध कीजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि हंसी और व्यभिचारादि दोषों को छोड़ और गाने बजाने नाचने आदि की शिक्षा को प्राप्त होके आनन्दित होवें ॥ २० ॥

अग्नय इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते ।

भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्नये॒ पीवा॑नं पृथि॒व्यै पी॑ठस॒र्पिणं॑ वा॒यवे॑ चाण्डा॒लम॒न्तरि॑क्षाय वꣳशन॒र्त्तिनं॑ दि॒वे ख॑ल॒तिꣳ सूर्य्या॑य हर्य्य॒क्षं नक्ष॑त्रेभ्यः कि॒र्मि॒रं च॒न्द्रम॑से कि॒ला॒समह्ने॑ शु॒क्लं पि॑ङ्गा॒क्षꣳरात्र्यै॑ कृ॒ष्णं पि॑ङ्गा॒क्षम् ॥ २१ ॥

अ॒ग्नये॑ । पीवा॑नम् । पृ॒थि॒व्यै । पी॒ठ॒स॒र्पिण॒मिति॑ पीठऽस॒र्पिण॑म् । वा॒यवे॑ । चा॒ण्डा॒लम् । अ॒न्तरि॑क्षाय । व॒ꣳश॒न॒र्त्तिन॒मिति॑ वꣳशऽन॒र्त्तिन॑म् । दि॒वे । ख॒-

ल॒तिम् । सूर्य्या॑य । ह॒र्य॒क्षमिति॑ हरिऽअ॒क्षम् । नक्ष॑त्रेभ्यः । कि॒र्मि॒रम् । च॒न्द्रम॑से । कि॒ला॒सम् । अह्ने॑ । शु॒क्लम् । पि॒ङ्गा॒क्षमिति॑ पिङ्गऽअ॒क्षम् । रात्र्यै॑ । कृ॒ष्णम् । पि॒ङ्गा॒क्षमिति॑ पिङ्गऽअ॒क्षम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—(अग्नये) पावकाय (पीवानम्) स्थूलम् (पृथिव्यै) (पीठसर्पिणम्) पीठेन सर्पितुं शीलं यस्य तम् (वायवे) वायुस्पर्शाय (चाण्डालम्) (अन्तरिक्षाय) सूर्य्यपृथिव्योर्मध्यस्थायाऽऽकाशाय (वंशनर्त्तिनम्) वंशे नर्त्तितुं शीलं यस्य तम् (दिवे) क्रीडायै प्रवृत्तम् (खलतिम्) निर्बालशिरस्कम् (सूर्य्याय) (हर्य्यक्षम्) हरीणां वानराणामक्षिणीइवाक्षिणी यस्य तम् (नक्षत्रेभ्यः) क्षत्राणां विरोधाय प्रवृत्तेभ्यः (किर्मिरम्) कर्बुरवर्णम् (चन्द्रमसे) (किलासम्) ईषच्छ्वेतवर्णम् (अह्ने) (शुक्लम्) शुद्धम् (पिङ्गाक्षम्) पिङ्गे पीतवर्णेऽक्षिणी यस्य तम् (रात्र्यै) (कृष्णम्) कृष्णवर्णम् (पिङ्गाक्षम्) पीताक्षम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे परमेश्वर ! राजन् ! वा त्वमग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणमन्तरिक्षाय वंशनर्त्तिनं सूर्याय हर्य्यक्षं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षमासुव । वायवे चाण्डालं दिवे खलतिं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षं परासुव ॥ २१ ॥

भावार्थः—अग्निर्हि स्थूलं दग्धुं शक्नोति न सूक्ष्मं पृथिव्यां पीठसर्पिणः सततं विचरन्ति नेतरे विहंगमाश्चाण्डालस्य शरीरागतो वायुर्दुर्गन्धत्वान्न सेवनीय इत्यादि ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन्! आप (अग्नये) अग्नि के लिये (पीवानम्) मोटे पदार्थ को (पृथिव्यै) पृथिवी के लिये (पीठसर्पिणम्) विना पगों के कढ़िरि के चलनेवाले सांप आदि को (अन्तरिक्षाय) आकाश और पृथिवी के बीच में खेलने को (वंशनर्तिनम्) वांस से नाचने वाले नट आदि को (सूर्याय) सूर्य के ताप प्रकाश मिलने के लिये (हर्यक्षम्) बांदर की सी छोटी आंखों वाले शीतप्राय देशी मनुष्यों को (चन्द्रमसे) चन्द्रमा के तुल्य आनन्द देने के लिये (किलासम्) थोड़े श्वेतवर्ण वाले को और (अन्हे) दिन के लिये (शुक्लम्) शुद्ध (पिङ्गलम्) पीली आंखों वाले को उत्पन्न कीजिये (वायवे) वायु के स्पर्श के अर्थ (चाण्डालम्) भंगी को (दिवे) क्रीड़ा के अर्थ प्रवृत्त हुए (खलतिम्) गंजे को (नक्षत्रेभ्यः) राज्य विरोध के लिये प्रवृत्त हुओं के लिये (किर्मिरम्) कवरों को और (रात्र्यै) अन्धकार के लिये प्रवृत्त हुए (कृष्णम्) काले रंग वाले (पिङ्गाक्षम्) पीले नेत्रों से युक्त पुरुष को दूर कीजिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—अग्नि स्थूल पदार्थों के जलाने को समर्थ होता है सूक्ष्म को नहीं। पृथिवीपर निरन्तर सर्पादि फिरते हैं किन्तु पक्षी आदि नहीं। भंगी के शरीर में आया वायु दुर्गन्ध युक्त होने से सेवने योग्य नहीं होता इत्यादि तात्पर्य्य जानना चाहिये ॥ २१ ॥

अथैतानित्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते ।
निचृत्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी वि० ॥

अथैतानष्टौ विरूपानालभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च। अशूद्रा अब्राह्मणास्ते

प्रा॒जा॒प॒त्याः । मा॒ग॒धः पुं॒श्च॒ली कि॒त॒वः क्ली॒बो॒ऽशू॑द्राः अब्रा॑ह्म॒णास्ते प्रा॑जाप॒त्याः ॥ २२ ॥

अथ । एतान् । अष्टौ । विरू॑पा॒निति वि॒ऽरू॑पान् । आ । ल॒भ॒ते । अति॑दीर्घ॒मित्यति॑ऽदीर्घम् । च । अति॑ह्रस्व॒मिति अति॑ऽह्रस्वम् । च । अति॑स्थूल॒मित्यति॑ऽस्थूलम् । च । अति॑कृश॒मित्यति॑ऽकृशम् । च । अति॑शुक्ल॒मित्यति॑ऽशुक्लम् । च । अति॑कृष्ण॒मित्यति॑ऽकृष्णम् । च । अति॑कुल्व॒मित्यति॑ऽकुल्वम् । च । अति॑लोमश॒मित्यति॑ऽलोमशम् । च । अशू॑द्राः । अब्रा॑ह्मणाः । ते । प्रा॒जा॒प॒त्या इति॑ प्राजाऽप॒त्याः । मा॒ग॒धः । पुं॒श्च॒ली । कि॒त॒वः । क्ली॒बः । अशू॑द्राः । अब्रा॑ह्मणाः । ते । प्रा॒जा॒प॒त्या इति॑ प्राजाऽप॒त्याः ॥ २२ ॥

पदार्थः—(अथ)आनन्तर्य्ये (एतान्) पूर्वोक्तान् (अष्टौ) (विरूपान्) विविधस्वरूपान् (आ) समन्तात् (लभते) प्राप्नोति (अतिदीर्घम्)अतिशयेन दीर्घम् (च) (अतिह्रस्वम्) अतिशयेन ह्रस्वम् (च) (अतिस्थूलम्) (च) (अतिकृशम्) (च)(अतिशुक्लम्)(च) (अतिकृष्णम्) (च) (अतिकुल्वम्) लोमरहितम् (च) (अतिलोमशम्) अतिशयेन लोमयुक्तम् (च)(अशूद्राः) न शूद्रा अशूद्राः (अब्राह्मणाः) न ब्राह्मणाः अब्राह्मणाः (ते)(प्रजापतिदेवताकाः (मागधः) नृशंसः (पुंश्चली) या पुंभिश्चलितचित्ता

व्यभिचारिणी (कितवः) द्यूतशीलः (क्लीबः) नपुंसकः (अशूद्राः) अविद्यमानः शूद्रो येषान्ते (अब्राह्मणाः) अविद्यमानो ब्राह्मणो येषान्ते (ते) (प्राजापत्याः) प्रजापतेरिमे ते ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे राजानो! यथा विद्वानतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं चैतान्विरूपानष्टावालभते तथा यूयमप्यालभध्वम् । अथ येऽशूद्रा अब्राह्मणाः प्राजापत्याः सन्ति तेऽप्यालभेरन् । यो मागधो या पुँश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते दूरे वासनीयाः । ये प्राजापत्यास्ते समीपे निवासनीयाः ॥ २२ ॥

भावार्थः— अत्र वाचकलु० । हे मनुष्या ! यथा विद्वांसः सूक्ष्ममहत्पदार्थान् विज्ञाय यथायोग्यं व्यवहारं साध्नुवन्ति तथाऽन्येऽपि साध्नुवन्तु । सर्वैः प्रजापतेरीश्वरस्योपासना नित्यं कर्त्तव्या इति ॥ २२ ॥

अस्मिन्नध्याये परमेश्वरस्वरूपराजकृत्ययोर्वर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥

पदार्थः—हे राजा लोगो ! जैसे विद्वान (अतिदीर्घम्) बहुत बड़े (च) और (अतिह्रस्वम्) बहुत छोटे (च) और (अतिस्थूलम्) बहुत मोटे (च) और (अतिकृशम्) बहुत पतले (च) और (अतिशुक्लम्) अतिश्वेत (च) और (अतिकृष्णम्) बहुत काले (च) और (अतिकुल्वम्) लोम रहित (च) और (अतिलोमशम्) बहुत लोमों वाले को (च) भी (एतान्) इन (विरूपान्) अनेक प्रकार के रूपों वाले (अष्टौ) आठों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम लोग भी प्राप्त होओ (अथ) इस के अनन्तर जो (अशूद्राः) शूद्रभिन्न (अब्राह्मणाः) तथा ब्राह्मण भिन्न (प्राजापत्याः)

प्रजापति देवता वाले हैं (ते) वे भी प्राप्त हों जो (मागधः) मनुष्यों में निन्दित जो (पुंश्चली) व्यभिचारिणी (कितवः) जुआरी (क्लीवः) नपुंसक (अशूद्राः) जिन में शूद्र और (अब्राह्मणाः) ब्राह्मण नहीं उन को दूर बसाना चाहिये और जो (प्राजापत्याः) राजा वा ईश्वर के सम्बन्धी हैं (ते) वे समीप में बसने चाहियें ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०। हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् छोटे बड़े पदार्थों को जान के यथायोग्य व्यवहार को सिद्ध करते हैं वैसे और लोग भी करें सब लोगों को चाहिये कि प्रजा के रक्षक ईश्वर और राजा की आज्ञा सेवन तथा उपासना नित्य किया करें ॥ २२ ॥

इस अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप और राजा के कृत्य का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीयुतविरजानन्दसरस्वती
स्वामिनां शिष्येण श्रीमत् परमहंसपरिव्राजकाचार्येण
दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतार्य-
भाषाभ्यां विभूषिते सुप्रमाणयुक्ते यजुर्वेद-
भाष्ये त्रिंशोऽध्यायः पूर्त्तिमगमत् ॥